A. M. Patel to Dada Bhagwan
ज्ञानीपुरुष
'दादा भगवान'
भाग-1

दादा भगवान कथित

ज्ञानी पुरुष

'दादा भगवान' [भाग-1]

मूल गुजराती संकलन : दीपक देसाई

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं,
पढमं हवइ मंगलम् १
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २
ॐ नमः शिवाय ३
जय सच्चिदानंद

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आपमें भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?'

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेशो में कईं जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

समर्पण

अहो! अहो! यह अद्‌भुद नज़राना विश्व को कुदरत का;
'मूलजी-झवेर बा' के आँगन में हुआ अवतरण इस महामानव का!

बचपन से तेजस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व दैदीप्यमान;
भोले-भद्रिक और निर्दोषता, दृष्टि पॉज़िटिव-पवित्र और विशाल!

'न ममता-लोभ या लालच', 'अपरिग्रही', न थी आदत संग्रह करने की;
सरलता-निष्कपटता-वैराग्य, नहीं भीख या कामना कि पूजे कोई!

प्रेमल-*लागणी* वाले और सहनशीलता, सदा परोपकारी स्वभाव;
अनुकंपा सभी जीवों के प्रती, कभी नहीं करते थे तिरस्कार या अभाव!

कभी न देखें अवगुण किसी के, देखकर गुण करते डेवेलप;
कहते रखो मन विशाल, एनी टाइम डोन्ट डिस्मिस ऐनीबडी!

थी भावना असमान्य बनने की, नहीं थी रुचि सामान्य में;
नहीं लघुताग्रंथि, न होते प्रभावित किसी से, रहे निरंतर स्वसुख में!

स्वतंत्र सिद्धांत से चले खुद, आती थी अदंर से अकल्पनीय ज़बरदस्त सूझ;
खुद अंदर वाले के बताए अनुसार चले, आवरण टूटने पर रास्ता मिले!

परिणाम पकड़ने वाला ब्रेन, हर एक कार्य के पीछे दिखता परिणाम;
वैज्ञानिक स्वभाव मूल रूप से, ज्ञान की बात ले जाते विज्ञान में!

माता-पिता के संस्कार सिंचन से, गुण बीज अंकुरित होकर पनपा;
एश्वर्य प्रकट ऐसे संस्कारों से, सहानुभूति से हुआ जीवन सार्थक!

बोधकला से उत्पन्न हुई सूझ, तपोबल से प्रकट हुआ ज्ञान;
सोलह कलाओं वाला खिला सूरज, अंतर में झलहल आत्मज्ञान!

अनेक गुण संपन्न बचपन निराला, यहाँ इस ग्रंथ में समाया;
वर्णित हुआ उनके स्वमुख से और संकलित होकर समर्पित जगकल्याण के लिए!

❖❖❖❖❖

प्रस्तावना

'अहो' वह शुभ दिन कार्तिक सुद चौदस, संवत 1965
तरसाली गाँव में, पाटीदार कौम में जन्मे जग कल्याणी पुरुष!
माँ जातिवान और बाप कुलवान, कुटुंब राजश्री संस्कारी खानदान
क्षत्रियता, दु:ख न दे किसी को, दयालु-करुणा-प्रेम अपार!
'अंबा' के लाल, 'अंबालाल', प्यारे सब के 'गला' कहलाते
विचक्षण और जागृत खूब, उपनाम सात समोलिया से पहचाने जाते!
सात की उम्र में गए स्कूल में, पढ़े गुजराती में चौथी और अंग्रेज़ी में सातवीं तक
लगी परवशता, नहीं लगा पढ़ना अच्छा, लेकिन साथ में बहुत थी समझ!
फेल होने पर निकाला सार, जान-बूझकर नहीं रखनी ढील
ध्यानपूर्वक कर लेना है अभ्यास, ध्येय प्राप्ति और उत्तम परिणाम!
कम उम्र में हुआ भान, अनंत बार पढ़े लेकिन नहीं आया वह ज्ञान
क्या पाया है पढ़ाई से? इतनी मेहनत से तो मिल जाते भगवान!
लघुत्तम सीखते हुए मिला यह ज्ञान, रकमों में अविभाज्य रूप से हैं भगवान
भगवान हैं लघुत्तम सर्व जीवों में, लघुत्तम होने पर खुद बने भगवान!
भाव था स्वावलंबी रहने का, नहीं था पसंद परावलंबन और परतंत्रता
सदा रहे प्रयत्नशील, नहीं पुसाएगा *ऊपरी,* स्वतंत्र जीवनकाज!
ज़रूरतें कम और परिग्रह रहित, जीया जीवन सादा और सरल
जीवन जीए *खुमारी* से, कभी भी न हुए लाचार!
बुद्धि के आशय में थी नहीं नौकरी, निपुण हुए कॉमनसेन्स से व्यापार में
न थी स्पृहा धनवान बनने की, सुखी रहे सदा संतोष रूपी धन से!
विचारशील और विपुल मति, हर एक घटना का सार निकालकर करते हल
न किया कभी अंधा अनुकरण, जिये सुघड़ और सिद्धांतपूर्ण जीवन!

थे जोशीले-शरारती-साहसिक, नहीं था पसंद अघटित व्यापार
न की देखा-देखी, निकालते थे सार, जाँच करते, देखते लाभ-अलाभ!
समझे जब से जोखिम बुद्धि के दुरुपयोग का, हुआ बंद हँसी उड़ाना
भूलों के किए पछतावे, किया निश्चय कभी न हो फिर ऐसा!
व्यवहार में विनयी-नम्र-अहिंसक स्वभाव, देखा हमेशा हित औरों का
औरों को खुश करते व्यवहार, नहीं दुःखाते मन कभी किसी का!
न रखे आग्रह या पूर्वग्रह, बोधकला से प्रकृति पहचानकर लिया काम
नहीं किया टकराव या झंझट, शांति-सुख-आनंद के लिए!
विरोधी के साथ भी न रखी जुदाई, समझा हिसाब है यह मेरा
लट्टू घूमे परसत्ता में, निर्दोष दृष्टि से देखा दोष रहित!
नाटकीय संबंध रखकर सब के साथ, हिसाब चुकाए ऋणानुबंध के
न राग-द्वेष-झगड़े-आसक्ति, देखकर शुद्ध किया समभाव से *निकाल*!
ओब्लाइजिंग नेचर, ठगे गए लेकिन किया परोपकार
नहीं जीया जीवन खुद के लिए, खर्चा पल-पल औरों के लिए!
क्षत्रिय स्वभाव और निडरता का गुण, 'आत्मश्रद्धा' कि मुझे न होगा कुछ
अनुभव करके बने संदेह रहित, कल्पना के भूत और डर से!
रूठने से नुकसान खुद को ही, तय किया नहीं रूठना है कभी
समझ में आया खोकर आनंद खुद का, मोल लेते हैं दुःख नासमझी से!
नहीं था पसंद परतंत्रता या *ऊपरी*, संसार लगा सदा बंधन रूपी
मोक्ष में जाते हुए भगवान भी न हों *ऊपरी*, 'माँ-बाप' *ऊपरी* लेकिन उपकारी!
रिलेटिव में चलेगा *ऊपरी*, लेकिन नहीं चाहिए *ऊपरी* कोई रियल में
मोक्ष हो और भगवान हो *ऊपरी*, लगा अत्यंत विरोधाभास जग में!
खोज करके ढूँढ निकाला, भगवान तो है 'अंदर वाला' ही

भगवान तो है खुद का स्वरूप, नहीं है वह कर्ता जग में किसी चीज़ का!
खुद की भूलें ही हैं खुद की *ऊपरी,* और कोई *ऊपरी* नहीं है जग में
खुद कौन है ? जग कर्ता कौन ? अज्ञान का दोहनकर, अनुभव किया विज्ञान में!
हमेशा चले लोग-संज्ञा से विरुद्ध, सत्य हकीकत की खोज में
नहीं की नकल किसी की, क्या मिलेगा नकल वाली अक्ल में ?
प्रेम वाले और हार्टिली स्वभाव, पर दु:ख से खुद होते हैं दु:खी
निरीक्षण करने की आदत से जाना, यह जगत् है पोलम् पोल!
जगत् दिखा विकराल दु:ख भरा, इसलिए नहीं हुई मोह या मूर्च्छा
पूरा जीवन जिये समझ सहित, जाना रिपेमेन्ट वाला है यह जगत्!
सुने हुए और श्रद्धा वाले ज्ञान से, घुसा यमराज का भय, हुए दु:खी
सोच-विचार से गई उल्टी श्रद्धा, समझे कि नहीं है 'यमराज' कोई!
अज्ञान से मुक्ति हुई सच्चे ज्ञान से, समझ में आया सनातन सत्य
नहीं है कोई कर्ता या *ऊपरी,* जगत् चल रहा है नियम अधीन!
शरारती स्वभाव और शरारती आदत, युक्ति अपनाकर सेठ को छेड़ा
ढूँढ निकाला दंड किसे ? कौन है गुनहगार ? काटते हो क्यों बेकार में ही निमित्त को ?
अंतर सूझ से मिला ज्ञान, 'भुगते उसी की भूल' और 'हुआ सो न्याय'
सोचने पर समझ में आए सही बात, मैं नहीं लेकिन है 'व्यवस्थित कर्ता'!
अनेक घटनाएँ ज्ञानी के बचपन की, पढ़ते ही अहो भाव! हो जाए
कैसे विचक्षण-जागृत स्वानुभव में, कोटि-कोटि वंदन यों ही हो जाएँ!

निवेदन

जीवन तो हर एक व्यक्ति जी ही लेता है लेकिन जीवन की प्रत्येक अवस्था को अलग देखकर, जानकर और उससे मुक्त रह सकें, ऐसे विरल ज्ञानी शायद ही कोई होते हैं!

पहले ज्ञानी पुरुष कुंदकुंदाचार्य हो चुके हैं। हमें उनके जीवन चारित्र के बारे में बहुत जानने को नहीं मिलता जबकि परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र, जो ज्ञानी हो चुके हैं, उनके जीवन के बारे में हमें थोड़ा-बहुत जानने को मिला है। उसके अलावा पुराने समय में कई महान पुरुष, जो आत्मज्ञानी हो चुके हैं, उनकी ज्ञान दशा की कुछ बातें हमें जानने को मिलती हैं लेकिन अज्ञान दशा में किसी खोज के लिए, किस ध्येय से खुद जिये, उस रहस्य के बारे में बहुत जानने को नहीं मिलता। जबकि यहाँ पर हमें परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के पूर्वाश्रम की बातें विस्तारपूर्वक जानने को मिलती है।

ऐसे घोर कलियुग में ऐसा अलौकिक व्यक्तित्व हमें देखने को मिला। उनके जीवन की हकीकतें जानने को मिलीं और ज्ञानी कैसे होते हैं, वह जानने को मिला इसीलिए तो हमें अपने आपके प्रति धन्यता अनुभव होती है कि हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारे बीच पूर्ण ज्ञानी आए और हमने उनसे ज्ञान पाया!

एक बात अवश्य समझ में आती है कि उनका जीवन एक सामान्य व्यक्ति जैसा ही था लेकिन अंदर उनकी समझ असामान्य व्यक्ति जैसी थी। घटनाएँ तो उनके जीवन में भी हमारी तरह की ही होती थीं लेकिन एक ही घटना में तो वे कितना कुछ सोच लेते थे और उसके सार के रूप में कुछ अद्‌भुत आध्यात्मिक विवरण दे सके!

उनकी जन्मों-जन्म से की हुई जगत् कल्याण की भावना और यह कि सामान्य मनुष्य भी जीवन में बिना दु:ख के और आत्मिक आनंद के साथ जीवन जिये, वह बात रूपक में आई। सामान्य मनुष्य के जीवन में आने वाली तकलीफों को खुद अनुभव करके और सही समझ से उन दु:खों में से बाहर निकलकर मुक्ति का आनंद चखा जा सकता है, ऐसा कोई विज्ञान जगत् के लोगों को देना था, और अंत में वे दे सके।

मोक्ष में जाने के लिए संसार बाधक नहीं है, मात्र अपनी नासमझी और अज्ञान ही बाधक है। यह ज्ञान गृहस्थ जीवन में रहकर उन्होंने खुद ने अनुभव किया और सभी सांसारिक लोगों को वही अनुभव ज्ञान दे सके।

यह वाणी जो अभी जीवन चारित्र के रूप में इस ग्रंथ में संकलित हुई है, उसकी विशेषता यह है कि ये सारी बातें दादाश्री ने खुद ने 1968 से 1987 के दौरान बताई हैं जैसे कि ये घटनाएँ कल ही हुई हों और उस समय खुद को क्या विचार आए थे, कौन सा ज्ञान हाज़िर हुआ जिसकी वजह से उल्टा चले और उसकी वजह से कितनी मार पड़ी, उसके बाद अंदर कौन सी समझ प्रकट हुई जिससे वे उसका सॉल्यूशन ला सके, इतने वर्षों बाद भी वे ये सारी बातें बता सके। बड़ी उम्र में भी अपने बचपन से लेकर जीवन में हुई अलग-अलग घटनाओं में क्या हुआ था और खुद को अंदर क्या-क्या उलझनें हुई थीं और खुद उनमें से किस तरह बाहर निकले, वह सब कह पाना और वह भी ज्यों का त्यों, वह बहुत ही आश्चर्यजनक कहा जा सकता है। दादाश्री कहते थे कि ज्ञान होने से पहले मैं याददाश्त के आधार पर कह सकता था कि उस दिन ऐसा हुआ था लेकिन वीतराग होने के बाद में याददाश्त नहीं रही। यदि कोई प्रश्न पूछे तो उपयोग वहाँ पर जाता है और दर्शन में हमें पहले क्या कुछ हुआ था वह ज्यों का त्यों दिखाई देता है और बात होती है।

शुरुआत के सालों में परम पूज्य दादाश्री के सत्संगों की वाणी पूज्य नीरू माँ डायरी में लिख लेते थे। जब से टेपरिकॉर्डर आया तब से ऑडियो केसेट में रिकार्ड करने लगे। वह केसेट वाली वाणी कागज़ पर उतारकर, एडिटिंग करके पूज्य नीरू माँ ने चौदह आप्तवाणियों और अन्य कई पुस्तकों का संकलन किया था। शुरू से ही उनकी दिल की भावना थी कि इस संसार को ऐसे महान ज्ञानी पुरुष की पहचान ज्ञानी पुरुष के रूप में करवानी है। इतना ही नहीं उनका जीवन चारित्र बताकर लोगों को उनके व्यवहार ज्ञान से संबंधित समझ प्राप्त हो सके कि व्यवहारिक जीवन में उनकी कैसी अद्‌भुत समझ थी जिसकी वजह से जीवन में मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ वे आदर्श व्यवहार

कर सके। आज इस बात का आनंद हो रहा है कि पूज्य नीरू माँ की भावना के अनुसार ज्ञानी पुरुष का अद्‌भुत जीवन चारित्र 'ज्ञानी पुरुष' भाग-1 ग्रंथ के रूप में जगत् को अर्पित हो रहा है। दादा के श्रीमुख से निकली हुई वाणी में उन्होंने खुद ने अपने जीवन की बातें बताई हैं। उस वाणी का इतना कलेक्शन है कि भविष्य में उनके जीवन की बातों पर 'ज्ञानी पुरुष' के और अधिक भाग छप सकेंगे।

हमारे पास तरह-तरह की बातों के सुंदर कलेक्शन तो हैं ही। सभी केसेट लिखी जा चुकी हैं और उनमें से बेस्ट कलेक्शन मिला है और बहुत ही अच्छी, सूक्ष्म बातें बहुत महेनत से ढूँढकर रखी गई हैं। इस कार्य के होने में बहुत बड़ी टीम है, जिसमें ब्रह्मचारी भाई-बहनें तथा कितने ही महात्मा भाई-बहनें दिन-रात मेहनत कर रहे हैं और फिर कितने ही दूसरे लोग डायरेक्टली-इनडायरेक्टली सहायक हुए हैं। इन सब की मेहनत के परिणाम स्वरूप इतनी अच्छी चीज़ इतनी जल्दी तैयार हो सकी है।

'ज्ञानी पुरुष' के इस ग्रंथ में हमारे पास दादाश्री द्वारा बोली गई वाणी का जो कलेक्शन था उसके आधार पर सब टैली करके-जाँच करके और बहुत ही सतर्कता पूर्वक संपादन की ज़िम्मेदारी अदा हुई है, फिर भी इस पुस्तक के संकलन में यदि क्षति रह गई हो तो उसके लिए सुज्ञ वाचक वर्ग हमें क्षमा करें।

परम पूज्य दादाश्री का यह जीवन चारित्र जगत् को समर्पित करते हुए हम धन्यता का अनुभव कर रहे हैं। हम सभी महात्मा इस ग्रंथ का गहराई से अभ्यास करके, मानव में से महामानव बने इन व्यक्ति के गुणों की प्रशंसा और आराधना करेंगे और इसे नकारात्मक या लौकिक दृष्टि से नहीं तौलते हुए, इसे पॉज़िटिव और अलौकिक दृष्टि से तौलकर उनके ऐसे गुणों और व्यक्तित्व को आत्मसात करने की भावना करके, स्वकल्याण के पुरुषार्थ के साथ जगत् कल्याण के मिशन में हम यथायोग्य योगदान करके कृतार्थ हों इसी अंतर की अभिलाषा सहित आत्मभाव से प्रणाम।

दीपक के जय सच्चिदानंद

संपादकीय

इस काल के अद्‌भुत आश्चर्य हैं ज्ञानी पुरुष दादा भगवान, जिनके प्राकट्य से एक अकल्पनीय आध्यात्मिक क्रांति सर्जित हुई है। इस कलिकाल में जहाँ यथार्थ रूप से धार्मिक शास्त्रों के स्थूल अर्थ को भी समझना मुश्किल है वहाँ पर उसमें समाए हुए गूढ़ार्थ और तत्वार्थ को कैसे समझा जा सकता है? और यदि वह समझ में न आए तो फिर वास्तविक अर्थ में अध्यात्म को प्राप्त भी कैसे किया जा सकता है?

लेकिन कुदरत की बलिहारी तो देखो! इस कलिकाल में ऐसे प्रखर ज्ञानी पुरुष का अवतरण हुआ जिनके माध्यम से सामान्य व्यक्ति भी आसानी से अध्यात्म को समझ तो सकता ही है, लेकिन इतना ही नहीं यथार्थ रूप से स्वानुभूति भी कर सकता है। मात्र एक ही घंटे में भेदज्ञान के प्रयोग से स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति करवा देना, वह क्या कोई ऐसी-वैसी सिद्धि है? ऐसे सिद्धिवान व्यक्ति का व्यक्तित्व कितना निराला होगा और उस सिद्धि की प्राप्ति के पीछे क्या भावना या पुरुषार्थ रहा होगा हमें उसे जानने की उत्कंठा हुए बगैर तो रहेगी ही नहीं न?

शिखर पर पहुँचने के लिए तलहटी से उस मार्ग तक प्रयाण करके हर कोई वहाँ पर पहुँच सके तो वहाँ कौतुहलता नहीं होगी, ऐसा स्वाभाविक है लेकिन शिखर पर पहुँचने के लिए जहाँ पर मार्ग ही दृष्टिगोचर नहीं है वहाँ, जब कोई शिखर पर पहुँचकर चारों तरफ का वर्णन करे तब अहोभाव से आश्चर्य हुए बगैर नहीं रहता कि ये व्यक्ति वहाँ पर किस प्रकार से, किस समझ से, कैसे पुरुषार्थ से पहुँच सके होंगे! कोई अनुभवी व्यक्ति ही उसका ऐसा हूबहू वर्णन कर सकता है जो कि बुद्धिगम्य और काल्पनिक नहीं है लेकिन वास्तविक है!

ज्ञानी पुरुष दादा भगवान को 1958 में एकाएक आत्मज्ञान तो हुआ लेकिन उससे पहले, जन्म से लेकर तब तक उनकी जर्नी (यात्रा) किस प्रकार से हुई? क्या मुसीबतें आईं? किस प्रकार से सफलता प्राप्त की वगैरह, हमें ऐसे रहस्यों को जानने की जिज्ञासा होना भी स्वाभाविक है। इसी हेतु से महात्माओं ने परम पूज्य दादाश्री से उनके

जीवन के बारे में अनेक प्रश्न पूछे हैं और दादाश्री ने अपने दर्शन में देखकर यथार्थ रूप से उन सब के जवाब दिए हैं।

परम पूज्य दादाश्री द्वारा वर्णित उनके जीवन की घटनाओं को संकलित करके प्रकाशित करने के इस प्रयास से यह जीवन चारित्र ग्रंथ भाग-1 हमारे हाथ में आया है। उसमें उनके बचपन की घटनाएँ तथा पारिवारिक जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

परम पूज्य दादाश्री ने जैसा बताया उसी रूप में यह संकलन प्रकाशित हुआ है। उन्हीं के शब्दों में लिखित यह पुस्तक वास्तव में एक अद्भुत उपहार है! हमारे लिए यह गौरव की बात है कि जिस प्रकार से परम पूज्य दादाश्री ने उनके अनुभव के निचोड़ के रूप में आत्मज्ञान और मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ दिखाया है, उसी प्रकार से उन्हीं के दर्शन द्वारा लिखित ये जीवन प्रसंग हमेशा के लिए एक यादगार बन जाएँगे। जिसे पढ़ते ही हमें उस समय का, उनकी दशा का, उनके व्यक्तित्व का, उनकी सूझ-समझ और बोधकला के दर्शन होते हैं।

परम पूज्य दादाश्री ने ज्यों का त्यों, कुछ भी गुप्त रखे बिना, सादी-सरल शैली में सब बता दिया है जो उनके निखालस व्यक्तित्व की झलक दे जाता है। उनका मोरल और उनकी ज्ञानदशा वास्तव में प्रसंशनीय हैं। रिलेटिव में लघुत्तम बनकर रियल में गुरुतम बनने की दृष्टि तो कोई विरला ही रख सकता है। स्कूल में लघुत्तम साधारण अवयव सीखते हुए भगवान की परिभाषा ढूँढ निकाली कि भगवान जीवमात्र में अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं। कैसी गुह्य तात्विक दृष्टि! ऐसी दृष्टि ही बता देती है कि बचपन में भी उनका आध्यात्मिक डेवेलपमेन्ट कितना उच्च था! इस समझ के आधार पर वे लघुत्तम की तरफ गए और इसी रवैये ने उन्हें परमात्म पद से नवाज़ा!

दादाश्री खुद कहते थे कि हमारी मति विपुल है, हमारी दृष्टि विचक्षण है। कोई भी घटना होती थी तो उसमें हमें चारों तरफ के हज़ारों विचार आ जाते थे और सार निकाल देते थे। बड़े-बड़े शास्त्रों का सार भी वे पेज पलटकर सिर्फ पंद्रह मिनट में निकाल देते थे और समझ जाते थे कि यह शास्त्र आध्यात्मिकता के कौन से मील पर है।

उन्हें एक-एक बात पर हज़ारों विचार आते थे तो उस पर से हमें प्रश्न होता है कि कैसे विचार आए होंगे, अंदर कैसी समझ रहती होगी, लेकिन वास्तव में उन्होंने खुद ने जब ये बातें बताई तब उनका एनालिसिस देखने को मिला, हमें समझने को मिला कि 'ओहोहो! ऐसी डीप अन्डरस्टैन्डिंग (गहरी समझ)!'

उन्होंने अपने जीवन में मिलने वाले व्यक्तियों की प्रकृति पहचानी, उन लोगों को उनकी प्राकृतिक कमज़ोरियों में से, बुरी आदतों में से किस तरह से छुड़वाया, जिसके बारे में पूरा गाँव और उसके परिवार के लोग नेगेटिव बोलते थे, उस व्यक्ति में कोई तो पॉज़िटिव गुण होगा ही, और अंत में खुद ने अपना समय और पैसा उस व्यक्ति के अच्छे गुण ढूँढकर उसे एन्करेज करके आगे बढ़ाने में लगाते थे। हमें उनकी वह मौलिक विशेषता देखने को मिलती है। उन्हें इस संसार में कुछ भी नहीं चाहिए था। जैसे कि खुद इस संसार का ऑब्ज़र्वेशन करने ही आए हों और 'मुझे जो मिला उसे सुखी बना दूँ' ऐसी भावना से जीवन जिये, ऐसा खुले तौर पर समझ में आता है।

उनके दिल में हमेशा यही रहता था कि किसी को दु:ख नहीं देना है और दु:ख नहीं देने के लिए वे सभी एडजस्टमेन्ट लेते थे। सभी के पॉज़िटिव ही देखे और खुद दु:खी भी नहीं हुए। परिस्थिति को समझकर प्रॉब्लम सॉल्व की हैं, वह उनके व्यवहार में दिखाई दिया है।

व्यापार में भागीदार, नौकर, बॉस के साथ और परिवार जनों के साथ प्राकृतिक राग-द्वेष, प्राकृतिक दोषों के कारण जिस तरह सभी सामान्य लोग संसार में रहकर टकराव-मतभेद-चिंता-दु:ख और *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर) भुगतते हैं, वैसे ही दु:ख-भय-नासमझी की उलझनें उन्होंने खुद ने भुगतीं और उनके परिणाम में से सही समझ द्वारा छूटे भी सही और आखिर में हमेशा के लिए दु:ख मुक्त हो सके।

उनके जीवन में यह विशेषता देखने को मिलती है कि फादर-मदर, बड़े भाई-भाभी, बुज़ुर्गों के प्रति उनका विनय और प्रेम हमेशा रहा है। उन्होंने कभी भी उनसे बड़े बनकर व्यवहार नहीं किया।

उनके जीवन में माता-पिता, भाई-भाभी, चाचा-भतीजे, पत्नी, मित्र वगैरह लोगों के बाह्य व्यवहार और आंतरिक समझ, प्राकृतिक गुण-दोष व उनके साथ उन्हें खुद को क्यों, किसलिए, कैसा व्यवहार किया, ज्ञानदशा में रहकर वे इन सभी बातों का सूक्ष्मता से वर्णन कर पाए हैं। प्रकृति के पॉज़िटिव-नेगेटिव, गुण-दोषों की बातें और उनके प्रतिक्रमण कितने पछतावे सहित, किस प्रकार से किए हैं, वह सब ज़ाहिर किया है। जैसे कि किसी अन्य व्यक्ति की बात कर रहे हों, उस प्रकार निष्कपट रूप से, निखालसता से बता दिया है।

इस संसार में गुरु से संबंधित, भगवान से संबंधित, यमराज से संबंधित अनेक प्रकार की अज्ञान मान्यताओं का खातमा उन्होंने बचपन से ही कर दिया और उन्होंने खुद ने सही बात को समझा और उसे निर्भयता से बता सके और सामान्य लोगों की नासमझी दूर करके उन्हें निर्भय बना सके।

दादाश्री ने खुद के जीवन व्यवहार की सभी गलतियाँ महात्माओं के सामने बता दीं जैसे कि खुद आलोचना करके अपनी भूलों से मुक्त हो गए! ऐसे महान पुरुष खुद की भूलें सब के सामने बता दें, हर जगह 'नो सीक्रेसी', यह हकीकत वास्तव में प्रसंशनीय है। उन्होंने क्या भूलें की, किस प्रकार से भूलों में से बाहर निकले और कैसे भूलों से हमेशा के लिए मुक्त हुए, क्या बोध लिया और उस जागृति को ज़िंदगी भर हाज़िर रखा, फिर कभी भी रिपीट नहीं होने दिया, ऐसे समझदारी भरे पुरुषार्थ से खुद साफ होकर मोक्ष के लायक बन गए।

यहाँ दादाश्री हमें यह बोध सिखा जाते हैं कि जीवन में खुद की भूलों को पहचानो, उनके लिए पछतावा करके भूलों में से मुक्त हो जाओ। जब भूलें खत्म हो जाएँगी तो यहीं पर मोक्ष बरतेगा।

दादाश्री के बचपन में लोकसंज्ञा, संगत और पूर्वकर्म के उदय के कारण ताश का तीनपत्ती का खेल खेलना और अँगूठी की चोरी करना ऐसी कुछ घटनाएँ हुई हैं लेकिन उन उदाहरणों को हमें नेगेटिव तरीके से नहीं लेना है। दादाश्री कहते थे कि ज्ञानी जो करते हैं वह

नहीं करना है लेकिन वे जो कहें, वह करना है इसलिए हमें उनके जीवन में हुई गलतियों का अनुकरण नहीं करना है लेकिन हम से कभी ऐसी गलतियाँ न हों, ऐसी जागृति रखकर हमेशा के लिए भूल रहित बनना है, तब फिर मोक्ष मार्ग पूर्ण होगा।

यहाँ पर लिखी हुई दादाश्री के पूर्वाश्रम की सभी बातें निमित्ताधीन निकली हैं, लेकिन अंदर से उन्हें खुद को आत्मदशा की संपूर्ण जागृति बरतती है।

एक बार सत्संग में रात को उनकी फैमिली की बातें निकली थीं। उसमें लोगों ने तरह-तरह की बातें पूछीं और दादाश्री ने बातें की कि, 'हमारे भाई, हमारी भाभी, हमारी मदर ऐसी थीं, हमारे फादर ऐसे थे'। अंत में उन्होंने कहा कि, 'आज आप सब लोग तो ओढ़कर सो जाओगे जबकि मुझे तो पूरी रात प्रतिक्रमण करने होंगे क्योंकि हम आत्मा हैं, आत्मा का न भाई होता है, न भाभी होती है। वे सब भी आत्मा हैं लेकिन सभी को रिलेटिव रूप से देखा। अत: हमें आज पूरी रात यह जितने भी राग-द्वेष वाले वाक्य बोले गए हैं उन सभी के प्रतिक्रमण करके मिटाना पड़ेगा!'

यहाँ पर उनकी वह समझ दृष्टिगोचर होती है कि वे खुद, आज जिस आत्म स्वरूप में हैं, उसी स्वरूप में रहना चाहते हैं। आज वे खुद पूर्व में उदय में आई दशाओं में नहीं हैं, आज खुद आत्मा रूपी हैं, फिर भी उन्होंने अपने पूर्वाश्रम की जो बातें वाणी में बोलीं, उन्हें निश्चय दृष्टि से मिटा देना पड़ेगा। बोलते समय भी जागृति रहती है कि 'यह मैं नहीं हूँ और वह खुद वह नहीं है, वह भी आत्मा है, मैं भी आत्मा हूँ'। फिर भी उदय में ऐसा बोलने का मौका आया इसलिए साफ करना पड़ेगा। प्रकट ज्ञान अवतार की यही अद्‌भुतता है। खुद का आत्मापन चूकना नहीं है और ज्ञान से पहले अज्ञान दशा में व्यवहार की जो गलतियाँ हुई थीं, वे घटनाएँ बता दीं और साफ कर दीं। साथ ही साथ निश्चय से तत्वदृष्टि न चूक जाएँ, वह बात भी बता दी। इस प्रकार निश्चय व व्यवहार दोनों शुद्धता में आ गए। इसीलिए

तो वे 'अक्रम विज्ञान के प्रणेता' बनकर अन्य लोगों के कल्याण के निमित्त बन सके।

ऐसी तो कई सारी बातें यहाँ पर लिखी गई हैं, जिनके अध्ययन से हमें उनके अनोखे व्यक्तित्व के स्वाद का आनंद मिलता है और अहोभाव होता है। धन्य है अंबालाल जी को! धन्य है उनके माता-पिता को! धन्य है उनके राजसी कुल को!

उनका जीवन अंबालाल मूलजी भाई पटेल के रूप में शुरू हुआ था और खुद ज्ञानदशा से ज्ञानी पुरुष बनकर 'दादा भगवान' के स्वरूप तक पहुँच सके।

ऐसे दादा नहीं मिलेंगे, दादा का ऐसा ज्ञान नहीं मिलेगा और ऐसा जीवन चारित्र जानने को नहीं मिलेगा। अद्‌भुत! अद्‌भुत! अद्‌भुत!

बचपन से ही उनके जीवन का ध्येय क्या था? तो वह यह कि, 'मुझे *ऊपरी* नहीं पुसाते थे। मुझे भगवान जानने थे। सचमुच के भगवान कहाँ हैं, क्या करते हैं, किस स्वरूप में हैं, मेरा जीवन उसकी प्राप्ति के लिए था'। और वह ढूँढते-ढूँढते फिर जीवन में जो शिक्षण आया, फादर-मदर, भाई-भाभी सब के साथ के व्यवहार में भी उनकी यह खोज रुकी नहीं थी और अंत में उसे प्राप्त कर सके। निरंतर उनके चित्त में भगवान से संबंधित यह एनालिसिस चलता रहता था। वे मेरे अंदर ही बैठे हुए हैं, हर एक के अंदर बैठे हुए हैं, ऐसा विश्वास तो उन्हें हो गया था और अंत में 1958 में जब ज्ञान प्रकट हुआ तो पूर्णाहुति हुई। उसके बाद तो उनका जीवन जगत् कल्याण में ही बीता, लेकिन ऐसे ज्ञानी पुरुष के बचपन का वर्णन उन्हीं के मुँह से, उन्हीं के शब्दों में हमें, तलपदी भाषा में मिलता है और फिर साफ-साफ बातें हैं। उनकी खुद की देखी हुई और अनुभव की हुई। वास्तव में यह एक अद्‌भुत पुस्तक बनी है।

जगत् कल्याण के इस मिशन में दादा की कृपा है, नीरू माँ के आशीर्वाद हैं और इसमें देवी-देवताओं की ज़बरदस्त सहायता है। इसलिए इस दुनिया को ऐसे अनुपम ज्ञानी पुरुष की पहचान हो, उसमें

हम तो महेनत करते ही हैं लेकिन देवी-देवताओं, दादा और नीरू माँ इन सब की असंख्य कृपा से अच्छा काम हो रहा है। हमें तो आनंद करना है और दादा के गुणगान गाते रहना है। वह आराधना करते-करते, उनकी भजना-भक्ति करते-करते, उसी रूप बनकर रहेंगे।

दादा की आप्तवाणियाँ और अन्य किताबों में से हमें ज्ञानकला तो बहुत जानने और सीखने को मिलती है लेकिन व्यवहार, परिवार या व्यापार में कभी ऐसा मौका आ जाता है कि निश्चय से हम पाँच आज्ञा पालने का पुरुषार्थ तो करते हैं लेकिन व्यवहार में हम अब क्या निर्णय लें, फाइलों के साथ का व्यवहार ज्यों का त्यों रखना है या कम कर देना है और ज्यों का त्यों रखेंगे तो अंदर उनके लिए कौन सी व्यवहारिक समझ सेट करनी है, उसके लिए हमें इस ग्रंथ में दादा की कई बोधकलाएँ जानने को मिलेंगी। ऐसा हर एक को अनुभव होगा कि व्यवहार की उलझनों को सुलझाने के लिए दादा की अनोखी सूझ का जो भंडार है, वह उन्होंने महात्माओं के लिए खोल दिया है।

हमें तो अब ज्ञानी पुरुष के इस जीवन चारित्र का अध्ययन करके व्यवहार में उन जैसी सूझ-समझ, सतर्कता, जागृति और पुरुषार्थ रहे, ऐसे निश्चय के साथ, 'निश्चय-व्यवहार' की समानता के साथ मोक्ष का पुरुषार्थ कर लेना है, वही अंतर की अभ्यर्थना।

दीपक देसाई

उपोद्घात

[1] बचपन

[1.1] परिवार का परिचय

यह ग्रंथ ज्ञानी पुरुष दादा भगवान के जीवन चारित्र पर है। इस ग्रंथ में दादाश्री की सरलता और सहजता देखने को मिलती है। वे बच्चे जैसी सरलता से जवाब देते हैं। लोगों ने सत्संग में बैठे-बैठे उनके बारे में सभी बातें पूछी हैं और उन्होंने खुद के जीवन की किताब ज्यों की त्यों खोलकर रख दी है। वे खुद ए.एम.पटेल के साथ नज़दीकी पड़ोसी की तरह रहते थे, अतः इस तरह से सबकुछ बता दिया जैसे कि पड़ोसी का जीवन चारित्र बता रहे हों। खराब हुआ, अच्छा हुआ, क्यों ऐसा हुआ, उन्होंने इसमें से क्या सीखा, उन्होंने खुद ने कैसी-कैसी गलतियाँ की थीं और किस प्रकार से उनके लिए पछतावा किया, ये सभी बातें हमें जानने को मिलती हैं।

विशेषता तो यह है कि हम सब के जीवन में जैसी घटनाएँ घटती हैं, उनके जीवन में भी वैसी ही घटनाएँ हुईं लेकिन वे खुद साक्षी भाव से, ओब्ज़र्वर की तरह रहे और उस समय किस तरह के सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार आए, वह सब भी देख सके। इतना ही नहीं लेकिन उनकी बचपन की विचार श्रेणी की सत्तर-पचहत्तर-अस्सी साल तक की उम्र में भी जैसे कि आज ही न हुआ हो, उस तरह से बता सके हैं, यही ज्ञानी पुरुष की अद्भुतता है।

लोगों ने उनके बचपन के बारे में प्रश्न पूछे हैं तो उन्होंने सरलता से जवाब भी दिए हैं। 'संक्षिप्त में अपना जीवन चारित्र बताइए', तो कहा कि 'मेरा नाम अंबालाल मूलजी भाई पटेल है, मैं भादरण गाँव का वासी हूँ, मेरी मदर झवेर बा हैं, मेरे फादर मूलजी भाई, मेरे बड़े भाई मणि भाई'। यह भी बता दिया कि 'मैं मैट्रिक फेल हूँ'। विवाह के बारे में भी बताया कि, 'पंद्रह साल की उम्र में शादी हुई थी, वाइफ का नाम हीरा बा। दो बच्चे हुए थे (मधुसूदन, कपिला)। दोनों बचपन में ही गुज़र गए'।

जन्म ननिहाल में, तरसाली गाँव में (जिला बड़ौदा) में हुआ था।

उनका जन्मदिन सात नवम्बर 1908 और विक्रम संवत के हिसाब से 1965, कार्तिक सुद चौदस।

खुद भादरण गाँव के, भादरण चरोतरी पटेलों के छ: गाँव में आते हैं। यह टॉप क्लास चरोतर गाँव में से एक माना जाता है। खुद कृपालुदेव ने भी कहा था कि हमारा जन्म चरोतर में हुआ होता तो और अधिक लोगों का कल्याण होता।

भादरण के पाटीदार मूल अडालज गाँव से आए थे इसलिए दादाजी कहते थे कि, 'हम सभी छ: गाँव वाले मूल रूप से अडालज के हैं'।

उनका जन्म संस्कारी परिवार में हुआ था। उनकी मदर जातिवान, कोमल हृदयी, दयालु, स्नेही स्वभाव वाली, बहुत ही समझदार थीं। फादर कुलवान, ब्रॉड विज़न वाले थे और ऐसे थे कि उनमें कोई भी दाग़-चोरी-लुच्चाई देखने को नहीं मिली।

फादर-मदर प्योरिटी वाले और उनका जीवन हमेशा ऐसा रहा कि किस प्रकार से लोगों की हेल्प हो। अंबालाल जी को वे संस्कार बचपन से ही मिले। उनके समय में कहा जाता था कि ऐसी मदर तो शायद ही किसी काल में किसी को मिलती है। यानी कि फैमिली अच्छी, मदर बहुत ही संस्कारी!

खानदानी पाटीदार परिवार में उस ज़माने में दहेज बहुत अच्छा मिलता था। कुटुंब उच्च लेकिन जायदाद कुछ ज़्यादा नहीं थी, खानदानी की ही कीमत थी। साढ़े छ: बीघा ननिहाल में और दस बीघा भादरण में, इतनी ही जायदाद थी।

लोग दादाजी से पूछते थे कि 'अगर ऐसा पुण्य हो तभी इतनी अच्छी जगह पर जन्म होता है तो फिर आपका जन्म ऐसी वैभवशाली जगह पर क्यों नहीं हुआ? जहाँ बंगला वगैरह सब तैयार मिलते'। दादाश्री कहते हैं कि 'पिछले जन्मों में मैं उस वैभव को देखकर ही आया हूँ। मुझे तो शुरू से ही भौतिक वैभव बिल्कुल भी अच्छा नहीं

लगता था। शुरू से ही वैभव वाली चीज़ मिलें तो अच्छी नहीं लगती थीं'। इनकी यह एक विशेषता थी बचपन से ही।

सामान्य रूप से छोटे बालकों को सुख, अनुकूलता, वैभव, मौज-मज़े अच्छे लगते हैं लेकिन बालक अंबालाल को यह सब अच्छा नहीं लगता था इसलिए वे हमेशा कहते थे कि, 'मेरा जीवन इस दुनिया को देखने में, ऑब्ज़र्वेशन में ही बीता है। मुझे संसार भोगने में कोई रुचि नहीं थी। मुझे इस जगत् की हकीकत जानने में इन्टरेस्ट था। मात्र आध्यात्मिक जानने में ही रुचि थी। संसार में मुझे कुछ भी नहीं चाहिए था। यह सुख मुझे शुरू से ही कड़वा लगता था'।

दादाश्री कहते हैं कि 'मैं पूर्व जन्म से ऐसा हिसाब लेकर आया था, इसलिए ऐसे परिवार में जन्म हुआ। मूल रूप से बीज मेरा था और उनमें यह दिखाई देने की वजह से, उनकी वजह से मेरे पूर्व जन्म के प्राकृतिक गुण और संस्कार प्रकट हुए'।

जिस परिवार में ऐसे ज्ञानी पुरुष का जन्म हो, उस परिवार को तो लाभ होता ही है लेकिन कितनी ही पीढ़ियों को यह लाभ मिलता है! लेकिन उसमें भी यदि कोई पहचान जाए कि, 'ये ज्ञानी पुरुष हैं', उनसे ज्ञान प्राप्त करे और आज्ञा का पालन करे तो मोक्ष का कनेक्शन मिल जाता है। वर्ना बस इतना ही है कि संसार लाभ प्राप्त होता है।

उनके कुटुंब की विशेषता यह थी कि छः-सात पीढ़ियों से किसी लड़की का जन्म नहीं हुआ था। किसी को भी साला बनना अच्छा नहीं लगता था। पूर्व काल में कोई ऐसा अहंकार किया होगा जिससे कि 'साला' शब्द सुनने से अपमान महसूस हुआ होगा। तभी से गाँठ बाँध दी होगी कि किसी का साला नहीं बनना है। ऐसा जो हुआ, वह तो पूर्व जन्म में किए हुए अहंकार के परिणाम स्वरूप हुआ होगा और उसे वह खुद अपनी कमज़ोरी के रूप में स्वीकार करते हैं।

बचपन से ही उन्हें ग़ज़ब की *खुमारी* रहती थीं। उन्हें ऐसा रहता था कि खुद पूर्व जन्म की कोई पूँजी लेकर आए हैं। कोई साधु अगर उनसे कहता कि 'विधि करवानी पड़ेगी', तो वे खुद मदर से कहते थे

कि 'विधि मत करवाना'। और उस साधु से भी कह दिया कि ''मैं तो 'राम की चिट्ठी' लेकर आया हूँ।''

[1.2] निर्दोष ग्राम्य जीवन

मदर ने आठ साल तक घी नहीं खाने का प्रण लिया था और हमेशा अंबा माँ की भक्ति करते थे इसलिए उनका नाम अंबालाल पड़ा। बचपन में *गलगोटा* (गेंदे) जैसा चहेरा था इसलिए प्यार से उनका नाम 'गलो' रखा था।

उनके ज़माने में कपड़ों की कमी थी, तो बचपन में नौ-दस साल के होने तक तो कपड़े भी नहीं पहनाते थे इसलिए छोटे बच्चों में विषय-विकार जागृत ही नहीं होते थे। चौदह-पंद्रह साल के होने के बाद भी गाँव की लड़कियों को बहन कहते थे। यानी कि कोई खराब विचार ही नहीं। भोली-भद्रिक प्रजा, निर्दोष ग्रामीण जीवन जीते थे।

बचपन में क्या-क्या हुआ था, उसका आँखों देखा वर्णन उन्होंने खुद ने बताया है। मन में क्या था, किस समझ की वजह से ऐसा हो गया, उस समय वाणी और वर्तन कैसे थे, लोगों के विचार-वाणी और वर्तन कैसे थे, वह सब उस समय बचपन में ही अत्यंत सूक्ष्म रूप से नोट किया था, उसे समझ सके थे। वह सब समझकर, गाँव की तलपदी भाषा में उन्होंने अपने जीवन के प्रसंग बता दिए हैं।

[1.3] बचपन से ही व्यवहारिक सूझ उच्च

लोगों ने बचपन में दादाश्री को '*सात समोलियो*' नामक उपनाम दिया था। यों तो जब बैल को जुताई के लिए ले जाते हैं तब *समोल* हल में जोता जाता है तो *सात समोलिया* बैल की बहुत कीमत मिलती है। वह बैल खेती बाड़ी की ज़मीन जोतने के काम आता है, कुँए से पानी की रहट खींचता है, बैल गाड़ी चलाता है, आँखों पर पट्टी बाँधकर घानी चलानी हो तो उसमें भी काम आता है। जिस तरह वह सात तरह के कामों में आता है उसी तरह अंबालाल को होता था कि

मुझ में कुछ शक्ति हैं इसलिए मुझे सब '*सात समोलियो*' कहते हैं, इससे वे मन ही मन खुश होते थे।

पढ़ने-लिखने वाले एक *समोलियो* कहलाते हैं। उसे सिर्फ पढ़ाई यानी एक ही कोर्नर अच्छा लगता है और बाकी सभी तरफ का सोचना अच्छा नहीं लगता जबकि *सात समोलिया* तो घर में रहकर पढ़े तब भी हिसाब लगाता रहता है कि हमारी इन्कम कितनी है, खर्चा कितना है, माँ-बाप को कितनी तकलीफ होती होगी, उनके पास यह सारा हिसाब रहता है, वे इतने विचक्षण होते हैं। लोग आमने-सामने बातें कर रहे हों तो वे समझ सकते हैं कि क्या बात कर रहे हैं! हर एक तरह से ध्यान रखते हैं। माँ-बाप की सेवा करते हैं, पैसा किस तरह से आता है, कहाँ नुकसान हो जाता है, माँ-बाप की स्थिति क्या है, इन सब बातों का उन्हें ध्यान रहता है। ऐसा *सात समोलिया* तो कोई ही इंसान होता है। अंबालाल जी वैसे ही थे इसलिए कहते थे न कि, 'मुझे पढ़ाई में इतना नहीं आया, मैट्रिक फेल हुआ'। पढ़ाई करना नहीं आया था लेकिन उनका ध्यान चारों तरफ रहता था। पढ़ाई में एकाग्रता नहीं रहती थी लेकिन बचपन से ही व्यवहारिक सूझ उच्च प्रकार की थी।

बचपन से ऐसा मोह ही नहीं था कि चित्त कहीं चिपक जाए इसलिए बचपन में जो कुछ भी हुआ, वह उन्हें पूरी तरह से याद रहा। 'इस दिन, इस जगह पर ऐसा हुआ था,' ऐसा सब उन्हें दिखाई देता था। जीवन में, उम्र के हर एक साल में क्या हुआ, उन सब को समझ सकते थे, और बड़े होने पर भी उन्हें वह सब ज्यों का त्यों याद रहा। पूछने पर बात निकलती थी और वे सबकुछ देखकर बता सकते थे।

[1.4] खेल कूद

बचपन से ही अन्य बच्चों के साथ मिलकर शरारत और मस्ती करते थे। ननिहाल में जाते थे तब गाँव में तालाब में जो भैंस बैठी होती थीं, उन पर बैठ जाते थे। ननिहाल में सभी भाँजे का सम्मान करते थे, मान सहित रखते थे।

खेल खेलते थे लेकिन विचारशील थे। पतंग उड़ाने में कभी भी

समय नहीं बिगाड़ा। वे कहते थे कि पतंग उड़ाने में कोई मज़ा नहीं है, फायदा नहीं है। वास्तव में मकर संक्रांति के समय सूर्य की ओर देखना हितकारी है इसलिए जब लोग पतंग उड़ाते थे तो वे खुद सिर्फ देखते थे। लोग जैसा देखा-देखी से करते हैं उन्होंने वैसा नहीं किया।

पटाखे फोड़ने का भी उन्होंने सार निकाल लिया। राजा खुद पटाखे फोड़ता है या नौकर से फुड़वाता है? किसी राजा ने पटाखे नहीं फोड़े, नौकर से ही फुड़वाते हैं। वे खुद पटाखे नहीं फोड़ते थे, कुर्सी पर बैठकर देखते थे। लाभ किसमें है, उनकी विचक्षण बुद्धि द्वारा वह उन्हें समझ में आ ही जाता था।

इस ज़माने में बचपन में भाभी के साथ होली खेली थी। भाभी ग्यारह साल की थीं और वे खुद दस साल के। तो वे राग-द्वेष भूलकर होली खेलते थे। उसके बाद देसी घी और गुड़ से बनी सेव खाते थे और आनंद करते थे, ऐसा निर्दोष ग्राम्य जीवन था तब।

[2] शैक्षणिक जीवन

[2.1] पढ़ना था भगवान खोजने के बारे में

सात साल की उम्र में स्कूल में दाखिल हुए और चौथी कक्षा तक गुजराती में पढ़े और उसके बाद मैट्रिक तक अंग्रेज़ी में पढ़े। उन्होंने भादरण गाँव में ही पढ़ाई की। पढ़ाई करते हुए एक बार बड़े भाई उन्हें कुछ सिखाने लगे, उसे देखकर फादर ने ऐसा कहा कि 'यह तो सब पढ़कर ही आया है, तू इसे कहाँ पढ़ाने बैठा?' इतना सुनते ही उन पर इतना असर हो गया, अहंकार चढ़ गया और उससे उनका पढ़ना रुक गया।

जब स्कूल में जाते थे तो घंटी बजने के बाद ही स्कूल में दाखिल होते थे। मास्टर जी चिढ़ते थे तो उस पर ध्यान नहीं देते थे। एक तरह का रौब था मन में, *आड़ाई* थी कि 'देर से ही जाऊँगा, क्या कर लेंगे?'

ऐसी शरारती प्रकृति थी कि मास्टर साहब भी घबराते थे। ऐसा

क्यों होता था क्योंकि उन्हें शुरू से ही परवशता अच्छी नहीं लगती थी। बुद्धि इतनी हाइपर थी जो आवरण वाली थी इसलिए फिर ऐसी कुछ शरारत किए बगैर रहते ही नहीं थे।

बड़ी मुश्किल से पढ़ाई के लिए क्लास में बैठते थे। स्कूल की पढ़ाई नहीं आती थी। उसमें एकाग्रता नहीं हो पाती थी जबकि दूसरी तरफ हर एक तरफ का ज़बरदस्त कॉमनसेन्स था। इससे उन्हें खुद को समझ में आया कि पढ़ाई एक ही तरफ की लाइन है, और वह पूरी नहीं होगी। हमें यह नहीं जमेगा। और फिर पढ़ाई करने का फल क्या है? नौकरी ढूँढनी पड़ेगी, उसमें भी फिर परवशता महसूस होती थी कि मुझे सिर पर *ऊपरी* नहीं चाहिए।

इतना पावर फुल कॉमनसेन्स, वह पूर्व जन्म का ऐसा सब सामान लेकर आए थे कि कॉमन लोगों में वैसी सूझ-शक्ति देखने को ही नहीं मिलती।

उनके बड़े भाई मणि भाई के मित्र जो कि अध्यापक थे, उन्होंने अंबालाल को डाँट दिया कि 'अंबालाल, तुझे इतने साल हो गए फिर भी अंग्रेज़ी बोलना नहीं आया। तू ठीक से पढ़ाई नहीं करता है, तू अपनी ज़िंदगी खराब कर रहा है। मुझे तेरे बड़े भाई की सुननी पड़ेगी'। फिर आखिर में अंबालाल ने मास्टर जी से साफ-साफ कह ही दिया कि, 'पंद्रह साल से पढ़ाई कर रहा हूँ, इस अंग्रेज़ी भाषा को पढ़ने में पंद्रह साल बीत गए। इतनी मेहनत अगर भगवान को खोजने में लगाई होती, तो अवश्य ही भगवान प्राप्त कर चुका होता'। अध्यापक भी समझ गए कि जिसे भगवान ढूँढने हैं उसे ऐसी पढ़ाई करना नहीं आएगा।

अंबालाल की विचार श्रेणी बहुत लंबी चलती थी कि इस फॉरेन की भाषा को सीखने में उनका आधा जीवन व्यर्थ जा रहा है। और इस जन्म में फिर से सीखना है। अगले जन्म में वापस भूल जाएँगे और फिर से नई भाषा सीखनी होगी। एक ही चीज़ को लाखों जन्म तक पढ़ते रहे हैं! यहाँ पढ़ाई करते हैं और फिर वह आवृत हो जाता है। अज्ञान को पढ़ना नहीं होता, वह तो सहज भाव से आ ही जाता

है, ज्ञान पढ़ना पड़ता है। बड़े भाई भी उन्हें टोकते थे कि 'तू पढ़ाई नहीं करता है, पढ़ने में ध्यान नहीं रखता'। लेकिन उन्हें तो संपूर्ण रूप से स्वतंत्र होना था। अंत में 1958 में संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हुए। वे कहते थे कि 'पूरे वर्ल्ड का कल्याण करने का निमित्त लेकर आया हूँ और जगत् का कल्याण अवश्य होकर ही रहेगा'।

स्कूल में लघुत्तम सिखाया जाता था कि इन सब संख्याओं में सब से छोटी अविभाज्य संख्या जो कि हर एक संख्या में समाई हुई हो उसे ढूँढ निकालो। दादाजी कहते थे कि, ''उस ज़माने में मैं लोगों को, इंसानों को 'संख्या' कहता था। यह संख्या अच्छी है, यह संख्या अच्छी नहीं है।'' तो चौदह साल की उम्र में भी उन्हें ऐसा विचार आया कि ऐसी छोटे से छोटी चीज़ भगवान ही है जो कि हर एक में अविभाज्य रूप से रही हुई है। तभी से उन्हें ऐसा समझ में आ गया था कि भगवान लघुत्तम हैं और लघुत्तम के फलस्वरूप भगवान पद मिलता है।

बचपन से ही उनकी थिंकिंग ऐसी थी कि हर एक बात के परिणाम के बारे में सोच लेते थे। किसी चीज़ के बारे में पढ़ते नहीं थे, लेकिन स्टडी करते थे। उसके बारे में सभी कुछ सोच लेते थे और उसके अंतिम परिणाम समझ में आ जाते थे। लघुत्तम की बात मिली तभी से वे खुद लघुत्तम की तरफ झुकते गए और अंत में लघुत्तम पद प्राप्त करके ही रहे।

[2.2] मैट्रिक फेल

पंद्रह साल की उम्र में उन्होंने अपने फादर और ब्रदर को बात करते हुए सुना कि, 'यह अंबालाल अच्छी तरह से मैट्रिक में पास हो जाए तो उसे पढ़ाई के लिए विलायत भेजेंगे और वहाँ से वह सूबेदार (कलेक्टर) बनकर आएगा'। बड़े भाई बड़ौदा में कॉन्ट्रैक्ट का काम करते थे। पैसों की सहूलियत थी तो उनकी इच्छा थी कि थोड़ा खर्च करके उन्हें विलायत पढ़ने भेजें। अंबालाल ने सोचा कि, 'मुझे बड़ौदा स्टेट का सूबेदार बनाएँ, तब भी क्या? गायकवाड़ सरकार की नौकरी

ही करनी है। उसमें तीन सौ रुपए तनख्वाह मिलेगी, बहुत मान-सम्मान मिलेगा। फादर की क्या इच्छा है? उन्हें किस फायदे के लिए मुझे सूबेदार बनाना है? ''बाप को ऐसा लगता है कि मेरा बेटा सूबेदार बने तो उसे जीवन में मज़ा आ जाएगा और बड़े भाई का ऐसा रौब पड़ जाएगा कि 'मेरा भाई सूबा है।'' लेकिन मेरी क्या दशा होगी? मैं अगर सूबेदार बनूँगा तो मेरे सिर पर सरसूबेदार आएगा और फिर वह सरसूबेदार मुझे डाँटेगा। कोई डाँटे वह मुझे पुसाएगा ही नहीं। तभी से गाँठ बाँधी कि मुझे सूबेदार नहीं बनना है। पान की दुकान लगा लूँगा लेकिन स्वतंत्र रहूँगा इस तरह सूबेदार बनकर हमें परवशता नहीं चाहिए। अपने ऊपर कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए। नौकरी नहीं करूँगा, स्वतंत्र जीवन जीऊँगा इसलिए अंत में तय किया की मैट्रिक पास होऊँगा तभी सूबेदार बनाएँगे न! तो फिर हमें मैट्रिक में पास ही नहीं होना है।

अठारहवें साल में बड़ौदा में मैट्रिक की परीक्षा देने गए थे। वहाँ पर भी घर में रहना टाला और होस्टल में रहे। हॉस्टल में खाया-पीया, मित्रों के साथ मज़े किए और अंत में आराम से मैट्रिक में फेल हो गए। उन्होंने यह भी सोचकर रखा था कि मैं फेल होऊँगा तो उसका परिणाम क्या आएगा! या तो भाई उन्हें अपने कॉन्ट्रैक्ट के काम में लगा देंगे और यदि भाई मना करेंगे तो मैं अपने आप ही पान की दुकान लगा लूँगा लेकिन स्वतंत्र जीवन जीऊँगा।

फिर भाई ने उनसे पूछा कि, 'कॉन्ट्रैक्ट का काम तुझे करना आएगा? काम पर पड़े रहना पड़ेगा'। उसके बाद वह खुद उस काम में जॉइन हो गए। घर का व्यापार था, और फिर स्वतंत्रता थी इसलिए अंबालाल भाई को तो यह पसंद आ गया। ब्रिलियन्ट (तेजस्वी) दिमाग़ था इसलिए छः महीने में ही एक्सपर्ट बन गए।

बड़े भाई भी उन पर खुश हो गए डेढ़ साल में तो वे इस काम में फर्स्ट नंबर ले आए।

[3] उस ज़माने में किए मौज-मज़े

कॉन्ट्रैक्ट का काम शुरू करने के बाद में उनके पास पैसों की

सुविधा हो गई। उस समय अगर जेब में दो-तीन रुपए भी होते थे तो पाँच-छः दोस्त पीछे घूमते रहते थे, फिर वे सब दोस्त 'जी हाँ, जी हाँ' करते थे। खुद को मान-वान मिलता था, मज़ा आ जाता था और सभी चाय-नाश्ता करते थे। घोड़ा गाड़ी में घूमते थे और मज़े करते थे। दादाजी जलेबी और पकौड़े के शौकीन थे, तो दो-चार दोस्तों के साथ होटल में नाश्ता कर आते थे।

उस ज़माने में सब्ज़ी-भाजी, चाय-दूध, अरहर की दाल, आम, कैथ सभी में रस-कस इतना अच्छा था जो कि आजकल नहीं मिलता है। ऐसा स्वाद भी नहीं और रस-कस भी नहीं। 1984 में दादाश्री कहते थे कि पिछले पचास सालों से कड़वी बरसात हो रही है, उससे सभी स्वाद खत्म हो गए हैं। अब थोड़ी बहुत मीठी बरसात शुरू हुई है, तो अब मीठा अनाज उगेगा।

1928 में जब दादाश्री मुंबई जाते थे तब मुंबई की जन संख्या चार लाख थी। तब लाइटों की जगमगाहट, शहर की सफाई से वह नगरी सुंदर लगती थी। रोड के कोने पर बहुत अच्छी ईरानी होटल पर चाय मिलती थी। 1933 में एक बार ताज महल होटल में जाकर खुद चाय टेस्ट कर आए। फिर अनुभव करके समझ गए कि यह सब तो एटिकेट वालों का काम है।

वे विचारशील थे और होशियारी वाली प्रकृति थी। एक बार शादी में जाने के लिए पहनने को धोती निकाली तो वह फटी हुई थी। तो उनका नियम ऐसा था कि सिल तो सकते हैं लेकिन पैबंद नहीं लगाना है। तो उन्हें ऐसी कला आती थी कि फटी हुई धोती पहननी पड़े फिर भी फटा हुआ दिखाई नहीं दे और लगे कि वे बिल्कुल अच्छे कपड़े पहने हुए हैं। हर एक संयोग में वे एडजस्टमेन्ट लेकर जागृति पूर्वक रहते थे।

घर से लाए हुए सभी कपड़े खेत में पंप में से निकलते हुए पानी से धो देते थे। फिर नहाने के बाद में आखिर का एक कपड़ा जो बचा होता था, उसे इस तरह संभालकर धो देते थे कि छींटे ना उड़ें।

सुबह भी आराम से उठना अच्छा लगता था। सुबह अगर जल्दी की ट्रेन पकड़नी होती तो रात को देर तक नाश्ता किया होता तो सुबह जल्दी नहीं उठ पाते थे और फिर जल्दी उठने के लिए वे कला करते थे। नल में सुबह-सुबह पानी आना शुरू होता था, तो वे नल के नीचे बाल्टी और थाली इस तरह से रख देते थे कि जब पानी आए तो थाली पर आवाज़ हो ताकि वे उठ जाएँ लेकिन फिर भी उठ नहीं पाएँ। सालों से देर से, साढ़े नौ-दस बजे नहाने की आदत थी।

सोलह साल की उम्र में मुहल्ले में आते-जाते हुए रौब से चलते थे, उससे ऐसा लगता था कि धरती भी काँप रही है।

अहंकारी गुण था इसलिए दोस्तों के बीच एक बार माचिस जलाकर उस पर अँगूठा रखा, फिर भी हाथ स्थिर रखा, हिलने नहीं दिया और चेहरे पर भी कोई असर नहीं। क्षत्रिय परमाणु बहुत सख्त होते हैं!

भादरण गाँव में नाटक देखे थे। कई बार तो नाटक कंपनी से कॉन्ट्रैक्ट ले लेते थे। आज की रात का कॉन्ट्रैक्ट हमारा है, उसके बाद जो पैसे बचते थे, वह उनका नफा होता था। बचपन से ही तरह-तरह के अनुभव हुए थे। उस ज़माने (1928) में सिनेमा शुरू हुए। फिर नाटक खत्म होने लगे। सिनेमा की उन्नति होती गई। तब उन्होंने ऐसा सोचा कि, 'दुनिया में... सिनेमा का क्या परिणाम आएगा? यह तो नीचे फिसलने की खोज है। हिन्दुस्तान को खराब कर देगा! अपने संस्कारों का क्या होगा? लोगों की रुचि सिनेमा की तरफ बढ़ी। कलियुग तेज़ी से आ रहा है। उल्टा असर होगा'। फिर अंत में यह विचार आया कि, 'इसका उपाय क्या है? क्या अपने पास कोई सत्ता है? यदि सत्ता नहीं है तो ऐसे विचार किसी काम के नहीं हैं, तो क्या हिन्दुस्तान का ऐसा ही होगा?' फिर एकांत में बैठकर सोचा तो अंदर से जवाब मिला कि 'जो साधन तेज़ी से उल्टा प्रचार कर सकते हैं, वे सीधा प्रचार भी उतनी ही तेज़ी से करेंगे। सीधे प्रचार के लिए ये साधन बहुत अच्छे हैं'। दादा कहते हैं कि, 'ये जो साधन बने हैं, यही सब साधन हिन्दुस्तान को सुधारेंगे'। तो आज हम देख रहे हैं कि

टी.वी. के माध्यम से सत्संग व ज्ञान का प्रसार हो रहा है, जो अनेकों को सन्मार्ग पर ला रहा है।

अभी की प्रजा में मोह बहुत बढ़ गया हैं इसलिए तिरस्कार, जाति-के भेदभाव, आग्रह वगैरह सब डाउन हो गए हैं। प्रजा मोही हो गई है। ऐसी डाउन तक गई हुई प्रजा को ऊपर उठने में देर ही नहीं लगेगी।

1922 मे जिनका जन्म हुआ था, वे पायजामे वाले बने। 1921 तक जिनका जन्म हुआ, वे धोती वाले ही रहे। पुरुषों के पहनावे में ये दो विभाग बन गए थे।

[4] नासमझी की वजह से गलतियाँ

बचपन से ही शरारत करने की आदत थी इसलिए लोगों की मज़ाक उड़ाता था लेकिन ज्ञान के बाद समझ में आया कि अरे-अरे, ये कैसे दोष! लेकिन उन दिनों तो भान ही नहीं था। मसखरी करना- शरारत करना, वह भी कैसी कि बड़े लोग, जो वृद्ध और बूढ़े होते थे, जिन्हें आँखों से ठीक से दिखाई नहीं देता था तो उनके रूम में दो-चार पिल्ले डाल देते थे। फिर वे वृद्ध चिल्लाते थे, परेशान हो जाते थे। छः-सात साल के बच्चे कितनी शरारत करते हैं! वह तो, जब खुद बड़े होते हैं तब उनकी परेशानी समझ में आती है।

खुद की बुद्धि ज़्यादा हो तो उसका उपयोग किसमें होता है? कम बुद्धि वाले का मज़ाक उड़ाने में किया न! यह जोखिम समझ में आने के बाद उन्होंने मज़ाक उड़ाना बंद कर दिया।

अंतरायी हुई बुद्धि थी इसीलिए कुटुंब के सभी भतीजे *'सलियाखोर'* (बहुत शरारत करने वाला) कहते थे। बुद्धि पर अंतराय हो और किसी चीज़ में मज़ा नहीं आता हो, तब इस तरह की शरारत करते हैं। खुद यहाँ पर बैठा हो और वहाँ पर पटाखा फूटे तो सब को मज़ा आ जाता है।

गधे के पीछे उसकी पूँछ में डिब्बा बाँध देते थे। उसके बाद

गधा पूरी रात उछल-कूद करता था और आसपास वाले लोगों की नींद बिगड़ जाती थी। बुद्धि का ऐसा-ऐसा दुरुपयोग किया है। उसके लिए खूब पछतावा और प्रतिक्रमण भी किए हैं।

पंद्रह साल की उम्र में बीड़ी पीने की आदत पड़ गई थी, सिगरेट पीने की। अंत में जलती हुई सिगरेट फेंकने की आदत थी। एक बार तो किसी शादी में यों सिर पर से सिगरेट उछालकर फेंकी तो वहाँ जो मंडप बाँधा हुआ था, उसमें नीचे कढ़ाई में कुछ तला जा रहा था। ऊपर से मंडप जल गया और बहुत बड़ा धमाका हुआ। फिर ऐसा करना छोड़ दिया। लेकिन उस बात का भी बहुत पश्चाताप हुआ कि 'हमारी वजह से ऐसा कैसा हो गया?'

दादाश्री ने खुद के जीवन की कहानी बताते हुए खुद की सभी भूलें बता दी हैं। जब उन्हें खुद की गलती समझ में आई तब उन्होंने अपनी उन सब गलतियों का ज़बरदस्त पछतावा और प्रतिक्रमण किए। लेकिन इतना ही नहीं सत्संग में सब लोगों के सामने जब ऐसी कोई बात निकलती तो ज्यों का त्यों बता देते थे।

ग्यारह साल की उम्र में किसी की बारात में नडियाद गए थे। तो वहाँ तीनपत्ती खेलते हुए ठगे गए और पंद्रह रुपए हार गए। जहाँ मज़े करने की जगह होती, वहाँ ठगे जाते थे और उस अनुभव पर से फिर से वह भूल नहीं करते थे। ठगे जाने के बाद पूरी ज़िंदगी के लिए प्रण कर लिया कि ऐसा काम फिर कभी नहीं करूँगा।

'बचपन में ग्यारह साल की उम्र में एक मित्र के घर पर जब उसके माता-पिता नहीं होते थे, तब वह घर की दूसरी मंजिल से आम नीचे फेंकता था और हम आम पकड़ लेते थे। फिर हम सब बगीचे में जाकर खाते थे। किसी के पेड़ के आम तोड़कर खाते थे, ऐसी चोरियाँ की थीं। उसके लिए फिर कितने ही पछतावे करके उसे साफ किया।'

बचपन में तेरह साल की उम्र में एक सोने की अँगूठी चोरी की थी। अरहर के पौधे के कराठियों के गट्ठर किसी से खरीदे थे। फादर ने हमें भेजा कि गिनकर गट्ठर ले लेना। तो उस हाट में नौकर

को गट्ठर गिनने के लिए ले गए थे। गट्ठर निकालने वाले की उँगली में से उसकी अँगूठी खिसक गई और नीचे गिर गई या कुछ भी हुआ हो। अंबालाल ने वह नीचे गिरी हुई अँगूठी देखी और उस पर पैर रखकर नौकर को दूसरे काम में लगा दिया और फिर वह अँगूठी उठाकर जेब में रख ली।

यह बात उन्होंने खुद बताई। तब उस समय क्या हुआ था, ऐसा क्यों हुआ, और उस समय उनके अंत:करण में कैसी उथल-पुथल हुई, वह भी बताया है। उन दिनों जो ज्ञान था उस ज्ञान ने मुझे ऐसा बताया कि हमें तो यह अँगूठी मिली है इसलिए इसे चोरी नहीं कहते। इंसान को जिस समय जो भी ज्ञान भरा हुआ हो, वही अंदर से प्रकट होता है, अंदर से उसे जो भी दिखाता है उसी अनुसार वह खुद चलता है, कार्य कर देता है।

उसके बाद उन्होंने खुद पेटलाद जाकर उस अँगूठी को बेचकर चौदह रुपए पाए और वे रुपए दोस्तों के साथ मौज-मज़े करने में खर्च कर दिए। उसके बाद तो अपनी इस भूल पर उन्हें बहुत पछतावा हुआ था। वे अँगूठी के मालिक को ढूँढने गए। पता लगाया तो उस व्यक्ति की तो मृत्यु हो चुकी थी। तब उन्हें ऐसा भाव हुआ कि इस अँगूठी के दस-बीस गुना पैसे उन्हें दे दें। वह व्यक्ति सौ या पाँच सौ गुना माँगे फिर भी देने को तैयार थे। उसके बाद से तय किया कि इतने ही पैसे कहीं पर दान में दे देंगे। फिर उस व्यक्ति के लिए प्रार्थना की 'जो कुछ भी उनका है, वह हमारी तरफ से उन्हें मिल जाए'। फिर बाद में वह केस कुदरत को सौंप दिया। दिल की भावना थी कि किसी का भी उधार बाकी नहीं रहे, अनेक गुना करके उसे वापस दे दें।

जितनी-जितनी भूलें कीं, समझ आते ही उन भूलों में से निकल गए। जीवन में वैसी भूलें फिर कभी भी रिपीट नहीं होने दीं।

जीवन में एक चीज़ जिसमें वे पूरी तरह से शुद्ध रहे थे, वह था विषय विकारी संबंध। कुल के अभिमान की वजह से यह एक संभल गया। कहीं भी स्थूल विषय-विकारी संबंध नहीं हुए। बहुत

कम मानसिक विकारी दोष हुए थे। जिस प्रकार दाग़ वाला कपड़ा साबुन से धोने से साफ हो सकता है, उसी प्रकार मानसिक दोष धो देने पर साफ हो गए थे।

[5] मदर

[5.1] संस्कारी माता

खुद के परिवार के बारे में बताते हुए दादाजी कहते हैं कि हमारी मदर झवेर बा बहुत सुंदर, फादर बहुत सुंदर और बड़े भाई भी बहुत सुंदर थे। बा तो देवी जैसी थीं। बहुत उच्च संस्कार थे, प्रेरणादायक। झवेर बा के फादर-मदर भी राजसी परिवार से थे, उच्च, शुद्ध माल वाले, उनके घर में हमेशा सदाव्रत चलता था। उनके घर से कोई भी भूखा वापस नहीं जाता था। साधु-सन्यासी जो भी आते, उन्हें अपने यहाँ ठहराते थे, खाना खिलाते थे, उनकी सेवा करते थे। ऐसे परिवार में बहुत उच्च प्रकार के लोगों का जन्म होता है। तभी तो वहाँ पर झवेर बा का जन्म हुआ। (दादा का जन्म भी ननिहाल में हुआ था।)

मदर के गुण भी उत्तम थे। ओब्लाइजिंग नेचर, जब मुहल्ले में निकलती थीं तो हर एक घर वाले उन्हें 'जय श्रीकृष्ण' करने के लिए बाहर आते थे। कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि बा ने किसी को परेशान किया हो। कोई अपमान कर जाए और अगर वही व्यक्ति वापस आए तो उन्हें बा उतने ही प्रेम से बुलाती थीं इतनी करुणा वाली, समता वाली और खानदानी थीं!

इतने प्रेम वाले थीं कि लोगों को भाव से खाना खिलाती थीं। कोई दही लेने आए तो मलाई वाला दही देते थीं।

बा का स्वभाव धीरज वाला व हिम्मत वाला था। एक बार जब मूलजी भाई रात को बाहर सो गए थे तब बहुत बड़ा साँप उनके शरीर पर से होकर निकला। बा ने देखा लेकिन धीरज रखा और साँप के शरीर पर से निकल जाने के बाद ही पिता जी को उठाया। बा में इतना धीरज था!

दोनों ही बहुओं को बा के अच्छे संस्कार मिले थे, दिवाली बा को और हीरा बा को।

[5.2] पूर्व जन्म के संस्कार हुए जाग्रत माता के माध्यम से

बचपन में अंबालाल जी ने एक बच्चे को पत्थर मारा था। उसे खून निकल गया था। झवेर बा को पता चला तो बा ने कहा, 'यह क्या किया तूने, उस बेचारे को तो खून निकल गया। उसकी तो माँ भी नहीं है, वह अपनी चाची के घर रहता है, उसकी मल्हम पट्टी कौन करेगा? वह बेचारा कितना रो रहा होगा? तुम मार खाकर आना किसी को मारकर मत आना। तू उससे पत्थर लगने देना, मैं तेरा इलाज कर दूँगी'। तब से उन्होंने ऐसी शरारत बंद कर दी। बचपन से ही मदर अच्छे संस्कार देती थीं, अच्छा सिखाती थीं। बोलो! तो वह माँ महावीर बनाएगी या नहीं?

मूल रूप से खुद संस्कार का बीज लेकर आए थे लेकिन ऐसी मदर, ऐसे संयोगों से वे संस्कार प्रकट हुए थे।

अहिंसा के ऐसे ही पाठ मदर ने सिखाए थे। अंबालाल जी ने मदर से पूछा कि खटमल काट रहे हैं? तो मदर ने कहा, 'काट तो रहे हैं लेकिन मुझे कोई परेशानी नहीं है क्योंकि वे खाना खाकर चले जाते हैं, कोई टिफिन भरकर नहीं ले जाते'। तो यह बात उन्हें अच्छी लगी। तभी से उनकी खटमल के प्रति चिढ़, खटमल रात को काटते थे तो बाहर रख आते थे वह सब छूट गया। उसके बाद से खटमल को काटने देते थे। गले में काटते तो सहन नहीं होता था तो वहाँ से उठाकर खुद के पैरों पर रख देते थे।

पच्चीस-छब्बीस साल की उम्र में एक ऐसी घटना हुई कि दोपहर को मदर और हीरा बा और वे खुद खाना खा रहे थे तभी घर पर मेहमान आ गए। तब माँ जी के मुँह से निकल गया कि 'ये अभी कहाँ से आए?' तब उन्हें ऐसा लगा कि माँ जी का मन बिगड़ रहा है।

उसके बाद तो मेहमानों को खाना खिलाया। उसके बाद मदर

और पत्नी से कह दिया कि, 'यदि फिर से ऐसा होगा तो मैं गृह त्याग कर लूँगा। उनसे ऐसा प्रण करवाया कि कोई भी व्यक्ति रात को तीन बजे भी आए तो भी उसे खाने का पूछना है, ज़रा सा भी मन नहीं बिगड़ना चाहिए', उसके बाद से घर में कभी एक दूसरे के प्रति भाव नहीं बिगड़ा। जो कुछ भी हो, प्रेम से वही खाने के लिए रख दो लेकिन भाव नही बिगाड़ना है।

बा छोटी-छोटी बातों में भी अंबालाल भाई से पूछते थे। जब बा अस्सी साल की हुईं तब अंबालाल भाई चवालीस साल के थे तब भी उनसे पूछती थीं। वे कहती थीं कि, 'स्त्री को मनचाहा नहीं करना चाहिए। घर में छोटा बेटा हो तब भी वह घर का मालिक कहलाता है, उसे पूछना पड़ता है'।

उनका आफ्रिका जाने का संयोग आया लेकिन बा को अंबालाल के प्रति अत्यंत प्रेम था इसलिए नहीं जाने दिया। और मदर को भी ऐसा था कि परदेस नहीं भेजना है। उन्हें अपना मनचाहा मिल गया। अगर वहाँ गए होते तो पैसे कमाते लेकिन फिर लोगों की गुलामी करनी पड़ती। वह नहीं पुसाएगा! यहाँ पर रहकर तो आखिर में भगवान को ढूँढ निकालने की इच्छा थी, तो अंत में उनका यह ध्येय सिद्ध हो गया!

बड़ौदा में फ्रेन्ड के यहाँ जाते थे तो वे खाना खाने बैठा देते थे। कोई जान-पहचान वाले मिलते तो वे भी खींचकर अपने यहाँ खाना खाने के लिए ले जाते, वहाँ भी थोड़ा खा लेते। फिर वापस घर आकर मदर के साथ खाना ही पड़ता था। अगर मदर के साथ नहीं खाते तो मदर को दु:ख होता, इसलिए एक ही समय पर तीन-तीन बार खाना खाया। सभी के मन का समाधान करने के लिए खुद ने इस तरह से एडजस्टमेन्ट लिए।

जब मदर की उम्र छिहत्तर साल थी तब बा के आखिरी आठ सालों में वे उनके पास ही रहे। मदर को उनके प्रति बहुत ही अटैचमेन्ट था, मेरा ''अंबालाल''... करती रहती थीं। उनकी मदर उनसे कहती थीं कि 'मेरी ज़िंदगी में तो मैं सिर्फ तुझे ही मानती हूँ कि अगर दर्शन

करने योग्य है तो सिर्फ तू ही है। तू ही भगवान है'। बा ऐसा मानती थीं लेकिन बाकी लोगों को यह कैसे समझ में आता?

अंतिम दिनों में वे बा से भक्ति करवाते थे, सहजात्म स्वरूप का मंत्र बुलवाते थे। तब ऐसा हुआ कि एक बार रात को बारह-एक बजे बा मंत्र बोल रही होंगीं कि अंबालाल भाई जाग गए। उन्होंने सुना कि 'हे भगवान, अब तू मुझे उठा ले। अब छूट जाऊँ तो अच्छा है'। तब वे समझ गए कि बा ने अब हस्ताक्षर कर दिए हैं। शरीर में जब पीड़ा होती है तब वह सहन नहीं होती इसलिए ऐसे हस्ताक्षर कर देते हैं। अत: अब दस पंद्रह दिनों में ये जाने वाले हैं। हस्ताक्षर करने के बाद ही मृत्यु आती है। अत: नियमराज हैं, इस जगत् में यमराज नहीं है!

[6] फादर

उनके पिताश्री राजसी स्वभाव वाले थे। उनकी खुद की ज़मीन पर घोड़े रखते थे और साफा पहनते थे। खेतीबाड़ी की आमदनी से जीवन चलता था। यों ईज़ी लाइफ रखी थी।

अंबालाल का जन्म हुआ उस समय जन्म कुंडली बनवाई थी तब ज्योतिषी ने उनके फादर और मदर से ऐसा कहा था कि 'आपका यह पुत्र ग़ज़ब का पुरुष बनेगा। इसकी कुंडली बहुत ही उच्च है'। तभी से फादर के मन में पुत्र अंबालाल के लिए एक बहुत बड़ी जगह बन गई थी।

फादर ने अपने खेत में आम बोए थे। वे अंबालाल से कहते थे कि हमें सुबह कसरत करनी चाहिए, घूमने जाना चाहिए और साथ ही ऐसा भी कहते थे कि 'अपने खेत में आम उगाए हैं, उस रास्ते से थैली में मिट्टी ले जाकर वहाँ जाकर आम के पेड़ में डाल आना'। अंबालाल ने तो बात-बात में ऐसा कह दिया कि 'मुझे आम खाने का लालच नहीं है। जिसे आम खाने हों वह मिट्टी डाले'।

कुछ समय बाद जब वह खेत बेचा तब आम के पेड़ भी बिक गए। तब उन्होंने फादर से कहा कि आम के पेड़ के साथ आम भी

बिक गए न! डाली गई मिट्टी वगैरह सब बेकार गया न! उससे फादर ने ऐसा माना कि 'इसे पता होगा कि ऐसा होना है'।

फादर बड़े भाई से कहते थे कि, 'इसे डाँटना मत, इसकी कुंडली बहुत उच्च प्रकार की है'।

जब वे सात साल के थे तब उन्हें सबकुछ जानने और समझने की बहुत उत्सुकता थी। वे फादर से सब पूछते रहते थे। कान में कोई बात पड़ती तो पूछते रहते थे कि इसका क्या? इसका क्या? लेकिन फादर के मन में उनके प्रति बहुत उच्च भाव था कि यह महान पुरुष बनने वाला है इसलिए सब चला लेते थे, चिढ़ते नहीं थे।

फादर के साथ हुई अपनी भूल को दादाश्री बता देते थे। ज्योतिषी ने फादर से कहा था कि आपके घर में बहुत बड़ा रत्न पैदा हुआ है, तो इसके संस्कार में कमी नहीं आने देना। जब भी भादरण गाँव में नाटक कंपनी आती तो अंबालाल को नाटक देखने जाना होता था तो वह फादर से छुपकर जाते थे। बा को सही बात बता देते थे। सब के सो जाने के बाद छुपकर नाटक देख आते थे। फादर से छुपाकर ऐसे गुनाह किए थे। बाद में इन सभी बातों के प्रतिक्रमण कर लिए।

जब उनकी उम्र बीस साल की थी तब फादर का देहांत हुआ। उस समय वे फादर के पास ही थे। बड़े भाई बड़ौदा से आकर मिलकर एक दिन पहले ही निकल गए। जिसके कंधे पर चढ़कर जाना लिखा हो, उसी के कंधे पर चढ़कर जाते हैं। इस तरह फादर के साथ का ऋणानुबंध चुकाया। फादर की इतनी ही सेवा हुई और मदर की सेवा उनके जीवन के अंतिम आठ सालों में साथ रहकर हुई थी।

[7] बड़े भाई

उनके बड़े भाई बहुत प्रभावशाली थे। बहुत ही दर्शनीय राजवंशी पुरुष लगते थे! कपड़ों के शौकीन थे, कपड़वंज के पास उनकी दो सौ बीघा ज़मीन थी, वहाँ पर घोड़ी रखते थे। साफा पहनकर घोड़ी पर बैठकर घूमते थे! उस समय वे राजकुँवर जैसे लगते थे! उनकी

आँखें बहुत प्रतापी थीं, पच्चीस-पचास लोग तो उन्हें देखकर इधर-उधर हो जाते थे। एक प्रकार का ील था, यों योगीपन कहा जा सकता था, ऐसे प्रभावशाली थे वे।

तेरह साल के अंबालाल घोड़ी पर बैठने गए तो घोड़ी ने उन्हें गिरा दिया। जब उन्होंने भाई को बताया, कि 'घोड़ी ने मुझे गिरा दिया'। तब भाई ने कहा कि 'इतनी कीमती घोड़ी तो क्या वह तुझे यों ही गिरा देगी? तुझे बैठना नहीं आया होगा'। इस बात पर से वे सोच में पड़ गए, 'बात भी सही है कि मुझे बैठना नहीं आया! गलती मेरी ही है'।

वे सरलता से अपनी भूल स्वीकार कर लेते थे और वह सीख पूरी ज़िंदगी उनकी जागृति में रहती थी।

बड़े भाई बहुत ही कड़क स्वभाव वाले थे। एक बार घर पर जब मेहमान आए और भाभी को चाय बनाने को कहा। तो संयोगवश स्टोव नहीं जला और चाय बनाने में देरी हो गई। बड़े भाई चिढ़ गए। फिर तो गुस्से में आकर उन्होंने जलता हुआ स्टोव फेंक दिया और कप-प्लेट फोड़ दिए।

मुहल्ले में जैनों और पटेलों के घर पर जब शादी-ब्याह होते थे तो वे बड़े भाई को खाना खाने बुलाते थे। बड़े भाई का नियम था कि खुले सिर सब के साथ में खाना खाने नहीं बैठते थे। उन्हें खास तौर पर घर के अंदर बैठाया जाए तभी वे खाना खाने जाते थे। साथ-साथ अंबालाल जी को भी बैठाते थे। बड़े भाई के साथ उनका भी रौब जम जाता था।

लोग उनसे कह जाते थे कि, 'दोनों भाईयों के बच्चे क्यों नहीं हैं?' लोग ऐसा कहते थे कि पूर्व जन्म के उनके ऋणानुबंध के हिसाब ऐसे हों, तभी ऐसा होता है।

इस प्रकार, बड़े भाई गरम दिमाग़ वाले थे फिर भी दिल के भोले थे, दयालु स्वभाव वाले, राजसी मन वाले। यदि कोई दु:खी होता तो वे उसकी सब प्रकार से हेल्प करते थे। उन्हें गुलामी और परवशता तो बिल्कुल भी पसंद नहीं थी।

बड़े भाई का अंबालाल के प्रति बहुत प्रेम था। आमने सामने प्रकृति मेल नहीं खाती थी, दोनों के व्यू पोइन्ट अलग-अलग थे। सिर्फ अहंकार की लाइन में दोनों भाई एक सरीखे थे, क्षत्रियपन। यदि कोई ताकतवर आदमी कमज़ोर को मारता था तो वे कमज़ोर व्यक्ति के पक्ष में रहकर, ताकतवर का सामना करते थे!

भाभी की सोहबत में बड़े भाई, राजा जैसे इंसान, उन्होंने जो कभी भी नहीं किया था, वैसा करने लगे। किसी को कुछ लकड़े की ज़रूरत होगी, उन्हें वे लकड़े दिलवाने के लिए बड़े भाई ने कमीशन रखा, सौ-डेढ़ सौ रुपए। अंबालाल ने बड़े भाई को इस बात के लिए पकड़ा कि 'आपने कमीशन खाया? आप ऐसा करते हो? जिनकी आखें देखकर सौ लोग इधर उधर हो जाते, ऐसे पुरुष ऐसा कमीशन खाना सीख गए?' उन्होंने जब उनकी भूल बताई तब भाभी ने उनका बचाव किया, कि, 'अगर हमें परेशानी हो और किसी का काम कर दें तो उससे सौ-डेढ़ सौ रुपए मिलें तो उसमें क्या बुरा है? तब अंबालाल ने कहा कि 'हम शेर के बच्चे हैं, शेर ने किसी भी जन्म में घास नहीं खाई है'।

बाकी, यों तो खानदानी इंसान थे लेकिन वाइफ के दवाब में आकर यह भूल कर बैठे! फिर बड़े भाई ने कहा, कि 'यह कमीशन नहीं रखना है। अब तू यह बदल दे, वापस दे आ'।

उस ज़माने में पटेलों में दारू पीने की आदत थी, तो बड़े भाई में वह बुरी आदत घुस गई। काम धंधे में खुद बड़े भाई के साथ रहे, उसमें बड़े भाई की इस बुरी आदत की वजह से तकलीफ होने लगी, और उधार चढ़ने लगा। इस बुरी आदत के घुसने से लोगों में बड़े भाई की वैल्यू कम होने लगी। प्रभावशाली व्यक्ति अगर पीने लगे तो उसकी इज़्ज़त खत्म हो जाती है!

बड़े भाई स्ट्रोंग मन के थे, किसी की नहीं सुनते थे। अंत में उन्होंने अपने आप ही शराब छोड़ दी। उसके दो साल बाद यह कहकर कि मुझे शरीर में से शराब के परमाणु साफ करने हैं, उन्होंने पाप धोने

के लिए इकत्तीस दिन के उपवास किए थे लेकिन उपवास छोड़ना नहीं आया। भूल में उपवास छोड़ते समय छाछ पिला दी, उससे विकार हो गया और फिर तबियत बिगड़ने से उनकी मृत्यु हो गई।

बड़े भाई मृत्यु के चौबीस घंटे पहले ऐसा ही कह रहे थे कि 'मैं पूर्व जन्म का योगी हूँ। कौन से पापों की वजह से मैं यहाँ पर आया'। और वे खुद योगी ही थे।

दादाश्री कहते थे कि 'हमने बहुत लोग देखे हैं। मैं हर एक में यह मार्क करता था कि इसकी विशेषता क्या है'। अत: बड़े भाई की भी स्टडी की थी कि ये हैं तो वास्तव में योगी पुरुष ही और योगी यानी कैसे कि जो चाहे वैसा कर सकते थे इतने स्ट्रोंग माइन्ड वाले थे! यदि वे तय करें कि मुझे छ: महीने सिर्फ दूध पर ही रहना है तो वे ऐसा कर सकते थे!

[8] भाभी

[8.1] भाभी के साथ कर्मों का हिसाब

दादाश्री की भाभी दिवाली बा, उनके बड़े भाई मणि भाई की दूसरी पत्नी थीं। यों दर्शनीय, प्रभावशाली, और रौबदार थीं। बड़ौदा की जोगीदास विट्ठल पोल में रहती थीं। बड़े भाई की वजह से मुहल्ले में उनका भी रौब था। बड़े भाई राजा जैसे थे और भाभी को लोग ऐसा कहते थे कि, 'महारानी जैसी हैं'। शादी के बीस साल बाद वे विधवा हो गईं थीं।

बड़े भाई खाना खाने बैठते तब भाभी मीठा-मीठा बोलती थीं कि 'आपके बिना मैं जी नहीं पाऊँगी, मैं रह नहीं सकूँगी'। तो बड़े भाई इसे सही मान लेते थे और मन में ऐसा मानते थे कि ऐसी वाइफ मुझे फिर नहीं मिलेगी। इस तरह धीरे-धीरे भाभी ने भाई पर अपना कब्ज़ा जमा लिया। अंबालाल यह देखते थे और वे समझ गए कि ये भाभी भाई के साथ स्त्री चरित्र खेल रही हैं। शेर जैसे बड़े भाई और उन्हें बकरी जैसा बना दिया था।

उन्हें कोई काम करवाना होता था तो बड़े भाई पर बहुत दबाव डालती थीं, डराती थीं कि 'मुझे सुरसागर में डूबना पड़ेगा, आपके भाई की वजह से'। तब बड़े भाई घबरा जाते थे। क्योंकि उनकी पहली पत्नी की मृत्यु का आरोप भी बड़े भाई पर लगा था। दूसरी पत्नी के साथ भी यदि ऐसा कुछ हो जाए तो? तो वे डर के मारे दब गए थे। अंत में भाई को पता चल गया था कि यह स्त्री अंदर ही अंदर पैंतरे रच रही है।

दूसरी पत्नी थीं इसलिए बड़े भाई उन्हें खुश रखने के लिए उनसे व्यापार की बातें करते थे, कि 'इस साल काम ऐसा चल रहा है, इतनी कमाई हुई'। तो धीरे-धीरे भाभी ने काम में हाथ डाल दिया और फिर हिसाब पूछना शुरू कर दिया। 'अभी क्या चल रहा है? कितनी कमाई है?' बड़े भाई से ऐसा सब पूछती थीं और वे अंबालाल भाई से भी पूछती थीं लेकिन उनका अहंकार ज़रा भारी था तो उन्होंने भाभी से कह दिया कि 'मैं हिसाब नहीं दूँगा। आपको बिज़नेस में बिल्कुल भी हाथ नहीं डालना है। मेरी स्वतंत्रता में दखलंदाज़ी नहीं चलेगी। मैं यहाँ किसी का नौकर नहीं हूँ, मैं तो मालिक हूँ'।

इस तरह देवर भाभी के बीच में टकराव चलता रहता था। खाने में भी किच-किच हो जाती थी। जब खाने में वेढ़मी होती तब अंबालाल को उसमें बहुत सारा घी चाहिए था। जबकि भाभी थोड़ा-थोड़ा देती थीं तब उन्हें वह ठीक नहीं लगता था और वे चिढ़ जाते थे। बड़े भाई को अच्छा-अच्छा परोसती थीं और अंबालाल भाई को कम देती थीं। फिर बड़े भाई कहते थे कि 'ऐसा क्यों करती हो?' तो भाभी कहती थीं कि 'उन्हें जितना चाहिए उतना ले लें'। लेकिन अंबालाल को ऐसा व्यवहार ठीक नहीं लगता था, चिढ़ मचती थी तो भाभी के साथ खाने की बात को लेकर झंझट होती रहती थी।

एक बार भाभी के साथ ज़रा बोल-चाल हो गई तब बड़े भाई हाज़िर नहीं थे तो अंबालाल के मन में बुरा लगा। 'ऐसा क्यों कर रही हैं ये? भाभी के वश में क्यों रहें? इसकी बजाय स्वतंत्र रहें तो ज़्यादा अच्छा है। अब इसमें से छूट जाना है'।

उसके बाद घर छोड़कर वे अहमदाबाद चले गए, मित्र के वहाँ। ऐसा सोचा था कि 'वहाँ जाकर स्वतंत्र काम करूँगा'। लेकिन भाई का प्रेम था इसलिए बड़े भाई उन्हें वापस बुलाकर ले आए। इस घटना पर से बड़े भाई समझ गए कि इस स्त्री की प्रकृति बहुत भारी है।

घर छोड़कर अहमदाबाद जाने की पूरी घटना का यहाँ पर वर्णन हुआ है। उन्हें पैंसो से संबंधित जो विचार आया इसलिए, उसमें प्योरिटी में रहकर घर से निकले। मित्र के मिलने पर पैसे माँगने पड़े फिर भी ज़रूरत से ज़्यादा पैसे नहीं लिए। घर से निकल गए। 'भाई मुझे ढूँढेंगे' ऐसा सोचकर चिट्ठी लिखकर बड़े भाई को सूचना दी।

अहमदाबाद में जिसके वहाँ जाना था, उस व्यक्ति का एड्रेस भी मालूम नहीं था, तो अपनी सूझ से घर का एड्रेस ढूँढकर वे वहाँ पहुँच गए। व्यापार में भी, नए व्यक्ति के साथ भागीदारी करने की परवशता भी न रहे इस प्रकार से उन्होंने उनके साथ काम करना तय किया।

इस प्रकार कदम-कदम पर उनकी व्यवहारिकता का पता चलता है। सोचकर मंथन करके और किसी को अड़चन न पड़े ऐसी जागृति भी थी। फिर वापस जब बड़े भाई बुलाने आए तब भाई का विनय रखकर भाई के एक ही शब्द पर वापस चले गए। इस प्रकार इस घटना पर से उनकी सूझ के साथ-साथ आदर्श व्यवहार का भी पता चलता है। इस घटना का वर्णन आँखों देखे हाल की तरह बता सके!

बड़े भाई के देहांत के बाद में लोग आश्वासन देने आते थे, तो जो कोई भी आता था, वह भाभी को रुलाता था। तब अंबालाल भाई समझ गए कि लोग इन्हें परेशान करेंगे। उसके बाद झबेर बा से कह दिया कि आप लोगों से कह दो कि बहू के साथ भाई के बारे में कोई भी बातचीत नहीं करनी है। इस तरह लोगों के शब्दों से उन्होंने भाभी का बचाव किया।

भाभी का स्वभाव बहुत सख्त था। अगर उनकी मनमानी नहीं होती थी तो वे *त्रागा* भी करती थीं। *त्रागा* यानी सामने वाले को डराकर मारकर अपनी मनमानी करवाना। लेकिन अंबालाल उनके त्रागे

पर ध्यान नहीं देते थे। अंत में भाभी ने कहा कि 'इनके जैसा पुरुष मैंने नहीं देखा है। मैं किसी भी पुरुष की नहीं सुनती हूँ, सिर्फ इनकी बात सुनी है। इनसे मैं नहीं जीत सकी'।

अंबालाल भाई कहते थे कि 'आपकी तो क्या मैं किसी की भी नहीं सुनता हूँ। स्त्री चरित्र का पूरा पाठ मैं आपसे सीखा हूँ। अब मैं स्त्रियों द्वारा छला नहीं जा सकता'।

[8.2] भाभी को उपकारी माना

मणि भाई, झबेर बा और हीरा बा की तरफ से अंबालाल को दु:ख नहीं मिले थे लेकिन भाभी की तरफ से परेशानी हुई थी। लेकिन वे खुद भाभी को हमेशा उपकारी मानते थे। भाभी की तरफ से अपमान आते रहते थे, तो वह उन्हें बहुत ही दुष्कर लगता था। वे कहते थे कि, 'ये जो दस साल बीते हैं, उसमें भाभी ने दु:ख देने में कुछ भी बाकी नहीं रखा'। फिर भी अंदर समझ थी कि, 'यह हिसाब मेरा ही है। इसकी *नोंध* करने जैसा नहीं है। जिस तरह नरसिंह मेहता को उनकी भाभी ने धर्म में मदद की थी उसी तरह मेरी भाभी मुझे संसार में वैराग्य लाने के लिए हितकारी निमित्त बनीं'।

वे खुद भी भाभी से कहते थे कि, 'नरसिंह मेहता को भाभी मिलीं तो वे भगत बन गए और आप मुझे मिलीं तो मैं भगवान बन जाऊँगा। मुझे मोक्ष में जाने का रास्ता मिल गया'। हांलाकि ऐसा ही होना था, लेकिन निमित्त वे बन गईं। भाभी के प्रताप से खुद मोक्ष मार्ग की तरफ मुड़ गए। भाभी अति उपकारी बन गईं।

बचपन से ही उनका अध्यात्म की तरफ झुकाव था लेकिन भाभी का किसमें था? अब्स्ट्रक्शन (विरोध) था इसलिए वह ज़्यादा हितकारी हो गया।

[8.3] भाभी के साथ लक्ष्मी का व्यवहार

अंबालाल भाई का भाभी के साथ गाढ़ हिसाब था। उन्हें इतना लोभ था कि उन्हें चाहे कितना भी दें फिर भी वे खुश नहीं होती

थीं, उन्हें संतोष नहीं होता था। सबकुछ देकर भाभी का केस सॉल्व किया। उन्हें पैसे दिए, घर दिया। ऐसा कर दिया कि भाभी का कोई क्लेम बाकी न रहे।

उनकी जाति के लोग भी कहते थे कि, 'कम उम्र में भाभी विधवा हो गईं फिर भी देवर ने उन्हें इस तरह संभाला, ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं है। अंबालाल भाई ने भाभी को दु:ख नहीं होने दिया'।

[8.4] भाभी के उच्च प्राकृतिक गुण

अंबालाल भाई की खोज ऐसी थी कि, 'ऐसा स्त्री चरित्र, लोभ, वगैरह है तो इतनी नोबल घर में किस तरह से आईं?' उसके बाद वे समझ गए कि 'यदि एक ही गुण मिलता-जुलता था तो वह था, उनका चरित्र बहुत हाइ क्लास था। उच्च चरित्र था, सती जैसी थीं'। कोई उन पर दृष्टि बिगाड़े तो उसकी आ बनती थी, उसके हाथ-पैर तोड़ दें, ऐसी क्षत्राणी थीं। उन्होंने कभी भी पर-पुरुष की तरफ दृष्टि नहीं की थी। इस बात को लेकर उनके प्रति राग था बाकी सब बातों में कड़वी ज़हर जैसी लगती थीं। चरित्र उच्च था इसलिए वह बहुत अच्छा गुण था। पचास साल विधवा की स्थिति में बिताए। (दादाश्री की उपस्थिति में जब दिवाली बा 80 साल की थीं तब दादाश्री ने अपनी भाभी के बारे में ऐसा कहा था कि वे पचास साल से विधवा की स्थिति में हैं) फिर भी उनके चरित्र के बारे में कोई शिकायत नहीं आई। यों योगिनी जैसी थीं, पवित्र स्त्री! ऐसा उत्तम गुण था इसलिए उनकी तरफ हमेशा पूज्यता रही।

भाभी भी कहती थीं कि उनके देवर लक्ष्मण जैसे हैं। जिस तरह लक्ष्मण जी ने सीता को रखा था, उसी तरह इन्होंने मुझे रखा है!

दिवाली बा तीस साल की उम्र में विधवा हो गई थीं, उसके बाद स्वामीनारायण धर्म की ओर मुड़ गईं। उस धर्म ने उनकी रक्षा की। उन्होंने धर्म में ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि, 'किसी भी स्त्री-पुरुष को छूना नहीं है'। वे स्त्रियों को उपदेश देती थीं, शास्त्रों के बारे में समझाती थीं। पूरी ज़िंदगी सहजानंद स्वामी की भक्ति की और सत्संगी की तरह रहीं।

फिर तो अंतिम पंद्रह-बीस साल तो भाभी दादाश्री के पैर छूती थीं, आरती भी उतारती थीं। इस प्रकार राग-द्वेष के हिसाब खत्म होते गए।

[9] परिवार, कुटुंब और भतीजे

यहाँ पर दादाश्री परिवार के व्यक्तियों की प्रकृति की बात बताते हैं, साथ-साथ एक-दूसरे के प्रति प्रेम भी दिखाई देता है।

परिवार के साथ ब्लड रिलेशन (खून का संबंध) माना जाता है लेकिन अगर ज्ञान की, ज्ञानी की पहचान हो जाए तो कल्याण हो जाए। बाकी जब ब्लड रिलेशन हो तब तक राग-द्वेष रहते ही हैं। पटेल प्रकृति थी इसलिए पाँच मिनट में लड़ पड़ते थे और कुछ ही देर बाद वापस साथ में खाना खाने बैठ जाते थे। कपट नहीं था इसलिए मन अलग नहीं होते थे। सिर्फ सभी के अहंकार ही भारी थे।

कुटुंब के भतीजे उम्र में बड़े होते थे फिर भी अंबालाल चाचा का विनय रखते थे। एक-दूसरे के मान का ध्यान रखते थे। दो लोग अंदर-अंदर ही लड़ते थे लेकिन यदि तीसरा व्यक्ति आ जाए तो दोनों एक हो जाते थे और तीसरे के साथ लड़ने लगते थे। इस प्रकार राग-द्वेष वाला व्यवहार था।

कुटुंब में स्पर्धा बहुत रहती थी लेकिन अंबालाल भाई स्पर्धा में कभी भी नहीं पड़े। लोग स्पर्धा में आगे जाने के लिए सामने वाले की शक्ति को तोड़ देते हैं जबकि अंबालाल भाई 'सब मुझसे आगे बढ़ो पीछे मत रह जाना' ऐसी भावना वाले थे। 'मैं आपको आगे बढ़ने में हेल्प करूँगा,' और उन्होंने पूरी ज़िंदगी ऐसा ही रखा।

भतीजों के साथ के टकराव में वे खुद एडजस्टमेन्ट लेते थे। किसी भतीजे की गाड़ी अगर उल्टी पटरी पर चली जाए तो ज़रूरत पड़ने पर उसे डाँटकर सुधारते भी थे!

कुटुंब या मित्रों में अगर किसी को एक दूसरे के साथ अंदर-अंदर तकरार हो जाती तो वे खुद वेल्डिंग कर देते थे। वेल्डिंग करने वाला अंत में मार ही खाता है, लेकिन मार खाकर भी वे उन दोनों को तो मिलवा देते थे।

उनके कुटुंब के एक व्यक्ति की प्रकृति ऐसी थी कि वह उनके कोट की जेब में से कुछ पैसे चोरी कर लेता था। फिर भी उन्होंने उस व्यक्ति की प्रकृति को स्टडी किया कि यह 'चोर है' लेकिन उसके लिए ऐसा अभिप्राय नहीं दिया कि 'यह चोर है' क्योंकि यदि चोर होता तो सभी पैसे ले जाता। पैसे भूलकर और ऐसा प्रिज्युडिस रखे बिना कि 'यह चोर है' उन्होंने उस व्यक्ति को सुधारा, उनके पास ऐसी अद्‌भुत व्यवहार कलाएँ थीं।

घर के अन्य व्यक्ति उसे जिस दृष्टि से देखते थे, उसके बजाय वे खुद ऐसी दृष्टि से देखते थे और उस व्यक्ति में से कुछ न कुछ पॉज़िटिव चीज़ ढूँढ निकालते थे। पॉज़िटिव को एन्करिजमेन्ट देते, ताकि नेगेटिव अपने आप ही गिर जाए। इस प्रकार इंसान की ज़िंदगी सुधार देते थे।

उन्हें कुटुंब में तरह-तरह की प्रकृति वाले लोग मिले। तब खुद व्यवहार को बोधकला से सोल्व कर देते थे। किसी की बेटी की शादी होनी हो, किसी बेटी से माँ-बाप परेशान हो गए हों, कोई पैसे का घोटाला कर रहा हो फिर भी अंबालाल भाई उसकी प्रकृति का निरीक्षण करके उसमें से पॉज़िटिव गुण ढूँढकर लोगों को सुधार देते थे।

'टकराव टालिए', यह सूत्र उनके एक भतीजे को सुधारने के लिए सोने की चाबी जैसा साबित हुआ। कचरे में से रत्न ढूँढ निकालने की उनकी ग़ज़ब की दृष्टि थी।

[10] प्रकट हुए गुण बचपन से

[10.1] असामान्य व्यक्तित्व शुरू से ही

बचपन से ही असाधारण विचार श्रेणी थी। तेरह साल की उम्र में उन्हें असामान्य व्यक्ति बनने का विचार आया था। असामान्य अर्थात् सामान्य व्यक्ति को जो तकलीफें होती हैं, असामान्य व्यक्ति को वे चीज़ें तकलीफ नहीं लगतीं। असामान्य व्यक्ति औरों की हेल्प के लिए ही होते हैं।

बचपन से ही उनके दिल में झूठ-कपट-चोरी-लुच्चापन-लोभ वगैरह नहीं थे। जैसा मन में था वैसा ही वाणी में होता था और वर्तन में वैसा आ जाता था, मन-वचन-काया की ऐसी एकता वाली दशा थी!

पूरा जीवन उन्होंने समझदारी से जिया कि किसी के लिए ज़रा सा भी बाधक बनेंगे तो खुद को बाधकता आएगी। इसलिए वे किसी के लिए भी बाधक नहीं हुए। इस तरह की प्रेक्टिस रखी।

उनके जीवन में मुख्य गुण था सरलता। दूसरों की सही बात हो तो वे तुरंत एक्सेप्ट कर लेते थे।

[10.2] ममता नहीं

बचपन में गाँव में सभी दोस्तों के साथ खेत में जाते थे। मोगरी, मूली, शकरकंद कुछ भी ताज़ा तोड़कर खाते थे। भुट्टे भी खाते थे। दूसरे बच्चे तो बाँधकर घर ले जाते थे लेकिन वे साथ में कुछ भी नहीं ले जाते थे। संग्रह करने की आदत ही नहीं थी। लोभ नाम का गुण ही नहीं था उनमें, लालच और ममता नहीं थी। इस प्रकार बचपन से ही उच्च प्राकृत गुण लेकर आए थे।

[10.3] ओब्लाइजिंग नेचर

उन्होंने पूरी ज़िंदगी औरों की हेल्प करने में ही बिताई। घर से कोई काम करने जाना होता तो अड़ोस-पड़ोस में पूछकर उनके काम भी कर आते थे। ताकि उन्हें दूसरा चक्कर नहीं लगाना पड़े। इस प्रकार खुद अपना काम करते-करते आसपास वालों के लिए भी हेल्प फुल हो जाते थे। उन्हें खुद को आनंद आता था और आसपास वाले भी खुश हो जाते थे।

वे जब भादरण से बड़ौदा आते थे तब वे लोगों द्वारा मँगवाई हुई चीज़ें खरीदकर ले जाते थे। अपनी जेब के पैसे डालकर और उन्हें ऐसा बताते थे कि 'चीज़ सस्ती मिली'। वे खुद इस तरह से हेल्प करते थे कि लोगों को दु:ख न हो।

अपनी बगिया में जो कुछ भी बोते थे, लौकी-भुट्टा ऐसा कुछ भी होता था तो वह लोगों को दे देते थे।

इस प्रकार पूरी ज़िंदगी उनका ओब्लाइजिंग नेचर ही रहा।

[10.4] जहाँ मार पड़ती वहाँ तुरंत छोड़ देते थे

जैसे बच्चे रूठ जाते हैं, बचपन में वे भी उसी तरह एक-दो बार रूठ गए थे, मदर से लेकिन रूठने का परिणाम यह देखा कि दो नुकसान हुए। खाने का भी नहीं मिला और किसी ने भाव भी नहीं पूछा। उनका खाना दूसरों के हिस्से में चला गया। वे खुद बहुत विचक्षण थे इसलिए हर एक अनुभव को नोट करने के बाद उन्हें अपनी भूल समझ में आ जाती थी कि रूठना एक भयंकर नुकसान ही है। ज़िंदगी में कभी भी रूठना नहीं है और फिर कभी ऐसी भूल नहीं होने दी।

[10.5] जाना जगत् पोलम्पोल

अंबालाल भाई जगत् व्यवहार को बारीकी से ऑब्ज़र्व करते थे। किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो घर वाले व कुटुंबी इकट्ठे होकर चिल्ला-चिल्लाकर रोते थे और छाती पीटती थे। उनका हार्टिली स्वभाव था, तो वे ऐसा देखकर बहुत ही दुःखी हो जाते थे। फिर जब गहराई में उतरकर जाँच की तो पता चला कि वे लोग छाती नहीं पीटती हैं, वे तो हाथ पर हाथ रखकर ज़ोर से आवाज़ करते हैं। सिर पर घूँघट डालकर रोने की आवाज़ करते हैं। बाकी यह तो पूरी गड़बड़ निकली! तब से वे यह समझ गए कि यह पूरी दुनिया लौकिक है, पोलम्पोल है। इसलिए उनका अलौकिक की तरफ आगे बढ़ना शुरू हो गया। टेम्परेरी चीज़ों पर से मोह टूटता गया और अब हर क्षण संसार का स्वरूप भय और दुःखपूर्ण दिखने लगा।

सभी कुदरती चीज़ें लोन पर हैं, मुफ्त नहीं मिलतीं। यदि लेना हो तो लेना लेकिन वह रिपे करना पड़ेगा, बचपन से ही उन्हें ऐसा सार समझ में आ गया था।

[10.6] अलग-अलग प्रकार के भय के सामने...

बच्चा जब छोटा होता है तब उसे भूत, साँप, बिच्छू और लुटेरों से भय लगता है, मरने से भय लगता है। इसी तरह बचपन में अंबालाल को भी भय था लेकिन उनमें यह विशेषता थी, वे भय का सामना करते थे। वास्तव में भय है या नहीं, किस कारण से भय लगता है, उसको जड़ में से ढूँढ निकालते थे। साथ-साथ उन्हें अपने आप पर श्रद्धा थी कि, 'मुझे कुछ भी नहीं हो सकता!' अंत में वे ढूँढ निकालते थे कि यह सब कल्पनाएँ ही हैं एक प्रकार की! किसी जगह के लिए ऐसी बात सुनी थी कि महुआ के पेड़ पर भूत रहते हैं और वहाँ भूत की ज्वालाएँ देखने को मिलती हैं। जाँच करने पर यह पता चला कि कोई व्यक्ति अंधेरी रात में बीड़ी जला रहा था और किसी जगह पर अँधेरे में कीकर के पेड़ का ठूँठ था तो उसे भूत मान लिया। खुद का स्वभाव निडर था इसलिए सत्य ढूँढ निकाला।

[10.7] यमराज के भय के सामने खोज

उस ज़माने में पूरे हिन्दुस्तान में ऐसी मान्यता थी कि इंसान जब मरने लगता है तब यमराज उसका जीव लेने आते हैं। तब कुत्ता रोता है और यमराज भी आ जाते हैं, अब उस जीव को ले जाएँगे। फिर यदि उसने पाप किए होंगे तो यमराज मारते-मारते ले जाएँगे। ऐसी बातों से लोगों में भय घुस जाता, छोटे बच्चों को तो घबराहट हो जाती! तेरह साल की उम्र में अंबालाल को यमराज के भय से संबंधित सोच शुरू हो गई थी कि इसमें हकीकत क्या है?

फिर तो वे जगह-जगह जाँच करते गए। पंडितों से पूछा, ब्राहमणों से पूछा लेकिन सही बात जानने को नहीं मिली। खूब जाँच की, विचार करते रहे। अंत में पच्चीसवें साल में ढूँढ निकाला कि यमराज नाम का कोई जीव है ही नहीं, कोई देव भी नहीं है। यमराज नहीं है, परंतु नियमराज है। इस संसार को नियम ही चलाता है। यह जगत् नियम के अधीन ही है। अन्य कोई चलाने वाला नहीं है। नियम से जन्म होता है, नियम से मरते हैं, नियम से रात होती है, नियम

से दिन उगता है; कुदरत का नियम ऐसा ही है! इस प्रकार वास्तविक ज्ञान उजागर करके लोगों को निर्भय बनाया।

[10.8] भगवान के बारे में मौलिक समझ

बचपन से उन्हें संसार बंधन रूप लगता था। उन्हें परवशता अच्छी नहीं लगती थी। वे स्कूल से छूट कर साधु संतों की सेवा करने जाते थे। तब एक महाराज ने उनकी सेवा से खुश होकर कहा कि 'भगवान तुम्हें मोक्ष में ले जाएगा'। तब उनकी विचारधारा शुरू हो गई कि 'भगवान अगर मुझे मोक्ष में ले जाएँगे तो भगवान मेरे *ऊपरी* रहेंगे, तब फिर उसे मोक्ष नहीं कह सकते। अत: भगवान और मोक्ष दोनों अगर एक साथ हैं तो वह विरोधाभास ही है। भगवान मेरे अंदर ही हैं, मुझे मिले नहीं हैं। वर्ना यदि भगवान मोक्ष दें तो उसे मोक्ष कहेंगे ही नहीं। मोक्ष अर्थात् जिसमें कोई *ऊपरी* नहीं हो, कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं। खुद के ब्लंडर्स और खुद की मिस्टेक्स ही खुद के *ऊपरी* हैं। उन्हें खत्म कर देंगे तो हम अपने अंदर वाले भगवान के साथ अभेद हो सकेंगे'।

[10.9] सच्चे गुरु की पहचान पहले से ही

बचपन में गुरु से कंठी बंधवाई थी। कंठी टूट गई तो फिर से कंठी नहीं बंधवाई। मदर ने कहा कि लोग तुझे 'नुगरो' कहेंगे। उन्होंने कहा, 'भले ही कहें'। उनकी मान्यता थी कि, 'गुरु अर्थात् जो प्रकाश दें। जो मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं दें, प्रकाश नहीं दें, वे गुरु मेरे काम के नहीं हैं'।

वे वैज्ञानिक व्यक्ति थे इसलिए शास्त्र में जो कुछ भी पढ़ते थे, उस बात को पूरी तरह से स्टडी करते थे और उसका सार निकाल लेते थे। शास्त्र में लिखी हुई बातों से आगे खुद के अंदर सूक्ष्म विवरण हो जाता था। लोकमत, लोकसंज्ञा से हमेशा उल्टा ही चले। अंत में अंदर वाले भगवान से पूछकर खुद की सूझ से आगे बढ़े।

[10.10] ज्ञानी के लक्षण बचपन से ही

आठ-नौ साल की उम्र में भी बहुत स्ट्रोंग मिज़ाज था, और

उन्हें शरारत करने की आदत थी। फादर के कहने पर एक सेठ के यहाँ किसी काम से कुछ पूछने जाना पड़ा। उम्र कम थी इसलिए उन्हें खेलने जाने की जल्दी थी, और वह सेठ जवाब नहीं दे रहे थे। वे पिल्ले के साथ खेल रहे थे। तो ये चिढ़ गए और अंत में पिल्ले की पूँछ दबा दी। उस पिल्ले ने सेठ को काट खाया। उसके बाद सेठ पिल्ले को मारने लगे। तो सच में गुनहगार कौन है वह पता नहीं चलता इसलिए निमित्त को काटते हैं। इस प्रकार बचपन से ही कर्ता व निमित्त से संबंधित सिद्धांतों के बारे में समझना शुरू हो गया था।

बचपन में अगर कोई उनका तौलिया आराम से काम में लेता था और वे खुद दुःखी होते थे, तो उस पर से उन्हें ज्ञान पता चला कि, 'मैं भुगत रहा हूँ, तो भूल मेरी है!'

न्याय ढूँढने जाते तब मार पड़ती थी इसलिए समझ में आया कि जो हो रहा है, वह अपने कर्मों के उदय के अनुसार ही है।

बचपन में पेन (चॉक के टुकड़े) से खेलते थे। दूर से छोटी डिब्बी में पेन (चॉक के टुकड़े) के टुकड़े डालते थे। वे खुद निशाना लगाए बगैर डालते थे फिर भी पेन डिब्बी में गिरती थी। उन्होंने सोचा कि मुझे तो यह आता नहीं है तो यह किया किसने?

खेल खेलते-खेलते पता चला कि यह सब व्यवस्थित है।

उनके जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं के बारे में जानने के बाद प्रश्न तो होगा ही न, कि किस आधार पर उन्हें यह अद्‌भुत ज्ञान प्रकट हुआ? दादाश्री कहते हैं कि, 'हमें तो यह ज्ञान 'बट नैचुरल', कुदरती रूप से प्रकट हुआ है'। वे दिल के सच्चे थे, सिन्सियर थे और छूटने की कामना थी, इसलिए उन्हें ऐसा भाव रहता था कि समकित जैसा कुछ होगा। लेकिन उन्हें तो पूर्ण प्रकाश हो गया! लोगों के भी पुण्य होंगे, विश्व का कल्याण होना होगा, इसलिए ऐसे ग़ज़ब के ज्ञानी प्रकट हुए और ऐसा अद्‌भुत अक्रम विज्ञान प्रकट हुआ!

जय सच्चिदानंद

अनुक्रमणिका

[1] बचपन

[1.1] परिवार का परिचय

[1.2] निर्दोष ग्राम्य जीवन

[1.3] बचपन से ही उच्च व्यवहारिक सूझ

[1.4] खेल कूद

[2] विद्यार्थी जीवन

[2.1] पढ़ाई करनी थी भगवान खोजने के लिए

[2.2] मैट्रिक फेल

[3] उस ज़माने में किए मौज-मज़े

[4] नासमझी में गलतियाँ

[5] मदर

[5.1] संस्कारी माता

[5.2] पूर्व जन्म के संस्कार हुए जागृत, माता के माध्यम से

[6] फादर

[7] बड़े भाई

[8] भाभी

[8.1] भाभी के साथ कर्मों का हिसाब

[8.2] भाभी को उपकारी माना

[8.3] व्यवहार लक्ष्मी का, भाभी के साथ

[8.4] भाभी के उच्च प्राकृत गुण

[9] कुटुंब-चचेरे भाई-भतीजे

[10.4] जहाँ मार खाते थे वहाँ तुरंत छोड़ देते थे

[10.5] जाना, जगत् है पोलम्पोल

[10.6] विविध प्रकार के भय के सामने...

[10.7] यमराज के भय के सामने शोध

[10.8] भगवान के बारे में मौलिक समझ

[10.9] सही गुरु की पहचान थी शुरू से ही

ज्ञानी पुरुष
'दादा भगवान' भाग-1

[1]

बचपन

[1.1]

परिवार का परिचय

संक्षिप्त परिचय ज्ञानी का

प्रश्नकर्ता : संक्षेप में आपका जीवन चारित्र बताइए। दादा का मूल नाम क्या है?

दादाश्री : मेरा नाम अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गाँव भादरण और अच्छा परिवार। हमारी बा (मदर) झबेर बा। मेरे फादर (पिता), लोग उन्हें 'मूलजी काका' कहते थे और मेरे बड़े भाई का नाम मणि भाई।

प्रश्नकर्ता : आपने कहाँ तक पढ़ाई की है दादा?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं आता था। 'मैट्रिक फेल' हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपका व्यवसाय।

दादाश्री : हमारा व्यवसाय बिल्डिंग कॉन्ट्रैक्ट का था, जो पहले से ही मेरे ब्रदर का था। उसमें मैं जॉइन हो गया।

प्रश्नकर्ता : फिर शादी की थी क्या?

दादाश्री : हाँ, पंद्रह साल की उम्र में शादी हुई थी। मेरी वाइफ हैं, हीरा बा।

प्रश्नकर्ता : फिर आपके कितने बच्चे हुए?

दादाश्री : दो बच्चे थे। दोनों बचपन में ही गुज़र गए।

प्रश्नकर्ता : अब यह बताइए कि ज्ञान कब हुआ?

दादाश्री : वह 1958 में हुआ, सूरत स्टेशन पर।

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म के बारे में आपके अनुभव और विचार बताइए।

दादाश्री : मैं मन-वचन-काया से बिल्कुल अलग रहता हूँ, बिल्कुल निराला रहता हूँ, फिर भी केवलज्ञान नहीं हुआ है, काल की वजह से चार डिग्री नहीं पचा।

प्रश्नकर्ता : आपको सब से अधिक कौन सी चीज़ प्रिय है?

दादाश्री : मुझे आत्मा के अलावा और कोई भी वस्तु प्रिय नहीं है।

धन्य-धन्य भूमि तरसाली, जन्मे जहाँ अक्रम ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका जन्म स्थल?

दादाश्री : हमारा जन्म तरसाली गाँव में, ननिहाल में हुआ था।

प्रश्नकर्ता : ननिहाल में हुआ था तो वह आपका ऋणानुबंध था न?

दादाश्री : हाँ, मामी ने तो हमें बा की तरह रखा था। जब मैं छोटा था, उस समय गाँव में डाका डला था, तब गाँव में यह घर सब से बड़ा था, इसलिए सब से पहले वहाँ पर डाका डला। तब हमारी मामी हमें गोदी में उठाकर छोटे कमरे में ले गई थीं और हम वहाँ पर छुप गए थे।

प्रश्नकर्ता : दादा, तरसाली में आपका जन्म हुआ था तो वहाँ पर भी मंदिर बनेगा न?

दादाश्री : अरे! मंदिर नहीं, उस जगह के तो न जाने कितने रुपए आएँगे, वह तो भगवान जाने!

प्रश्नकर्ता : उसे कोई बेच थोड़े ही देंगे, दादा? यह तो महाभाग्य है कि ऐसा वह घर, जहाँ दादा का जन्म हुआ!

दादाश्री : वहाँ पर, लोग उस रूम के दर्शन करने जाते हैं। उस रूम को खरीद लेना है लाखों रुपए खर्च करके भी। छोड़ेंगे नहीं न ये लोग!

प्रश्नकर्ता : नहीं छोड़ेंगे दादा।

दादाश्री : भादरण का मकान भी नहीं छोड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : नहीं छोड़ेंगे, दादा।

दादाश्री : जहाँ चरण पड़े वहाँ तीर्थ बन जाता है!

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा! आपके चरण पड़े हैं। ये दादा तो चलते-फिरते, जीते-जागते और बोलते हुए विद्यमान तीर्थ हैं!

दादाश्री : वर्ल्ड का बहुत बड़ा आश्चर्य है! लेकिन लोग जानते नहीं हैं न बेचारे। फिर क्या हो सकता है?

अवतरित हुए उस धन्य दिवस ये परमात्मा

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके जन्म की तारीख कौन सी है, वह जानना है।

दादाश्री : आप बताओ न इन्हें, आप जानते हो न? (दादाश्री किसी अन्य महात्मा से कहते हैं।)

महात्मा : संवत 1965, कार्तिक सुद चौदस। और अंग्रेजी की 1908 लेकिन तारीख कौन सी?

दादाश्री : सात नवम्बर, तेरस है लेकिन लोग चौदस को मनाते हैं। उसमें टाइम में कुछ फर्क है ज़रा सा।

प्रश्नकर्ता : हं। वास्तव में तेरस है?

दादाश्री : ऐसा उसमें लिखा हुआ है तेरस, चौदस भी हो सकती है। इस दिवाली के बाद में वह जन्म जयंती मनाई जाएगी, चौदस पर।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् कार्तिक सुद चौदस?

दादाश्री : यों भी हम (ज्ञान दशा में) चौदस हैं और जन्म जयंती भी चौदस की। हम चौदस हैं, पूनम तो सीमंधर स्वामी कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ-हाँ, ग़ज़ब है! आप चौदस हैं?

दादाश्री : यों हैं तो चौदस (356 डिग्री) और जन्म भी चौदस के दिन।

वतन, चरोतरी छः गाँव में से भादरण में

प्रश्नकर्ता : जन्म हुआ ननिहाल में तरसाली गाँव में लेकिन आपका गाँव कौन सा है?

दादाश्री : हमारा गाँव भादरण। छः-सात हज़ार की जनसंख्या वाला गाँव। हम तो भादरण के पटेल हैं, छः गाँव के पटेल। यानी कि पाटीदार कम्यूनिटी में यह टॉप क्लास गाँव है इसलिए हमारे यहाँ का दहेज-वहेज ज़्यादा है।

प्रश्नकर्ता : तो वह बहुत रौबीला गाँव होगा?

दादाश्री : हाँ, हमारे जन्म से पहले हमारे गाँव में रिवाज था, (जन्म से) बीस साल पहले वह रिवाज रहा होगा। वह क्या था कि कोई भी व्यक्ति घोड़े पर बैठकर गाँव में से होकर नहीं जा सकता था। यदि राजा भी जाते तो उन्हें भी उतार देते थे।

प्रश्नकर्ता : भादरण चरोतर में है और चरोतर प्रदेश के बहुत ही बखान किए हैं कई संतों ने।

दादाश्री : हाँ, कृपालुदेव ने कहा है कि 'यदि बनियों के यहाँ जन्म नहीं हुआ होता और यदि यहाँ पर चरोतर में हुआ होता, ऐसे लोगों के बीच में तो लोगों का बहुत कल्याण हो जाता!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसीलिए तो अब आप आ गए हैं न!

दादाश्री : सहजानंद स्वामी ने भी बखान किए हैं कि 'भाई, यहाँ वडताल में मंदिर बनाना चाहिए'। चरोतर का नीम! अरे! आराम से उसके दर्शन करते रहें, ऐसा नीम होता है! उसका तना तो हाथ में ही न आए। यदि दो लोग आमने-सामने आ जाएँ, तब जाकर उस तने को चारों ओर हाथों से पकड़ पाते थे, जबकि कहीं और तो इतना ही करके 'आ गया नीम'। मोटा ही नहीं होता न!

मूलतः हम अडालज के

भादरण से पहले भी मूलतः हम तो पटेलों के बेटे, गाँव में से आए हैं। कौन सा गाँव बताया था उन्होंने?

प्रश्नकर्ता : अडालज, अडालज।

दादाश्री : अडालज। हमने उस गाँव का नाम क्यों याद रखा है? क्योंकि मूलतः हम वहाँ के हैं। मूलतः हम अडालज के हैं। हमारे जो छः गाँव वाले हैं न, वे सभी अडालज के हैं। हमारे सभी बुजुर्ग मूलतः अडालज के थे।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो मेरे फादर भी कहते हैं कि अपने बाप-दादा वहाँ के थे, मूलतः अडालज के थे।

दादाश्री : वे भी अडालज के थे, लेकिन अब तो अंदर कितने ही लोग अडालज के नहीं हैं पर उन्हें हम कैसे कुछ कह सकते हैं? दबाव डालकर नहीं कह सकते हैं न, हम। इसलिए हमारे लिए तो यदि आपके फादर ने आपसे कहा हो तो आप सही हो लेकिन इनके फादर ने मना किया हो तो क्या कर सकते हैं हम? पाटीदार तो हैं ही न, ऐसा थोड़े ही है कि पाटीदार नहीं रहेंगे?

'माँ' उच्च जाति की, 'पिता' कुलवान

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञानी के रूप में पहचाने गए उससे पहले आपका जीवन यानी कि आपका परिवार, माता-पिता, वहाँ का वातावरण, लालन-पालन, काल ऐसी कोई बात कीजिए न!

दादाश्री : हाँ, परिवार का माहौल अच्छा था। संस्कारी माहौल, संस्कारी परिवार।

मेरी मदर तो ऐसी थीं कि ढूँढने पर भी न मिलें, ऐसी थीं। ज़मीन ही अगर अच्छी न हो तो अच्छा पौधा कैसे उग पाएगा? उसी प्रकार इसमें भी माता अच्छी होनी चाहिए। यानी कि मेरा जन्म तो बहुत मुलायम हार्ट वाली माँ की कोख से हुआ था। हमारी बा जैसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। उनके जो विचार थे, उनका जो वर्तन, उनकी दया, करुणा वह मैंने देखा है। इतना तो बहुत ही उच्च प्रकार का था। उन्हें मैं जन्म स्थल मानता हूँ, बहुत उच्च जन्म स्थल!

एक व्यक्ति ने डरते-डरते मुझसे पूछा था कि 'आप ऐसे कैसे जन्मे?' तब मैंने कहा, मेरी 'माता' उच्च जाति की थीं और 'पिता' कुलवान थे। कुलवान कैसे होते हैं? ब्रॉड विज़न (विशाल दृष्टि) वाले होते हैं। कुलवान पर दाग़ नहीं लगना चाहिए, कुलवान पर एक भी दाग़ नहीं लगना चाहिए।

प्योरिटी के बिना यह ग्रेड मिल ही नहीं सकती है न! और फादर-मदर सभी में प्योरिटी थी, अत्यंत प्योरिटी और पूरे दिन सब का यही काम था कि किस प्रकार किसी का काम करें। उसमें भी मदर तो बहुत ही ऐसे...

हमारी मदर का तो ऐसा था कि हमारे गाँव में कई लोग ऐसा कहते थे कि 'तेरी मदर जैसी मदर शायद ही कभी रही होंगी'।

गुण सभी अपने लेकर आया था लेकिन मदर में देखने से प्रकट हुए

फैमिली अच्छी थी और मदर बहुत ही संस्कारी, अत्यधिक संस्कारी।

प्रश्नकर्ता : वे आपको विरासत में मिले थे।

दादाश्री : इस जगत् में जिसे विरासत कहते हैं, वह तो सिर्फ

कहने के लिए है। वास्तव में विरासत जैसा कुछ होता नहीं है। उसका अर्थ कुछ और ही है। यों लौकिक में ऐसा कहते हैं कि 'विरासत में मिला है', लेकिन वास्तव में वह करेक्ट बात नहीं है। इस बात के पीछे बहुत गहरी बातें हैं।

विरासत में यह मिला था लेकिन पूर्व जन्म का मेरा कोई हिसाब रहा होगा न! पूर्व जन्म से, अनंत जन्मों से कुछ लाया होऊँगा न! वह लेकर आया था, इसलिए यह सब प्रकट हुआ।

मैं अपना लेकर आया था इसीलिए तो उनके घर पर जन्म हुआ न! उनकी वजह से ही प्रकट हुए। उनमें देखने से ही प्रकट हुए। उनमें देखा, इसलिए प्रकट हुआ।

दैवीय कुटुंब था, इसलिए नमस्कार करते थे गाँव वाले

हमारा परिवार बहुत अच्छा था। मुझे तो हमारे गाँव में दो-तीन लोग क्या कहते थे कि, 'आपके माता-पिता और आपके घर को तो हम नमस्कार करते हैं। कितने *लागणी* (लगाव, भावुकता वाला प्रेम) वाले हैं, किसी का काम निकाल दें, ऐसे हैं ये लोग! जिनका केस हाथ में लेते हैं न, उनका पूरा ही काम कर देते हैं। इतने *लागणी* वाले, दयालु, किसी का भी हड़पते नहीं थे, और ये हरहाया नहीं हैं।' हरहाया पशु (आवारा पशु, हर तरफ घूमकर फसल को हानि पहुँचाने वाला) जैसे लोगों ने इकट्ठा किया होता है और वे और भी ज़्यादा इकट्ठा करते हैं। हम इकट्ठा नहीं करते थे। अरे! जितना हमारे नसीब में होगा उतना आएगा।

किसी-किसी जगह पर तो मेरे पैर छूते थे और कहते थे, 'धन्य है आपका परिवार'। कभी भी कोई ऐब नहीं, दाग़ नहीं। वर्ना चोरी, लुच्चापन यदि ऐसा कुछ हो तो तिरस्कार होता है। नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : एक भी ऐब नहीं। मूलजी काका के अवसान के समय पैसे नहीं थे फिर भी मणि भाई ने कहा, 'मुझे तो पूरे मुहल्ले को खाना खिलाना है।' इच्छा तो पूरे मुहल्ले की है, और किया भी। पैसे नहीं थे

तो उधार लेकर किया। छोड़ा नहीं न! इतना सब, बहुत मज़बूत लोग। और पैसे की ना ही पेटियाँ थीं, तिजोरियाँ भी नहीं थीं। मान क्यों मिलता था? परिवार अच्छा था इसलिए। जो औरों के लिए ही जीते हैं, वैसे ही सब लोग यहाँ जन्मे। जो लोगों के लिए ही जीते हैं न, वैसे ही सब। मुझे तो गाँव के कितने ही बुज़ुर्ग कहते थे, 'भाई, आपकी तो क्या बात करें? कैसा घर! कितना अच्छा! किसी को दुःख नहीं, किसी को त्रास नहीं दिया।' ऐसा था इसलिए पैर छूते थे बुज़ुर्ग! कैसा दैवीय परिवार है! ऐसा सब कहते थे। कोई दुःख दे जाए न, तब भी उसे दुःख नहीं देते थे, ऐसी क्षत्रियता। अच्छा कहलाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत अच्छा।

दादाश्री : और सम्मानसहित जीवन गुज़ारा था, इसलिए मान की पूरी भूख खत्म हो चुकी थी लेकिन जो अहंकार इकट्ठा हो गया था न, वह उछल-कूद मचाता था।

ऐसा वैभव नहीं था लेकिन थी खानदानियत की कीमत

वह खानदानी परिवार था, ऐसा जिन्हें अच्छा दहेज मिले। अब वहाँ पर जन्म हुआ था। जायदाद ज़्यादा नहीं थी सिर्फ खानदान की ही कीमत थी। हमारी जायदाद कितनी थी? ननिहाल में साढ़े छः बीघा ज़मीन थी और दस बीघा भादरण में थी।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा था न, कि बहुत पुण्य हो तो ऐसी जगह पर जन्म होता है कि बंगले वगैरह सब तैयार ही मिलता है, तो आपका जन्म ऐसी कोई जगह पर क्यों नहीं हुआ?

दादाश्री : कहाँ?

प्रश्नकर्ता : आपका जन्म वैभव में क्यों नहीं हुआ?

दादाश्री : मैं वह सारा वैभव देखकर ही आया था। मुझे तो वैभव ज़रा भी अच्छा नहीं लगता था। मुझे तो बचपन से ही यदि कोई वैभव वाली चीज़ मिलती थी तो मुझे अच्छा नहीं लगता था।

ज्ञानी के जन्म से लाभ होता है समग्र परिवार को

प्रश्नकर्ता : आपने जिन माता-पिता के यहाँ जन्म लिया, उन माता-पिता को आपकी वजह से कोई भी लाभ हुआ था?

दादाश्री : लाभ तो सभी को होता है सिर्फ माता-पिता को ही ऐसा नहीं। पहले तो सात पीढ़ी तक के सभी लोगों को लाभ होता है और फिर वापस पूरे गाँव को भी। चौदह-पंद्रह पीढ़ियों वाला है यह पूरा गाँव, उन सभी को लाभ पहुँचता है। यों तो सभी को (हमारी उपस्थिति का) वातावरण (असर) पहुँचता है।

प्रश्नकर्ता : आपने उनके यहाँ जन्म लिया तो उन्हें कम या ज़्यादा लाभ होगा, ऐसा कुछ है क्या?

दादाश्री : अवश्य ही होगा न, ब्लड रिलेशन हुआ न! तो उससे लाभ होगा ही न!

प्रश्नकर्ता : आपके बेटे-बेटियों को भी?

दादाश्री : हाँ, सभी को लाभ होगा लेकिन यदि संयोग उल्टे मिल जाएँ तो फिर यों लाभ देकर उल्टे रास्ते पर जा सकता है और संयोग सीधे आएँ तो उच्च कक्षा में पहुँच सकता है। लाभ तो अवश्य मिलता ही है। इसीलिए वे (नरसिंह मेहता) लिखते हैं न, *'कुळ इकोतेर तार्या रे'* (इकहतर पीढ़ियों को तार दिया)। ऐसा कहा है न!

नज़दीकी लोगों को लाभ मिलता है लेकिन यदि सही उपयोग करेंगे तब...

प्रश्नकर्ता : दादा, दूसरा मुझे यह जानना है कि आपके माता-पिता थे वे लोग मोक्ष के अधिकारी तो हैं ही, लेकिन हम से ज़्यादा अधिकारी हैं या कम?

दादाश्री : उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है। जो करे उसके बाप का (लाभ ले ज्ञान का, उसे खुद को फायदा)। उन्हें उनका लाभ मिल गया। वह लाभ अभी कितने सालों तक चलेगा, वह नहीं कहा जा सकता।

यदि संयोग अच्छे होंगे तो वे आगे बढ़ेंगे, संयोग उल्टे होंगे तो उन्हें उल्टे रास्ते पर भी ले जा सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : उल्टे पर भी ले जा सकते हैं दादा?

दादाश्री : हाँ! उसमें कुछ चलेगा ही नहीं। कोई पूछेगा ही नहीं न! सिर्फ इतना है कि उनकी उपस्थिति में जन्म हुआ इसलिए उनके परमाणु रहे हुए हैं, उन परमाणुओं से लाभ होगा। उसमें कहीं कुछ ऐसा लिखकर नहीं दिया है कि ये फादर हमेशा के लिए फादर हैं। वहाँ पर तो न्याय अर्थात् न्याय। उन परमाणुओं से लाभ होगा। फादर-मदर ने कितना उपकार किया है। उसके बदले में फल मिल ही जाएगा न! और आसपास के कुटुंबीजनों और फैमिली के सभी लोगों को ब्लड का फायदा हुए बगैर रहेगा नहीं न! इकहतर पीढ़ियों को तार दें अर्थात् वे (कुटुंब वाले) इस प्रकार से पार उतरते हैं लेकिन यदि संयोग उल्टे मिल जाएँ तो वे वापस डूब भी सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, लेकिन आप उन्हें मोक्ष का अधिकारी बना सकते हैं न?

दादाश्री : नहीं-नहीं! ऐसा नहीं है। वह तो संयोगों के मिलने से हो गया इसलिए लाभ हुआ। वहाँ पर 'मेरा-तेरा' नहीं है। यों ही संयोग मिल आते हैं। ऐसा मानो कि ये जो सज्जन हैं, अभी-अभी सभी बाहर से आ रहे हों और वे कहें कि 'भाई! अभी रात के दो बजे हैं, अभी दादा के वहाँ नहीं जाना चाहिए'। लेकिन ये क्या कहते हैं कि 'भाई, दादा मेरे गाँव के हैं, मैं जाऊँगा'। तो उनका इतना अधिकार है न! ऐसा लाभ मिलता है। तो नज़दीकी लोगों को ऐसा लाभ मिलता है। जिनके पास परमाणु होते हैं न, उन सभी को। वे यदि इसका पूरी तरह से लाभ उठा लेंगे तो, तार जोड़ लेंगे तो वह उनका खुद का, वर्ना यदि तार नहीं रहेगा तो वे (परमाणु) लाभ देकर चले जाएँगे।

कुटुंब में जन्म लेने से नहीं परंतु आज्ञा पालन से मोक्ष है

हमारा एक भतीजा कहता था, मुझसे कहा 'दादा अब तो हम मोक्ष

में जाएँगे ही न?' मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं है। आप पुरुषार्थ करोगे तो हो पाएगा। ऐसा नहीं है कि दादा से ज्ञान लिया और दादा के कुटुंब में जन्म लेने से ही वैसा हो जाएगा। आपके ऊपर कृपा ज़्यादा रहेगी। कृपा ज़्यादा क्यों रहेगी? क्योंकि ब्लड रिलेशन है। जल्दी हल आ जाएगा। लेकिन उसका उल्टा अर्थ नहीं लगाना चाहिए। खुद को आज्ञा का पालन तो करना ही पड़ेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि आज्ञा पालन किए बिना कोई व्यक्ति मोक्ष में जा सके'।

सात पीढ़ियों से किसी को 'साला' बनना अच्छा नहीं लगता था

प्रश्नकर्ता : दादा की कोई बहन नहीं है?

दादाश्री : बहन भी नहीं है, बुआ भी नहीं है। पिता जी की बुआ नहीं थीं, दादा की भी बुआ नहीं थीं, उनके दादा की भी बुआ नहीं थीं। सात पीढ़ियों से बेटी ही नहीं थी। मैंने बचपन में इस बारे में जाँच की थी कि इसका क्या कारण है? तो दो पीढ़ियाँ देख लीं। उन सभी पीढ़ियों को साला बनना अच्छा नहीं लगता था। किसी को भी साला बनना अच्छा नहीं लगता था। बहनोई बनना अच्छा लगता था लेकिन साला बनना अच्छा नहीं लगता था। मैंने कहा, 'कहना पड़ेगा यह तो!' लेकिन यह तो हमारी पीढ़ी में पटेलों के यहाँ देखा।

मेरी सात पीढ़ियों में कोई भी साला नहीं बना था, ऐसी फैमिली का इंसान हूँ। बाप दादा भी ऐसा कहते थे, 'ए साले होने की बात नहीं चाहिए'। इसलिए कुदरती रूप से साला नहीं बना। ऐसी तुमाखी वाला घर! साला ही नहीं। इनकी बुआ जी का जन्म हुआ उस दिन हमारे बुजुर्गों ने कहा, 'मर गए। इस घर में अब बेटी पैदा हो गई'। किसी के साले-वाले नहीं बने, ऐसे हैं ये लोग! फिर पूँछ सीधी रहेगी या टेढ़ी? एकदम टेढ़ी।

साले के रूप में अपमान होने पर तय किया, नहीं चाहिए 'बहन'

मुझे भी बचपन से ही साला बनना पसंद नहीं था। कोई ऐसा कहे कि हमारे साले आए हैं, तो वह मरने जैसा लगता था। साले? इसे

घेमराजी (अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने) कहेंगे। लोगों ने क्या कोई छोटा पद दिया है इन्हें? लोगों ने नहीं दिया है, यह पद तो खुद ने मान लिया है।

इसलिए यह चक्कर अच्छा ही नहीं लगता था, मुझे तो बिल्कुल ही पसंद नहीं था। मुझे तो किसी जन्म में किसी ने साला कहा होगा, उसी वजह से मैंने मोक्ष में जाना तय किया होगा। साला कह जाए! साले आए!

किसी जन्म में साले के रूप में हमारा अपमान हुआ होगा तो कितने ही जन्मों से बहन नहीं मिली। साला कहा कि अपमान लगा! आज हमारी सात पीढ़ियों में किसी के यहाँ बहन नहीं है। 'इस जन्म में बहन नहीं चाहिए,' वह पूर्व जन्म की चिढ़ है, यह पिछले जन्म का है!

प्रश्नकर्ता : क्या इसीलिए आपका जन्म वहाँ पर हुआ है?

दादाश्री : वह तो चाहे कुछ भी हो लेकिन कुछ तो हुआ, कुछ हुआ तो सही न!

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म का हो तभी हो सकता है न!

दादाश्री : इसीलिए बहन नहीं थी न, वह भी आश्चर्य ही है न!

प्रश्नकर्ता : भाई थे?

दादाश्री : हाँ, ढेर सारे।

समझ में आया गलत अहंकार, ज़ाहिर कर दीं कमज़ोरियाँ

प्रश्नकर्ता : क्या पाप है साला बनने में, दादा?

दादाश्री : पाप नहीं है। यह तो गलत अहंकार है, एक तरह का। खुद के साले हैं और खुद को दूसरों का साला नहीं बनना है। साला बनना कोई गुनाह है? यह तो न जाने कहाँ से ऐसा भूत घुस गया था, वही समझ में नहीं आ रहा है और इस भूत को इस तरह क्यों संभालकर रखा हमारे बुज़ुर्गों ने वह भी मुझे समझ में नहीं आता। अरे! रोज़ कमाकर

रोज़ खाएँ, ऐसे लोग। यों ही बिना बात के *खुमारी* (गौरव, गर्व, गुरूर) भरते रहे! लेकिन उन दिनों मुझ में खुद में ही *खुमारी* थी, मुझे अच्छा लगता था।

व्यवहार में यह चल ही नहीं सकता न! हम उस रिश्ते की निंदा करने नहीं बैठे हैं। यह तो पिछले जन्म की हमारी कमज़ोरी का प्रदर्शन है। हम उसकी निंदा नहीं कर सकते। व्यवहार में जो ज़रूरी हैं, नेसेसिटी है, क्या उसकी निंदा होनी चाहिए? यह तो एक प्रकार की चिढ़, उस वजह से ऐसा था। चिढ़ घुस चुकी हो, तभी न!

कोई भी लालच नहीं, ऐसी ग़ज़ब की खुमारी

प्रश्नकर्ता : तो आपने बात की न, कि आपको *खुमारी* बहुत अच्छी लगती थी।

दादाश्री : हाँ, *खुमारी* बहुत अच्छी लगती थी। कोई पैसे ठग जाए तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन मुझे *खुमारी* दिखाए तो बस, खुश! ऐसा ही इन्टरेस्ट था। हाँ, *खुमारी* के सामने पैसा छोड़ देते थे। यदि *खुमारी* मिले तो पैसा छोड़ देते थे।

प्रश्नकर्ता : तो आपके बचपन की ऐसी कोई *खुमारी* वाली बात हो तो बताइएगा।

दादाश्री : एक सन्यासी जैसा आया था, उसने हमारी माँ जी से कहा कि 'यह पुण्यशाली लड़का है, इसके लिए कुछ विधियाँ करवाने की ज़रूरत है'। तो इससे बा एकदम गद्गद हो गए कि 'मेरा बेटा इतना पुण्यशाली! विधियाँ करनी हो तो करवा दूँगी'। इसलिए वे खर्चा पूछने लगीं। उसने कोई ज़्यादा खर्चा नहीं बताया, सौ-डेढ़ सौ रुपए खर्चा बताया लेकिन उन दिनों सौ-डेढ़ सौ रुपए का मतलब अभी के एक हज़ार जैसे। बीस रुपए का सोना आता था तब तो। इसलिए फिर उस नन्हीं उम्र में मैंने बा से कहा, 'विधियाँ वगैरह मत करवाना'। लेकिन बा ने उससे कह दिया था इसलिए वह वापस आया। तब मैंने कहा, 'आप यहाँ पर आते हो न, लेकिन आपका चक्कर लगाना बेकार जाएगा क्योंकि

मैं तो राम की चिट्ठी लेकर आया हूँ इसलिए आपकी ज़रूरत नहीं है'। किसकी चिट्ठी लेकर आया हूँ?

प्रश्नकर्ता : राम की।

दादाश्री : 'तू तो नहीं लाया है न चिट्ठी और मेरे पास राम की चिट्ठी है! अरे, मेरी गारन्टी देने वाला तू कौन? तुझे अगर चाहिए तो मैं देता हूँ। क्योंकि तू लालची है, मैं लालची नहीं हूँ।' मैं बचपन से ही लालची नहीं हूँ। इतना सा भी लालच नहीं, कभी भी नहीं। आप यहाँ आकर सोना दो फिर भी वह हमारे काम का नहीं है।

[1.2]

निर्दोष ग्राम्य जीवन

माँ अंबा के लाल, 'अंबालाल'

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका नाम कैसे पड़ा?

दादाश्री : मेरी माता जी (झबेर बा) ने मेरे लिए मेरे जन्म से पहले आठ साल तक घी न खाने का प्रण लिया था और वे निरंतर अंबा माँ की भक्ति करते थे। उस पर से मेरा नाम 'अंबालाल' रखा।

गलगोटा जैसा शरीर इसलिए कहते थे 'गलो'

प्रश्नकर्ता : दादा को गला काका क्यों कहते थे?

दादाश्री : बचपन का नाम ही गला भाई था। गलु से लोगों ने गला कर दिया, फिर गला काका किया। उस नाम से पहचाने गए। मुहल्ले में लोग ऐसा कहते थे कि 'गला काका आए'।

प्रश्नकर्ता : गलो नाम पड़ा उस वक्त आपकी कितनी उम्र होगी, दादा?

दादाश्री : दस साल का।

प्रश्नकर्ता : गला का मतलब क्या है दादा?

दादाश्री : वह तो मज़ाक में, आनंद का नाम। *गलुडिया* (पिल्ले) नहीं कहते? जब छोटे होते हैं तब?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, बचपन में मेरा नाम वास्तव में गला भाई नहीं था। गला भाई नाम के पीछे तो कारण है।

प्रश्नकर्ता : क्या कारण है, दादा?

दादाश्री : हमारे पड़ोस में एक अंबालाल भाई रहते थे, अंबालाल मोती भाई करके। उनकी वाइफ का नाम पुनी बा था। वे मेरी माता जी से ज़रा दस साल ही छोटी थीं। तो पुनी बा रोज़ मुझे गोदी में उठाकर अपने घर ले जाती थीं। बा स्थूलकाय थीं फिर भी मुझे ले जाती थीं। वे गाल पर हाथ फेरती थीं, खुश हो जाती थीं।

उन्हें प्यार आता था तो बहुत अच्छा-अच्छा खिलाती थीं और फिर मैं अपने घर आ जाता था। बाद में जब फिर से जाता था तब मैं बाहर से दरवाज़ा खटखटाता था, अंदर पैसेज जैसा था, बाहर दरवाज़ा खटखटाना पड़ता था। 'कौन है?' पुनी बा जब अंदर से ऐसा पूछतीं तब मैं कहता, 'मैं हूँ'। वे वापस पूछतीं, 'कौन है?' तब मैं ऐसा कहता था 'मैं अंबालाल'। उनके पति का नाम भी अंबालाल था, तो वे क्या करती थीं कि वे जब रोज़ बाहर से दरवाज़ा खटखटाते थे तब अंदर से पुनी बा पूछती थीं, 'कौन आया? कौन है?' तब वे कहते थे, 'मैं अंबालाल'। इसलिए फिर मैं उनकी नकल करता था, 'मैं भी अंबालाल हूँ न!' तब वे कहतीं, 'आया बड़ा अंबालाल! तू तो मुझे उलझन में डाल देता है न! तू अंबालाल कहता है तो फिर मुझे तो ऐसा ही लगता है न, कि मेरे पति आए हैं!' फिर बा से कहती थीं, ''यह मुझे बहुत प्यारा है इसलिए इसका नाम 'गलो' रखूँगी।'' *गलगोटे* (गेंदे का फूल) जैसा दिखाई देता था, तब शरीर बहुत अच्छा था! इसलिए वे 'गलु, गलु' कहकर बुलाती थीं। इस तरह मेरा नाम 'गला' पड़ गया।

प्रश्नकर्ता : आपके सभी मित्र हमें बताते हैं कि बाहर 'गिल्ली डंडा खेलने जाते थे। फिर पपीता तोड़कर लाते थे और गेहूँ में दबा देते थे, और बाद में खाते थे'। फिर कहते हैं, 'दादा यों हाथ लंबा करते थे तो छोटे-छोटे चार-पाँच बच्चे यों लटक जाते थे। इतने मज़बूत थे, दादा। *गलका* (एक तरह की लौकी जैसी सब्ज़ी-स्पंज लौकी) जैसे थे इसलिए गला काका कहते थे'।

वह तो जब मैंने झबेर बा से पूछा कि 'दादा जब छोटे थे तब कैसे दिखाई देते थे?' तब मुझे बताया कि *गलगोटे* (गेंदे) जैसे थे इसलिए गलो नाम रखा था।

दादाश्री : उसे मिटाते-मिटाते तो बहुत साल लगे। अब लोग 'अंबालाल' कहकर बुलाते हैं।

दस साल तक की उम्र फिर भी रहते थे दिगंबरी

हमारे मुहल्ले में सभी दस-ग्यारह साल के बच्चे दिगंबरी ही रहते थे। वे जब नहाने जाते थे तब सभी कपड़े निकालकर ही जाते थे ताकि कपड़े भीगे नहीं।

प्रश्नकर्ता : दिगंबर?

दादाश्री : हमारा तो वैष्णव धर्म में जन्म हुआ था न, इसलिए श्वेतांबर-स्थानकवासी या बाकी सभी संप्रदायों के बारे में हमने बचपन से कुछ भी नहीं सुना था लेकिन दिगंबर शब्द शुरू से ही सुना था। क्योंकि उस ज़माने में छोटे बच्चों को कपड़े पहनाने का, चड्डी पहनाने का सिस्टम नहीं था। उस ज़माने में छोटे बच्चों को कपड़े नहीं पहनाते थे। कपड़ों की बहुत कमी थी इसलिए कपड़े नहीं पहनाते थे यों ही दिगंबर घूमते रहते थे।

दूध पीते बच्चे थे तब से लेकर दस साल की उम्र तक तो नंगे ही घूमे थे और लोग भी दिगंबरी कहते थे। कहते थे, 'दिगंबरी आया'।

पुनी बा क्या कहती थीं? 'लो, वह दिगंबर वापस आ गया!' मैंने कहा, 'दिगंबर क्यों कहती हैं?' अब, दिगंबरी साधु इस तरह घूमते हैं इसलिए दिगंबरी ही कहेंगे न!

हाँ, तो दिगंबर बनकर घूमते रहते थे बच्चे। इसलिए यदि कोई स्त्री ज़रा तेज़ हो तो वे कहती थीं, 'अरे भाई, यह दिगंबर की तरह घूमता रहता है। अरे! गरमी लगती है क्या तुझे?' ऐसा कहती थीं। फिर भी वह बच्चा घर आकर कपड़े निकाल ही देता था और मुहल्ले में घूमने चला जाता था। अब इन्हें क्या कहें?

प्रश्नकर्ता : गाँव के रीति-रिवाज थे न, वे! और दादा, पहले के समय में तो ऐसा था कि लंबी कमीज़ पहना देते थे न, तो फिर चड्डी पहनने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी।

दादाश्री : लेकिन वे बच्चे थे ही ऐसे, घर आकर सभी कपड़े निकाल देते थे। जैसे उसे बहुत गरमी लग रही हो! और उस घड़ी माँ कहती भी थीं, 'अरे, दिगंबर! कपड़े पहन'। तो तब से सुना हुआ है। दिगंबर कहना नहीं आता था इसलिए फिर, कहते थे 'देगंबर जैसा हूँ, देगंबर जैसा हूँ'।

मैं सोचता था 'यह दिगंबर क्या है?' सुना इसलिए सोचता था कि दिगंबर क्या है? दिगंबर का अर्थ क्या है? दिशा रूपी कपड़े। दो शब्दों की संधि है, 'दिक्-अंबर'। दिक् यानी दिशा में से दिक् बना। अंबर यानी वस्त्र। दिशाएँ जिनका वस्त्र हैं, ऐसे दिगंबरी।

दिगंबर अर्थात् भान ही नहीं था विषय का

प्रश्नकर्ता : आजकल तो बचपन से ही कपड़े पहनाने की प्रथा है।

दादाश्री : कपड़े पहनते हैं न, तो भान में आ जाते हैं लोग। आजकल तो एकाध साल के बच्चे को भी कपड़े पहनाते हैं। यानी कि भान में आ गया। पहले कपड़े ही नहीं पहनाते थे न, तो भान ही कहाँ से रहता? इसलिए विषय का विचार ही नहीं आता था तो फिर कोई झंझट ही नहीं। विषय की इतनी एडवान्स जागृति ही नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : यानी कि एक प्रकार से समाज का ऐसा प्रेशर था। ऐसा हुआ न?

दादाश्री : नहीं! समाज का प्रेशर नहीं, माँ-बाप का झुकाव, संस्कार! तीन साल का बच्चा यह नहीं जनता था कि माँ-बाप के भी ऐसे कुछ संबंध हैं! इतनी सुंदर सीक्रेसी। जब ऐसा कुछ होता था तब बच्चे दूसरे रूम में सोते थे। ऐसे थे माँ-बाप के संस्कार! आजकल तो इधर बेडरूम और उधर बेडरूम। एक तरफ माँ को बच्चा होता है और

दूसरी तरफ बहू को भी बच्चा होता है। ज़माना बदल गया है न! बेडरूम, डबलबेड होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, डबलबेड।

दादाश्री : और उन दिनों कोई पुरुष एक ही बिस्तर पर अपनी पत्नी के साथ नहीं सोता था। उन दिनों तो एक कहावत थी कि जो पुरुष पूरी रात स्त्री के साथ सोता है, वह स्त्री जैसा बन जाता है। उस पर स्त्री पर्याय का असर हो जाता है इसलिए कोई ऐसा नहीं करता था। यह तो कौन जाने किसी अक्ल वाले ने खोज की, तो डबलबेड बिकते ही जा रहे हैं।

हमारे समय में ज़माना बिल्कुल रस्टिक (ग्राम्य) था। कहलाता था रस्टिक लेकिन थे एकदम सुंदर। नौ-दस साल की उम्र तक कपड़े नहीं पहनते थे लेकिन यों सुंदर, यों चेहरा देखो तो बहुत ही सुंदर। जबकि आजकल बच्चे इतने सुंदर नहीं देखे हैं। आज के बच्चे सुंदर हैं ही कहाँ?

उस समय गाँव की सभी लड़कियाँ बहन जैसी

आज के बच्चों की अपेक्षा हमारे समय में कुदरती रूप से कौन सा गुण अच्छा था? तो वह यह कि 'अठारह साल की उम्र होने पर भी गाँव की लड़कियों पर दृष्टि नहीं बिगाड़ते थे', हम में वह गुण था। लड़कियों की तरफ दृष्टि ही नहीं डालते थे। लड़कियों के साथ खेलते ज़रूर थे लेकिन ऐसा कोई विचार नहीं, उसका क्या कारण था? दस-ग्यारह साल तक तो दिगंबर घूमते थे इसलिए भान ही नहीं था इस दिशा का।

दिगंबर का मतलब समझे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, समझ में आ गया।

दादाश्री : तो फिर दूसरे लोग हम से कहते थे कि 'भाई गाँव की लड़कियाँ तो बहन समान हैं। बहन अर्थात् तो उस संबंध के बारे में

बहुत ज़्यादा समझ और आजकल के लड़के तो बहन को पत्नी बना देते हैं, देर ही नहीं लगती। हम चौदह-पंद्रह साल के हुए न, तब तक लड़कियों को देखने पर बहन कहते थे। फिर वह चाहे कोई भी हो, बहुत दूर की हो, फिर भी। भगवान जाने वह कैसा वातावरण था, चाहे जो भी हो।

धन्य है उस भद्र विचार वाली प्रजा को

अब, उन दिनों कलियुग वाली दृष्टि खराब नहीं थी। खराब विचार ही नहीं थे किसी भी प्रकार के, कितना सुंदर! विषय से संबंधित विचार ही नहीं किसी प्रकार का, भोले थे बेचारे, भद्र लोग।

उस समय मैंने ऐसा कभी नहीं सुना कि भादरण गाँव की किसी लड़की के सामने किसी ने खराब दृष्टि डाली हो तो धन्य है न, उस प्रजा को!

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारे छः गाँवों में शुरू से ही रिवाज है कि सब एक बाप की प्रजा हैं?

दादाश्री : हाँ, एक बाप की प्रजा।

प्रश्नकर्ता : अपने गाँव में ऐसा था इसलिए जो कुछ भी खानदानियत रह गई है, वह उसी वजह से हैं। छः गाँव में ऐसा जो बचा है, उसका कारण वही है।

दादाश्री : बिल्कुल भी, कोई किसी भी लड़की का नाम नहीं लेता था।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि शुरू से ही ऐसा रिवाज था कि हमें अपने गाँव में शादी नहीं करनी है क्योंकि एक ही बाप की प्रजा हैं इसलिए गाँव की लड़कियों पर दृष्टि नहीं बिगाड़नी चाहिए।

दादाश्री : शादी करने की तो बात ही कहाँ, सोच भी नहीं सकते थे, दृष्टि ही नहीं डालते थे। सिर्फ बहन ही।

प्रश्नकर्ता : बहन ही, वही विचार थे न, इतना पक्का विचार इसलिए उसका कोई असर ही नहीं होता था न!

दादाश्री : तो फिर नंगे घूमते थे, उसका गुणा और इन्हें बहन की तरह देखते थे, उसका गुणा करें तो यह कैसा कहलाएगा? नंगे घूमते थे उस हिसाब से रस्टिक कहलाते थे, लेकिन बहन की तरह माना, वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो उसका बहुत बड़ा जमा हो गया न, दादा।

दादाश्री : मिलान तो करना पड़ता है न! वर्ना फिर कैसा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : उस समय वाली समझ शक्ति का आधार था।

अत्यंत निर्दोषता भरा ग्राम्य जीवन

प्रश्नकर्ता : इतना निर्दोष ग्राम्य जीवन?

दादाश्री : बड़ौदा शहर भी नहीं देखा था लोगों ने। आजकल के जो संडास हैं न, वैसा संडास देखा होता न, तो मन में कितना मज़ा आ जाता कि 'यह क्या है'। ऐसा कहते। कोई बताए, 'यहाँ पर संडास!' 'नहीं, ऐसा मत कहना, ऐसा नहीं कहते'। देवी-देवता की जगह समझते थे। उस समय ऐसी समझ थी। डेवेलपमेन्ट नहीं था न कुछ भी! गाँव के हाई स्कूल थे। उन दिनों ऐसा कुछ देखा नहीं था न!

कितने ही लोगों ने तो उन दिनों ट्रेन भी नहीं देखी थी। हमारे यहाँ छोटी गाड़ी आई थी, बड़ी गाड़ी नहीं देखी थी। छोटी गाड़ी के इंजन देखे थे।

हमारे गाँव के आसपास जो थे न, तो हम लोगों ने रेलवे का इंजन ही पहली बार देखा था, पंद्रह साल के हुए तब। इंजन ही पहली बार देखा था। यह कितना बड़ा है, कहा था! यह पूरी गाड़ी को ले जाता है, उसे खींच सकता है।

प्रश्नकर्ता : हाथी से भी बड़ा है, ऐसा कहते थे।

दादाश्री : हाथी भी नहीं देखा था न, भाई! जिसने हाथी देखा होता उसे झंझट है न! ऐसी अत्यंत निर्दोषता, कुछ भी देखा ही नहीं था न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, कुछ भी नहीं देखा था।

दादाश्री : क्योंकि ननिहाल था धर्मज, तो गाड़ी में नहीं जाते थे। करमसद में ननिहाल था तो वहाँ पर भी गाड़ी में नहीं जाते थे। अगर नडियाद में होता तो जाते।

ऐसा देखा ही नहीं था न

प्रश्नकर्ता : तो जब गाँव वाले पहली बार शहर देखते होंगे तो आश्चर्य चकित ही रह जाते होंगे न?

दादाश्री : वह तो ऐसा हुआ कि मैं मैट्रिक की परीक्षा देने बड़ौदा गया था। उस समय तब हमारे साथ एक ब्राह्मण था, अंबालाल मूलजी भाई करके।

प्रश्नकर्ता : उसका नाम भी अंबालाल मूलजी भाई?

दादाश्री : हाँ। उसका नंबर हॉल में लगा था। तब फिर उसने मुझसे कहा कि 'आपका नंबर हॉल में है और मेरा उस जगह पर है'। तब मैंने कहा, 'नहीं, हॉल में तेरा है। तू देखकर आ'। तो वह बेचारा समझ गया कि उसका नंबर हॉल में है। इसलिए फिर जब वह हॉल में गया न, तो हॉल में जाने पर उसे क्या लगा? यह हॉल कितना ऊँचा है, वह देखा। फिर जल गुम्बज वगैरह देखे न, तो वहीं पर उसका दिल बैठ गया। ऐसा उसने देखा ही नहीं था बेचारे ने। इतना बड़ा गुम्बज! वह उसकी कल्पना से बाहर था और उसकी एकाध नस खिंच गई, हं।

प्रश्नकर्ता : नस खिंच गई?

दादाश्री : वह बेचारा घनचक्कर जैसा हो गया! बाहर निकलने के बाद उसे घर भेजना पड़ा। और हाँ! उसका दिमाग़ खिसक गया था।

प्रश्नकर्ता : खिसक गया!

दादाश्री : परीक्षा नहीं दे पाया था बेचारा। देखो न, न जाने कहाँ

से वहाँ नंबर लगा। ऐसा तो उसने कुछ देखा ही नहीं था न! दुनिया ही नहीं देखी थी न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञानी अंबालाल, वापस कभी उन अंबालाल से मिले थे, दादा? फिर कभी आप उनसे मिले थे?

दादाश्री : नहीं! लेकिन बाद में उसकी फिर से परीक्षा ली गई थी। उसकी प्राइवेट परीक्षा ली गई और फिर उसका ठीक हो गया।

[1.3]

बचपन से ही उच्च व्यवहारिक सूझ

दिमाग़ चढ़ जाता था 'सात समोलियो' सुनकर

मुझे तो एक दूसरा उपनाम भी दिया गया था। जानते हो, लोग बचपन में मुझे क्या कहते थे? पाटीदारों ने एक नाम रखा था कि "इन सब लड़कों में से यह लड़का '*सात समोलियो*' है।" यह पुराने ज़माने की बात कर रहा हूँ। आजकल इन शब्दों का उपयोग नहीं होता। आपने नहीं सुना है '*सात समोलियो*'?

प्रश्नकर्ता : '*सात समोलियो*' का अर्थ क्या है, दादा?

दादाश्री : हाँ, यानी कि जब बैल को जुताई के लिए ले जाते थे न, तब *समोल* (खूँटी) डालते थे। उसमें दो बैलों के सिर डालने होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : ठीक है, *समोल,* वे जो हल में आते हैं।

दादाश्री : तो मुझे '*सात समोलियो*' कहते थे। तब फिर उन्हीं चाचा जी से मैं पूछने जाता था कि '*सात समोलियो*' का मतलब क्या है? तो उन चाचा जी ने मुझे समझाया कि 'देखो, यह जो बैल होता है न, उसे खेती-बाड़ी के लिए हल में जोतते हैं। तब फिर वह खेती वाली ज़मीन की जुताई करता है, लेकिन यदि कुँवे से पानी खींचना हो तो, खुर पटककर हुंकारता है और शायद दो-चार-पाँच हल भी खींच लेता है लेकिन सातवीं जोत चक्की खींचने की है, वह तो उससे हो ही नहीं पाता। जो बैल ये सभी कार्य कर लेता है उसे '*सात समोलियो*' कहते हैं, तो कोई-कोई बैल ही ऐसा होता है। अत: '*सात समोलियो*' इंसान सभी प्रकार के काम कर सकता है।

'*सात समोलियो*' अर्थात् ऐसा इंसान जो हर चीज़ में एक्सपर्ट हो और 'मैं' अपने आपको समझ गया था कि सही कह रहे हैं ये लोग। इसलिए फिर मेरा दिमाग़ चढ़ जाता था कि 'ओहोहो, अपना रौब बढ़ गया!' तो लोगों ने मुझे (मान का) पानी पिलाया था। मैं मन में खुश होता था कि 'ओहोहो, मुझ में इतनी शक्ति है'। मैं समझता था कि 'मुझ में कुछ है' इस नाम से मेरा रौब पड़ता है, '*सात समोलियो*' कहकर।

शायद ही कोई होता है सात समोलियो

जिसे *समोल* कहते हैं न, वह एक तरह की *समोल* नहीं है। अलग-अलग होती हैं, कुँवे खोदने की अलग, चक्की खींचने की अलग, इस तरह से *सात समोल* हैं बैल के लिए। तो जो *सात समोल* वाला बैल होता है तो लोग उसके पूरे पैसे देते हैं।

यानी जोतने के लिए भी बैल को *समोल* डाली जा सकती है। फिर इस तरह जब रहट से पानी निकालना हो तब भी *समोल* डाल सकते हैं। वह दो *समोलियो* वाला कहलाता है। जुताई कर सकता है और रहट भी खींच सकता है। वह दो *समोल* डाल सकता है। ऐसी सात तरह की *समोल* होती हैं। और फिर सातवीं *समोल* कौन सी? सब से अंतिम, बहुत मुश्किल! आँखों पर पट्टी बाँध देते हैं और फिर घानी में से तेल निकलवाते हैं। तो घानी में तेल पीलने के लिए बैल को लाते हैं न? तो उसे दस्त होते रहते हैं। नहीं कर पाता वह। अगर कोल्हू में जोता जाए न, तो एक चक्कर लगाकर फिर बैठ जाता है मुआ। तब फिर लोग कहते हैं कि 'भाई, यह बैल नहीं चाहिए मुझे'।

अब सभी बैल '*सात समोलियो*' तो नहीं होते। सौ बैलों में से एक दो बैल ही '*सात समोलियो*' होते हैं इसलिए *सात समोलिया* की कीमत ज़्यादा होती है।

सात समोलियो इसीलिए नहीं हो पाई एकाग्रता पढ़ाई में

उस समय में एक ही चीज़ की कीमत थी कि *सात समोलियो* है

या नहीं? कोई पाँच *समोलियो*, कोई चार *समोलियो* लेकिन *समोल* वाले होते थे। ये सभी पढ़े-लिखे लोग तो एक *समोलिया* हैं।

प्रश्नकर्ता : वह ज़रा ज़्यादा समझाइए, दादा।

दादाश्री : ये एक या दो *समोल* वाले ही पास होते हैं, सात *समोल* वाला पास नहीं होता। यह तो, मैं जैसे-तैसे करके पास हो जाता था। मास्टर जी को डरा-धमकाकर, कुछ भी करके।

आपने स्कूल में पढ़ाई की तो वह एक ही लाइन, वन कोर्नर! इतने बड़े राउन्ड में से सिर्फ एक ही पॉइन्ट दिखाई देता है तो उसमें पास हो ही जाता है। मेरे जैसा पास नहीं हो सकता स्कूल में। एकाग्रता नहीं रहती न! '*सात समोलियो*' को सभी तरफ का सोचना होता है तो उनसे पढ़ाई नहीं हो पाती।

प्रश्नकर्ता : उसे इसमें एकाग्रता नहीं आ पाती।

दादाश्री : मैं मैट्रिक में फेल हुआ था न, तो मुझे किस आधार पर संतोष था कि 'भाई, मुझे क्यों नहीं आया?' क्योंकि सात *समोल* हैं, '*सात समोलियो*'। शायद ही कोई इंसान '*सात समोलियो*' होता है, जो सब झेल सके। मेरे साथ कुछ चालीस-पचास साल के लोग खड़े हों न, और मैं बारह साल की उम्र वाला, तब भी कहते थे 'यह लड़का कितना विचक्षण है'। आपकी बात सुनकर मैं समझ सकता था कि आप आमने-सामने क्या कह रहे हो, पढ़ाई नहीं आती थी कुछ भी। पढ़ता ही नहीं था न!

प्रैक्टिकल थे और ध्यान रखते थे हर तरफ का

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसे भी लोग देखे हैं जो पढ़ाई की किताबें पढ़ते हैं, पहले नंबर से पास होते हैं और जब प्रैक्टिकल लाइफ में आते हैं, तब वहाँ पर कुछ भी नहीं होता, खत्म ही हो जाता है सब।

दादाश्री : उनमें नमक भी नहीं होता, ज़रा सा भी नमक नहीं होता, उनमें। '*सात समोलिया*' में ज़्यादा नमक होता है। *सात समोलिया*

तो घर में रहकर पढ़ता है, तब भी अंदर हिसाब लगाता रहता है कि अपनी आमदनी कितनी है? खर्चा कितना है? माँ-बाप पर कितना भार पड़ रहा होगा, ऐसा सारा हिसाब उसके पास रहता है और किताबें शुरू से ही कम लाता है ताकि माँ-बाप पर भार न पड़े। जबकि एक *समोल* वाले में है कोई ऐसी सूझ?

मुझे *सात समोलियो* कहते थे। यह बताना नहीं चाहिए फिर भी मैंने अभी बता दिया। *सात समोलियो* पढ़ाई करता जाता है और ये सारे काम भी करता है। माँ-बाप की सेवा भी करता जाता है। वह सिर्फ एक ही प्रकार का काम नहीं करता, अंदर हर एक प्रकार का ध्यान रखता है। घर में माँ-बाप की स्थिति क्या है, पैसा किस तरह से आता है, कहाँ जा रहा है, कहाँ पर नुकसान हो रहा है, माँ-बाप को क्या परेशानी हो रही होगी, वह सभी उसके ध्यान में रहता है।

जबकि यहाँ (एक *समूल* वाले को) तो माँ-बाप कहते हैं, 'अरे! ज़रा इतना तो सोच, मेरी तबियत नरम है'। तो कहता है, 'मैं स्कूल जाऊँ या आपके बारे में सोचूँ'। और *सात समोलिया* तो इसी सोच में रहता है कि स्कूल से जल्दी घर आकर वापस घुस जाऊँ सेवा में।

और आजकल के लड़के तो ऐसी सेवाएँ ही कहाँ करते हैं? उन्हें बाकी और कुछ नहीं है लेकिन निंदा योग्य नहीं हैं। ये बच्चे अच्छे हैं। इनकी वजह से तो अपना पीढ़ियाँ सुधर जाएँगी। इनकी कोख से अब देवता जन्म लेंगे! भले ही ये कोयले हैं लेकिन अब देवता जन्म लेंगे। मुँह पर उन्हें कोयला मत कहना। ज़रूरत है दो शांत पीढ़ियों की, बिल्कुल शांत।

आज के बच्चे हैं सिर्फ पढ़ाई में, व्यवहारिक सूझ में नहीं

मुझे एक व्यक्ति कह रहा था, 'आपके समय में लोग मैट्रिक पास होते थे और आज के बच्चे तो एकदम से एल.एल.बी बन जाते हैं'।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मैंने कहा, 'हमें नहीं आया, वह अलग चीज़ है और ये बच्चे एल.एल.बी हुए, वह भी अलग चीज़ है'। आज के बच्चों को

क्या है कि उन्हें जो मार्ग बताया, उसी मार्ग पर भागदौड़, आसपास कुछ भी देखना-करना नहीं होता। दो-चार प्रतिशत कुछ ऐसे ब्रिल्यन्ट होते भी हैं लेकिन दूसरा काफी कुछ भाग तो, सामान्य कक्षा के 95 प्रतिशत लोग तो ऐसे ही हैं आसपास नहीं देखते, पढ़ते ही रहते हैं, बस। फिर ऐसा सब नहीं देखते कि माँ-बाप को क्या होता है, उन्हें क्या तकलीफ है। माँ-बाप कैसे कमाते हैं, खाते हैं? ऐसा कुछ नहीं सोचते कि पैसा कहाँ से आता है। वे तो ऐसा समझते हैं कि जैसे नल में से आ रहा है। नल खोलते ही पैसे आ जाएँगे। अतः यह तो अच्छा है कि कुदरती रूप से ऐसे बच्चे पैदा हुए। अब जाकर हिन्दुस्तान का भला होगा।

सिर्फ पढ़ते रहने की ही नीयत। '*वेदियो*', अपने यहाँ '*वेदियो*' शब्द कहते हैं न, अंदर?

प्रश्नकर्ता : हाँ-हाँ! बुकवॉर्म। किताबी कीड़ा।

दादाश्री : नहीं! बुकवॉर्म अलग है और *वेदिया* अलग। *वेदिया* अर्थात् क्या? जिस एक काम को पकड़ा, तो उसी में रहता है और बुकवॉर्म का मतलब बुक में ही रहता है। अरे, यह *वेदियो* तो सभी में *वेदियो* होता है जबकि जगत् क्या माँगता है? *सात समोलियो* माँगता है, *वेदिया* नहीं। एवरी डाइरेक्शन वाला (सभी दिशाओं वाला) माँगते हैं। सभी डाइरेक्शन में जागृति की ज़रूरत है तो पुराने ज़माने के लोगों को पढ़ना नहीं आता था। आपके-मेरे समय में पढ़ाई करना नहीं आता था, बहुत कम लोग पास होते थे और आज चाहे किसी के भी बच्चे हों, चाहे किसी भी जाति के बच्चे ग्रेज्युएट बन जाते हैं, डॉक्टर बन जाते हैं। फिर मुझे एक व्यक्ति ने पूछा था, 'क्या ये बच्चे होशियार हैं? यह ज़माना कैसा है!' तब मैंने कहा, 'क्या तू ऐसा कह रहा है कि पहले बेवकूफ थे? और उनमें से हम भी हैं? आज के बच्चे होशियार हैं? हम नापास हो गए तो क्या हम बेवकूफ हैं?' आजकल के बच्चों को कोई भान ही नहीं है। एक ही चीज़ है कि 'पढ़ना है, पढ़ना है और बस पढ़ना है'। व्यवहारिक ज्ञान तो समझा ही नहीं है। वे सिर्फ पढ़ते ही हैं, व्यवहारिक सूझ नहीं है उनमें और अपने समय में तो व्यवहारिक सूझ और पढ़ाई दोनों साथ में चल रहा था। व्यवहारिक सूझ की ज़्यादा कीमत थी बल्कि!

और अभी तो पढ़ाई, वह भी सिर्फ एक ही लाइन में फिर तो वह आ ही जाएगा न! और क्या करना है उसमें?

चार साल की उम्र तक का सबकुछ याद

प्रश्नकर्ता : अपने बचपन की ऐसी कोई दूसरी बात बताइए न!

दादाश्री : चार साल की उम्र में मैं खो गया था बोरसद में। तो अभी भी मुझे याद है कि उस स्थिति में मुझे कैसा लगा था और कैसा नहीं!

हमारे बड़े भाई मणि भाई मुझे घोड़े पर आगे बैठाकर मुझे बोरसद ले गए थे। वहाँ पर एक जान-पहचान वाले दुकानदार के यहाँ मुझे बैठा दिया और फिर मणि भाई अपने काम के लिए निकल गए। दुकानदार के यहाँ कितनी देर तक अच्छा लगता? एक-दो गोलियाँ दीं, जब तक वे चलीं तब तक अच्छा लगा, फिर तो मैं बाहर निकल पड़ा, खेलने। दुकानदार ने जो गोलियाँ दी थीं वे अभी भी मुझे दिखाई देती हैं कि वे गोलियाँ कैसी थीं!

बहुत देर बाद भी जब मणि भाई को नहीं देखा, कोई जान-पहचान वाला नहीं दिखाई दिया, तब मैं रोने लगा। तब फिर लोग इकट्ठे हो गए और फिर पुलिस वाले मुझे पुलिस गेट पर ले गए। फिर वहाँ से लोगों को खबर पहुँचाई कि किसी का बच्चा खो गया है। तो ऐसे करते-करते हमारे बड़े भाई मुझे वापस लेने आए। वह सब अभी भी याद है, चार साल की उम्र थी तब।

मोही जीव तो भूल जाता है

प्रश्नकर्ता : दादा इतना पुराना! चार साल के थे तब का आपको सबकुछ याद है!

दादाश्री : ज्ञान से पहले, जब मैं पाँच साल का था, तब तक का मैं आपको याददाश्त के बल पर बता सकता हूँ कि एक दिन ऐसा हुआ था और एक दिन ऐसा हुआ था लेकिन फिर उसके बाद हम वीतराग

हो गए। अतः अब सबकुछ भूल गए। अभी भी यदि अंदर उपयोग रखें तो दिखाई देगा कि पाँच साल की उम्र में ऐसा हुआ था।

प्रश्नकर्ता : हमारे जैसे लोगों में तो उपयोग नहीं रहता लेकिन आपको तो बहुत अच्छा दिखाई देता है, साफ-साफ दिखाई देता है!

दादाश्री : सभी को याद नहीं रहता यह सब, क्योंकि मोही जीव हैं न! रोने के समय पर रोते हैं और फिर हँसने के टाइम पर हँसते भी हैं। अरे! क्या हुआ? अभी तीन घंटे पहले तो रो रहा था और वापस अभी हँस रहा है? पुराना भूल जाता है फिर, वापस यह नया हँसना, इसे साहजिक कहते हैं।

मज़ाक को मान लिया सच

प्रश्नकर्ता : इस तरह खोए जाने की बात तो पहली बार ही जानी। ऐसी कोई अन्य घटना हुई हो तो बताइए।

दादाश्री : यह भाई है न, उनके पिता जी शादी करने नडियाद गए थे। वह रथ था या बैल गाड़ी थी, तो ठेठ नडियाद तक। मुझे उसमें बैठा दिया। बाकी सब लोग मुझसे बारह-तेरह साल बड़े होंगे तो फिर रास्ते में उन्होंने ऐसा कहा कि 'यह हमारा भाई है अंबालाल, इसने एक लड़की से शादी कर रखी है,' इस तरह चिढ़ाया और मज़ाक की। मैं तो चुपचाप वहाँ से उठकर चला गया। अरे! ये शादी करवा देंगे तो? तो क्या होगा? मुझे अभी भी याद है, उन दिनों नौ-दस साल का था। जाते समय, यदि मेरी शादी करवा देंगे तो क्या होगा? ये लोग बीच में ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं?

प्रश्नकर्ता : उन दिनों तो शादी तय कर देते थे, दादा।

दादाश्री : हाँ! कि इस गाँव में किस-किस की लड़कियाँ हैं, नडियाद में, वे रास्ते में ही रिश्ता पक्का कर लेते थे। मज़ाक में हँसे थे लेकिन मुझे वह सच लगा। अगर ये लोग मेरी शादी करावा देंगे तो क्या होगा? इसलिए फिर वहाँ से उठकर चला गया, दूसरी बैल गाड़ी में।

[1.4]
खेल कूद

सभी लोगों जैसे ही निर्दोष खेल कूद और मस्ती

प्रश्नकर्ता : दादा आपके उन शंकर भाई ने हमें तरसाली में वह रूम दिखाया था, जहाँ आपका जन्म हुआ था, तब वे बता रहे थे कि दादा जब छोटे थे, तब यह चारदीवारी कूदकर चले जाते थे।

दादाश्री : वह तो बच्चों के साथ मस्ती करते थे।

प्रश्नकर्ता : उन्होंने ऐसा बताया था कि वह जो तालाब है न, वहाँ पर जब भैंसें नहाती थीं न, तो भैंसें जब तालाब में बैठी होती थीं न, तैर रही होती थीं न, तो दादा उन पर बैठ जाते थे, भैंस पर बैठकर खेलते थे और इस तरह तालाब में तैरते थे।

दादाश्री : ऐसा लगता था जैसे हाथी पर बैठे हों! गाँव में सभी बच्चे ऐसा करते थे न...

प्रश्नकर्ता : हमारे जैसा ही करते थे गाँव में?

दादाश्री : वैसा ही, वैसा ही।

एक बार तो जब मैं दस-ग्यारह साल का था, उस समय मामा ने कहा कि 'भाई, तू थक जाएगा' तो मुझे भैंस पर बैठा दिया और मेरे पैर पकड़कर साथ-साथ चले।

वे खुद भाँजे थे इसलिए मानते थे देवता जैसा

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या आप कभी भैंस लेकर तालाब पर जाते थे?

दादाश्री : नहीं! मैं नहीं गया था। इस तरह तो कभी-कभी ही जाना होता था, रोज़ नहीं जाना होता था। भाँजा था न! भाँजे की इज़्ज़त करते थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, भाँजे-भाँजियों को बहुत संभालते हैं।

दादाश्री : हम वहाँ देवता जैसे माने जाते थे। वहाँ गाँव में तो सभी हमें देवता मानते थे। भाँजों-वाँजों सभी को देवता मानते थे। बड़ा-बड़ा दहेज दिया हुआ होता था इसलिए उन्हें तो देव मानते थे, इसलिए हम ऐसा हल्का कार्य नहीं कर सकते थे। उन्हें छू भी नहीं सकते थे और वे छूने भी नहीं देते।

इतना छोटा सा था फिर भी बड़े लोग भाँजे जी, भाँजे जी की तरह रखते थे। अपमान तो मैंने ज़िंदगी में कभी देखा ही नहीं था, किसी भी जगह पर। हमारे गाँव में भी नहीं देखा था और बाहर भी नहीं देखा था।

मकर संक्रांति वास्तव में सूर्य को देखने के लिए

प्रश्नकर्ता : सभी छोटे बच्चे जिस तरह के खेल खेलते हैं, आप भी वैसे ही खेल खेलते थे?

दादाश्री : बचपन में एक दोस्त आया था। उसने पतंग उड़ाई और मैंने पूछा कि 'इससे क्या फायदा होता है? उड़ाने में क्या फायदा है?' उसने कहा 'इसमें तो बहुत मज़ा आता है'। तब मैंने कहा, 'अरे, लेकिन उसमें तो फिर हाथ ऐसे-ऐसे करना पड़ता है न!' तब मैं उसे देखता रहा फिर, 'नीचे ठोकर लग रही है या नहीं, वह नहीं देखते थे और बस भाग-दौड़ करते रहते थे'। मैंने कहा, 'यह व्यापार मुझे नहीं पुसाएगा। मुझे अघटित व्यापार की ज़रूरत नहीं है, तू कर भाई'।

जब मैं छोटा था तब लोग पतंग उड़ाते थे और मैं दोस्तों के साथ बैठकर देखता था। तब दोस्त कहते थे कि 'तीन साल हो गए कभी तुम पतंग और डोरी लाए क्या?' तब मैंने कहा, 'मेरे पास पैसे हैं, तुझे ज़रूरत हो तो ला देता हूँ। यों ऊपर देखते रहना और ठुमके लगाना मेरा काम नहीं है'।

अत: मैं कभी भी अपनी ज़िंदगी में पतंग खरीदकर नहीं लाया। ये लोग जब डोरी पकड़ते हैं, तब हाथ कट जाते हैं तो कहते हैं, 'देखो मेरे हाथ कैसे हो गए हैं!' 'तो मैं क्या करूँ? तुम उड़ाते हो और मैं देखता हूँ'। कीमत तो देखने की है! उड़ाने वाले तो, जो मूर्ख लोग होते हैं, वे उड़ाते हैं। उनमें समझ नहीं होने की वजह से ऐसा सब चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आया कि 'देखने की कीमत है', वह किस प्रकार से?

दादाश्री : पतंग को देखते हैं न, तो हमारी आँखों से सूर्यनारायण भी कुछ-कुछ दिखाई देते हैं। उससे बहुत उत्तम फल मिलता है, इस मकर संक्रांति के टाइम पर। यह सूर्य को देखने के लिए ही है, यह पतंग उड़ाने के लिए नहीं है। उड़ाना हो तो चाहे कैसे भी बाँध दो और अगर शक्ति होगी तो वह ऊपर जाती रहेगी अपने आप ही, डोरी खुलती रहेगी। लोग मदहोशी में उसे उड़ाने जाते हैं बेचारे! होश ही नहीं है न कुछ!

चले हैं बचपन से ही लोक प्रवाह के विरुद्ध

मैं तो बचपन से ही कहता था, 'किस तरह के लोग हैं, ये बच्चे?' पतंग उड़ाने का क्या मतलब है? लोगों को देखकर सार निकालते हैं कि मुझे इसमें खुशी मिली। लोगों ने जो बताया, उस पर से खुद ने सुख मान लिया।

यह तो लोक प्रवाह है, उसमें यह साइकोलॉजिकल इफेक्ट, कैसी उड़ी... कैसी उड़ी... कैसी उड़ी... कैसी उड़ी! अरे भाई, इसमें तेरा क्या है? दो-चार आने की जलेबी लाकर खाई होती तो अच्छा था, पेट में तो जाता, ये तो यों ही हवा में उड़ती हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, एक दिन के लिए तो बाकी सारी परेशानियाँ भूल जाते हैं न!

दादाश्री : हाँ, लेकिन परेशानी भूलने के दूसरे रास्ते भी हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन जिनके पास दूसरे रास्ते नहीं हों, उनके लिए तो यह एक अच्छा एस्केप (बचाव) है न!

दादाश्री : नहीं, उसमें भी हर्ज नहीं हैं लेकिन लोग जो देखा-देखी करते हैं, उससे मुझे आपत्ति है।

राजा की तरह पटाखे फूटते हुए दखते थे, खुद नहीं फोड़ते थे

प्रश्नकर्ता : फिर, पटाखे का भी ऐसा ही था न! आप पटाखे नहीं फोड़ते थे न?

दादाश्री : हाँ, मैं जब छोटा था तब मैंने आतिशबाजी नहीं की। क्या राजा कभी पटाखे फोड़ते हैं? पटाखे तो मज़दूर फोड़ते हैं और राजा देखते हैं। किसी राजा ने पटाखे नहीं फोड़े हैं। सभी राजा कुर्सी पर बैठकर देखते रहते हैं और नौकर फोड़ते हैं पटाखे। तुझे इसमें क्या न्याय लगता है? तू राजा हो तो तू खुद फोड़ेगा या देखेगा?

प्रश्नकर्ता : अगर राजा होऊँगा तो देखूँगा ही न!

दादाश्री : अरे! तुझ में और राजाओं में क्या फर्क है? ये यहाँ के गायकवाड़ (राजा को) देखो तो वही वेश है। क्या फर्क है? उनके पास गाँव नहीं हैं और तेरे पास भी गाँव नहीं है। अब तो सभी राजा ही हैं न! तो क्या तू शरीर से प्रजा है? बड़ौदा में सब तरफ पटाखे फोड़ने वाले हैं तो तुम? कुर्सी डालकर बैठो और देखो न!

मुझे टैली करने (तालमेल बैठाने) की आदत है न! अत: मैं देख लेता हूँ कि इन पटाखों से, पतंग से क्या लाभ है। पतंग उड़ाने जाना सिर्फ एक प्रकार की कसरत है। बाकी, हमें तो लाभ से काम है, ऐसी ज़रूरत नहीं है। वह भी अभानता में छत पर घूमते रहते हैं। एक लड़का तो पूरा छप्पर लेकर नीचे आ गिरा!

खेला है निर्दोष होली का खेल भाभी के संग

प्रश्नकर्ता : आपने होली खेली थी?

दादाश्री : हाँ, बचपन में हमारी भाभी के साथ होली खेली थी। तब वे ग्यारह साल की थीं और मैं दस साल का।

प्रश्नकर्ता : आपकी भाभी? तब का रंग अभी भी नहीं जा रहा है।

दादाश्री : होली खेल रहे थे हम, तो होली का रंग लगाया। देखो न, अभी भी नहीं जा रहा है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसा रंग लगाया उन्होंने, आपकी भाभी ने?

दादाश्री : वह गोबर वगैरह डालकर चुपड़ा, और कुछ चुपड़ा और फिर रंग चुपड़ा। मुँह पर चुपड़कर खेले थे। हमारी भाभी से कहते हैं तो वे अभी भी याद करती हैं। इतना सारा गुलाल तो कहाँ से आता, थोड़ा-बहुत होता था। बाकी, गोबर तो था ही न, वर्ना जो पानी की नालियाँ होती थीं न, उनमें से चुपड़ते थे।

प्रश्नकर्ता : होली खेलने का, प्रेम का रंग था भाभी का कि मेरे देवर को अच्छी तरह रंगूँ?

दादाश्री : इसलिए वे होली खेलती थीं, तब तो *भाव* (भावुकता वाला प्रेम) भी बहुत था हम पर, और कभी कभार उल्टा भी बोल लेती थीं।

प्रश्नकर्ता : आपके प्रति बहुत *भाव* था?

दादाश्री : हाँ! और फिर उल्टा भी उतना ही था, और फिर ऐसा भी कहती थीं कि 'मेरे देवर तो जैसे लक्ष्मण जी देख लो'। तो खेले थे, कीचड़ चुपड़ा तब भी लोग क्या कहते थे? 'अरे, होली खेल रहे हैं, देखो तो सही!' खेल रहे हैं, शब्द का उपयोग करते थे। कौन सा?

प्रश्नकर्ता : खेल रहे हैं।

दादाश्री : तो ऐसा है यह हिन्दुस्तान! कितनी अच्छी पज़ल है! कीचड़ चुपड़े तब भी कहते थे, 'होली खेल रहे हैं!' और गोबर चुपड़े तब भी कहते थे, 'होली खेल रहे हैं!' यह कैसी खोज की है! और निर्दोष ग्राम्य जीवन! राग-द्वेष भूल जाते थे बेचारे और शाम को वापस नरम-नरम सेव खाते थे। उसमें शुद्ध घी और गुड़ होता था।

[2]

विद्यार्थी जीवन

[2.1]

पढ़ाई करनी थी भगवान खोजने के लिए

'पढ़कर ही आए हैं' ऐसा सुनते ही मैट्रिक पर ही रुक गए

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी पढ़ाई कहाँ हुई? स्कूल कौन सा था?

दादाश्री : अठारह साल तक भादरण में पढ़ाई की।

प्रश्नकर्ता : कब से स्कूल में जाना शुरू किया था?

दादाश्री : स्कूल में तो, सात साल के थे, तब गए थे और गुजराती चौथी कक्षा तक गुजराती में पढ़ाई की और फिर अंग्रेजी माध्यम में चले गए। वहाँ मैट्रिक तक।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने आगे पढ़ाई क्यों नहीं की?

दादाश्री : मरीची का जैसा सुना था और उसमें जैसा हुआ था, वैसी ही घटना हमारे जीवन में भी हुई। मैंने आगे पढ़ाई क्यों नहीं की? जब मैं छोटा था तब अंग्रेजी सीखने के लिए पुस्तक पढ़ता था, तब हमारे बड़े भाई मणि भाई आए और मुझे पढ़ते हुए देखकर कहा कि 'देख ऐसे पढ़' और सिखाना शुरू कर दिया! तो मेरे पिता जी ने यह देखा और उन्होंने कहा कि 'अरे! तू कहाँ पढ़ाने बैठा है! यह तो पढ़कर ही आया है!' तो मैंने जब यह सुना कि मैं पढ़कर ही आया हूँ, तो फिर मेरा पढ़ाई करना रुक गया।

रौब जमाने के लिए घंटी बजने के बाद स्कूल जाते थे

प्रश्नकर्ता : आपके स्कूल जीवन की बात बताइए न!

दादाश्री : स्कूल में हम घंटी बजने के बाद ही जाते थे, वह सब हमें दिखाई देता है। मास्टर जी रोज़ चिढ़ते रहते थे। हम से कह नहीं पाते थे और चिढ़ते थे।

प्रश्नकर्ता : घंटी बजने के बाद ही जाते थे?

दादाश्री : हाँ, स्कूल में घंटी बजने की आवाज़ सुनने के बाद ही घर से निकलता था और हमेशा मास्टर जी की फटकार सुनता था! अब मास्टर जी को क्या पता चले कि मेरी प्रकृति क्या है? हर एक का 'पिस्टन' अलग-अलग होता है। बचपन से ही मेरी प्रकृति ऐसी थी कि ऑल्वेज़ लेट। हर एक काम में हमेशा 'लेट' था, कोई भी जल्दबाज़ी की ही नहीं। घंटी बजने के बाद ही घर से निकलता था, ऐसी प्रकृति।

प्रश्नकर्ता : आप घंटी बजने के बाद ही क्यों जाते थे?

दादाश्री : ऐसा रौब था! मन में ऐसी *खुमारी* (गौरव, गर्व, गुरूर) थी! लेकिन तब सीधे नहीं हुए तभी यह दशा है न! सीधा इंसान तो घंटी बजने से पहले ही जाकर बैठ जाता है।

प्रश्नकर्ता : रौब मारना उल्टा रास्ता कहलाता है?

दादाश्री : यह तो उल्टा रास्ता ही है न! भाई साहब घंटी बजने के बाद जाते थे और मास्टर जी उससे पहले ही आ चुके होते थे! मास्टर जी देर से आएँ तो चल सकता है लेकिन बच्चों को तो नियम से, घंटी बजने से पहले ही आ जाना चाहिए न! लेकिन यह *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन), 'टीचर, अपने मन में क्या समझते हैं' ऐसा कहते थे। लो! 'अरे, तुझे पढ़ने जाना है या *बाखड़ी बाँधनी* (लड़ने के लिए तैयार रहना) है?' तब कहता था, 'नहीं, पहले *बाखड़ी बाँधनी* है'। उसे *बाखड़ी बाँधना* कहते हैं। आपने *बाखड़ी* शब्द सुना है? हाँ! तो ठीक है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या मास्टर जी आपसे कुछ भी नहीं कह सकते थे?

दादाश्री : कहते तो थे, लेकिन वे ऐसा नहीं कह पाते थे। वे घबराते थे कि बाहर निकलकर पत्थर मारेगा, सिर फोड़ देगा। मैं तो तेरह साल की उम्र में भी मास्टर जी को डराता था।

स्कूल में मास्टर जी भी डरते थे मुझसे

प्रश्नकर्ता : दादा, आप इतने शरारती थे?

दादाश्री : हाँ, शरारती तो थे। माल ही पूरा शरारती, आड़ा माल। स्कूल में मास्टर जी-वास्टर तो मुझे अच्छे ही नहीं लगते थे। इन मास्टर जी के साथ तो बड़ी मुश्किल से निभाना पड़ता था। मास्टर जी के पास पढ़ने जाना पड़ता था न, वह तो बड़ी मुश्किल से निभा लेता था। क्योंकि घर से फुटबॉल को एक लगाते थे कि 'जाओ स्कूल' और स्कूल में मास्टर जी फुटबॉल को लगाते कि 'अब घर जाओ', तो फुटबॉल जैसी दशा हो जाती थी!

स्कूल के मास्टर जी को तो मैं कुछ मानता ही नहीं था न! यों आता भी नहीं था और कुछ मानते भी नहीं थे। मास्टर जी मेरी बहुत बुराई करते थे और मैं उनकी, यही काम था, क्योंकि मुझे परवशता अच्छी नहीं लगती थी।

मैं स्कूल जाने में इतनी गड़बड़ करता था कि मास्टर जी ढूँढते रह जाते थे। क्लास में मेरी हाज़िरी नहीं होती थी। देर से जाता था तो मास्टर जी मुझसे डरते थे इसलिए सब से पीछे बैठाते थे। मुझे तो पीछे ही बैठना था वर्ना क्या मैं पास हो जाता? मैं तो, जो बच्चे फेल होते थे, उनमें से सब से आखिरी नंबर पर फेल होता था।

प्रश्नकर्ता : क्लास में आप हाज़िर क्यों नहीं रहते थे, दादा?

दादाश्री : जो अच्छे शिक्षक होते थे न, उनके पिरियड में मैं पूरा ध्यान देता था और बाकी में मैं ध्यान नहीं देता था। मैं उनसे ऐसा व्यवहार करता था, जैसे उन्हें अंटी में बाँध रखा हो। फिर कुल मिलाकर क्या हुआ कि मैं फेल हो गया। अंत में मैंने ऐसा सार निकाला कि सभी को पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए।

यदि हम कॉलेज (स्कूल) में बैठे हैं, कॉलेज में (स्कूल में) हमें कुछ प्राप्ति करनी है तो सभी पिरियड में अटेन्शन देना चाहिए। उसके बावजूद भी अगर किसी कारण से, कुदरती कारण से न आ पाएँ तो वह डिफरन्ट मेटर (अलग चीज़) है। हमें जान-बूझकर ऐसा नहीं करना चाहिए।

जहाँ बाकी सब फेल, वहाँ दादा पास

प्रश्नकर्ता : दादा, लंदन में आपके एक दोस्त मिले थे न, आप दोनों एक ही बेन्च पर बैठते थे, वे हरिहर भाई?

दादाश्री : हाँ, हरिहर प्रभुदास। वहाँ पर मैंने उन्हें बुलवाया तब उन्होंने महात्माओं से कहा, 'ये दादा मेरे दोस्त हैं, हम एक ही बेन्च पर बैठते थे, ये मेरे जिगरी दोस्त हैं'। अरे! अठहत्तर साल की उम्र में ऐसा मत कहना! जिगरी दोस्त। अठहत्तर साल के हो गए फिर कैसे जिगरी? लेकिन उन दिनों थे जिगरी।

प्रश्नकर्ता : फिर उन्होंने एक पोल खोल दी कि 'मैं एक साल पीछे था लेकिन आप फेल हो गए तो हम दोनों साथ में आ गए'।

दादाश्री : हाँ, फेल हुए इसलिए साथ में आ गए।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप वहाँ (स्कूल में) फेल हो गए, बाकी सब यहाँ संसार में फेल होकर बैठे हैं।

कॉमनसेन्स हर तरफ का, लेकिन पढ़ाई में नहीं

दादाश्री : स्कूल में कुछ नहीं आता था, उसका क्या कारण है? सब तरफ का कॉमनसेन्स था। अत: जिसे सब तरफ का कॉमनसेन्स हो न, उसे सिर्फ एक ही तरफ का नहीं आता, कोई एक लाइन पूरी नहीं कर सकता।

अत: मैं समझ गया था कि यह पढ़ाई मुझसे पूरी नहीं हो पाएगी, यह तो पढ़ाकू लोगों का काम है और उसके फलस्वरूप, ये लोग नौकरी ढूँढेंगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और मुझे नौकरी नहीं चाहिए थी। मुझे यह सारी परवशता अच्छी नहीं लगती थी। तो चारों तरफ का कॉमनसेन्स, ऑल राउन्ड। कैसे निबेड़ा आता? बाकी सब हो पाता था, वह आता था इसलिए पढ़ाई नहीं हो पाती थी न! वह नहीं आया इसीलिए मैट्रिक में फेल हो गया न!

प्रश्नकर्ता : दादा, वह जो कॉमनसेन्स है, वह किस तरह से आता है? वह जिसे सूझ कहते हैं, वह किस तरह से आती है?

दादाश्री : वह सब पूर्व जन्मों का है, पूर्व जन्म का सारा सामान लेकर आए थे। वह शक्ति बहुत ही अच्छी थी, काम ही *निकाल* दे। ऐसी शक्ति बहुत कम लोगों में होती है।

प्रश्नकर्ता : फिर अंत में क्या हुआ, दादा? पास हुए या नहीं?

दादाश्री : फिर जैसे-तैसे करके फोर्थ में आया। तब मैंने सब रट लिया था, जुबानी कर लिया था इसलिए पास हो गया। पूरे गाँव में हल्ला मच गया था। अरे! यह आखिरी नंबर पर फेल होने वाला पास हो गया!

मास्टर जी के डाँटने पर कहा कि 'मैं तो फँस गया हूँ'

प्रश्नकर्ता : दादा, कोई मास्टर जी आपको डाँटते थे?

दादाश्री : जब मैं छठी कक्षा में अंग्रेजी पढ़ता था, तब सोमा भाई करके एक मास्टर जी थे, ग्रेज्युएट प्रोफेसर, वे मेरे ब्रदर के फ्रेन्ड थे। एक बार सोमा भाई मास्टर जी मुझे डाँटने लगे और कहा कि 'तेरे इतने साल पानी में गए! तुझे सात साल हो गए फिर भी अंग्रेजी बोलना नहीं आता। अंबालाल तू मौज-मस्ती करता है, इस तरह घूमता रहता है और ठीक से पढ़ता नहीं है। इस तरह तू अपनी ज़िंदगी खराब कर रहा है। मुझे तेरे बड़े भाई मणि भाई से डाँट पड़ेगी'।

उन्होंने कहा, 'तू अच्छी तरह से नहीं पढ़ता है और खेल कूद पर ज़्यादा ध्यान देता है। तेरे भाई मेरे फ्रेन्ड हैं इसलिए मुझे उन्हें बताना

पड़ेगा। मुझे अपने दोस्त को चिट्ठी लिखनी पड़ेगी कि तू पढ़ता नहीं है। ठीक से पढ़ता नहीं है और टाइम बिगाड़ रहा है'। तब मैं कहता था कि 'मेरे भाई कॉन्ट्रैक्ट के काम में पड़े हैं, वे कहाँ फालतू बैठे हैं?' तब उन्होंने कहा, 'तेरे पिता मूलजी भाई को बता दूँगा कि तू बहुत शरारत करता है'। मैंने कहा, 'देखो, मेरी हकीकत सुन लो। फिर जो कहना हो वह कहना, मुझे हर्ज नहीं है। अकेले में बता दूँ साहब? अभी यहाँ पर कोई नहीं है इसलिए सही बात बता देता हूँ। मेरी मूँछे-वूँछे नहीं हैं इसलिए अभी तक तो मैं बच्चा हूँ लेकिन मैं फँस गया हूँ'। 'अरे, पढ़ाई करने में कैसे फँस गया तू? बड़े भाई कॉन्ट्रैक्टर हैं, पैसे हैं, सबकुछ है और अच्छे घर का है न!' लेकिन 'फँस गया हूँ' ऐसा कहा। मैंने साफ-साफ कह दिया कि 'आपको जो करना हो वह कर लीजिए, अब मुझे यह कुछ भी नहीं सीखना है। मुझे नहीं पढ़ना है। मैं थक गया हूँ'।

इतने साल की पढ़ाई के बाद प्राप्ति क्या?

मैंने कहा, 'पढ़ाई में ध्यान रखते हुए मैं पंद्रह साल का हो गया। सिक्स्थ में आ गया हूँ तो पंद्रह साल तो मेरे पढ़ाई में गए। पंद्रह साल हो गए हाइस्कूल में A-B-C-D सीखने में, बहुत हुआ तो यह इतना सब एक भाषा सिखा देगा। और साइन्स में कौन से प्रयोग सिखाए? यह पानी गरम करो और यह गरम करो और ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा सब सिखाया हमें स्कूल में'।

पंद्रह सालों से मैं यह सिर फोड़ी कर रहा हूँ। पंद्रह-सोलह साल (उम्र) का हो गया हूँ मैं, उसमें छ:-सात साल तक तो मैं घर से नहीं निकला। दस साल से मैं आपके पीछे पड़ा हूँ इस पढ़ाई के लिए, तो इन दस सालों में तो मैंने भगवान ढूँढ लिए होते जबकि यहाँ पर मुझे कुछ भी नहीं आता। इसलिए अगर आप मेरे पीछे पड़ोगे तो मज़ा नहीं आएगा, ऐसा कहा। आपको जो कहना हो वह कह देना। मैं आपके यहाँ फँस गया हूँ। पंद्रह सालों से यह पढ़ाई कर रहा हूँ लेकिन अभी तक मैट्रिक नहीं कर पाया। पहली कक्षा में बैठा तभी से, पंद्रह साल (उम्र) में अभी तक मैट्रिक नहीं कर पाया।

इतने सालों में तो भगवान ढूँढ निकालता

मास्टर जी से कहा था, 'मास्टर जी, ये पंद्रह साल इस एक भाषा को सीखने में निकाले लेकिन यदि इतनी ही महेनत भगवान ढूँढने में की होती तो ज़रूर भगवान प्राप्त करके बैठ चुका होता! इसमें तो बल्कि मेरा समय बिगड़ा है। समय इस तरह से बिगाड़ने के लिए नहीं है। मैं तो जागृत इंसान हूँ, ऐसा कहा। मैंने बेकार ही इतने साल खोए'।

तब उन्होंने कहा कि 'तुझे यदि भगवान ढूँढने हैं तो फिर तुझसे पढ़ाई नहीं होगी'। मैंने कहा, 'नहीं होती है लेकिन अब क्या करूँ ? आप ही रास्ता बताइए'। तो साहब भी हक्का-बक्का रह गए, चुप ही हो गए। इसे तो कुछ कहने जैसा ही नहीं है। यह लड़का तो उद्धत है, इसका तो नाम ही मत लो। उन दिनों उद्धता दिखाई देती थी न! अभी कोई उसे मेरी उद्धताई नहीं कहेगा लेकिन तब तो उद्धताई ही कहते न! और कुछ भी करना नहीं आता था, समझ नहीं थी तो उसे उद्धत ही कहेंगे न! अरे, स्टंट कहते थे, स्टंट।

दो साल में जो भाषा सीख जाएँ, मत बिगाड़ो उसके लिए दस साल

यह भाषा सीखना, वह तो अगर दो साल इंग्लैन्ड में छोड़ आएँ न, तो सीख जाएँगे। बिना बात के रटाते रहते हो, A-B-C-D-E-F-G ! अपनी जो यह सब शिक्षा व्यवस्था है न, वह वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी (समय और शक्ति का अपव्यय) है। अंग्रेजों के समय से हैं यह। अपने यहाँ तो, अपने बच्चे इतने होशियार हैं कि फर्स्ट-सेकन्ड और थर्ड स्टैन्डर्ड एक साथ पास कर लें! सब ऐसे नहीं होते लेकिन जितने होशियार हैं, उन्हें तो जाने दो आगे। उनका भी रास्ता रोका हुआ है, बारह महीने से कम नहीं। होशियार यानी कैसे होशियार! मैंने देखे हैं ब्रिलियन्ट बच्चे! अभी भले ही अनाड़ीपन दिखाई देता हो लेकिन आखिर में ब्लड तो आर्यों का है। अत: यों बहुत होशियार हैं लेकिन यह भाषा किसलिए रटाते, रटाते और रटाते ही रहते हैं? इसका कब अंत आएगा?

यह क्या है भला! पंद्रह साल तक किताबें ही गाते रहो! GO (जी-ओ) टू गो, GO (जी-ओ) टू गो। अरे! छोड़ न यहीं पर! अगर कोई लाइन हो तो अलग बात है लेकिन मैट्रिक तक तो सिर्फ भाषा ही सिखाते हैं। बेकार ही A-B-C-D सिखाते हैं। वह भी किसी और की भाषा। क्या इस फॉरेन की भाषा को सीखने के लिए मैट्रिक तक पढ़ना चाहिए? किस तरह का घनचक्करपन है यह! यहाँ पर फॉरेन की भाषा सीखने में इंसान की आधी उम्र बीत जाती है, इसके बजाय फॉरेन में जाकर दो तीन साल रह आए तो सब आ जाएगा। बेकार ही यहाँ पर महेनत करके दिमाग़ खराब करना।

इसका क्या करना है, क्या करना है भाषा-वाषा का? फिर वापस अगले जन्म में इसे भूल जाएँगे, फिर मराठी सीखनी होगी। फिर उसके बाद वाले जन्म में उसे भी भूल जाएँगे, फिर हिंदी सीखनी होगी। फिर उर्दू सीखनी होगी। इसका क्या करना है? जिसे भूल जाना है, उसे क्या सीखना?

वह भी अगर पिछले जन्म का सीखा हुआ होगा वही सीख पाएँगे। बिना सीखा हुआ तो कभी भी नहीं आ पाएगा। जो सीखा है, उस पर आवरण के रूप में एक परत आ जाती है, दो परतें आ जाती हैं। जितने जन्म जानवर में गया होगा न, उतनी परतें आ जाती हैं। जानवर योनि में नहीं गए हों तो एक परत होती है तब पढ़ाई में फर्स्ट नंबर पर आता है।

वही का वही अज्ञान पढ़ता है और वापस आवृत हो जाता है

एक ही चीज़ को लाखों जन्मों तक पढ़ते रहे हैं। अनंत जन्मों से यही पढ़ रहे हैं और फिर आवृत हो जाता है। अज्ञान को पढ़ना नहीं होता। अज्ञान तो सहज भाव से आ जाता है, ज्ञान को पढ़ना पड़ता है। मेरे आवरण कम हैं इसलिए तेरह साल की उम्र में भान हो गया। मुझे बचपन से ही ऐसे ही विचार आते रहते थे कि रोज़ वही की वही चीज़ें, उससे बोर हो जाते थे। इसीलिए पढ़ना नहीं आता था न! पढ़ाई में कुछ नहीं आता था उसका कारण यही था। ऐसे ही विचार आते रहते थे।

हमारी पढ़ाई चित्त की गैरहाज़िरी में होती थी इसलिए फेल हो जाता था और बेवकूफ कहलाया।

जब बड़े भाई आते न, तो यह पढ़ाई वगैरह नहीं देखते थे। सभी मास्टर जी उनके मित्र थे, तो सोमा भाई मास्टर जी ने मणि भाई से कहा कि 'आपका भाई है तो होशियार लेकिन ठीक से पढ़ता नहीं है'। तब भाई साहब ने मुझे डाँटा, 'तू ध्यान नहीं रखता है, पढ़ता नहीं है'। मैं वह सुन लेता था लेकिन मन में ऐसा होता था कि 'मुझे तो पूर्ण स्वतंत्र होना है'। तो 1958 में (जब ज्ञान हुआ तब) पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया।

वर्ल्ड का कल्याण करने का निमित्त लेकर आया हूँ

तब मास्टर जी तो मुझसे कहते थे, 'यहाँ भगवान-वगवान नहीं हैं। यहाँ पढ़ने के लिए आना है'। मैंने कहा, 'मैं भगवान ढूँढ रहा हूँ। मैं ऐसी पढ़ाई करने के लिए, मैं लोगों की नौकरियाँ करने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ। मैं तो कुछ विशेष करने आया हूँ। कुछ नया ही करने आया हूँ। यह तो घर वाले मुझे ज़बरदस्ती दबाव डालकर भेजते हैं, मेरी इच्छा नहीं है। उनकी तो नौकरी करवाने की इच्छाएँ हैं, मैं नौकरी करने नहीं आया हूँ'। नौकरी में तो लोग रिटायर कर देते हैं। क्या कर देते हैं? रिटायर कर देते हैं। बैल होता है न, उसे *पांजरापोल* (बूढ़े पशुओं की पशुशाला) में भेजकर रिटायर कर देते हैं, उसी तरह से उन्हें भी रिटायर कर देते हैं। 'अठावन साल का हो गया, रिटायर्ड! निकाल दो', कहते हैं।

इसलिए मैंने सोमा भाई सर को जवाब दे दिया। बहुत अच्छे इंसान थे और *लागणी* (लगाव, भावुकता वाला प्रेम) वाले थे! 'लेकिन मुझ पर बहुत *लागणी* मत रखना, मैं अलग ही तरह का इंसान हूँ। आपको पास करना है और मुझे फेल होना है, बोलो! मैं इस उलझन में नहीं पड़ना चाहता', कहा।

मैंने पंद्रह साल इसमें निकाले होते तो भगवान को ऊपर से नीचे उतार लाता। इतना सब सामान लेकर आया हूँ, बेहिसाब सामान लेकर

आया हूँ। पूरे वर्ल्ड के कल्याण का निमित्त लेकर आया हूँ और कल्याण अवश्य होना ही है।

कितने ही मास्टर जी हम पर खुश

प्रश्नकर्ता : फिर भी आप किसी मास्टर जी को तो पसंद होंगे न?

दादाश्री : मैं जब सेकन्ड में पढ़ता था न, तब हमारे एक मास्टर जी थे। तब सब के ब्रेन कैसे थे! हाइ क्लास ब्रेन थे सब के। क्या नाम था उनका? नाम भूल गया हूँ मैं।

प्रश्नकर्ता : विठ्ठल भाई।

दादाश्री : हाँ, विठ्ठल भाई। बहुत अच्छे थे। हँसते चेहरे वाले। वे मेरे सामने देखकर हँसते थे।

फिर उन्होंने भरुच में क्लिनिक खोली तो जब मैं दो दिन के लिए भरुच गया था, तब मैं वहाँ पर गया था। मैंने कहा, 'आपसे मिलने आया हूँ'। तो कहने लगे, 'यहीं पर रहना, कहीं और मत जाना'। तब रहा था उनके पास दो दिन। बहुत अच्छे इंसान थे! वे तो बहुत मिलनसार थे। छोटे बच्चों के साथ भी बातचीत करते थे, हँसी-मज़ाक करते थे। हँसमुख स्वभाव वाले...

दूसरे थे मणि भाई, वे फिफ्थ में मेरे टीचर थे। मणि भाई बहुत मिलनसार नहीं थे। शुरुआत में तो वे मुझ पर बहुत चिढ़ते थे क्योंकि मैं बिन्दास था और उन्हें बिन्दास लोग अच्छे नहीं लगते थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वे तो सभी पर गुस्सा हो जाते थे।

दादाश्री : अरे! भाई बिन्दास इंसान भी अच्छा, कभी अगर पान खाना हो तो ला देगा। बाद में तो आखिर तक मुझ पर बहुत खुश थे मणि भाई।

अब जब से यह अक्रम का हुआ न, उसके बाद उनके मन में

कुछ अलग घुस गया कि यह क्या अलग करने लगा है? उनके मन में ऐसी इच्छा थी कि यदि ज्ञान था, तो अपना अलग से करने की ज़रूरत ही क्या थी? मैंने कहा, 'मैंने अलग नहीं किया है। लोग ऐसा समझते हैं मुझे जुदाई है। मैंने जुदा किया ही नहीं है'। मैं वहाँ जाने लगा तो लोगों को अच्छा नहीं लगता था।

वहाँ भादरण में शोभा यात्रा थी न, तब वे भी कह रहे थे, कि 'मुझे कहलवाया होता तो मैं आता न यहाँ पर। गाँव में शोभा यात्रा हो और मैं न आऊँ?'

अभी कुछ समय पहले मैं उनसे मिलने गया था, आप भी आए थे न? लेकिन अब पहले जैसा प्रेम प्रदर्शित नहीं करते। पहले तो मुझे देखकर खूब हँसते थे, खूब हँसते थे। उन्हें समझ में नहीं आता है कि क्या ऐसा अक्रम होता होगा? अब उन्होंने सुना नहीं है न, ऐसा सब। उन्हें ऐसा लगता है कि उल्टा रास्ता होगा। तो आपके भाई उन्हें कुछ कहने वाले थे बड़ौदा में।

प्रश्नकर्ता : सुकुमार।

दादाश्री : सुकुमार ने कहा, 'मैं तो कहूँगा'। मैंने कहा, 'मत कहना, मत कहना। बल्कि मुझ पर और ज़्यादा वह (उल्टा) होगा। उन्हें मत कहना, गुप्त रखो'। बेकार ही वे मन ही मन चिढ़ेंगे। वह अपना धर्म है ही नहीं। इस तरह से रहना है कि उन्हें आनंद होना चाहिए। हमें उनके दु:ख का कारण नहीं बनना है। जब तारापुर जाना था, तब उन्हीं के यहाँ रुका था। उन्होंने कहा, 'मेरे यहीं पर रुकना'। उस समय वे तारापुर में थे।

प्रश्नकर्ता : तारापुर में हेडमास्टर जी थे।

भगवान ढूँढे, लघुत्तम सीखते हुए

प्रश्नकर्ता : दादा, वह घटना बताइए न, लघुत्तम के आधार पर आपको भगवान मिल गए।

दादाश्री : मैं बचपन से ही भगवान ढूँढ रहा था। भगवान के

अस्तित्व का कोई प्रमाण दे तू मुझे। क्या प्रमाण नहीं होना चाहिए? लेकिन फिर मुझे एक चीज़ पर से भगवान मिल गए। बचपन से दर्शन इतना हाई था कि लघुत्तम सीखते हुए मुझे भगवान समझ में आ गए।

जब मैं चौदह साल का था, तब स्कूल में एक मास्टर जी मिल गए थे। वे मुझे गणित में लघुत्तम सिखाने आए। 'लघुत्तम सीखने के लिए इतनी रकमें आपको दी हैं, इनमें से लघुत्तम ढूँढ निकालो', उन्होंने कहा। ऐसी पाँच-दस संख्याएँ देते और पूछते थे। तब मैंने मास्टर जी से पूछा, 'यह फिर क्या? लघुत्तम द्वारा आप क्या कहना चाहते हैं? लघुत्तम किस तरह से आता है?' तब उन्होंने कहा, 'ये जो सारी संख्याएँ दी हैं, इनमें जो सब से छोटी अविभाज्य रकम है, वह लघुत्तम है। ऐसी संख्या जो इन पाँच-दस संख्याओं में सामान्य है और अविभाज्य है। वे, इस प्रकार से छोटे बच्चे की भाषा में होता है न, ऐसे शब्दों में कह रहे होंगे। अविभाज्य यानी जिसमें फिर से भाग न लगाया जा सके ऐसी, जिसके फिर से भाग नहीं किए जा सकें ऐसी छोटी से छोटी रकम ढूँढ निकालनी थी।

प्रश्नकर्ता : उसमें भाग नहीं लगाया जा सकता।

दादाश्री : फिर उसमें भाग नहीं लगाया जा सकता, अविभाज्य होती है। चार हो तो विभाजन हो सकता है, आठ हो तो विभाजन हो सकता है, नौ हो तो विभाजन हो सकता है, सौ हो तो विभाजन हो सकता है लेकिन पाँच का विभाजन नहीं हो सकता, सत्रह का विभाजन नहीं हो सकता, ग्यारह का विभाजन नहीं हो सकता। कुछ-कुछ ऐसी संख्याएँ हैं।

अर्थात् ऐसा कुछ ढूँढ निकालो, इन सब में। ऐसी एक रकम सभी में है लेकिन वह लघुत्तम भाव से हैं। उसे खोज निकालना है। उन दिनों सभी लोगों को वह करना आता था लेकिन मुझे तो नहीं आया और इस तरह सोचता रहता था।

प्रश्नकर्ता : कैसे विचार?

दादाश्री : उन दिनों इंसानों को हमारी भाषा में 'संख्या' कहते थे कि यह संख्या अच्छी नहीं है। पहले के समय में गुजराती भाषा में ऐसा बोला जाता था कि 'ये संख्याएँ अच्छी नहीं हैं'। मनुष्य से क्या कहते थे? कोई इंसान खराब हो तो मैं कहता था कि 'ये सभी संख्याएँ बहुत अच्छी नहीं हैं'। उन्हें संख्या कहता था, इंसान नहीं कहता था। शब्द ही ऐसे बोलता था।

तो चौदह साल की उम्र में मुझे यह विचार आया कि ये सब संख्याएँ (इंसान) किस तरह की हैं? इतना ही नहीं, ये कुत्ते, बिल्ली, गाय-भैंस, गधे ये सब संख्याएँ ही हैं। इस संख्या से यह संख्या मेच हो गई, मुझे यह माफिक आ गया इसलिए मुझे ऐसा लगा कि इन संख्याओं में भी फिर ऐसा ही है न! फिर मुझे पूरी रात नींद नहीं आई और सोचने लगा। अर्थात् भगवान सभी में अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं, वह बात मुझे एडजस्ट हो गई। तभी से सारा हिसाब लगा दिया।

चौदह साल की उम्र में परिणाम के विचार

प्रश्नकर्ता : तब भी क्या आपको इन सब के बारे में पता था, उस उम्र में?

दादाश्री : नहीं! उस उम्र में मुझे सिर्फ परिणाम के ही विचार आते थे। हर एक बात में परिणाम के ही विचार आते थे। इसका परिणाम क्या आएगा, वह मेरे सामने हाज़िर हो जाता था।

मुझे वह अगले दिन समझ में आया कि यह तो 'भगवान' हैं कि जो हर एक संख्या में गाय में, भैंस में और इंसान में छोटी से छोटी चीज़ में भी भगवान हैं, जो अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं। अतः भगवान लघुत्तम हैं। लघुत्तम का फल क्या आएगा? भगवान। अतः लघुत्तम से भगवान मिलते हैं, खास तौर पर मुझे ऐसा समझ में आया। भगवान लघुत्तम हैं, ऐसा उन दिनों मुझे समझ में आ गया था। कैसे हैं? अविभाज्य, जिनके भाग नहीं किए जा सकते और जो सभी में रहते हैं, समान भाव से।

प्रश्नकर्ता : वे सभी में कॉमन फैक्टर हैं।

दादाश्री : सभी में कॉमन। यह मुझे चौदह साल की उम्र में समझ में आ गया। यह अच्छी बात है न! ऐसी समझ आ जाए तो! उसे दिमाग़ खुलना कहते हैं! तब मुझे पता चला कि सभी इंसानों में ऐसी कोई छोटी से छोटी चीज़ होनी ही चाहिए न! और भगवान कहते हैं कि 'मैं सभी में हूँ', तो मुझे समझ में आ गया कि आत्मा सर्व में है। भगवान अंदर हैं और लोग भगवान को ढूँढने के लिए बाहर भाग-दौड़ कर रहे हैं।

हाँ, सभी जगह, सभी क्रीचर्स में और वराइअटी ऑफ क्रीचर्स। क्रीचर्स की बेहिसाब वराइअटीज़ हैं और उनमें भगवान लघुत्तम भाव से रहे हुए हैं, अविभाज्य रूप से। वह मुझे चौदह साल की उम्र में समझ में आ गया था फिर मेरी सोच आगे बढ़ी।

इसलिए मैंने मास्टर जी से कहा कि 'ये रकमें, यह सिखाया तो बहुत अच्छा हुआ। इनमें जो लघुत्तम संख्या है, जो वस्तु बची है वह, इन सभी संख्याओं में जो अविभाज्य है, वे भगवान हैं। मुझे भगवान मिल गए'। तो मास्टर जी ने मुझसे कहा, 'बैठ जा, बैठ जा, तुझ में अक्ल नहीं है, तुझे समझ में नहीं आता है'। यानी तभी से यह झंझट!

झुका स्वभाव लघुत्तम की ओर, तो अंत में बने लघुत्तम

इस लघुत्तम पर से ही फिर मेरा स्वभाव लघुत्तम की तरफ झुकता गया। तब लघुत्तम नहीं बन पाया, झुकाव ज़रूर था लेकिन अब अंत में मैं लघुत्तम बनकर रहा, अभी। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट आइ एम कम्प्लीट लघुत्तम, बाइ रियल व्यू पोइन्ट आइ एम कम्प्लीट गुरुत्तम। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट लघुत्तम का मतलब है कि इस संसार की सभी बातों में, जब तक यह सांसारिक देह, वेश वगैरह है, तब तक उस बारे में मैं लघुत्तम हूँ। यानी कि मुझसे छोटा अन्य कोई जीव है नहीं! मैं लघुत्तम ही हूँ। मैंने पुस्तक में ऐसा लिखा है कि 'मैं लघुत्तम हूँ!' और बाइ रियल व्यू पोइन्ट मैं गुरुत्तम हूँ। रिलेटिव में जितना लघुत्तम बनते हैं, उतना ही रियल में गुरुत्तम बनते जाते हैं।

अपने व्यवहार में यह लघुत्तम शब्द आता है, वह ऐसा है कि सारा काम निकाल देगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन व्यवहार की बजाय जब तत्त्व ज्ञान से इसका मिलाप होता है, तब नया ही प्रकाश पड़ता है लघुत्तम पर।

दादाश्री : हाँ, नया प्रकाश पड़ता है, लघुत्तम का। लघुत्तम का प्रकाश पड़ता है हम पर तो मुझ पर भी लघुत्तम का बहुत प्रकाश पड़ता था।

लघुत्तम नहीं सीखे थे?

प्रश्नकर्ता : गुरुत्तम सीखे थे, लघुत्तम नहीं।

दादाश्री : अब सभी में लघुत्तम ढूँढ निकालने हैं, बस।

अब लघुत्तम निकालना सीख जाओ। गुरुत्तम तो बहुत दिनों तक निकाला, अब लघुत्तम निकालो। इसलिए स्कूल में सिखाया जाता है। क्योंकि अगर लघुत्तम निकालोगे तो कभी मोक्ष का लघुत्तम निकालना आएगा लेकिन यदि यह लघुत्तम ही नहीं सीखा होगा तो मोक्ष का लघुत्तम कैसे आएगा? अत: लघुत्तम ही संसार में मोक्ष का एक मात्र साधन है। जिसे लघुत्तम निकालना आ जाएगा, उसे परमात्मा ढूँढना आ जाएगा।

[2.2]
मैट्रिक फेल

विलायत भेजकर सूबेदार बनाने की इच्छा

प्रश्नकर्ता : दादा, आप ब्रिल्यन्ट (तेजस्वी) थे तो मैट्रिक फेल क्यों हुए?

दादाश्री : मुझे तो एक क्षण के लिए भी यह जगत् पुसाता नहीं था। मुझे तेरह साल की उम्र से ऐसा होता था कि मेरा बॉस नहीं होना चाहिए। जब पंद्रह साल का हुआ, तब ब्रदर कॉन्ट्रैक्ट का काम करते थे, बड़ौदा में। घर आकर मेरे बड़े भाई और जो हमारे पिता जी थे, वे दोनों साथ में बैठकर, मेरे ब्रदर ने फादर से कहा कि, 'यह अंबालाल अगर अच्छे से मैट्रिक में पास हो जाए तो उसे पढ़ाई के लिए विलायत भेज देंगे'। मेरे फादर और बड़े भाई जो बात कर रहे थे, वह मैं सुन रहा था।

तब ब्रदर ने क्या कहा कि 'मैं पढ़ाई पर थोड़ा ज़्यादा खर्च करूँगा लेकिन इसे अच्छी तरह आगे पढ़ाना। यह अच्छी तरह मैट्रिक में पास हो जाए तो पढ़ाई के लिए इसे सीधा इंग्लैन्ड, लंदन भेज देंगे। वहाँ पर एक साल ज़्यादा रखेंगे तो यह सूबेदार बनकर आएगा'।

हमारे ब्रदर कॉन्ट्रैक्ट का काम करते थे और वे अच्छा कमाते थे। उनके पास थोड़ी-बहुत सहूलियत थी और हिम्मत थी। पैसे भी थोड़े-बहुत आ गए थे लेकिन ज़्यादा नहीं पर उस ज़माने में उन्हें सहूलियत हो गई थी। यानी कि पास में कुछ होगा, उन दिनों पाँच-दस हज़ार रुपए खर्च कर सकते थे, विलायत भेजने के लिए। तब सस्ते में हो जाता था, बहुत महँगा नहीं था, तो उतनी सहूलियत तो थी। उन्होंने कहा, 'मैं सब पैसे दूँगा, इसे विलायत भेजेंगे'।

प्रश्नकर्ता : पढ़ने के लिए?

दादाश्री : बाद में वे फिर से बात कर रहे थे। उन्होंने कहा, 'विलायत भेजेंगे और विलायत से पढ़ाई करके तीन साल बाद पास होकर डिग्री लेकर यहाँ आएगा तो यहाँ पर सूबेदार बन जाएगा। अपने परिवार में जो सूबेदार है न, वैसे ही इसे भी विलायत भेजकर सूबेदार बनाएँगे। यहाँ गायकवाड़ सरकार सूबेदार की ग्रेड देती है। पढ़ाई करके आने के बाद तुरंत ही उसे अच्छी, प्रोबेशनर की जगह मिल जाएगी, इस तरह सूबेदार बन जाएगा। फिर सूबेदार की तरह गायकवाड़ सरकार के यहाँ नौकरी करता रहेगा'। तो मेरे फादर और ब्रदर मुझे नौकरी में डालना चाहते थे।

इसके पीछे उनकी क्या इच्छा थी? सूबेदार बनाने में? एय बड़ा ऑफिसर, कलेक्टर बनाने के लिए मुझे ऐसा कर रहे थे, सूबेदार-सूबेदार। जैसे कमिश्नर होता है न, गवर्नमेन्ट में, वैसे उन दिनों सूबेदार होते थे। हमारे बड़ौदा स्टेट में पहले सूबेदार बनते थे। एक प्रांत का सूबेदार, पूरे गाँव का *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मानिलक) होता था वह।

उन दिनों तीन सौ रुपए की तनख्वाह मिलती थी, बड़ौदा स्टेट के सूबेदार को। बड़ौदा स्टेट था न, इसलिए सूबेदार बनाने का बहुत वह था।

इस बड़ौदा स्टेट में हमारे कुटुंब के एक व्यक्ति थे चाचा के बेटे, हमारे भाई होते थे, छठी पीढ़ी में। उनका नाम था जेठा भाई नारण जी, वे मेरे फादर के भतीजे होते थे। वे सरकार में सूबेदार थे। अत: उन दिनों यह बहुत बड़ी डिग्री मानी जाती थी। 'सूबेदार साहब आए, सूबेदार साहब आए' इस तरह से।

वे मैट्रिक पढ़कर विलायत गए थे। वे विलायत जाकर ग्रेज्युएट हुए और सूबेदार बन गए थे। मेरे फादर और बड़े भाई की ऐसी इच्छा थी, सूबेदार बनाने की। उस समय मन में ऐसा लालच था कि इस भाई को सूबेदार बनाएँगे।

समझ गए सूबेदार बनाने के पीछे का स्वार्थ

तो यह बात सुनी तो मुझे चिढ़ मची कि 'ये लोग मुझे सूबेदार क्यों बनाना चाहते हैं?' तो मुझे तुरंत ही विचार आया कि मुझे सूबेदार बनाएँगे तो इन्हें क्या फायदा? तो ये अपने किस फायदे के लिए सूबेदार बनाना चाहते हैं? इसमें हर एक का स्वार्थ होता है न, कि ये फादर क्यों मुझे सूबेदार बना रहे हैं? मैं सूबेदार बन जाऊँगा तो फादर को क्या फायदा? फादर का क्या स्वार्थ है?

तो मैंने इस पर सोचा, अब उन दिनों पंद्रह साल की उम्र में फिर मुझे समझ में आया, तो मैं सूबेदार बनाने के पीछे का आशय समझ गया। उनके मन में ऐसा था कि, 'मेरा बेटा सूबेदार बनेगा तो मैं इस तरह से पहचाना जाऊँगा कि 'मेरा बेटा सूबेदार है!' तब फिर जीवन जीने का मज़ा आएगा न! और जीवन जीने की कला मिल गई कि मेरा बेटा सूबेदार है, कितना होशियार है! इस तरह रौब रहेगा। इस तरह, उस कैफ को लेकर घूमेंगे। तो यह ऐसा कुछ सूबेदार बन जाए तो मैं सूबेदार का बाप कहलाऊँगा न! लोग कहेंगे न, कि 'ये उस सूबेदार के फादर आए!'' ओहोहो! यानी कि अगर मैं सूबेदार बन जाऊँ तो इनकी इज़्ज़त बढ़ेगी तो मैं समझ गया था कि फादर खुद की इज़्ज़त बढ़ाना चाहते हैं।

तब फिर वे अच्छी पगड़ी वगैरह पहनकर घूमेंगे न! अगर बेटा सूबेदार हो तो नहीं घूमेंगे क्या? बेटा सूबेदार होगा तो घूमेंगे न? और सभी चाचा भी ऐसे ही घूमेंगे। चाचा भी कहेंगे कि 'मेरा भतीजा सूबेदार है'। तो मैंने सोच लिया कि फादर को ऐसा बनने की इच्छा है कि 'हमारी कीमत कुछ बढ़ जाए! लोग मेरी इज़्ज़त करें!'

फिर हुआ कि भाई को ऐसा क्यों हैं? ब्रदर के मन में ऐसा होगा कि 'मेरा छोटा भाई सूबेदार है! मन में तो अंदर रौब रहेगा फिर। हमारी इज़्ज़त बढ़ेगी, कमाएगा तो हम खर्च करेंगे, मज़े करेंगे'। यानी कि वे ये सारी बातें मज़े उड़ाने के लिए कर रहे हैं।

वे जेठा भाई सूबेदार हैं न, तो उनका देखकर मन में ऐसा होता

है कि वे सूबेदार बने हैं तो उनके पिता जी का कितना रौब पड़ा, भाईयों का कितना रौब पड़ा! वैसा ही हमारे फादर व ब्रदर के मन में हुआ कि 'अगर यह सूबेदार बन जाए तो हमारा कितना रौब जमेगा!' वे दोनों रौब जमाने के लिए मुझे सूबेदार बनाना चाहते थे।

तो मैंने यह सुन लिया। ये लोग कुछ पैंतरा रच रहे हैं मेरे लिए। 'ये लोग पैंतरा क्यों रच रहे हैं?' फिर हुआ कि 'नहीं, अपने-अपने मतलब के लिए कर रहे हैं'। वे कहते हैं, 'मेरा रौब पड़ेगा,' और वे कहते हैं 'मेरा रौब पड़ेगा' इस तरह से लेकिन मेरी क्या दशा होगी? उनके रौब के लिए मेरा तेल निकालने बैठे हैं ये! उनका रौब पड़ेगा लेकिन मेरा तो दम निकल जाएगा न! इसमें मेरा क्या है?

मैंने कहा, 'ये लोग मुझे शीशे में उतारने की कोशिश कर रहे हैं, फादर और ब्रदर। ये लोग इस तरह अच्छे कपड़े पहनकर और पगड़ी बाँधकर घूमेंगे और कचूमर मेरा निकलेगा। मुझे ऐसा सूबेदार नहीं बनना है'।

उन दोनों को रौब जमाना था। अरे! आप दोनों को इसका शौक है, आप दोनों का रौब जमेगा लेकिन मेरा क्या होगा?

मैं सूबेदार बनूँगा फिर सरसूबेदार मुझे झिड़केगा

मैं समझ गया कि ये लोग सर्विस करवाने के लिए मुझे फँसा रहे हैं कि 'कभी यह सूबेदार बनेगा'। 'लेकिन ऊपर वाला सरसूबेदार तो मुझे झिड़केगा न! क्या वह आपको डाँटेगा?' सरसूबेदार किसे डाँटता है?

प्रश्नकर्ता : सूबेदार को।

दादाश्री : उन्हें क्यों डाँटेगा? सरसूबेदार तो मुझे डाँटेगा, उस समय क्या वे सुनने आएँगे? अत: ये तो मुझे जाल में फँसाने के लिए ऐसा कर रहे हैं लेकिन मुझे कहीं जाल में नहीं फँसना है। इसीलिए इन लोगों ने सूबेदार बनाने की व्यवस्था की। मैं समझ गया कि ये लोग अपने स्वार्थ के लिए सबकुछ कर गुज़रेंगे। 'इन सब के सुख की खातिर

मुझे सूबेदार बनाना चाहते हैं ये लोग', यह मैं समझ गया था। इसमें उनकी दानत खराब है, मेरी दानत ऐसी खराब नहीं है।

हमने इसलिए जन्म नहीं लिया है कि कोई हमें झिड़के

मैं तो बहुत स्वतंत्र मिज़ाज का था इसलिए मैंने सोचा कि यदि मुझे सूबेदार बनाएँगे तो मेरे ऊपर सरसूबेदार होगा या नहीं होगा? वह डाँटेगा या नहीं डाँटेगा? बेकार ही सरसूबेदार मुझे झिड़केगा। अत: मुझे सरसूबे का सुनना पड़ेगा। सूबेदार बनूँगा तो मुझे उन्हें 'साहब जी' कहना पड़ेगा। वह सरसूबेदार मुझे गालियाँ देगा, डाँटेगा। मन में ऐसा सब घुस गया था। कोई डाँटे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा। हमें यह सब नहीं चाहिए। हमें यह धंधा नहीं करना है। तभी से मुझे तो *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) हो गई।

वह अपनी पत्नी से लड़कर आया होगा न, तो हमारे ऊपर चिढ़ता रहेगा। अरे मुए, मैं यह नहीं जानता था कि तू मुझे डाँटेगा वर्ना इस्तीफा देकर चला जाता। तेरी सरकार तेरे घर पर रही और तू तेरे घर, हम तो ये चले! हमने कोई झिड़की खाने के लिए जन्म नहीं लिया है, भाई। क्या हमने इसलिए जन्म लिया है कि तू हमें झिड़के? ऐसा तो तू क्या दे देगा?

नहीं चाहिए कुछ भी, फिर ऊपरी क्यों?

वह सूबेदार हमें डाँटेगा तो कैसे पुसाएगा? मैंने सोचा, 'मुझे यह नहीं चाहिए। भाई, मुझे सूबेदार नहीं बनना है'। तो उसके बजाय सूबेदार की यह वाली जगह अच्छी है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : यह सूबेदार नहीं कहलाएगा, दादा।

दादाश्री : हं?

प्रश्नकर्ता : यह तो सूबेदारों का सूबेदार, सरसूबेदार!

दादाश्री : मुझे कोई नहीं डाँटे। डाँटने वाला नहीं चाहिए, बॉस नहीं चाहिए। मुझे दुनिया का बॉस भी नहीं चाहिए क्योंकि बड़ी मुश्किल

से यह जन्म मिला है फिर वहाँ पर भी फिर कोई डाँटने वाला मिल गया। छोड़ भाई, शायद ही कभी मनुष्य का जन्म मिलता है और तू वापस डाँटने वाला निकला! तो भाई ऐसे जन्म का क्या करना है, यदि डाँटने वाला मिल जाए तो? हमें कोई मौज-मज़े की चीज़ नहीं चाहिए फिर भी हमें डाँटेगा। जिसे मौज-मज़े की चीज़ की ज़रूरत हो उसे भले ही डाँटने वाले मिलें लेकिन मुझे तो ऐसा कुछ भी नहीं चाहिए था। इसलिए मैंने तय किया, चाहे मैं पान की दुकान खोल दूँगा लेकिन इस तरह डाँटना नहीं चलेगा।

मुझे जितना चाहिए उतना ही खाना है भाई, क्या बहुत सारा खा जाएँगे? इतना सा खा पाते हैं और डाँटने वाले बहुत सारे, ऐसा तो मुझे नहीं पुसाएगा। इसलिए मैंने सोचा, 'यह रास्ता मुझे अच्छा नहीं लगेगा'।

यानी मैं बचपन से ही सावधान हो गया था। मुझे बॉस नहीं मिलना चाहिए। पिछले जन्म में बॉस की बात से मुझे कोई मज़ा नहीं आया होगा इसलिए पहले से ही चिढ़ थी कि मुझे बॉस नहीं चाहिए। मैंने तो पढ़ते समय ही तय कर लिया था कि मुझे सिर पर सरसूबेदार नहीं चाहिए। बेकार ही, बिना बात के सूबेदार डाँटेगा! मुझे कोई डाँटे, तो ऐसा आइ डोन्ट वॉन्ट (मुझे नहीं चाहिए)। यह सब क्यों भला? सिर्फ लालच के लिए न? किस चीज़ का लालच? लेकिन उसका क्या करना है? मन का भिखारीपन है एक तरह का!

कोई लालच हो तभी *ऊपरी* रखते हैं, मुझे कोई लालच नहीं है। मैं लालची नहीं हूँ। मुझे क्या लेना है कि सूबेदार मुझे डाँटे? वह इसीलिए न, कि तीन सौ रुपए की तनख्वाह के लिए जा रहा हूँ? मुझे तीन सौ की तनख्वाह नहीं चाहिए। बॉस डाँटता है रुपयों के लिए। आग लगे तेरे रुपए को!

घर में क्या ऊपरी कम हैं जो नए ऊपरी बनाऊँ?

जिनसे शादी की है उनसे ऐसा कह दूँगा कि 'थोड़ा मिले न, तो हम थोड़े में समावेश कर देंगे'। हीरा बा से शादी तो की न! एक तो मैंने शादी की, वह मुझसे भूल हुई लेकिन यह फिर नया संबंध बढ़

जाएगा! शादी करके फँसे तो सही न, लेकिन नए फँसाव में सूबेदार तो नहीं बने न! अत: मैं इस दुनिया में बॉस बनाना ही नहीं चाहता था। जो होना हो वह हो जाए इस दुनिया का लेकिन मैं बॉस नहीं बनाऊँगा, स्वीकार ही नहीं करूँगा। नौकरी नहीं करूँगा, ऐसा कहा। इसलिए मैं संभलकर चलने लगा कि यदि मैं सूबेदार बन जाऊँगा तो सरसूबेदार मुझे डाँटेगा।

ऊपरी तो चाहिए ही नहीं मुझे। यों घर के माँ-बाप हैं, वे क्या कम *ऊपरी* हैं! वे कुछ कम हैं, उनका तो चुकाना ही पड़ेगा न ऋण? फिर वाइफ आईं, वे भी *ऊपरी* मानी जाएँगी न? फिर वापस दूसरे *ऊपरी* कहाँ बनाऊँ? मुझे ऐसा *ऊपरी* नहीं चाहिए। एक तो पिता जी डाँटते हैं, बड़े भाई डाँटते हैं और फिर यह नया डाँटने वाला बढ़ाऊँ! अब नहीं चाहिए डाँटने वाले। जो हैं उनका तो निबेड़ा ला दूँगा लेकिन वापस नया कहाँ बनाऊँ? मुझे डाँटने वाला अच्छा नहीं लगता था।

जो भगवान से भी न दबें वे किससे दबेंगे?

मुझे तो सिर पर भगवान भी नहीं चाहिए तो इस सरसूबे को कहाँ चढ़ाऊँ? यह एक ऊपर है वह भी मुझे नहीं पुसाता तो यह सरसूबेदार कैसे पुसाएगा? मैं तो तेरह साल का था तब मैंने यह तय किया था कि मुझे सिर पर भगवान भी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं चाहिए। यदि भगवान *ऊपरी* होंगे तो फिर जीने का अर्थ ही क्या है?

मैं भगवान के तहत भी नहीं रहना चाहता था, लेकिन क्यों? जो भगवान से भी नहीं दबता, वह किससे दबेगा? यों किसी से दबे हुए नहीं रह सकते।

यानी मैंने तय कर लिया कि मुझे तो सिर पर भगवान भी नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए लेकिन इस संसार में भी कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, शालिभद्र की तरह सिर पर कोई मालिक नहीं चाहिए।

दादाश्री : तभी खुद ऐसा कह सकता है न कि मैं सूबेदार नहीं बनूँगा। पचास रुपए में पान की दुकान लगाऊँगा लेकिन मुझे *ऊपरी* नहीं चाहिए।

'आई डोन्ट वॉन्ट टू सर्व एनीबडी'

मुझे कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए। दूसरा मैंने यह तय किया था कि किसी की नौकरी भी नहीं करूँगा। मुझे कहीं लोगों की नौकरी करने के लिए जन्म नहीं दिया गया है। मैंने यह बचपन से ही तय कर लिया था कि अगर नौकरी करनी पड़ी तो इस जीवन का कोई अर्थ ही नहीं है न! नॉनसेन्स चीज़ है वह। हम तो छोटी से छोटी, कोई पान की दुकान जैसी दुकान लेकर बैठ जाएँगे ताकि हमें जब भी, बारह बजे या एक बजे जाना हो तब अपने घर जाकर सो सकते हैं, दुकान बंद करके।

नौकरी करना तो मुझे बहुत ही बड़ा दु:ख लगता था। यों ही मर जाना अच्छा है लेकिन नौकरी का मतलब तो बॉस मुझे डाँटेगा! सब से बड़ा रोग है यह! लेकिन उस रोग ने मुझे बहुत प्रकार से बचाया।

मैं तो नौकरी करने वाला इंसान ही नहीं था। मुझसे तो नौकरी हो ही कैसे पाती? नौकरी रास ही नहीं आती थी। यदि सूबेदार बना दो फिर भी मुझे नौकरी नहीं चाहिए। तभी तो मैंने कहा न, मुझे सूबेदार नहीं बनना है। लोग क्लर्क बनने में भी खुश थे और मुझे सूबेदार बनने की भी इच्छा नहीं थी क्योंकि मेरा ध्येय क्या था? और चाहे कैसी भी खुमारी हो पर मैं किसी की सर्विस तो करूँगा ही नहीं। आई डोन्ट वॉन्ट टू सर्विस एनीबडी। सर्विस करने का मेरा काम ही नहीं है। मैं पान की दुकान लगा लूँगा लेकिन स्वतंत्र व्यापार करूँगा।

इतनी *तुमाखी* (हेकड़ी, घमंड)! क्या बैंक में रुपए थे? नहीं! रुपए-वुपए नहीं थे लेकिन ऐसा रौब था अंदर! और फिर वह भी कुरूप रौब! कैसा? सुंदर रौब हो तो बात अलग है, रौब भी कुरूप!

मैंने तो भगवान जाने पिछले जन्म में ऐसे भाव किए थे कि ये ज़िंदगी लोगों को बेच नहीं देनी है। इतनी अच्छी ज़िंदगी बेच नहीं देनी है! अत: 'नौकरी तो करूँगा ही नहीं', ऐसा तय किया था।

अंत में पान की दुकान लगा लूँगा लेकिन स्वावलंबी रहूँगा

आखिर में एक दोस्त ने मुझसे कहा कि नौकरी के बगैर तू करेगा क्या? बड़े भाई निकाल देंगे तब तू क्या करेगा? मैंने कहा, 'मैं तो, जो मेरी मर्ज़ी में आएगा, वह काम करूँगा नहीं तो घर आकर सो जाऊँगा। लेकिन काम करके मैं स्वाश्रयी रहूँगा, मैं पराश्रयी नहीं रहूँगा। छोटा-मोटा ही सही लेकिन व्यापार करूँगा। कुछ न हुआ तो आखिर में पान की दुकान लगा दूँगा'।

मुझे ठीक लगेगा उस समय दुकान बंद करके घर जाकर सो जाऊँगा, नहीं तो शास्त्र पढ़ने लगूँगा। हमें दोपहर के डेढ़-दो बजे सोने की आदत है तो घर जाकर दोपहर को बारह बजे खाना खाकर आराम से सो जाना हो तो दुकान बंद करके आराम से सो तो सकते हैं! कोई *ऊपरी* नहीं होगा न! पान खत्म हो गए और घर जाकर सो गए, बस! शाम को चार बजे आकर वापस खोलेंगे और तब फिर पूरे दिन पान चुपड़ते रहेंगे। लेकिन यह परतंत्रता नहीं पुसाएगी। ऊपर बॉस डाँटता रहे बिना बात के!

अटूट भरोसा खुद के प्रारब्ध पर

स्वतंत्र जीवन ही पसंद था। हालांकि व्यापार रेग्युलर (सही तरीके से) करना है लेकिन जीवन स्वतंत्र। मित्र लोग कहें कि चलो चार दिन कहीं पर जाएँ तो बंद करके चल पड़ते थे। प्रारब्ध को मानने वाला इंसान था कि 'मैं अपना लेकर आया हूँ'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : मेरा सभी सामान लेकर आया हूँ, इसलिए फिर मुझे और कोई परेशानी नहीं आएगी न? कुछ प्रयत्न भी करने चाहिए। प्रयत्न ही करने हैं, बस। फिर अपने आप ही फल मिलता रहेगा न! उससे अपनी गाड़ी चलती रहेगी।

ज़रूरतें कम इसलिए आता है निभाना थोड़े में

पान की दुकान हो तो थोड़े-बहुत रुपए बचेंगे तो घर चलाएँगे

और सो जाएँगे। हमें ऐसा कोई लोभ नहीं है। हमें जो थोड़ा-बहुत मिल गया, वही! तीन रुपए मिले तो तीन में चलाएँगे, दो मिले तो दो में चलाएँगे, मुझे सब तरह से चलाना आता है। कम से कम पैसे में निभाना आता है, मेन्टनन्स करना आता है। क्योंकि मेरा स्वभाव कैसा है? मैं क्षत्रिय हूँ लेकिन कम से कम ज़रूरतें हैं और परिग्रह तो मुझे पहले से ही बोझ लगता है।

ऐसा है कि लोग रोज़ का एक रुपए में चला सकते हैं। उन दिनों तीस रुपए तनख्वाह मिलती थी, क्लर्क को। अत: सामान्य व्यक्ति तो महीने के तीस रुपए में पूरा, हर प्रकार से काम पूरा कर लेते थे। तब मेरे मन में ऐसा था कि इन लोगों को तीस में करना आता है तो मुझे बाईस में करना आता है। यानी थोड़े में समावेश करना आता है और इतना हुनर है कि किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़े। मेरा खर्चा कम है। मैं तो ऐसा इंसान हूँ कि जितने कम खर्चे में कहें न, उतने कम खर्चे में समावेश कर लूँ। तब फिर है कोई और परेशानी? यह तो जिसे ऐशो-आराम की ज़रूरत है उसके लिए है। उसमें मैं बहुत कंट्रोल कर सकता हूँ। मुझे जब ज़रूरत नहीं होगी तब सो जाऊँगा और ज़रूरत होगी तब उठ जाऊँगा।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : आज पान के ग्राहक नहीं आए तो क्या हो गया, कुछ बिगड़ जाएगा? कल आएँगे। साथ में यह भी देखते थे न, कि 'मैं अपना लेकर आया हूँ। मुझे ऐसा कुछ नहीं चाहिए। मुझे कोई लाख, दो लाख, या पच्चीस लाख, या मुझे कोई बैंक नहीं खोलना है। मुझे बैंक का क्या करना है? इस पेट में खाने लायक चाहिए। वह भी एक-दो-पाँच आश्रित होंगे उनके लायक, और क्या झंझट है हमें? मेरे पास कम होगा तो चलेगा। खिचड़ी और सब्ज़ी, इससे आगे इच्छा नहीं है। चीज़ें कम होंगी तो चलेगा लेकिन मेरी स्वतंत्रता पर ब्रेक नहीं चलेगा। मुझे यह परतंत्रता बिल्कुल भी पसंद नहीं है। परवशता आई डोन्ट वॉन्ट (मुझे नहीं चाहिए), स्वतंत्रता चाहिए'।

तय किया कि मुझे मैट्रिक में पास होना ही नहीं है

क्या आसपास का सब स्टडी नहीं करना चाहिए? मैं तो बचपन से ही स्टडी करता था। सभी लोग जो लाइन लेते थे, हम वह लाइन नहीं लेते थे। घर से हमें सूबेदार बनाना चाह रहे थे लेकिन सूबेदार के सिर पर फिर वापस बॉस, हमें तो सिर पर कोई बॉस नहीं चाहिए था।

प्रश्नकर्ता : आपके घर नौकर-वौकर नहीं थे?

दादाश्री : नहीं भाई। अन्डरहैन्ड रखूँ तो मेरे पर बॉस आएगा। मुझे नहीं पुसाएगा यह जगत्।

अत: तभी से मैंने तो गाँठ बाँध ली, मैंने तय कर लिया कि हमें सूबेदार नहीं बनना है। इस वर्ल्ड में कोई डाँट दे, ऐसा पद मुझे नहीं चाहिए। बोलो, इतनी *खुमारी*! क्या हो फिर? अंतर श्रद्धा ऐसी थी न! इसलिए फिर मैंने सोचा कि 'यदि मैं मैट्रिक में पास हो जाऊँगा तभी ये लोग मुझे सूबेदार बनाएँगे न?'

मैंने भी तय किया कि 'ये लोग मैट्रिक में पास करवाना चाहते हैं लेकिन हम पास होंगे तभी आगे कुछ होगा! हमें पास ही नहीं होना है, आ जाओ'। मैंने सोचा, 'भाई अपने मतलब में हैं, पिता जी अपने मतलब में हैं, मैं अपने मतलब में हूँ'। मैं समझ गया कि अगर फेल नहीं होऊँगा तो ये लोग मुझे इंग्लैन्ड भेज देंगे। मैंने तय किया कि मैट्रिक में पास ही नहीं होना है न! फिर कहाँ भेजेंगे? यदि मैट्रिक पास हो जाऊँगा तब मुझे भेजेंगे न? फेल हो जाएँगे तो भेजेंगे ही नहीं न! वह भारी पड़ेगा न!

फिर मैंने तय किया कि 'ये जो अपना तय कर रहे हैं तो हमें भी अपना तय कर लेना है। हमें फेल ही होना है'। अब उन दिनों हमारी उम्र पंद्रह साल की थी इसीलिए मैंने इन लोगों से कुछ नहीं कहा, लेकिन पढ़ाई में ढील दे दी। उसके बाद मैंने चित्त को अन्य चीज़ों में धकेल दिया। यानी मैंने तय किया कि फेल ही होना है मैट्रिक में! इसलिए सब खुला छोड़ दिया।

धमकी देकर लिया फॉर्म

प्रश्नकर्ता : फिर मैट्रिक की परीक्षा दी थी, आपने?

दादाश्री : अठारह साल की उम्र में मैट्रिक की परीक्षा देने गया तो था! लेकिन कॉलेज में नहीं गया था। इसका वह जो होता है न (**admit card**), वह निकालकर देते थे भादरण से। ठेठ वहाँ युनिवर्सिटी की परीक्षा देने जाना, क्या कहते हैं उसे?

प्रश्नकर्ता : फॉर्म भरना।

दादाश्री : कुछ फॉर्म भरना होता था। उस फॉर्म के लायक होने के लिए परीक्षा तो दे दी थी लेकिन साहब फॉर्म नहीं दे रहे थे।

प्रश्नकर्ता : दादा, मास्टर जी ने आपको फॉर्म देने से मना क्यों किया?

दादाश्री : किस चीज़ का फॉर्म दें लेकिन? अगर स्कूल में जाते तभी न? इज़्ज़तदार (!) बहुत थे इसलिए फॉर्म जल्दी दे देते न! झगड़ालू, शरारती-वरारती पूरे ही, तो फॉर्म तुरंत दे देते न! नहीं? प्यार तो कुछ नहीं होता है न, मास्टर जी को! किसी मास्टर जी को प्यार नहीं था क्योंकि मुझे पढ़ने पर प्रीति ही नहीं थी न!

तो मास्टर जी वहाँ पर फॉर्म नहीं दे रहे थे, तो फिर धमकी देकर लिया उनसे। मैंने कहा कि यदि फॉर्म नहीं दोगे तो सब के बीच मारूँगा। तो जब मास्टर जी को मारने की धमकी दी तब फॉर्म दिया। मारे बगैर नहीं छोड़ूँगा आपको, अगर फॉर्म नहीं दोगे तो! इस तरह से फॉर्म लिया था। लो बोलो, ऐसे कैसे अक्ल वाले थे हम! हम से ज़्यादा तो ये सींग वाले अच्छे न! वह तो बैल ही है जबकि यहाँ पर तो बैल नहीं थे फिर भी हम से डरते थे। इतनी शरारतें!

तो बड़ी मुश्किल से मुझे फॉर्म दिया उन लोगों ने, गालियाँ देते हुए कि 'इस लड़के को देना नहीं है फिर भी दे दो क्योंकि यह झगड़ालू है। बेकार ही झगड़ा करेगा'। वे समझते थे कि, 'यह मुआ कहीं मार

देगा'। तो देखो न, बेचारे उसी व्यक्ति ने जिसे मैंने यह कहा था उसी ने मुझे डर के मारे फॉर्म दे दिया।

प्रश्नकर्ता : फिर परीक्षा देने के लिए बड़ौदा गए थे न?

दादाश्री : हाँ, बड़ौदा, अपने कॉलेज में। यहाँ पर फॉर्म दिया था न, इसलिए वहाँ पर गए थे कॉलेज में, वहाँ अपनी युनिवर्सिटी में। उसे क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : एस.एस.सी. बॉर्ड।

दादाश्री : तब उन दिनों एस.एस.सी. बॉर्ड नहीं था।

प्रश्नकर्ता : मैट्रिक्युलेशन।

पढ़ाई का बहाना करके रहे हॉस्टल में और की मौज-मस्ती

दादाश्री : यहाँ बड़ौदा में मैट्रिक की परीक्षा देने आया था, युनिवर्सिटी में। ब्रदर कॉन्ट्रैक्टर थे, वे यहाँ पर जोगीदास विठ्ठल की पोल (मुहल्ला) में रहते थे। मुझे भी वहाँ पर रहना था लेकिन मैंने सोचा, 'घर पर रहूँगा तो हमें इनके दवाब में रहना पड़ेगा न! इनके कंट्रोल में रहना पड़ेगा न! तो यह नहीं पुसाएगा'।

यदि घर पर रहते तो हम घूमने नहीं जा सकते थे, आनंद नहीं कर सकते थे, मौज-मस्ती नहीं हो सकती थी इसलिए ब्रदर से मैंने कहा, 'मुझसे यहाँ घर पर रहकर पढ़ाई नहीं हो पाएगी। मैं तो वहाँ हॉस्टल में रहूँगा। हॉस्टल में मुझसे पढ़ाई हो सकेगी। यहाँ पर पढ़ाई का टाइम बेकार चला जाता है इसलिए मैं तो परीक्षा के दिनों में वहाँ हॉस्टल में ही रहूँगा'। भाई ने कहा, 'हाँ, वहाँ पर रहना। भले उसके लिए पैसे खर्च हों। तुझे यहाँ घर पर ठीक न लगे तो हॉस्टल में रहना लेकिन खूब पढ़ना'। मैंने कहा, 'यह बात तो मुझे बहुत अच्छी लगी'। घर पर नहीं रहना पड़ा न!

तब वहाँ हॉस्टल में रहा था और फिर यहाँ हॉस्टल में आकर क्या किया? आराम से फर्स्ट क्लास पूड़ियाँ-वूड़ियाँ, आइस्क्रीम-वाइस्क्रीम

खाईं। तब हॉस्टल में उन दिनों देशी घी की पूड़ियाँ, सब्ज़ी वगैरह, शुद्ध खाना बनाता था वह महाराज!

बिल्कुल डिबिया जैसी ही पूड़ियाँ और एकदम गोल लड्डू जैसी। राउन्ड दिखाई देती थीं, इतनी-इतनी सी ही। जैसे आजकल गोलगप्पे होते हैं न, गोलगप्पे की पूड़ी आती है न, उतनी सी पूरी बनती थी। शुद्ध घी की फर्स्ट क्लास पूड़ियाँ और वे इस तरह मुँह में डालते थे न, तो मुँह में रखते ही वे खुल जाती थीं। शुद्ध घी की इतनी अच्छी कि बाहर तक सुगंध आती थी, आधे मील तक। हमें भी उसमें टेस्ट आ जाता था। एक खाकर ही संतोष हो जाता था।

अभी तो वैसी एक भी पूड़ी नहीं मिलती। अभी तो ऐसा भोजन भी नहीं मिलता। अभी यदि बीस-पच्चीस रुपए किलो के भाव से मँगवाएँ न, तब भी ऐसी पूड़ियाँ नहीं मिलेंगी। वैसी कितनी पूड़ियाँ खाते थे? एक-दो नहीं, कितने ही लड़के तो पचास-पचास, साठ-साठ, सत्तर-सत्तर, अस्सी-अस्सी पूड़ियाँ खा जाते थे! उन्हें इतना शौक था।

प्रश्नकर्ता : आप कितनी खाते थे, दादा?

दादाश्री : बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस खाई थीं। वे तो बहुत अच्छी पूड़ियाँ! वह शुद्ध घी, बात ही क्या करनी! तो डेढ़ सौ-डेढ़ सौ पूड़ियाँ खाने वाले लोग भी थे।

भाई समझते थे कि पढ़ रहा है और हम लेते थे आइस्क्रीम की लिज़्ज़त

तो हॉस्टल में रहे इसलिए आराम से खाते थे, मस्त रहते थे और फिर शाम को या रात को स्टेशन पर बाहर वहाँ आइस्क्रीम की कईं दुकानें थीं, वहाँ पर आइस्क्रीम खाने जाते थे। यहाँ स्टेशन पर उस तरफ दुकानें थी भैयाजी की तो वह भैया आइस्क्रीम बनाता था न! वहाँ पर आइस्क्रीम तैयार रहती थी तो हॉस्टल के नाम पर हम वहाँ पर जाकर आइस्क्रीम खाते थे और बैठे रहते थे।

भाई समझते थे कि, 'हमारा भाई परीक्षा देने गया है, पढ़ रहा है वहाँ पर'। लेकिन मैंने तय किया कि 'हमें मैट्रिक में पास ही नहीं होना है। यदि पास होंगे तभी ये सूबेदार बनाएँगे न?' तो रोज़ स्टेशन पर आइस्क्रीम खाते थे। मैं तो परीक्षा के दिन भी बाहर घूमकर, आराम से आइस्क्रीम-वाइस्क्रीम खाकर और परीक्षा देता था।

अपने जैसे ही मिल जाएँ, तो गायकों के साथ में चली गाड़ी

शाम को आइस्क्रीम-वाइस्क्रीम खाकर और दो-तीन लड़के मिलकर गीत गाते थे। परीक्षा देने आए थे लेकिन फिर मुझे सभी मेरे जैसे मिल ही जाते थे न! एक-दो गीत गाने वाले लोग आते थे फिर, मिल ही जाते हैं न सब। अपने जैसे मिल जाते हैं, ढूँढने नहीं जाना पड़ता था।

जंबुसर का एक गाने वाला लड़का मिल गया था। वहाँ पर वह मित्र गाने गा रहा था। वह भजन गा रहा था तो गाड़ी चली अपनी, तो उसके साथ बैठ जाते थे आराम से।

तो एक-दो गायक मिल गए थे, वे गीत गवाते थे और फिर तो सभी गाने लगे लेकिन मुझे तो गाना नहीं आता था। हमारा गला शुरू से ही पहाड़ी, हमारी संगीत से नहीं बनती थी, इसलिए बस, हम तो सुनते थे। राम तेरी माया, गाना वगैरह कुछ भी नहीं आता था।

जैसा चाहिए था उसी योजनानुसार हुए मैट्रिक में फेल

प्रश्नकर्ता : तो फिर परीक्षा में बैठे थे? पेपर दिए थे?

दादाश्री : पेपर-वेपर सब दिया था, जैसा आया वैसा लिखा।

प्रश्नकर्ता : फिर मैट्रिक में आप फेल हो गए न, दादा?

दादाश्री : फेल? अच्छी तरह से फेल हुआ।

प्रश्नकर्ता : योजनानुसार?

दादाश्री : योजनानुसार फेल हुआ था, मैट्रिक में फेल हुआ, उसका क्या कारण है? क्या मुफ्त में फेल हो सकते हैं?

फिर यों मौज-मस्ती करते-करते मैंने परीक्षा दी तो अपना हिसाब आ गया। 1927 (विक्रम संवत 1983-84) में मैट्रिक में फेल हुआ! आराम से फेल हुआ। मुझे जो चाहिए था, वही हो गया।

प्रश्नकर्ता : मैट्रिक में आपको पास ही नहीं होना था न, जान-बूझकर...

दादाश्री : क्योंकि इच्छा ही नहीं थी पास होने की, नीयत ही खराब थी। उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया न! यदि ध्यान दिया होता तो पास हो जाता लेकिन परीक्षा में ध्यान ही नहीं दिया। यदि ध्यान देते तब पास होते न?

अंग्रेजी में पढ़ना नहीं आया मुझे। तो उसमें कुछ पढ़ा-करा नहीं था तो पास कौन करता हमें? तो मैट्रिक में फेल हो गया, आराम से।

प्रश्नकर्ता : हं, ठीक है। तो इस तरह आपने लंदन जाने से मना किया।

दादाश्री : मना नहीं किया था, पास ही नहीं हुआ न खुद! पास होता तो मुझे आगे भेजते न? इसलिए उनकी धारणा टूट गई। उनकी सूबेदार बनाने की इच्छा थी लेकिन देखो न, सूबेदार नहीं बना तो नहीं ही बना न! देखो न, नहीं तो क्या हम बिल्कुल ही मूर्ख थे?

मुझे पढ़ना था यह, 'सिर पर ऊपरी नहीं चाहिए'

आपको कॉलेज में पढ़ना था, तो सभी निमित्त मिल गए थे न?

प्रश्नकर्ता : ऐसा है कि जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि प्राप्त हो जाती है?

दादाश्री : हाँ, आपको कॉलेज में पढ़ना था तो सारे निमित्त मिल गए न? और नहीं पढ़ना हो न, जैसे कि मुझे नहीं पढ़ना था, तो मैट्रिक में फेल होकर रहा। मेरी नीयत ही नहीं थी न, पढ़ने की। यानी कि जिसे पढ़ना हो, उसे सब मिल जाता है।

मुझे पढ़ना था यह कि 'सिर पर कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए, बाप

भी *ऊपरी* नहीं चाहिए'। वह कैसे पुसाएगा ? यानी मैंने उसे स्वीकार ही नहीं किया था इसीलिए मैट्रिक में फेल हुआ था। अब मैट्रिक में फेल हो जाते, ऐसा तो नहीं था। यों आता तो सब था, ब्रिल्यन्ट था। दिमाग़ तो बहुत अच्छा था लेकिन जान-बूझकर फेल हो गया।

जान-बूझकर कोई फेल हो सकता है ? हम पर जो बीती वह हम ही जानते हैं। हमारा दिमाग़ सुन्न हो गया परीक्षा देकर। हम जानते हैं न, कि हम पर क्या बीती। क्या हम नहीं जानते थे ?

जिसके पास संतोष रूपी धन है उसे क्या दुःख?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैट्रिक में फेल होने के बाद में फिर क्या किया ?

दादाश्री : फिर हमारा घर का बिज़नेस था कॉन्ट्रैक्ट का। मेरे बड़े भाई कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस करते थे। तो मैंने कहा कि यदि भाई इतनी अच्छी तरह से, इज़्ज़त से करने देंगे तो हम इनके साथ बिज़नेस करेंगे और यदि ब्रदर नहीं करने देंगे, अपमान ही करते रहेंगे तो हम पान की दुकान खोल लेंगे।

साथ ही यह भी तय किया कि यदि फादर या ब्रदर पैसा नहीं देंगे तो ? हम अगर भाई की कोई बात नहीं मानेंगे तो फिर भाई छूने ही नहीं देंगे तो ? अगर भाई सहयोग नहीं देंगे, असहयोग करेंगे तो मित्र से कुछ पैसे लेकर, पचास रुपए लेकर पान की दुकान खोल लूँगा, ऐसा तय किया था। उन्हें मुझे बिज़नेस में लगाना होगा तो लगाएँगे वर्ना हम अपनी पान की दुकान खोल देंगे।

जिनके पास बचपन से ही संतोष रूपी धन है, उन्हें क्या दुःख हो सकता है ? ज्ञान नहीं था फिर भी संतोष रूपी धन था।

मुक्त होने के लिए सुन ली थी किच-किच

मैट्रिक में फेल हुआ तब फिर ब्रदर ने कहा, 'फेल हो गया ?' मैंने कहा, 'हाँ'। फिर ब्रदर ने कहा, 'तू फेल क्यों हो गया ? महेनत नहीं

की थी क्या?' तब मैंने कहा, 'महेनत की लेकिन अब परिणाम नहीं आया तो उसमें मैं क्या करूँ? दिमाग़ नहीं चलता। ब्रेन खत्म हो गया है। अब कुछ नहीं आता'। तब भाई ने कहा, 'पहले तो बहुत अच्छा आता था'। मैंने कहा, 'वह कुछ भी हो लेकिन ब्रेन खत्म हो गया है, बेकार हो गया है अब'।

तो बड़े भाई ने कहा, 'ले! इस वजह से तुझे नहीं आया। अरे! फेल हो गया। तुझे कुछ नहीं आता। सभी साल बिगाड़ दिए'। मैंने कहा, 'जो हुआ सो हुआ, अब आप जैसा कहेंगे वैसा करूँगा'। तब बड़े भाई ने कहा, 'तू तो फेल हो गया। अब क्या करेगा? तू अगले साल यह परीक्षा दे। खूब महेनत कर फिर से, और पास हो जा। तुझे विलायत जाना है'।

मैंने ब्रदर से कहा, 'मुझे इसमें कुछ नहीं आएगा। कुछ अच्छा नहीं होगा। अत: इसमें मेरा और एक साल का नुकसान होगा। पाँच साल लग जाएँ फिर भी पास नहीं हो पाऊँगा बल्कि टाइम बेकार जाएगा'। पहले कुछ दिन तक तो ब्रदर बोले, किच-किच की। फादर ने भी किच-किच की। हमने समझा कि भले ही किच-किच करें लेकिन हम तो छूट जाएँगे न!

'मेरा बिगड़ जाएगा' ऐसा भय नहीं था

फिर मणि भाई ने कहा कि 'अब तुझे क्या करना है?' मैंने कहा, 'जो आप कहेंगे वही करेंगे। आपको ठीक लगे तो आप कहो वर्ना मैं तो अपनी तरह से कुछ भी कर लूँगा। मुझे जो ठीक लगेगा ऐसा कुछ भी ढूँढ निकालूँगा अपने लिए'।

मुझे इस प्रकार का कोई भी भय नहीं था कि मेरा कुछ बिगड़ जाएगा। कहा, 'जो आप कहेंगे वही करूँगा'। और हम तो चने-मुरमुरे की दुकान भी लगाकर बैठ जाएँगे, सौ रुपए लगाकर। उन दिनों सौ रुपए की पूँजी की ही ज़रूरत थी न?

तब फिर मैंने कह दिया, 'ज़्यादा तो कुछ नहीं आता। आप पैसे

नहीं देंगे, कुछ नहीं देंगे, जायदाद नहीं देंगे तो मैं अपनी तरह से पान-बीड़ी की दुकान लगा दूँगा'। लेकिन ऐसा कुछ नहीं करना पड़ा मुझे। क्या भाई ऐसा करने देते? उनकी इज़्ज़त चली जाती न! बड़े लोग! छोटा काम करने देते क्या?

तब फिर बड़े भाई ने कहा, 'नहीं! ऐसा छोटा काम हमें नहीं करना है। क्या कह रहा है तू?' मैंने कहा, 'मैं तो कुछ भी कर लूँगा। तो उन्होंने कहा, 'हम लोगों को ऐसा काम नहीं करना है। हम लोग ऐसा काम नहीं कर सकते, हम तो खानदानी इंसान हैं। हमें ऐसा करना चाहिए क्या?' तब मैंने कहा, 'जो ठीक लगे वह कीजिए'।

भाई के सामने भी नहीं हुए लाचार

तो बड़े भाई ने कहा, 'अब क्या करेगा?' मैंने कहा, 'अब क्या करूँ? होगा। हिसाब में जो कुछ भी होगा, वह होगा। आपका बिज़नेस है, आप कहो तो मैं आपके बिज़नेस में जॉइन हो जाऊँ, वर्ना अगर आप मना करते हैं तो मैं बाहर कोई दूसरा काम कर लूँगा। नौकरी तो मैं करूँगा नहीं'। मुझे मेरे बड़े भाई शुरू से ही कहते थे कि 'तू अगर नौकरी करने जाएगा तो कोई रखेगा नहीं'। तब मैंने कहा था कि 'मैं नौकरी करने नहीं आया हूँ, सेठ बनने आया हूँ'।

तब फिर भाई ने कहा, 'बिज़नेस में आना है? लेकिन फिर काम में लगे रहना पड़ेगा'। मैंने कहा, 'बिज़नेस में आप जितना कहोगे उतना करूँगा। आप कहोगे तो मुझे हर्ज नहीं है। आप जो कहेंगे वह करूँगा'। फिर भाई ने कहा, 'हाँ, बहुत अच्छा। तो ऐसा कर न, अपने बिज़नेस में आना हो तो आ जा। और कहीं पर मत जाना। उसके बजाय अपने घर पर ही रह और यहाँ काम करने आ जा। यह कॉन्ट्रैक्ट का काम कर, चल'।

परेशान होकर बड़े भाई ने लगाया बिज़नेस में

तब मैंने कहा, 'बहुत अच्छा। चलो, सूबेदार बनना तो रुक गया अपना'। स्वतंत्र बिज़नेस और घर का बिज़नेस तो फिर कोई हर्ज नहीं

है न! जब भी खर्चे के लिए पैसों की ज़रूरत होगी तब मिलेंगे। हाँ, अरे! होटल में जा सकते हैं, चाय-पानी पी सकते हैं, यह हो सकता है, वह हो सकता है।

यह मुझे बहुत अच्छा लगा, स्वतंत्र तो रह सकेंगे और ध्यान-व्यान करना हो मन में, सत्संग करना हो, किताब पढ़नी हो तो हो सकेगा। पढ़ते जाएँगे और काम करते जाएँगे।

उसके बाद ब्रदर परेशान हो गए कि अब यह उल्टे रास्ते जाएगा, उसके बजाय बिज़नेस में डाल दो। तब उन्हें मज़बूर होकर कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस में लेना पड़ा। तब मैं समझ गया कि अपनी दशा बदली है। शनि की जो दशा थी, वह उतर गई।

खुमारी वाले को सभी चीज़ें मिल आती हैं

इस तरह कॉन्ट्रैक्ट की लाइन में मैं दाखिल हो गया। फिर मैं हमारे घर के ही बिज़नेस में घुस गया और उसमें से कॉन्ट्रैक्टर बन गया, लेकिन सूबेदार नहीं बनना पड़ा। दबा नहीं किसी से भी, 'नौकरी नहीं करूँगा' कहा था। क्या यह मनुष्य जन्म किराए पर देने की चीज़ है? एक महीने का किराया कितना लेते हैं? दो हज़ार। तो कहा, रोज़ के साठ-पैंसठ रुपए का किराया हुआ न! इसके बजाय तो एक मशीन दे दें तो सरकार सौ रुपए किराया देगी। मशीन का किराया देती है या नहीं देती सरकार?

अतः मैं किराए पर नहीं गया, भाई! बैल का रोज़ तीस रुपया किराया आता है और इसका किराया पचास-साठ। तो भाई इसमें तेरा उपयोग हो रहा है! इस पर ज़रा सी भी शर्म नहीं आई तुझे? लेकिन क्या करे? कहाँ जाए बेचारा? उसके लिए तो *खुमारी* (रौब, इज़्ज़त) होनी चाहिए न! क्या होनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : *खुमारी* होनी चाहिए।

दादाश्री : ऐसा है कि *खुमारी* वाले को सभी चीज़ मिल जाती हैं! अहंकार वाले को नहीं मिलती। अहंकार और *खुमारी* में फर्क है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : है। फर्क तो है।

दादाश्री : *खुमारी* यानी रौब वाला।

जिसमें हाथ डाले, तुरंत ही उसमें एक्सपर्ट

प्रश्नकर्ता : फिर आप बड़ौदा रहने चले गए?

दादाश्री : हाँ, बड़ौदा। तो तुरंत ही बिज़नेस करना आ गया। यों ब्रेन अच्छा था। बिज़नेस में जहाँ हाथ डालता वहाँ मुझे करना आ जाता था, मुझे देर ही नहीं लगती थी। जो भी दो न, उसमें एक्सपर्ट होने में देर ही नहीं लगती थी। महीने भर में एक्सपर्ट हो जाता था।

हाथ डालते ही तुरंत करना आ जाता था मुझे। अभी अगर यहाँ पचास मोटेलें चल रही हों, तो मैं अकेला यहाँ बैठे-बैठे उनका मैनेजमेन्ट (संचालन) ओर्गेनाइज़ कर सकता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : मुझे और कुछ नहीं आता था लेकिन 'हाऊ टू ऑर्गेनाइज़', आपको लगता है कि ऐसी कोई पावर है?

प्रश्नकर्ता : है, दादा।

दादाश्री : इसलिए फिर छः महीने में तो सब ऑल राइट हो गया। उसमें एक्सपर्ट हो गया। यों ब्रेन अच्छा था न, इसलिए बिज़नेस में पकड़ ली लगाम, लगाम पकड़ ली।

फिर साल भर में लगाम हाथ में ही ले ली। दो सालों में तो पूरी सूझ पड़ने लगी, बहुत अच्छी सूझ पड़ने लगी, लेकिन स्वतंत्र काम चाहिए था। बिज़नेस में तो कोई कहने वाला नहीं था न! बड़े भाई तो मेरे भाई थे, उसमें कोई हर्ज नहीं था। बाकी, कोई और कहने वाला तो नहीं था न! उन्होंने मुझे सूझ पड़ने दी और फिर मुझे कभी डाँटा नहीं। इस तरह से सौंप दिया था न, जैसे कि मैं स्वतंत्र था इसलिए वह करना आ गया।

तो बिज़नेस में डेढ़ साल बाद तो भाई ने मुझसे कहा कि 'तू तो फर्स्ट नंबर ले आया, फर्स्ट! तू तो होशियार हो गया है!' और मेरे मन में भी पक्का हो गया कि होशियार हो गया हूँ! फिर मन में लोभ जागा कि 'पैसे कमाए। बिज़नेस अच्छा है'। इसलिए फिर उसमें डूब गए। बिज़नेस में मुझे रुचि आने लगी, पैसे कमाने का रास्ता मिला। फिर कारखाने लगाए और बाकी सब, ऐसे करके दिन बिताए।

बिज़नेस का ऐसा सब काम तो आता था। कॉमनसेन्स था न, तो सभी चीज़ों का विवरण कर लेता था। बचपन से ही विवरण (analysis) करना आता था लेकिन ये पढ़ाई के पोथे-किताबें-विताबें पढ़ना, यह क्या धांधली है? यह नहीं पुसाएगा न!

जो गुलामी में से मुक्त करे, वही वास्तविक ज्ञान

मैट्रिक में फेल हो गया। बोलो, अब मेरी समझ व अक्ल देख ली आपने?

प्रश्नकर्ता : इसमें अक्ल का काम नहीं है।

दादाश्री : लेकिन मैं कमअक्ल कहलाया कि कमअक्ल था इसलिए मैट्रिक में फेल हो गया लेकिन क्योंकि मैं कमअक्ल था इसलिए मुझे यह करना आ गया। पास नहीं हुआ, वर्ना मैं उसी में भटकता रहता और सूबेदार की नौकरी करनी पड़ती और सरसूबेदार झिड़कता।

जो ज्ञान हम जानते हैं वही हमें गुलाम बनाता है। फिर वह ज्ञान किस काम का? जो गुलामी में से मुक्त करे, उसे ज्ञान कहते हैं।

बल्कि अगर मैं पास हो गया होता तो सूबेदार बन जाता, वह तो बल्कि गुलामी थी। तब फिर सरसूबेदार मुझे झिड़कता रहता लेकिन कुदरत ने इज़्ज़त रखी। पूरी ज़िंदगी नौकरी नहीं करनी पड़ी। मुझे तो *ऊपरी* नहीं चाहिए था इसलिए नौकरी करने का मौका ही नहीं आया। विचार भी नहीं आया नौकरी करने का लेकिन एक बार सोचना पड़ा था कुछ देर के लिए, एक ही दिन के लिए तब जब यहाँ से रूठकर चला गया था, घर से।

तब बुद्धि के आशय में पढ़ाई नहीं थी, आत्मा ढूँढ निकालना था इसलिए मैट्रिक में फेल हो गया। बुद्धि के आशय में नौकरी करने की इच्छा नहीं थी कि 'बस, नौकरी नहीं करूँगा'। तो नौकरी नहीं की और कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस किया। यानी कि सबकुछ बुद्धि के आशय के अनुसार होता है।

व्यवहार से मैट्रिक फेल, अध्यात्म में टॉप

लोग मुझसे कहते, 'दादा, आपने कहाँ तक पढ़ाई की है?' वह साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ, देयर आर टू व्यू पोइन्ट्स, ऐसा सब कहते हैं न, इसलिए।

प्रश्नकर्ता : और वह शब्द भी आता है न, आपकी किताब में, 'डिस्चार्ज होने देना लेकिन चार्ज मत होने देना'।

दादाश्री : हाँ! ये इतने शब्द लेकिन लेंग्वेज हाई हो गई न! तब फिर सभी मुझसे पूछते हैं कि 'दादा तो बहुत हाइ लेंग्वेज बोलते हैं न, बहुत पढ़े-लिखे लगते हैं। ये दादा तो ग्रेज्युएट से भी बहुत आगे पढ़े होंगे'।

लोग मुझसे पूछते हैं कि 'दादा जी, आप कहाँ तक पढ़े हैं?' मैंने कहा, 'भाई, वह बात बताने में मज़ा नहीं है। ज़्यादा नहीं पढ़ा हूँ भाई'। तब कहते हैं, 'लेकिन कहिए तो सही कितना पढ़े हैं?' मैंने कहा, 'तो आपको कहाँ तक की कल्पना है?' तो कहते हैं, 'ग्रेज्युएट से भी आगे गए होंगे'। मैंने कहा, 'मैं बहुत ज़बरदस्त पढ़ा हूँ! मैं मैट्रिक फेल हुआ हूँ, 1927 (विक्रम संवत 1983-84) में'।

प्रश्नकर्ता : व्यवहारिक दृष्टि से मैट्रिक फेल हुए हैं लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से तो टॉप पर हैं।

दादाश्री : उसका अंत ही कहाँ आता! आध्यात्मिक दृष्टि से तो जहाँ तक कोई नहीं पहुँचा है, वहाँ तक पहुँचा हूँ इसीलिए तो कवि ने लिखा है, '*ऊपरी* के भी *ऊपरी,* फिर भी निमित्त!'

प्रश्नकर्ता : दादा, इतना ही पढ़े हैं फिर भी 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' बोल लेते हैं न?

दादाश्री : वह इस तरह से नहीं आता। मैट्रिक फेल वाले को नहीं आएगा ऐसा। यह तो अपने आप ही निकलता है।

यह मैं जो भी अंग्रेजी बोलता हूँ न, वह कहाँ से बोली जाती है वह मुझे भी पता नहीं है! यह किस तरह से निकलता है, वह तो मैं भी नहीं जानता!

[3]

उस ज़माने में किए मौज-मज़े

दो रुपए में बादशाह जैसे ऐश

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके बिज़नेस के समय की बात कीजिए ना?

दादाश्री : बिज़नेस में आने के बाद से हमें पैसों की कमी नहीं रहती थी। घर पर तो पैसे की कमी देखी थी। कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था, तो लोगों से उधार लाते और सरकार नकद देती थी। फिर बिज़नेस में पैसों की कमी कैसी भाई? अपने यहाँ कमी होनी चाहिए या उस उधार वाले के वहाँ?

प्रश्नकर्ता : उधार वाले के वहाँ।

दादाश्री : हाँ! अपने यहाँ कैसी कमी? अत: हमारे कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस में पैसों की कमी नहीं थी इसलिए जेब में पैसे रखे रहते थे। दो रुपए होते थे तो छ:-सात मित्र पीछे-पीछे घूमते रहते थे, पूरे दिन क्योंकि चाय-पानी-नाश्ता वगैरह करते थे। दो रुपए में तो शाम तक बहुत कुछ हो जाता था। आजकल तो दो सौ रुपए लेकर जाएँ तब भी नहीं होता।

हम 1925-26 में दो रुपए लेकर निकलते थे न, तो छ:-सात दोस्तों के साथ ही घूमते रहते थे पूरे दिन। फिर भी शाम को पैसे कम नहीं पड़ते थे।

हमारी जेब में खर्च करने के लिए एक-दो रुपए रहते थे न!

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : तो दो रुपए खर्च करते थे इसलिए छः-सात दोस्त साथ में घूमते रहते थे। वे 'हाँ जी, हाँ जी' करते रहते थे और हमें वह अच्छा लगता था। 'हाँ जी, हाँ जी' करने वाला।

प्रश्नकर्ता : दो रुपए में?

दादाश्री : हाँ। दो रुपए में तो छः-सात दोस्त पीछे-पीछे घूमते थे। तो पहले उन लोगों की स्थिति कैसी होगी? हमारे पास दो रुपए, उनमें से कुछ मिलेगा इस कारण से हमारे पीछे-पीछे घूमते रहते थे बेचारे। 'हाँ जी, हाँ जी' भी कहने लगते थे। अभी तक आपने ऐसा कोई सुख देखा है कि दो रुपए में इतने दोस्त आपके पीछे-पीछे घूमें, हं? घूमते हैं क्या पीछे? पहले तो मंदी बहुत थी न! दोपहर होती थी तो बड़ौदा जैसे शहर में भी हमारे गाँव के जो लोग थे, हमारे छः गाँव के परिचित होते थे, तो उनमें दो-चार लोग तो ऐसे भी निकलते थे कि दोपहर होते ही चाय पीने के लिए आ ही जाते थे। घर पर पत्नी से कहते थे कि 'चलो आज, वहाँ जाकर चाय पी आएँ'। यानी घर पर चाय बचाने के लिए एक मील तक चलते-चलते आते थे और वापस एक मील चलकर जाते थे। बचाया क्या? तो कहते हैं, 'चाय'। अभी है क्या कोई ऐसी झंझट? अभी तो चाय पिलाने पर भी खुशी नहीं होती, खाना खिलाने पर भी खुशी नहीं होती। उन दिनों तो कहीं दावत होती थी तो उससे चार दिन पहले से मन्नत मानते थे। खाना अच्छा बनता था न, तो सुबह से उनके मुँह में पानी आता रहता था। 'आज तो खीर खानी है, आज खीर खानी है'। और आजकल तो किसी को खाना खाने की पड़ी ही नहीं है न! यह खाना वगैरह खाना कब से बंद हो गया? रोज़ की दो-तीन चाय पीना शुरू हुआ तब से। पहले तो मिठाई चखी ही नहीं होती थी न! अब तो निरी शक्कर की चाय मिलती है इसलिए फिर स्वाद बिगड़ गया है सब का। पहले तो मीठा आता था तो जैसे भगवान मिल गए!

उन दिनों परवल एक रुपए रतल (454 gm) बिकते थे तो गायकवाड़ सरकार के वहाँ पर खाते थे।

प्रश्नकर्ता : राजा-महाराजा के वहाँ?

दादाश्री : हाँ, सयाजीराव महाराज के वहाँ। तो हम कभी नवटांक (60 ग्राम) लाते थे। फिर घर आकर उसकी फाँक करके एक-एक परवल के तीस-चालीस फाँक करते थे। अक्ल वाले का काम है इसमें। मोटी फाँक नहीं करते थे और फिर मन में कहते थे कि 'हाश, आज तो परवल की सब्ज़ी खाई, दो आने का नवटांक'। उसमें चार लोगों ने खाया। ऐसे फज़ीते थे सारे। अभी तो दस रुपए किलो लाते हैं, फिर भी वैसा नहीं मिलता। वैसा सब है ही नहीं। पहले जैसा खाने का कुछ भी है ही कहाँ?

जितनी पैसे की कीमत, उतनी ही इंसान की कीमत

दो पैसों की फर्स्ट क्लास चाय मिलती थी। इतनी अच्छी होती थी वह! तीन पैसे देते थे तो स्पेशल चाय देता था, फर्स्ट क्लास दूध वाली। फिर चाय भी कैसी!

प्रश्नकर्ता : अभी तो वैसी पीने को भी नहीं मिलती!

दादाश्री : साढ़े तीन रुपए में पाँच रतल का लिप्टन की चाय का डिब्बा। लिप्टन का पैक, डिब्बा लेते थे। उस चाय का एक कप पी लें न, तो नशा रहता था एक-दो घंटे तक तो। अभी तो ऐसी चाय ही कहाँ मिलती है? यह तो ठीक है। इसीलिए तब पैसे की इतनी कीमत थी। देखो ना, अब पैसों की कीमत ही नहीं है।

लक्ष्मी की कीमत बढ़ने के साथ ही इंसानों की कीमत भी बढ़ जाती है। जब लक्ष्मी का भाव बढ़ेगा तब यह रुपया रुपए जैसा फल देगा और तब इंसान अच्छे बनेंगे। अभी यह रुपया फल ही नहीं देता है न! हमारा तो कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था तो सात दोस्तों को दिन भर चाय पिलाते थे, घोड़ा गाड़ी में-बग्गी में बैठाकर घुमाते थे पूरे दिन। सब साथ में ही घूमते रहते थे। दो ही रुपयों में! और अभी तो सौ में भी पूरा न पड़े। वैसा मज़ा नहीं आता। अभी वैसे घोड़े भी देखने को नहीं मिलते हैं न! हम जो घोड़ा गाड़ी में बैठे हैं ना, वैसे घोड़े अब देखने को भी नहीं मिलते। घोड़े ऐसे, बिल्कुल राजा जैसे दिखाई देते थे! अब तो सबकुछ चला गया।

प्रश्नकर्ता : वह ज़माना चला गया।

दादाश्री : लेकिन फिर से आएगा।

रस-कस कम हुआ है फलों और अनाजों में

मैं बारह-पंद्रह साल का था तब खाने बैठता था न, तो फिर दाल पीने का मन होता था, तब चुपचाप दाल ले लेता था। वैसी दाल होनी चाहिए। इस दाल को तो मुँह से लगाना भी अच्छा नहीं लगता। इसलिए दाल खाता ही नहीं हूँ। यहाँ, किसी को वैसी दाल बनानी ही नहीं आती न!

अरहर में भी स्वाद व गुण कम हो गए हैं। इन सभी चीज़ों में स्वाद व गुण कम हो गया है। बिना स्वाद व गुण वाला माल है यह सारा और खाद भी रासायनिक खाद डालते हैं न! बिना खाद वाली कोई भी चीज़ है क्या, मुझे बताओ! बिना खाद वाली जो चीज़ है, वह मैंने देखी है। सेंजन की फली, कैथ (stone apple), आम वगैरह कुछ-कुछ तरह की चीज़ें हैं, जिनमें नहीं डालते हैं। हमारे कैथ तो मशहूर है। देखो, काम में लेने लगे हैं न अभी, पहले तो इतने कैथ नीचे गिरे रहते थे, यों ही सड़ जाते थे। जानवर भी नहीं खाते थे बेचारे। अभी एक भी कैथ कच्चा नहीं रहता है और वह कैथ तो कैसा था?

हम बचपन में ही जाते थे दस-बारह साल की उम्र में, तो सुबह-सुबह पाँच बजे जाते थे तब ऊपर से गिरते थे। इतना बड़ा नारियल जितना ही, अपना यह नारियल आता है न हरा! यों तोड़ा जाए न, पेड़ पर पका हुआ तो उसकी सुगंध देखी हो तो, आप खुश हो जाते। अभी तो लोग भी कैथ जैसे हो गए है न!

मुझे तो, अभी जो आम खाता हूँ न, वह अच्छा ही नहीं लगता। कितने ही सालों से आम खाता हूँ लेकिन मुझे संतोष ही नहीं होता किसी भी आम से, कोई ऐसा आम नहीं मिलता जिससे मुझे संतोष हो! क्योंकि मैं जब पंद्रह साल का था न, तब जो आम खाए थे, वे अभी भी मेरे मन में से भुलाए नहीं जाते कि 'ऐसे भी आम होते थे?' क्या

आम थे वे सारे! रत्नागिरी हाफ़ूस होते थे, वे बहुत मीठे होते थे और मिठास में अलग ही तरह के, मिठास का ही गुण रहता था। लेकिन अपने यहाँ देशी आम होते थे न? वे आम भी स्वाद में बहुत अच्छे लगते थे।

असल स्वाद को नहीं पहचानते आज के लोग

यह खरबूजे वाली बेचने आई थी न, तो मैंने पूरा ही ठेला देख लिया लेकिन एक भी खरबूजा मुझे अच्छा नहीं लगा क्योंकि मैं पुराने ज़माने का इंसान, खरबूजे को पहचान ने वाला इंसान कि यह मीठा है, यह फलाना ऐसा है, इसकी छाल ऐसी होनी चाहिए, ऐसी सुगंध आनी चाहिए! मैंने कहा, 'इन खरबूजों को कोई लेता है?' तब उसने कहा, 'अरे! चाचा, अभी एक घंटे में सभी बिक जाएँगे'। तब मैंने कहा, 'कैसे?' तो लोग बिल्कुल नासमझ हो गए है! उन्हें भान ही नहीं है कि सही माल कौन सा है! समझते ही नहीं हैं। 'मुझे तो तेरा एक भी खरबूजा अच्छा नहीं लगा। मैंने तुझे रोका, इसलिए ये चार आने ले जा लेकिन मुझे खरबूजा नहीं चाहिए' तब उस बेचारी ने मना किया। वह खानदानी थी न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो उसके बाद मुझे समझ में आया। लोगों को मिठास लगती है लेकिन मुझे क्यों मिठास नहीं लगती, इस भोजन में? ये सब्ज़ी वगैरह सब में मिठास क्यों नहीं लगती?

प्रश्नकर्ता : तो क्या पता चला?

दादाश्री : ये लोग जो खाते हैं न, उन्होंने वह स्वाद चखा ही नहीं है न! जैसे कि इंसान ने अगर भीड़ ही देखी हो तो उसे तो इस भीड़ में भी बहुत एकांत जैसा लगेगा। गाड़ी में खूब भीड़ हो, फिर भी मज़ा ही रहेगा, उसे भीड़ जैसा लगेगा ही नहीं और जिसने आराम देखा हो या जिसने कम भीड़ देखी हो, उसे तो वह भीड़ ही लगेगी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : वह सब तो खत्म हो गया है लेकिन फिर से आएगा वापस। चालीस-पच्चास साल से कड़वी बारिश हो रही है। बोलो, क्या अच्छा उगेगा उसमें? तीन साल से थोड़ी-बहुत मीठी बारिश होने लगी है। फिर से मीठा अनाज उगेगा, अच्छा वाला।

अलबेली नगरी मुंबई और ईरानी होटल की चाय

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके ज़माने की ऐसी कोई बात बताइए न?

दादाश्री : हम 1928 में मुंबई आते थे। उन दिनों मुंबई नगरी बहुत सुंदर थी और बहुत अच्छी लाइट थी। तो 1928 से अभी तक कितने साल हुए?

प्रश्नकर्ता : 56 साल हुए। (1984 में)

दादाश्री : उस समय कैसी अलबेली नगरी थी यह तो! हम 1928 में आते थे न, तो म्युनिसिपालिटी कितनी अच्छी समझदार थी। ज़रा सी भी गंदगी नहीं, साफ-सुथरा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत सफाई थी दादा।

दादाश्री : और अभी, या तो कहीं नाजायज़ कब्जा होता है या फिर म्युनिसिपालिटी का कोई घोटाला होता है लेकिन अभी तो ऐसा ही है अब।

प्रश्नकर्ता : घोटाले वाला।

दादाश्री : या तो एन्क्रोचमेन्ट होता है क्योंकि उन दिनों यहाँ बारह लाख जनसंख्या थी और अभी (1984 में) सत्तर लाख हो गई होगी।

प्रश्नकर्ता : एक करोड़ हो गई होगी अब तो।

दादाश्री : म्युनिसिपालिटी वाले भी क्या करें फिर?

तब यह नगरी कितनी सुंदर थी और हर एक चीज़ की कितनी फेसिलिटी मिलती थी और जगह-जगह पर दुकानें, ईरानी की होटलें, उसकी चाय पीओ तो मज़ा आ जाए।

प्रश्नकर्ता : ईरानी की चाय की बहुत तारीफ़ होती थी।

दादाश्री : हाँ, जगह-जगह, कोने-कोने पर मिलती ही थी। हर एक कोने पर ईरानी की दुकान होती थी।

ताजमहल होटल से भी अच्छी लगी ईरानी की चाय

प्रश्नकर्ता : ताजमहल होटल की चाय की भी बहुत तारीफ़ होती थी। आपने वह पी है, दादा?

दादाश्री : मैं एक दिन गया था ताजमहल में। ताजमहल में हमें नहीं पुसाता न! मैंने कहा, 'चलो ताजमहल की चाय पीते हैं'।

प्रश्नकर्ता : किस सन में?

दादाश्री : 1933 में, पचास साल हो गए हैं उस बात को। मैंने कहा, ''चलो, लोग 'ताजमहल, ताजमहल' कहते हैं तो हम भी वहाँ जाकर चाय तो पीए! देखा जाएगा।'' तो पैसे वगैरह लेकर गए थे। तो बारह आने चाय के लिए और हमने उस दिन वह चाय देख ली भाई। ये ताजमहल के ऐसे ठाठ हैं। ये सिर्फ जगह के और बड़ेपन के पैसे लेते हैं। बाहर जो चाय एक आने में मिलती है, उसी के वहाँ पर बारह आने लेते हैं। यह तो एटीकेट वालों का काम है! हमें तो ऐसा सब एटीकेट आता नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय में भी बारह आने लिए?

दादाश्री : बारह आने लिए थे। हम छ: लोग गए थे, तो साढ़े चार रुपए ले लिए। मैंने कहा, 'यह तो हमें नहीं पुसाएगा, इसके बजाय तो अपना ईरानी वाला अच्छा'।

प्रश्नकर्ता : ईरानी की चाय दो आने में मिलती थी।

दादाश्री : नहीं-नहीं! दो आने नहीं, एक आना। शुरू में एक आना था लेकिन एक आने में अच्छी...

प्रश्नकर्ता : सिर्फ चाय ही पीते थे या नाश्ता भी करते थे?

दादाश्री : उन दिनों बिस्कुट वगैरह नहीं थे इसलिए चाय के साथ पकौड़े होंगे लेकिन हम नहीं खाते थे। चाहे कैसी भी हो लेकिन ईरानी की चाय अच्छी, मुझे तो शायद उसका (ईरानी का) चेहरा देखने से ही चाय अच्छी लगती होगी।

गए पकौड़े खाने तीन मील दूर

प्रश्नकर्ता : पकौड़े तो आपको अच्छे लगते थे न, तो कहाँ खाते थे?

दादाश्री : मैं पकौड़े खाने गया था बचपन में। एक जगह पर तीन मील दूर पकौड़े बहुत अच्छे बनाते थे। वह झोपड़ी में बनाता था। वहाँ पर बाज़ार में अच्छी होटलें छोड़कर वहाँ भैयादादा के झोपड़े में खाने गए थे। खाने के बाद मैंने कहा, 'कहना पड़ेगा भाई! जिसका अच्छा हो वह दूर दुकान लगाए, तब भी चलती है'।

रास्ते में मिल रहे हैं तो यहीं खा ले न चुपचाप। तो कहते थे, 'नहीं, भैयादादा के वहाँ मज़ा आता है'। और तब व्यक्ति को वह टेस्ट याद रह जाता था कि ऐसा टेस्ट है उन पकौड़ों का। अगर किसी दूसरे के पकौड़े खिला दें, तब कहते थे 'ये उनके नहीं हैं। भैयादादा के नहीं हैं ये पकौड़े'। इतने याद रह जाते थे वे।

हमें भाती थीं जलेबियाँ लेकिन खीर से चिढ़ थी

प्रश्नकर्ता : आप होटल में जाकर और क्या खाते थे?

दादाश्री : काम पर जाने से पहले होटल जाते थे, और जलेबी बहुत अच्छी लगती थी तो सभी मित्र मिलकर, जलेबी का दोना मँगवाकर दो-चार खाते थे। यों आराम से नाश्ता करके हम काम पर जाते थे। लेकिन डायरी में होटल का खर्च नहीं लिखते थे, 'फुटकर खर्च' लिखते थे।

प्रश्नकर्ता : जलेबी की तरह दूसरी मिठाइयाँ भी भाती थीं?

दादाश्री : नहीं! एक बार बचपन में जब मैं खीर खा रहा था तब

उल्टी हो गई। अब उल्टी किन्हीं और कारणों से हुई, खीर के कारण नहीं लेकिन मुझे खीर से चिढ़ हो गई। उसके बाद से खीर देखते ही घबराहट होने लगती है। इसलिए जब मेरे घर पर खीर बनती थी तब मैं बा से कहता था कि, 'मुझे यह मीठा पसंद नहीं है, तो आप और क्या देंगे?' तब बा कहती थीं 'भाई, बाजरे की रोटी है। यदि तू घी-गुड़ खाए तो दे दूँ'। तब मैंने कहा कि, 'नहीं, मुझे घी-गुड़ नहीं चाहिए'। फिर जब वे मुझे शहद देती थीं, तभी खाता था, लेकिन खीर को तो छूता तक नहीं था। फिर बा ने मुझे समझाया कि, 'भाई, ससुराल जाएगा तब कहेंगे कि क्या इसकी माँ ने खीर नहीं खिलाई कभी? वहाँ तुझे खीर परोसेंगे और तू नहीं खाएगा तो खराब दिखेगा। तब फिर थोड़ा-थोड़ा खाना शुरू कर'। इस तरह से मुझे पटाया, लेकिन उससे कुछ बदला नहीं। वह चिढ़ घुसी तो घुसी।

फटी हुई धोती पहनी कला से

प्रश्नकर्ता : दादा, आपको पहले से ही किसी भी चीज़ का हल निकालने की बहुत कला आती थी, एकाध-दो घटनाएँ बताइए न!

दादाश्री : मुझे (फटे हुए) कपड़ों को सिलने की छूट थी लेकिन पैबन्द लगाने की छूट नहीं थी। बचपन में एक बार शादी में जाना हुआ। मैंने पहनने के लिए धोती ली, तो बा ने कहा, 'फटी हुई है भाई'। तो मैंने कहा कि 'मैं इस तरह पहनूँगा कि फटा हुआ दिखाई ही नहीं देगा'। तब मैंने फटी हुई धोती पहनी और बा को दिखाई लेकिन बा को फटा हुआ दिखाई ही नहीं दिया। तब बा ने कहा कि 'तू बहुत कला वाला है'। फिर भी, वे सारी कलाएँ *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) की करामातें हैं। पहले मुझे ऐसा लगता था कि यह मेरी करामात है और मैं उसी में रचा-बसा रहता था। लेकिन ज्ञान होने के बाद मैं समझ गया कि यह *पुद्गल* की करामात है। अरे, यह *पुद्गल* की करामात तो जड़ की करामात है। अरे, चेतन की कला ढूँढ निकाल न! *पुद्गल* की करामात तो बंदर भी ढूँढ निकालते हैं, वह तो बंदर भी करते हैं।

एक में से बनाए दो पान

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की *पुद्गल* की करामात भी हमें जानने में मज़ा आता है।

दादाश्री : बचपन में रोज़ पान खाने जाता था। तो एक दिन एक दोस्त साथ में था लेकिन मेरे पास पैसे तो एक ही पान के थे। तो क्या हो सकता था? लेकिन मैंने पान वाले से कहा कि तू रोज़ दो, डबल पान देता है तो आज तीसरा रखकर बनाना। पान वाले ने कहा 'वह ठीक लगेगा?' मैंने कहा, 'लगेगा'। तो तीन पान वाला बीड़ा लिया फिर उसमें से एक पान निकालकर दूसरा कत्था लगाया हुआ पान उस पर घिसकर दूसरा पान बनाया और दोस्त को दे दिया। हम बचपन से ही जागृति पूर्वक रहते थे। इस तरह से रहते थे कि हम से काँच के प्याले फूट न जाए।

उड़ा नहीं छींटा कपड़े धोने में

बचपन में हमारे वहाँ खेतों में पम्प रखते थे, बोइलर का पानी ठंडा करने के लिए। उसमें गरम पानी निकलता था, फ्री ऑफ कॉस्ट। गरम निकलता था इसलिए वहाँ पर कपड़े ले जाकर धो देते थे। फिर जो एक आखिरी कपड़ा बचता (पहना हुआ कपड़ा), उसे इस तरह से पानी धीमा करके एक तरफ लाकर धो देते थे ताकि छींटे वगैरह न उड़ें। ज़रा भी छींटे नहीं उड़ते थे। छींटे भी नहीं उड़ें, उस तरह से यों थोड़ा सा नीचे रखकर नहाए-धोए। अगर साबुन के छींटे उड़ते तो वापस धोना पड़ता। सत्रह साल की उम्र में इतनी बुद्धि तो थी। इतनी बुद्धि भी न हो तो किस काम का? लेकिन जैसा इसमें (व्यवहार में) होता है, वही तरीका यहाँ पर (ज्ञान में) भी है।

सभी कपड़े धो देते थे फिर। नहाने के बाद एक कपड़ा बचता था, उसे भी धोना तो पड़ता ही था न? लेकिन छींटे न उड़ें, उस तरह से संभालकर धो देते थे। पहले दूसरे कपड़े धो दिए साबुन डालकर, ज़ोर-ज़ोर से कूटकर। उस समय तो यदि साबुन उड़कर सिर पर लगता

तब भी कोई परेशानी नहीं थी लेकिन नहाने के बाद साबुन न उड़े, उस तरह से आखिरी कपड़ा धो देते थे। क्या धोना नहीं पड़ेगा?

जल्दी उठने के लिए की थी कला

प्रश्नकर्ता : और कौन से प्रयोग करते थे आप?

दादाश्री : एक बार जब मैं बाईस-तेईस साल का था, तब कहीं बाहर जाना था। घर पर कोई नहीं था, अकेला था। मुझे जल्दी वाली गाड़ी में जाना था। बड़ौदा से साढ़े छः-पोने सात बजे जो गाड़ी चलती है, उसमें। और हमें तो सुबह उठने की बहुत झंझट थी। ठेठ साढ़े ग्यारह तक नाश्ता चलता था रात का, तो सुबह-सुबह उठ नहीं पाते थे।

प्रश्नकर्ता : साढ़े ग्यारह।

दादाश्री : हाँ... सस्ते नाश्ते और होटल फर्स्ट क्लास और ऐसा नहीं, ऐसा सब गंदगी वाला नहीं! तब फिर मैंने सोचा, 'अब क्या करेंगे? अगर सुबह नहीं उठ पाए तो गाड़ी छूट जाएगी और कल सुबह जल्दी वाली गाड़ी में जाए बगैर कोई चारा नहीं है'।

बाईस साल की उम्र और खिलंदड़ ज़िंदगी, इसलिए फिर मैंने कला ढूँढ निकाली। मैंने कहा, 'नल खुला रखो और बाल्टी पर एक थाली रख दो' तो मैंने एक थाली इस तरह रख दी और नल खोलकर सो गया। इसलिए ताकि आवाज़ होती रहे।

तो फिर बाल्टी पर थाली रखी थी न, तो सुबह थाली पर पानी की धड़-धड़ आवाज़ हुई। वह भी पानी का समय खत्म होने पर बंद हो गई। और फिर में पाव घंटे-आधे घंटे बाद जगा। साढ़े सात बजे उठा तो गाड़ी जा चुकी थी। थाली रखी थी उसकी बहुत आवाज़ हुई लेकिन कोई जागे तब न! सुबह चूक गए और भाई अकेले थे इसलिए आराम से सूर्यनारायण के आने के बाद उठे।

प्रयोग तो सभी करके देखे। अब थाली की ऐसी आवाज़ होने पर

भी नहीं उठ पाए तो घड़ी की घंटी बजने से क्या होता? पहले की घड़ियों में घंटी घूमती थी न, वैसी घंटी वाली घड़ियाँ कम आती थीं। पहले चाबी वाली घड़ियाँ नहीं थीं। पहले तो घड़ी जेब में रखते थे न, वे वाली घड़ियाँ। वे (उठाने के) काम में नहीं आती थीं। जवानी में बाईस साल की उम्र और सुबह की नींद कितनी भारी होती है?

अब उन दिनों यह जाना नहीं था कि पाँच बार पम्पिंग की होती कि 'सुबह जल्दी उठना ही है, उठना ही है' ऐसे पम्पिंग करके सो गए होते तो पम्प फूटता। तय करके सो जा न कि मुझे छः बजे वाली गाड़ी से जाना है तो 'पाँच बजे उठ जाना है' ऐसा तय करके पाँच बार बोलकर और फिर सो जा चुपचाप ओढ़कर। उसके बाद एकदम से चौंककर जाग जाएगा। वह जो बोला उसका रिएक्शन आएगा, नहीं बोलोगे तो नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता ही है, ठीक है।

दादाश्री : हाँ, रिएक्शन आता है और जो बोला था, पम्प मारा था, वह पम्प तो फूटे बगैर रहेगा ही नहीं न! लेकिन ऐसा किए बगैर वहाँ पर बैठा रहा।

बचपन से ही देर से नहाने की आदत

प्रश्नकर्ता : आप जल्दी नहा लेते होंगे न, दादा?

दादाश्री : बचपन से ही मैं नौ, साढ़े-नौ, दस बजे नहाता था। तो अभी भी लोग मुझसे ऐसा कहते हैं कि 'दादा आपको जल्दी नहा लेना चाहिए'। ऐसा कहते हैं मुझे, तब मैं क्या कहता हूँ? 'हाँ, अब से ऐसा करूँगा'।

प्रश्नकर्ता : और जल्दी नहाने जाएँ तो फिर कहते हैं, 'दादा, आज क्यों जल्दी नहाने गए?'

दादाश्री : वह तो ऐसा ही होता है न! क्योंकि उसे व्यवस्थित की खबर नहीं है इसलिए ऐसा कह देते हैं न, बेचारे। और क्या वह

खुद जल्दी कर सकता है? बाकी, यह सारी रीत-रस्म, मेरी नहाने की आदत आज की नहीं है। व्यापारी बन गया फिर भी यह कभी बदला नहीं।

चलते समय धरती हिलती थी

अभी मेरा शरीर ऐसा दिखाई देता है लेकिन जब मैं सोलह साल का था न, तब मुहल्ले में जाता, तो आते-जाते वक्त लोगों को घर में भी सुनाई देता था कि यह धरती हिल रही है! सोलह साल का था फिर भी ज़मीन इतनी हिलती थी। वह तो उम्र की वजह से बिगड़ गया है यह पूरा शरीर।

प्रश्नकर्ता : आप बहुत सीधे चलते हैं और ये सब ऐसे झुककर चलते हैं।

दादाश्री : हाँ, इस तरह चलते हैं। तेज कहाँ चला गया है? ऐसे कहीं चलना चाहिए क्या? यों इस तरह रौब से चलना चाहिए। कोई दया करे ऐसा क्यों करें हम? किसी को दया दिखानी पड़े कि बेचारे ये बुज़ुर्ग बूढ़े हो गए हैं अब!

अहंकार की वजह से अँगूठा रखे रखा

मुझ में सभी अहंकारी गुण थे ही। एक बार मैंने अहंकार कर दिया था, मेरी क्षमता के अनुसार। उन दिनों तो भारी अहंकार था न!

बचपन में ही मेरे दोस्त मुझसे पूछते थे कि 'तेरे अँगूठे को दियासलाई से जलाऊँ तो तू सहन कर सकेगा?' मैं अँगूठा रखकर कहता था कि 'जला। तुझे ऐसा भाव हुआ है लेकिन उसमें यदि मुझे अभाव हो, तो मैं मूर्ख कहलाऊँगा'। दोस्त को ऐसा भाव हुआ कि तेरा अँगूठा कितना स्थिर रहता है? तो मुझे भी ऐसा भाव उत्पन्न हुआ, 'जा न, तू कहे उतना! तुझे जितनी दियासलाई जलानी हो उतनी जला, जब तक तू थक न जाए तब तक। दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं दियासलाई, तू कहे उतनी बार'। तब उसने कहा, 'मुझे यह प्रयोग करके देखना है'। उसने एक दियासलाई जलाई।

मैंने कहा, 'दो निकाल! जला!' और दो दियासलाई जलती रहीं तब तक अँगूठा स्थिर रखा, ज़रा सा भी नहीं हिला। चेहरे पर असर नहीं आया। उसके बाद उसने मुझसे कहा कि 'ना, अब मुझे नहीं करना है। अब रहने दो। आपको नहीं ललकार सकते'।

प्रश्नकर्ता : फिर छाला हो गया था न, दादा?

दादाश्री : वह तो होगा ही न, लेकिन यह मैंने देखा कि मुझ पर असर नहीं हुआ था। अहंकार क्या नहीं कर सकता? ये सारे क्षत्रिय अहंकार से ही सबकुछ भुगत सकते हैं। हम जाति से क्षत्रिय कहलाते हैं न! क्षत्रियों के परमाणु बहुत सख्त होते हैं। गला कटने पर भी असर नहीं होता। इसलिए भगवान ने कहा है कि क्षत्रियों के अलावा और कहीं भी तीर्थंकर गोत्र नहीं हो सकता।

कमाए पैसे नाटक के कॉन्ट्रैक्ट में

प्रश्नकर्ता : आप नाटक-सिनेमा देखने जाते थे?

दादाश्री : हाँ, नाटक देखे हैं मैंने तो, लेकिन इतने ज़्यादा नहीं। नाटक यानी छोटे-छोटे, जहाँ कम पैसे की टिकट थी वैसे। हमारे गाँव में नाटक देखे थे, भादरण गाँव में। यहाँ शहर में तो हमारा आना ही कहाँ होता था? हमारे गाँव में जो छोटी-छोटी कंपनियाँ आती थीं, वे नाटक देखे हैं।

तो हमने नाटक का कॉन्ट्रैक्ट रखा था। गाँव में नाटक कंपनियाँ आती थीं, उनका रोज़ का सौ रुपए में कॉन्ट्रैक्ट रख लेता था कि 'भाई! आज की रात के शो के मैं तुझे सौ रुपए दूँगा और सारी जोखिमदारी हमारी'। तो पाँच-पच्चीस रुपए मिल जाते थे। हम टिकट देते थे तो लोग आते थे सभी। अच्छा लाभ होता था। ये रावजी भाई सेठ भी थे भागीदार (पार्टनर)!

उस नाटक में विदूषक का रोल करने वाले भी होते थे। विदूषक यानी हँसाने वाले! आधा नाटक करते फिर कुछ देर के लिए हँसाने वाले लोग आते थे। 'मैं खापरो, तू कोडियो (समान प्रतिद्वंद्वी), जोड़ी बिच्छू

और साँप की, है क्या बुद्धि किसी के बाप की?' ऐसा सब बोलकर विदूषक हँसाते थे, तब जाकर ये नाटक वाले पैसे कमाते थे। यों कोई अमीर घर के नहीं थे कि यहाँ नाटक में पैसे दे? घर पर दूध में कमी करते थे।

फिर एक दिन मूसलाधार बरसात हुई। तब सब को कहलवा दिया कि 'आज मुफ्त है। चलो, चलो, जल्दी आ जाओ'। बरसात हुई तो कोई आ नहीं रहा था। तब मैंने कहा, 'बुला लाओ, आज आवाज़ दो'। तो ढिंढोरा पीटने वाले से कहा, तो फिर वह आवाज़ देकर आया। उसने कहा, 'आज मुफ्त है, जिसे नाटक देखने आना हो वह आए!' ऐसी है यह पूरी दुनिया!

एक बार तो पाँच-पच्चीस प्रेक्षक ही आए थे, तब भारी पड़ गया था। लेकिन वे कोई और होंगे जो दिवाला निकालें!

पहले लगा था कि सिनेमा से हिन्दुस्तान बिगड़ जाएगा

फिर वह नाटक वाला गाता है, 'देखा ज़माना यह कलियुग का, पाप का विस्तार है। मैं खापरो, तू कोडियो, जोड़ी बिच्छू और साँप की, है क्या बुद्धि किसी के बाप की?' मैं साँप जैसा हूँ और तू बिच्छू जैसा है, यानी क्या बुद्धि किसी के बाप की है? ऐसा है यह ज़माना! नाटक में ऐसा बोलते थे। हम पच्चीस साल के हुए उससे पहले तो सभी नाटक खत्म होने लगे। पूरा ज़माना बदल गया, क्योंकि सिनेमा जागृत हो गए थे न! उस अरसे में सिनेमा आ गए थे। नाटक का पतन हुआ और इसका उत्थान। तांबे और पीतल का पतन हुआ, कांसा और स्टेनलेस स्टील का उत्थान हुआ। अब जब स्टेनलेस स्टील का पतन होगा तब नई चीज़ें आएँगी। यह दुनिया इसी तरह चलती रहती है।

फिर मैंने सोचा, 'ये लोग तो दुनिया को बिगाड़ देंगे। सिनेमा वाले तो दुनिया को खत्म कर देंगे'। मुझे बल्कि ऐसा लगा, ये कैसे मूर्ख लोग हैं, ऐसा क्या ढूँढ निकाला? मुझे फूलिश (मूर्खता भरा) लगा। कैसे फूलिश हो गए हैं! आगे बढ़ने की बजाय इस ओर चले!

क्या यह ऐसी खोज है कि पूरे हिन्दुस्तान को माफिक आए? यह तो पतन की और ले जाएगा! तब लोग कहते थे कि 'अब लोग बिगड़ जाएँगे'। तब मैं भी कहने लगता था कि 'लोग बिगड़ जाएँगे'। लेकिन वह कुछ ही समय तक, साल-दो साल तक मुझे ऐसा रहा होगा कि हिन्दुस्तान को खराब करने वाली चीज़ है यह।

कलियुग आगे बढ़ रहा है

प्रश्नकर्ता : तो आप सिनेमा देखने गए थे?

दादाश्री : मैं बीस साल का था तब 1928 में एक बार सिनेमा देखने गया था। उस समय साइलन्ट सिनेमा थे, टॉकीज़ नहीं था। वहाँ पर मुझे प्रश्न हुआ था कि 'अरेरे! इस सिनेमा से अपने संस्कारों का क्या होगा? और क्या दशा होगी इन लोगों की?' सिनेमा देखने तो कई बार गया था, लेकिन एक बार ऐसा विचार आ गया कि यह सिनेमा तो अपने हिन्दुस्तान के सभी संस्कारों को ही हीन कर देगा!

पहले मैं सिनेमा का विरोधी था कि इससे तो लोगों के संस्कार खत्म होते जा रहे हैं। मुझे सिनेमा पर गुस्सा आता रहता था कि यह कलियुग घुस रहा है, आगे बढ़ रहा है, सिनेमा देखकर। फिर तो सिनेमा फैलने लगे और सिनेमा में लोगों की रुचि बढ़ी, तब मैं समझ गया कि कलियुग तेज़ी से आ रहा है। रात को चने लेने भेजो तो नहीं मिलते हैं न! दो बजे?

प्रश्नकर्ता : दो बजे नहीं मिलते, बारह बजे तक मिलते हैं।

दादाश्री : चने तो हैं। बेचने वाले भी हैं, सब है लेकिन काल बदल गया है न! क्या हुआ? चने वाले की दुकान पर जाकर अगर हम आवाज़ लगाएँ कि 'भाई, चने दो'। तो कहेगा, 'सुबह आना, भाई। अभी यह कोई समय नहीं है'। इसी प्रकार समय बदलता है न! महावीर भगवान को गए पच्चीस सौ साल पूरे होने को आए। तब ज्ञानी पुरुष नहीं मिले थे। मिला था कोई? क्योंकि काल बदल गया है अब। लेकिन दुनिया एकदम से बदल या पलट नहीं जाती है। उसके बाद उसका असर होता रहता है। अब उल्टे असर हो रहे हैं।

फिर दूसरा विचार आया कि 'क्या ऐसा ही होना है इस हिन्दुस्तान का? क्या इस विचार का कोई उपाय है अपने पास? कोई सत्ता है अपने पास? कोई सत्ता तो है नहीं, तो फिर यह विचार अपने काम का नहीं है। जिसकी सत्ता हो, वह विचार काम का। जो विचार सत्ता के बाहर हो फिर भी अगर उसके पीछे लगे रहें तो वह इगोइज़म है'।

एकांत में बैठने पर अंदर से मिला जवाब

फिर एक जगह एकांत में बैठकर सोचा, बहुत खटका, उसके बाद अंदर से जवाब मिला, फिर उससे मुझे पता चला। अंदर से मुझे धक्का लगा कि 'नहीं! ऐसा नहीं है'।

उन दिनों हमें ज्ञान नहीं था, ज्ञान तो 1958 में हुआ। 1958 में ज्ञान हुआ उससे पहले तो अज्ञान ही था न! क्या अज्ञान किसी ने ले लिया था? लेकिन तब अज्ञान में वह भाग दिखाई दिया कि 'जो चीज़ उल्टे का जल्दी से प्रचार कर सकती है, वह सीधे का भी उतनी ही तेज़ी से प्रचार करेगी। इसलिए सीधे के प्रचार के लिए ये साधन बहुत अच्छे हैं। जो साधन स्पीड से कलियुग लाते हैं, वही साधन स्पीड से कलियुग को निकाल देंगे'।

जो बिगाड़ने वाले संयोग हैं वही सुधारेंगे

साथ-साथ यह भी विचार आया था कि जो चीज़ इतनी स्पीड से देश को संस्कारहीन कर देती है, वही चीज़ उतनी ही स्पीड से संस्कारी भी बना देगी। जो बिगाड़ने वाले संयोग हैं, वही सुधारेंगे। यानी जितनी स्पीड से बिगाड़ते हैं उतनी ही स्पीड से सुधारेंगे और ऐसा ही होगा, देखना न!

ये साधन ही हमें संस्कार वाले बनाएँगे। उसमें साधनों का दोष नहीं हैं, वे तो मात्र निमित्त हैं। इसलिए साधनों की परेशानी नहीं है, साधन भले ही फैलें।

फिर सॉल्यूशन मिला कि ये जो खराब करने के साधन आए हैं

वही साधन हिन्दुस्तान को सुधारेंगे और उन्नति करेंगे। अत: ये रेडियो-वेडियो, टेपरिकॉर्ड वगैरह ही सुधारेंगे फिर से। यही सब साधन हिन्दुस्तान के लिए कल्याणकारी बन जाएँगे।

अब ये सिनेमा वगैरह सब सीधा काम करेंगे। जब यह सहन नहीं होगा तब ये सारे सीधा काम करेंगे। ऐसा सब तब सोचा था। तब अंदर से जवाब मिला। उसके बाद उनके प्रति बैर नहीं रहा। लेकिन जब 1958 में ज्ञान प्रकट हुआ तभी से उसके बारे में बिल्कुल भी विचार नहीं आए थे।

जिन साधनों ने हमारा विनाश किया, वे ही साधन हमें सुधारने के बहुत बड़े, अच्छे साधन हैं। वर्ना क्या रोज़ उपदेश देकर कुछ बदल सकेगा? इस तरह अखबारों से कुछ बदल सकेगा? उसे तो ये साधन ही तेज़ी से वापस ला देंगे। ये साधन कितने बड़े हैं।

प्रश्नकर्ता : ये साधन बहुत बड़े हैं इसलिए उतनी ही स्पीड से सुधार देंगे।

दादाश्री : उतनी ही स्पीड से सुधार देंगे। इसलिए कोई भी चीज़ नुकसानदायक नहीं है। जब ऐसा काल आता है तभी नुकसान होता है।

ये साधन कल्याण के बड़े निमित्त बनेंगे

प्रश्नकर्ता : दुनिया में आप ही एक धर्मात्मा होंगे, सिनेमा को भी अच्छा बताने वाले!

दादाश्री : यह तो अच्छी चीज़ है। वीडियो चलाने पर क्या होता है? दादा बातें करते हुए दिखाई देते हैं न? देखो न, नहीं तो दादा कैसे दिखाई देते? यह देखो न, दादा जैसी ही बातें सुनाई देती हैं न?

आज ज्ञानी पुरुष के हाथों (औरंगाबाद में) सिनेमा थिएटर के ओपनिंग के लिए कैंची रखी गई, उस पर भी मुझे आश्चर्य होता है! इस सिनेमा के ओपनिंग पर से दर्शन में ऐसा आता है कि अपना ज्ञान यहाँ से (इस माध्यम से) प्रकाश में आएगा! क्योंकि यह साधन, संस्कारों को

प्रकाशमान करने के लिए एक ज़बरदस्त साधन है! इसके पीछे बड़े कॉज़ेज होंगे न? मुझे भी आश्चर्य होता है!

प्रश्नकर्ता : पेपर में भी अभी सारी खराब बातें ही आती हैं। मन बिगड़ जाता है पढ़कर।

दादाश्री : अब पेपर इतना नुकसानदायक नहीं है क्योंकि जब संसार अच्छे भाव में आएगा न, तब इस पेपर में अच्छी-अच्छी बातें पढ़ेंगे। तब उसके भाव फिर से बहुत सुंदर भी हो जाएँगे। पेपर वीतराग है।

हरिजनों का तिरस्कार अच्छा नहीं लगता था

प्रश्नकर्ता : उस ज़माने की ऐसी कोई बात थी जो आपको अच्छी नहीं लगती थी?

दादाश्री : अभी तो ये पुण्यशाली पैदा हुए हैं सारे कि इन्होंने डॉलर देखे। क्योंकि दानत अच्छी है, तिरस्कार नहीं है लोगों के लिए। हमारी प्रजा तो कहाँ तक बिगड़ी हुई थी! 'अरे, हरिजन को क्यों छुआ?' कोई बच्चा हरिजन को छू ले भूल से, उस पर उसे झिड़क देते थे, 'तूने क्यों छुआ उसे?' ऐसी प्रजा! यह तो, ज्ञानी हूँ इसलिए क्या बोलूँ? वर्ना अगर राजा होता तो गोलियाँ चलवा देता। ऐसा करते हो सब? चैन से जीने भी नहीं देते। कुत्ते-बिल्ली घर में घुस जाएँ तो चलता है, और इन हरिजनों का क्या? ये बेचारे पूरे गाँव की सफाई करने आते हैं, ये सब सफाई करने आते हैं, वे सेवा करने आते हैं गाँव की। उसके बदले में देना-करना तय किया होता है थोड़ा-बहुत, उनका घर चले उतना लेकिन उसके लिए नियम क्या होता था? यहाँ पर गले में *कोडियुं* (कटोरा) बाँधना पड़ता था। थूकना हो तो नीचे नहीं थूक सकते थे, *कोडियुं* में थूकना पड़ता था और पीछे उनके पैरों के निशान पड़ते थे, बूट तो नहीं होते थे बेचारों के पास। उनके पैर ज़मीन पर पड़ते थे तो उसे नुकसानदायक माना जाता था, इसलिए उनके पीछे *झेणु* (बुहारी) बाँधते थे ताकि पैरों के निशान मिट जाएँ। वह आगे चलता था और पीछे-पीछे *झेणु* चलता था। *झेणु* आप समझते हो न?

प्रश्नकर्ता : झाडू।

दादाश्री : झाडू नहीं, *झेणु*। *झेणु* मतलब ये कंटीली झाड़ियाँ होती हैं न, ये जो बाड़ में उगे रहते हैं, वे बंधवाते थे। वे तो अन्-ईवन होती हैं। आप जो कह रहे हो न (झाडू), वह तो ईवन (एक रूप) होती है। यह तो कैसा होता है? झाडू तो रेग्युलर स्टेज में होता है, लेकिन ये तो *झेणु* बंधवाते थे।

अब इतना तिरस्कार! मुझे तो बहुत बुरा लगता था कि ये किस तरह के लोग हैं!

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा देखा था दादा, अपने समय में?

दादाश्री : देखा था। यह सब देखकर मैं थक गया था। मेरा दिमाग़ खिसक जाता था। मैं तो क्षत्रिय पुत्र हूँ। मुझे गुस्सा भी आता था। 'कैसे लोग हैं? यहाँ कहाँ मेरा जन्म हुआ?'

तो हरिजनों को तो आगे *कोडियुं* और पीछे *झेणु* बाँधना पड़ता था। हम उच्च जाति के और आप निम्न जाति के!

इसलिए हमें कहना पड़ा है कि 'हे भयंकर नर राक्षसों, अभी तो आपको बहुत भुगतना पड़ेगा। अगर कुत्ता आपके घर में चक्कर लगा जाए, बिल्ली का मुँह लगा दूध आप पी लेते हो। वह चलता है और मनुष्य पर ऐसा भयंकर अत्याचार!' क्या इसमें न्याय-अन्याय देखना ही नहीं है? ढूँढने पर भी हिन्दुस्तान में मानवता कहाँ मिलेगी?

तिरस्कार से हुआ हिन्दुस्तान दुःखी

अभी के लोगों में मोह बढ़ गया है इसलिए प्रजा हो गई है डाउन। डाउन होने से क्या फायदा हुआ? वे सारे तिरस्कार-विरस्कार चले गए। इसलिए मैं तो खुश हुआ कि अच्छा हुआ यह डाउन हो गया। अब जो डाउन है उसे चढ़ने में देर नहीं लगेगी लेकिन तिरस्कार वगैरह जैसा पागलपन चला गया है पूरी तरह से। नोबल हो गए हैं, नोबिलिटी आ गई है। बहुत लाभ हुआ है। अंग्रेज वगैरह यह सब मिले न, तो बहुत

अच्छा हुआ और गांधी जी ने भी सील लगा दी। उसमें हरिजनों के साथ होने वाला वह तिरस्कार खत्म हो गया। वर्ना जब वे लोग ब्राह्मणों के यहाँ खाना खाने बैठते न तब, 'देख भाई छूना मत, हं'। ऊपर से, इतने ऊँचे से परोसते थे।

प्रश्नकर्ता : दादा! स्कूलों में भी ऐसा था। पानी पीना हो तो ब्राह्मण के प्याले, पटेल के प्याले, पानी की प्याऊ होती थी न, वहाँ प्यालों पर पेपर चिपका रहता था कि ब्राह्मण के प्याले, बनिए के प्यालों, पटेल के प्याले।

दादाश्री : हाँ, वहाँ पर ऐसा था। मुझे तो शर्म आती थी कि 'भाई, ऐसा खाना!' मैं मना कर देता था कि 'मुझे नहीं खाना है, भाई'। वे ऊपर से परोसते थे। शर्म नहीं आती तुम्हें? तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार। इसीलिए दु:खी है अपना हिन्दुस्तान। तिरस्कार से दु:खी है। इन हरिजनों का और सभी निम्न वर्ण हैं न, सभी का भयंकर तिरस्कार किया है। एक ओर स्त्रियों को गंगा का रूप कहते हैं, और फिर विधवा मिल जाए तब ऐसा कहते हैं कि 'मुझे अपशकुन हो गया'। तो भाई! गंगा का रूप क्यों लिखता है? लिखने में तो बहुत वीर हैं। कोई तो समझेगा कि गंगा जी यहाँ पर आई हैं!

प्रश्नकर्ता : शादी में भी नहीं जाते। ऐसे तो कई सारे बुरे रिवाज़ थे।

दादाश्री : हाँ, सारे रिवाज़, कचरा सारा।

बचपन में गांधी जी को सुनने गए थे

प्रश्नकर्ता : आप जब छोटे थे तब गांधी जी का बहुत प्रभाव था, तो आपका उनके साथ का कोई अनुभव है क्या?

दादाश्री : 1921 में मैं जब तेरह-चौदह साल का था तब गांधी जी ने सभा में भाषण दिया था। तब सुनने गया था। वहाँ गांधी जी के दोनों तरफ सिंह जैसे दो लोग, ऐसे बैठाकर रखते थे, उन मियाँ भाईयों को...

प्रश्नकर्ता : मुहम्मदअली और शौकतअली।

दादाश्री : मुझे तो समझ में नहीं आता कि ये वणिक भाई मोढ, इन्होंने इन दो सिंहों को कैसे काबू किया होगा? ऐसे थे कि उन सिंहों को देखकर ही डर लगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दाढ़ी-वाढ़ी थी।

दादाश्री : अरे! शरीर भी बहुत मज़बूत था।

प्रश्नकर्ता : हाँ, और तब गांधी जी कठियावाडी पगड़ी पहनते थे।

दादाश्री : पगड़ी पहनते थे उन दिनों, टोपी-वोपी नहीं। गांधी जी ने कहा, 'अभी तो यह पहली लपेट छोड़ी है, तभी से गवर्नमेन्ट को घबराहट हो गई है। अभी तो दूसरी लपेट छोड़ना बाकी है'।

मैं सोच में पड़ गया। कहना पड़ेगा, इस काठियावाड़ी की लपेट! और आंटा एटला रांटा (जितनी लपेट उतने घुमाव)। विदेशी कपड़ों के बाइकॉट में बहुत सारे अति सुंदर कपड़े जला दिए थे।

प्रश्नकर्ता : होली ही जलाते थे न!

दादाश्री : आल्पाका के कोट! वे जगमग-जगमग होते थे!

प्रश्नकर्ता : तब लॉन्ग कोट पहनते थे न, सभी लोग!

दादाश्री : उन दिनों धोती भी फॉरेन से ही आती थी न यहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा! मैनचेस्टर की धोतियाँ।

दादाश्री : हाँ, मैनचेस्टर की धोतियाँ। अपने यहाँ तो वहीं की धोतियाँ पहननी पड़ती थीं। हम भी मैनचेस्टर की धोतियाँ पहनते थे न! यह कमीज़ भी मैनचेस्टर का और टोपियाँ बेंगलोर से आती थीं। बेंगलोर की टोपी इतनी बड़ी, मियाँ भाई पहनते हैं, वैसी। आज तो आल्पाको दिखाई ही नहीं देता, लेकिन उन दिनों आल्पाको पहनने को मिलता था। क्योंकि पैसा सस्ता और सभी चीज़ें अच्छी मिलती थीं।

पगड़ी की एक लपेट खोली तो सरकार काँप गई

'यह एक लपेट खोली है' ऐसा 1921 में गांधी जी ने कहा था। उन्होंने पगड़ी की एक लपेट खोली तब गवर्नमेन्ट हिल गई थी, दूसरी लपेट खोलेंगे तब क्या होगा? वह तो मैंने ढूँढ निकाला कि यह लपेट वाले इंसान हैं। काठियावाड़ी के लपेट का मतलब क्या है, गवर्नमेन्ट समझ नहीं सकती लेकिन मैं तो ठहरा गुजराती, इसलिए समझ गया।

अलग तरह की खोज हमारी

1922 में जो जन्मे वे पजामे वाले और 1921 तक जो जन्मे वे धोती वाले, इस तरह दो भाग हो गए थे उन दिनों। यह मेरी अलग तरह की खोजबीन थी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : गांधी जी ने होली जलाई थी वहाँ पर, मैनचेस्टर के माल की, परदेशी माल की। हम सभी ने होली जलाई थी।

प्रश्नकर्ता : तब विठ्ठल भाई ने मना किया था। नया मत खरीदना लेकिन होली मत जलाओ।

दादाश्री : ऐसा है न, उसमें सभी लोग ऐसे नहीं थे जो जला दें। यह तो अमीरों ने थोड़ी-बहुत टोपियाँ वगैरह सब डाला था उसमें। लोग भी क्या कोई कच्ची माया हैं? लेकिन दूसरा क्या हुआ कि यह जो जला न, उससे लोगों पर असर हो गया कि यह माल संभालकर रखने जैसा नहीं है। इतना तो समझ में आ गया।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसका असर हो गया।

गांधी जी ने दिखाया और बदला प्रजा को

दादाश्री : अत: उन्होंने जो जलवाया वह अच्छा किया। विठ्ठल भाई ने मना किया लेकिन अंत में जलाया न, वह अच्छा काम किया। विठ्ठल भाई हिसाब लगा रहे थे कि इससे क्या लाभ होना है? और ये

गांधी जी तो बहुत तेज़ थे, लपेट वाले इंसान! विठ्ठल भाई ने लपेट नहीं देखी थी। उनका तो सीधा बेरिस्टरपना। विठ्ठल भाई और वल्लभ भाई, दो सिंह थे, वे दोनों भाई तो चरोतर के!

फिर लोगों में जागृति आई। गांधी जी ने नमक के लिए सत्याग्रह किया, नमक में से भी खून दिखाया, निकाल-निकालकर और लोगों ने खून देखा तो शूरवीर बन गए। जब तक खून नहीं देखते, तब तक शूरवीर कैसे बनते? खून देखा न, इसलिए प्रजा सरकार के विरुद्ध हो गई कि 'सरकार बहुत गलत है। देखो न, मार दिया लोगों को'। मूल कारण कोई नहीं देखता, न्याय नहीं देखता। लोग तो यही देखते हैं कि क्या हुआ। क्या देखते हैं? यानी गांधी जी को जो दिखाना था, वह दिखा दिया सभी को। इस तरह प्रजा को बदला।

मूलत: गांधी जी निर्ममत्वी थे न! कुछ लोग तो गांधी जी को कुछ भी गालियाँ बकते थे। आज अगर आप वे सुनो तो आपको आश्चर्य होगा! 'बेटों के नाम दो तो मिलें कर दी हैं,' ऐसा लोग कहते थे। अब पच्चीस प्रतिशत पब्लिक सही समझती थी कि 'गांधी जी अच्छे हैं'। तो पचहत्तर प्रतिशत कहते थे कि 'बहुत खराब हैं। उन्होंने बच्चों के लिए मिलें बनवा दीं'। इस बात पर झगड़े होते थे, अंदर ही अंदर, वाद-विवाद। अपने मुहल्ले में बैठे-बैठे भी लड़ पड़ते थे लोग। गांधी जी तो न जाने कहाँ चले गए और झगड़ा रह गया!

वल्लभ भाई ने सर्व प्रकार की ममता छोड़ी

प्रश्नकर्ता : वल्लभ भाई के बारे में तो हमने सुना है कि सिंह थे।

दादाश्री : वे अकेले ही नहीं, सरदार और विठ्ठल भाई दोनों ही भाई वैसे थे। बाकी दो भाई और भी थे लेकिन ये दो भाई उसी तरह के थे। क्योंकि दोनों भाईयों ने सिर मुंडवाया हुआ था।

प्रश्नकर्ता : सिर मुंडवाया हुआ था?

दादाश्री : बाल रखे थे और सिर मुंडा हुआ था। सिर पर बाल थे इतने-इतने बड़े लेकिन सिर मुंडवा दिया था। इससे लोग चौंक गए

कि जब बाल हैं तो फिर क्यों मुंडवा दिया? यह सिर मुंडवाने का मतलब क्या है? सर्व प्रकार की ममता छोड़ देना।

प्रश्नकर्ता : सर्व ममता छोड़ देना?

दादाश्री : हाँ... सिर्फ देश के पीछे पड़े थे ये दोनों भाई। जब उनकी वाइफ का तार आया तब भी कहा, 'कोर्ट में गए हैं'।

लोह पुरुष ने बाँधी मेंढ़कों की पाँचसेरी

प्रश्नकर्ता : सरदार वल्लभ भाई पटेल तो बहुत ज़बरदस्त थे।

दादाश्री : ज़बरदस्त पुरुष!

प्रश्नकर्ता : और हिन्दुस्तान का कल्याण भी...

दादाश्री : फॉरेन वालों ने कहा कि लोह पुरुष हैं! चर्चिल भी समझ गया कि वे लोह पुरुष थे और इन सभी राज्यों को पलभर में एक कर दिया। सभी फॉरेनर्स का यही मत था कि इस हिन्दुस्तान के राज्य कभी भी एक नहीं हो सकते।

प्रश्नकर्ता : यदि सरदार नहीं होते तो नहीं हो सकता था।

दादाश्री : नहीं! फॉरेन वाले क्या मानते थे यहाँ के राज्यों को कि ये तो मेंढ़क की पाँचसेरी जैसा होगा। मेंढ़क की पाँचसेरी बनानी हो न, तो नहीं बना सकते। क्योंकि यहाँ से डालें तो वहाँ से उस तरफ से कूदकर बाहर निकल जाते हैं। पाँचसेरी पूरी नहीं हो सकती। तो इन लोगों ने ऐसा माना था कि इन सभी राज्यों को बाँधते समय यहाँ पर इस तरफ बाँधेंगे तो दूसरी तरफ वाले मुकर जाएँगे, निकल जाएँगे, और शांति से बैठे थे। ज़रा भी विचलित नहीं हुए लेकिन तब इन्होंने उन्हें बाप बनाकर मारा। हर एक स्टेट वाले से कहा 'मैं तेरा फादर हूँ'। ले, बाप बन गए। बाप बनकर गद्दी ले ली तेज़ी से। उनकी आँखों में ज़बरदस्त निर्ममत्व दिखाई देता था, शुद्ध। और निर्ममत्व ही परमात्मा हैं, उससे आगे अन्य किसी परमात्मा को कहाँ लेने जाएँ?

[4]

नासमझी में गलतियाँ

पार्टनर को बनाया बुद्धू

यह ज्ञान होने से पहले मुझे शरारत करने की बहुत आदत थी। एक बार मेरे पार्टनर सी. पटेल के साथ घूमने जा रहा था। उन्होंने कहा कि, 'आप सब बताते हो तो यह बताओ कि यह पौधा किस चीज़ का है?' मैंने कहा, 'इलायची का'। उस पर छोटी-छोटी फुनगी आई थीं। उन्होंने मान भी लिया। बाद में फिर घर गए और बुज़ुर्गों से बात की कि 'यहाँ पर इलायची बहुत होती है'। तब उन्होंने पूछा, 'अरे! किसने बताया?' तब उन्होंने कहा, 'मेरे पार्टनर ने बताया, उस अंबालाल ने'।

तब वे बुज़ुर्ग मेरे पास आए और मुझसे कहा कि 'अरे, इलायची कहाँ उग रही है?' तब मैंने कहा कि 'मैंने तो उसे बुद्धू बनाया, लेकिन आप बुद्धू क्यों बने?' इलायची तो पौधे पर नहीं लेकिन जड़ में उगती है।

अब गलती समझ में आती है, मज़ाक उड़ाने की

प्रश्नकर्ता : आपके बारे में कहा जाता है कि आप तो ऐसे ही शरारती थे। आपने और कैसी शरारतें की थीं?

दादाश्री : अरे, कई तरह की शरारतें! बच्चे जैसी शरारतें करते हैं, वैसी सभी।

प्रश्नकर्ता : बताइए न दादा, थोड़ा-बहुत, कैसी शरारतें की थीं?

दादाश्री : मज़ाक उड़ाते थे लोगों का और ठिठोली-विठोली

वगैरह। मुझे मज़ाक उड़ाने की बहुत आदत थी। क्या आपने बचपन में किसी का मज़ाक उड़ाया है? मैंने तो बहुत उड़ाया है, भाई।

मुझे तो अभी भी वह सब नक्शे की तरह दिखाई देता है। जैसे नक्शे में न्यूयोर्क दिखाई देता है, शिकागो दिखाई देता है वैसा दिखाई देता है। इसलिए मन में ऐसा होता है कि, 'अरेरे! कैसे-कैसे दोष! मज़ाक यानी बहुत नुकसानदेह नहीं, लेकिन सामने वाले के मन पर तो असर होता था न! सामने वाले को दु:ख होता था न बेचारे को, लेकिन अब उस समय वह हमें पता ही नहीं था न, होश ही नहीं था न!

तो हम भी पुराने मंदिर वालों का (बुज़ुर्गों की) मज़ाक उड़ाते थे। हम भी बूढ़े बुज़ुर्ग लोगों का मज़ाक उड़ाते थे। तो क्या अब मैं बूढ़ा नहीं हूँ? क्या कोई मेरी नहीं उड़ाएगा? उन्हें बुरा लगता था फिर भी मज़ाक तो उड़ाते ही थे न! बच्चों को क्या?

अब मेरी उम्र वालों की आँखें तो बेचारों की कमज़ोर हो चुकी होती है। अगर लोग मेरे कमरे में दो-चार पिल्ले छोड़ दें तो मेरी क्या दशा होगी? वैसा ही उन बूढ़े बुज़ुर्गों को हुआ होगा, जब हम वहाँ पर पिल्ले छोड़कर आ जाते थे। अब मैं सोचता हूँ कि 'ऐसा कैसा किया हमने? यदि कोई हमारे साथ ऐसा करें तो क्या होगा?'

फिर वे बुज़ुर्ग पूरी रात चिल्लाते रहते कि 'ये बच्चे मर भी नहीं जाते। मेरे यहाँ पिल्ले छोड़ गए'। लेकिन अब समझ में आता है कि यह सब गलत किया था। उन दिनों कैसी भूलें की थीं! बचपन में, छ:-सात साल की उम्र में तब क्या नहीं करते बच्चे?

सीखे गलत गुरुओं से मज़ाक उड़ाना

प्रश्नकर्ता : दादा, आप छोटे थे तब से गड़बड़ी वाले थे?

दादाश्री : सभी गड़बड़ी वाले! मैं अकेला ही ऐसा नहीं था।

प्रश्नकर्ता : आप सभी बातों में अव्वल लगते हैं। उसी तरह, जैसे ज्ञान के शिखर पर आ पहुँचे।

दादाश्री : मुझे ज़रा ज़्यादा समझ में आता था यह सब। लेकिन यह सब तो गलत है न! अभी, मेरी तो आँखें हैं लेकिन अगर किसी की आँखें न हों तो उसकी क्या दशा होगी? छिहत्तर साल की उम्र में जब पैर न चलें, बाकी कुछ भी न चले, (ऊपर से) उन चाचा को पकड़ना भी पड़ता था। एक चाचा को दोनों ही आँखों से दिखाई नहीं देता था। वहाँ पर भी पिल्ले छोड़ दिए थे। गलत है न! इस तरह का बहुत पागलपन था। हमारी बचपन की ज़िंदगी देखते हैं तो बहुत बुरा लगता है। उन बुज़ुर्गों की कैसी दशा हुई होगी?

बुढ़ापा यानी पुराना मंदिर! उनकी क्या दशा होती होगी? वह नए मंदिर वालों (जवान लोगों) को क्या पता चले? बूढ़े लोग जब ऐसे-ऐसे करके चलते थे न, तब उसी तरह उनके पीछे चलकर मज़ाक उड़ाया है लेकिन पता नहीं था कि जब यह मंदिर पुराना हो जाता है तो क्या दशा होती है?

मज़ाक उड़ाना कहाँ से सीखते हैं? अपने इन गुरुओं से (आसपास वाले लोगों से)! जो भी संयोग मिलते हैं, वे सब हमारे गुरु। वे जैसा करते थे, हम भी वैसा ही करते थे। वे सभी यदि माता जी के पैर छूते थे और ऐसी मीठी-मीठी बाते करते थे तो हम भी वैसा ही करते थे। वे सब मज़ाक उड़ाते थे तो हम भी मज़ाक उड़ाते थे।

अधिक बुद्धि का दुरुपयोग, मज़ाक उड़ाने में

हमारी बुद्धि अधिक थी तो, उसका दुरुपयोग किसमें हुआ? कम बुद्धि वाले का मज़ाक उड़ाने में! जब से मुझे यह जोखिम समझ में आया, तभी से मज़ाक उड़ाना बंद हो गया। कहीं मज़ाक उड़ाना चाहिए? मज़ाक उड़ाना तो भयंकर जोखिम है, गुनाह है! किसी का भी मज़ाक नहीं उड़ाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अधिक बुद्धि वाले का मज़ाक उड़ाने में क्या हर्ज है?

दादाश्री : लेकिन कम बुद्धि वाला स्वाभाविक रूप से मज़ाक उड़ाएगा ही नहीं न!

बाकी, मैंने सभी तरह की शरारतें की हुई है। सभी तरह की शरारतें कौन करता है? बहुत टाइट ब्रेन (ज़्यादा बुद्धिशाली) हो, वह करता है। मैं तो आराम से परेशान करता था सभी को, अच्छे-अच्छे लोगों की, बड़े-बड़े वकीलों की, डॉक्टरों की मज़ाक उड़ाता था। वह सारा अहंकार तो गलत ही है न! वह तो अपनी बुद्धि का दुरुपयोग किया न! मज़ाक उड़ाना तो बुद्धि की निशानी है।

प्रश्नकर्ता : मुझे तो अभी भी मज़ाक उड़ाने का मन होता है।

दादाश्री : मज़ाक उड़ाने में बहुत जोखिम है। बुद्धि में मज़ाक उड़ाने की शक्ति होती ही है और फिर उसका जोखिम भी उतना ही है तो हमने उन दिनों ऐसा जोखिम मोल लिया था। जोखिम ही मोल लेते रहे।

जोखिम मज़ाक उड़ाने का : भगवान के विरोधी बने

प्रश्नकर्ता : किसी का मज़ाक उड़ाया हो और उन्हें ज़रा दुःख हो जाए तो फिर उसके जोखिम क्या-क्या हैं? किस-किस तरह के जोखिम हैं उसमें?

दादाश्री : ऐसा है न, यदि धौल लगाई होती न, तो उसमें जो जोखिम था उसकी बजाय यह तो अनंत गुना जोखिम है। उसका मज़ाक उड़ाने का। उसकी बुद्धि इतनी नहीं है इसीलिए आपने अपनी लाइट से उसे कब्ज़े में किया इसलिए फिर वहाँ पर भगवान कहते हैं, 'इसमें बुद्धि नहीं है तो उसका यह फायदा उठा रहा है!'

वहाँ पर हमने, खुद भगवान को अपना विरोधी बना दिया। किसी अक्ल वाले को धौल लगाई होती तो वह समझ जाता बेचारा और वह खुद उसका मालिक बन जाता। जबकि इसकी तो वहाँ तक बुद्धि ही नहीं पहुँचती है, इसीलिए जब हम इसकी हँसी उड़ाते हैं तो यह खुद उसका मालिक नहीं बनता। तब भगवान समझते हैं कि 'ओहोहो! इसमें बुद्धि नहीं है, इसमें बुद्धि कम है, तो तू उसे फँसा रहा है? आ जा', कहेंगे तो भगवान विरोधी बन जाते हैं। वे तो फिर

पूरी तरह से तोड़ देंगे। जिसकी मज़ाक उड़ाई उसे तो बिना कुछ किए ही दु:ख भोगना पड़ता है और यह तो बहुत गलत है। मेरे साथ तो यही झंझट हुई थी कि 'बुद्धि बहुत बढ़ गई थी तो उसका ऐसा सब लाभ उठाया'।

और उसी वजह से अपनी साँसें बंद हो जाती हैं, नहीं तो यह सब किसने किया? अंदर कौन सी कमी है साँसों की? हिसाब तो हमें चुकाने ही पड़ेंगे न? देखो न, कुर्सी पर बैठकर घूमते हैं न! और अन्य किसी प्रकार की परेशानी नहीं है, सिर्फ यही परेशानी है न! बाकी तो, दस घंटे तक काम हो सकता है, बैठे-बैठे बोलना हो तो! मेरे बोलते समय तो कोई ऐसा ही समझेगा कि दादा यह नाटक कर रहे हैं कुर्सी पर बैठकर!

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमने तो मुख्य रूप से यही धंधा किया है।

दादाश्री : नहीं! लेकिन अभी भी उसके लिए प्रतिक्रमण कर सकते हो न! मैंने तो यही सब किया है न, मैंने भी यही किया है, इसीलिए हमारे वो मिल वाले भतीजे कहते हैं कि 'आप तो *सलियाखोर* (शरारत करके परेशान करने वाले) हैं', नहीं कहते क्या ऐसा?

सलियाखोर कहते हैं इसलिए मैंने कहा कि, बुद्धि आवृत थी तो क्या करते? शरारत ही करते न!

अंतरायी हुई बुद्धि, इसलिए 'सलियाखोर' कहा उसने

प्रश्नकर्ता : बुद्धि अंतरायी हुई थी, वह क्या है दादा?

दादाश्री : अंतरायी हुई बुद्धि ऐसा ढूँढ निकालती है। अंतरायी हुई बुद्धि क्या करती है? शरारत करती है या नहीं?

उन दिनों बुद्धि अंतरायी हुई थी न, तो वह शरारत करके परेशान करती थी। बुद्धि में अंतराय होते हैं न, तो जब और कोई मज़ा नहीं आता तब परेशान करता है और फिर कहता है, 'मज़ा आ गया'। *सली* का मतलब क्या है? खुद यहाँ पर बैठा है और पटाका वहाँ फूटता है

तो उसे कहते हैं *सली*! तो यह बुद्धि उल्टी-सीधी होती ही रहती थी न! तब लोग ऐसा समझते थे कि यह *सलियाखोर* है और हम भी कहते हैं कि 'भाई, हम *सलियाखोर* ही थे'।

प्रश्नकर्ता : आप सीधी *सली* (पॉज़िटिव शरारत) भी करते होंगे न?

दादाश्री : सीधी *सली* भी करते थे, लेकिन वह कम! ज़्यादातर तो उल्टी। सीधी की तो कुछ पड़ी ही नहीं थी न! और उल्टी तो कहाँ तक कि कोई आदमी नहीं मिले तो आखिर में किसी बच्चे को सिखाता था कि 'अरे, उस गधे के पीछे खाली डिब्बा बाँध दे'।

अरे! गधे के पीछे तो हम सब बच्चों ने मिलकर डिब्बे भी बाँधे हैं। फिर पूरी रात वह गधा उछल-कूद ही करता न! तो पूरी रात शोर होता था। लोगों को सोने ही नहीं देता था फिर, लोगों को नींद नहीं आती थी। एक तो लोगों के पास कोई काम-धंधा नहीं था, बेकार थे। तो (आवाज़) सुनाई देते ही देखते थे कि 'यह क्या हुआ? अरे! यह तो गधे के पीछे डिब्बा बाँधा हुआ है!'

गधे की पीठ पर खाली डिब्बा बंधवा देते थे और फिर पीछे से वे बच्चे उसे भगाते थे। तो इस तरह पूरे गाँव में शोर शराबा हो जाता था। फिर लोग गालियाँ देते थे कि 'इन लड़कों का सत्यानास हो!' इस तरह से बुद्धि का पूर्ण दुरुपयोग हुआ था। आपको तो यह सब नहीं आता था न?

यह सब ऐसा है, ये सारे संस्कार गाँव वाले हैं! और हम तो मूल रूप से बिल्कुल टेढ़ी जाति, झगड़े करना अच्छा लगता था, यह तो ज्ञान मिला तो अब सब रास्ते पर आ गया है।

कुसंग के रास्ते पर चल पड़े दोस्तों के संग

प्रश्नकर्ता : दादा, खराब आदतें थी बचपन में?

दादाश्री : हाँ, पंद्रह साल की उम्र में हमें कुसंग में बीड़ी पीने

की आदत पड़ गई। उसे सत्संग कहो या कुसंग कहो। या फिर मैं कुसंगी होऊँगा, और उन्हें कुसंगी बनाया। लोग क्या कहते हैं? 'मेरा बेटा कुसंगियों के साथ रहकर कुसंगी बन गया'। अरे! लेकिन भाई, इसका क्या प्रमाण है कि तेरे बेटे का कुसंग उसे लगा है या उसका तेरे बेटे को लगा है? कई लोग ऐसा कहते हैं कि, 'मेरे बेटे के साथ सिर्फ कुसंग है? तो भाई कुसंगी कौन है इसमें? छहों बच्चों के बाप, सभी ऐसा कहते हैं कि 'मेरे बेटे पर कुसंग का असर हो गया', तो इनमें से कुसंगी कौन है? ज़रा पता तो लगाना चाहिए न? उसकी बजाय हम ऐसा कहें कि मेरा बेटा कुसंग के रास्ते पर चला गया है, तो बात अलग है। इस तरह कुसंग के रास्ते पर चले गए थे तो बीड़ियाँ, सिगरेट, हुक्का पीते थे। ज़ोरदार! सभी दोस्त पीते थे।

सिगरेट से जल उठा, बहुत पछतावा हुआ

अभी भी मुझे दिखाई देता है कि शादी के अवसर पर एक दोस्त के वहाँ गया था तो शादी का मंडप बाँधा हुआ था तो उस मंडप के नीचे बैठकर स्त्रियाँ, बड़ी कढ़ाई में *ढेबरा* (बाजरे का एक व्यंजन) तल रही थीं। उनके ऊपर मंडप बाँधा हुआ था। उनके साथ वाले रूम में हम सब दोस्त बैठे-बैठे मस्ती कर रहे थे।

मैं सिगरेट पी रहा था, तो मैंने यों सिगरेट खिड़की से बाहर फेंकी और वह चद्दर पर जा गिरी। वहीं पर जिसके नीचे वे लोग तल रहे थे।

क्या कभी ऐसा हुआ है कि सिगरेट से बड़ी आग लग जाए? लेकिन कैसे संयोग इकट्ठे हुए? नीचे *ढेबरे* तले जा रहे थे। वर्ना सिगरेट तो आखिर में छेद करके नीचे गिर जाती।

प्रश्नकर्ता : हाँ, नीचे गिर जाती।

दादाश्री : अब नीचे वह चूल्हा जलाया हुआ था, इसलिए चद्दर गरम हो गई थी और यह सिगरेट गिरते ही धमाका हो गया।

प्रश्नकर्ता : वह सब गरम हो गया न, इसीलिए जल उठा।

दादाश्री : गरम होने से धमाका हो गया। दोस्तों ने तो सारी बात दबा दी कि यह कैसे हुआ, कैसे नहीं हुआ, वह सब दबा दिया लेकिन यह बहुत बुरा हुआ। तब तो फिर मुझे बहुत पछतावा हुआ कि 'अरे, ऐसा सब अपने हाथों, अपनी वजह से! हम कहाँ इसके निमित्त बने?' बोलो, फिर सिगरेट से चिढ़ हो जाएगी या नहीं?

हमारे दूसरे एक दोस्त को तो पता नहीं था कि ऐसा सब हुआ है। तो उसके घर पर मैं जली हुई सिगरेट डालता था, तो जली हुई डालने की आदत, इसलिए वह मुझ पर गुस्सा करता था कि जल उठेगा, कुछ जल उठेगा। तब मैं कहता था कि 'भाई, अपने हाथों तो शायद ही कभी ऐसा होता है। जो नहीं जलना था, वह वहाँ पर जल उठा और यहाँ पर तो यह सारा हिसाब अलग तरह का है। घबराना मत, तू मत घबराना'। बुझाने भी जाता था फिर। हमें खुद को समझ में आता था कि यह जलती हुई सिगरेट फेंकने की आदत गलत है। इस बारे में जागृति रखनी पड़ेगी।

ताश के खेल में ठगा गया, पैसों के लोभ की वजह से

प्रश्नकर्ता : दादा आपने गलतियाँ तो की हैं लेकिन फिर उन पर खूब सोचा है, जागृत रहे हैं। यदि फिर से ऐसी कोई गलती हो गई और वापस आप उसमें से छूट गए हों, ऐसी घटनाएँ बताइए न?

दादाश्री : बचपन में एक बार मैं पहली बार नडियाद गाँव गया था। उस समय मेरी उम्र ग्यारह-बारह साल की थी।

प्रश्नकर्ता : पहली बार नडियाद गए थे?

दादाश्री : हाँ, पहली बार नडियाद। तब नडियाद ऐसा नहीं था, जंगल जैसा था। एक बारात में नडियाद गए थे। वहाँ दस दिन तक रहा था। बारात में गया था, वह सब मुझे याद है!

प्रश्नकर्ता : बारात में गए थे?

दादाश्री : बारात में। नहीं तो और किसमें जाना था? बारात में

गया था। वहाँ ताश खेलने में ठगा गया। पहले गोल चक्कर में ताश खेलते थे न? तीन पत्ती खेला और हार गया।

प्रश्नकर्ता : तीन पत्ती खेलते थे उस समय?

दादाश्री : हाँ, तब तीन पत्ती खेलते थे। उन दिनों खेलने गया था। क्या मित्र भी देवता जैसे थे? तीर्थंकरों के लिए तो सभी देवता, मित्र बनकर आते हैं और हमारे मित्र तो ऐसे थे कि ताश-वाश खेलते थे। जब ताश खेलते हैं तब तो अहंकार इन्टरेस्ट से उसमें सही-गलत भी करता है मित्रों के संग, लेकिन मूल माल अंदर का ही न!

वहाँ पर तीन पत्ती में ठगा गया। पंद्रह रुपए, उन दिनों पंद्रह रुपए, वह भी घर के नहीं, किसी ने दस-बारह रुपए दिए थे, कुछ लाने के लिए। मेरे पास तो दो-चार रुपए ही थे। बाकी के उस व्यक्ति के थे। तो उसके पैसे भी इसमें चले गए, तो मैं परेशान हो गया था उस समय, तीन पत्ती में खो दिए सभी!

प्रश्नकर्ता : तीन पत्ती?

दादाश्री : तीन पत्ती का मतलब आज की तीन पत्ती नहीं, वह तो ज़रा यों?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसे-ऐसे करते थे न, तीन पत्तों में।

दादाश्री : हाँ, पहले जितवाते थे, एक-दो बार।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वे ऐसे-ऐसे करके फेंकते थे। लेकिन शुरू-शुरू में ऐसा दिखाते थे। पहले तो वे कहते थे कि 'लो पाँच आपके'। फिर दूसरी बार में दो देते थे ताकि हम में लोभ जागे। फिर कहते थे, 'हाथ मारो'।

दादाश्री : हाँ, फिर से देते थे। लेकिन अपनी मति कमज़ोर पड़ जाती है न! क्या है यह सारी सेटिंग? कैसे समझें इन इंसानों को? ग्यारह-बारह साल का बच्चा था। बच्चे तो सरल होते हैं। तो मौज-मज़े की जगह पर धोखा खा जाते हैं। अगर मौज-मज़े किए ही नहीं हों वे

तो अस्सी साल की उम्र में भी मौज-मज़े की जगह पर धोखा खा जाते हैं। उसके बजाय पहले से ही धोखा खा लें तो अच्छा। अनुभव किया हो तो फिर धोखा तो नहीं खाएगा न!

प्रश्नकर्ता : नहीं खाएगा।

दादाश्री : तो पहले उसने दिखाया, दो-तीन बार, तो हम तो ठहरे भोले-भाले इंसान और गाँव के लोग। मैंने समझा कि यह सब तो मुझे आ गया लेकिन उस तीन पत्ती वाले ने ठग लिया। मैं जो चौदह-पंद्रह रुपए ले गया था वे सभी ले लिए। फिर ज़िंदगी में नियम बना लिया कि फिर से कभी भी ऐसा काम नहीं करना है।

फिर, घर पर तो नहीं बता सकते थे कि इस तरह से पैसे खर्च कर दिए सारे। बाद में धीरे-धीरे जैसे-तैसे करके दे दिए थे। बताने पर ही कोई मुझे देता न! तो ये सारी परेशानियाँ थी!

प्रश्नकर्ता : झूठ बोलना पड़ा।

दादाश्री : हाँ, बोलना पड़ा। उसके बजाय तो वह सारी झंझट ही नहीं होनी चाहिए न! कुछ-कुछ, दो-दो रुपए इकट्ठे होते और दे देते थे।

धोखा खाकर मिला है ज्ञान, इसीलिए फिर नहीं होने दी भूल

प्रश्नकर्ता : फिर तब से आपने कसम खाई कि अब कभी भी इस तरह ताश नहीं खेलना है।

दादाश्री : हाँ, कसम खा ली न! बेकार ही दु:खदायी काम क्यों करें हम? और तभी से हमें यह शिक्षा मिली कि अब इन लोगों के पास खड़े भी नहीं रहना है। सब को ऐसा लगता है कि इसमें कुछ मिलेगा। अरे! भाई ऐसा कहीं होता है? क्या लोग आपके फायदे के लिए बैठाते हैं यहाँ पर? इसके बाद तो जो जागृति आ गई, फिर उससे तो वापस इस तरह धोखा नहीं खाया। एक ही बार कुछ देख लेना

होता है। गिन्नी की जाँच एक ही बार करनी पड़ती है। रोज़ नहीं घिसना होता।

बचपन में इस बारे में ज्ञान मिला, उसके बाद पहचान लिया। तब फिर मैंने सोचा, 'कल्याण हो गया अपना! लुटे तो लुटे लेकिन चोर तो दिखा'। फिर हम जहाँ कहीं भी ऐसा देखते तो तुरंत वहाँ जाना बंद, ज़िंदगी भर। यानी धोखा खाने से कोई नुकसान नहीं हुआ। 'धोखा खाना मतलब बड़े से बड़ा ज्ञान सीखना', ऐसा कहा जाता है। देखो न! क्या हम फिर से कभी धोखा खाएँगे? अब इशारे से ही समझ जाता हूँ। मेरी उपस्थिति में मुंबई में कई लोग बैठ गए थे। मुझे आता हुआ देखते तो वो दो-तीन लोग सीधे बनकर बैठ जाते थे। मैं जाता था, खड़ा भी रहता था, वे समझते थे कि अभी फँसेंगे लेकिन वहाँ से खिसक जाता था। खड़ा ज़रूर रहता था। उनमें ज़रा लालच घुसने देता था, फिर खिसक जाता था क्योंकि निष्कर्ष आ गया था मेरे पास।

प्रश्नकर्ता : वे धोखा खा जाते थे।

दादाश्री : हाँ, धोखा खा जाते थे... देखो न, कैसा हिसाब!

दूसरों के खेतों में से चोरी करके खाते थे, लेकिन फिर किया पछतावा

प्रश्नकर्ता : ऐसी कुछ गलतियाँ की थीं कि जिन पर खूब पछतावा हुआ हो?

दादाश्री : मैं ग्यारह साल का था, तब एक लड़के के घर पर आम थे तो उसके पिता जी को पता न चले, उस तरह वह दूसरी मंज़िल से फेंकता था और मैं पकड़ लेता था। वह सब अभी भी मुझे दिखाई देता है। वह क्या कहता था कि 'आप पकड़ना, मैं फेंकूँगा फिर ये आम हम बगीचे में ले जाकर खाएँगे'। मैं उसके घर के बाहर खड़ा था तब उसने फेंके। वह रोज़ ऐसा करता था, जब माँ-बाप नहीं होते थे तब, वह सब हमें दिखाई देता है।

फिर बचपन में सभी बच्चे आम खाने जाते थे, तो उनके साथ-साथ हम भी बगिया में आम खाने जाते थे। तो एक लड़के पर दूसरा लड़का खड़ा रहता था और आम तोड़ता था। कई बार तो ज़रा सी दूरी की वजह से हाथ नहीं पहुँच पाता था, तब वे डरते थे कूदने से तो फिर पीछे से उसे ज़रा जोश दिलाते थे कि 'कूद, आम चाहिए तो कूद, नहीं तो उतर जा'। उसे हिम्मत देते थे तो फिर वह कूदकर आम तोड़ लेता था!

अब पेड़ किसी और का और आम हम लें, तो चोरी नहीं कहलाएगी? किसी और के पेड़ के आम खाएँ तो वह चोरी ही कहलाएगी न! फिर भी, मैं वहाँ खेत पर आम खाता था लेकिन कभी भी घर पर नहीं ले जाता था। मैं खाता ज़रूर था लेकिन घर पर नहीं ले जाता था। चरित्र अच्छा था, इतना जानता हूँ। मेरी भूमिका में चरित्र उच्च प्रकार का था, फिर भी चोरियाँ की हैं।

प्रश्नकर्ता : आम के अलावा और क्या खाते थे चुराकर?

दादाश्री : बचपन में हम चोरी करने खेत में जाते थे। खेत में बेर, कैथ, सौंफ वगैरह उगते थे। तब लड़कों के साथ जाकर चोरी करके लाते थे।

सब लड़के जाते थे तो उनके साथ जाकर मालिक को बिना बताए कच्ची-पक्की सौंफ तोड़कर खाते थे।

प्रश्नकर्ता : उसका तो नुकसान हुआ न?

दादाश्री : ज़बरदस्त नुकसान! कहे बिना उस बेचारे की तो सौंफ तोड़ दी न? तो बाद में उसके लिए कितने ही पछतावे किए, तब जाकर साफ हुआ। तो बड़े होकर पछतावा करें उसके बजाय तो बचपन में ही साफ हो जाए तो क्या बुरा है?

भरे हुए मोह ने करवाई अँगूठी की चोरी

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने वह बताया था न, अँगूठी का! तो वह क्या था?

दादाश्री : वह तो, एक अँगूठी चोरी कर ली थी। वह अभी भी खटकता रहता है अंदर।

मैंने अँगूठी चोरी की तो वह किस तरह से चोरी की थी, आपको तो पता नहीं है वह। लेकिन *काठी* मालूम है? *करांठियाँ*? लकड़ियाँ, जलाने की *कांठियाँ, करांठियाँ* आती हैं। अरहर की *करांठी* आती है, आपने देखी है? *करांठी* कहते हैं। तो उस *करांठी* के गट्ठर थे तो एक आदमी से गट्ठर खरीदे थे, तो मैं उनके यहाँ लेने गया। पिता जी के कहे अनुसार मैं एक मज़दूर को लेकर बताने गया था। गट्ठर गिनने के लिए साथ लेकर गया था।

वह आदमी ऊपर से फेंक रहा था और मैं गिन रहा था। मैं गिन रहा था और जिस नौकर को साथ ले गया था वह बाँधकर ले जा रहा था। तो फिर जब वह गट्ठर फेंक रहा था तब, उसकी उँगली में से अँगूठी खिसक गई। अब वह मुझे नहीं पता था कि उसकी अँगूठी खिसक गई है। अब ऐसा हुआ था या क्या लेकिन गट्ठर डालते वक्त अँगूठी नीचे गिर गई। अब उसकी खिसकी हुई अँगूठी गिर गई या फिर पहले से किसी की पड़ी हुई थी लेकिन एक अँगूठी नीचे गिरी।

तो हमारा जो आदमी गट्ठर लेने आया था न, उसे मैंने उल्टी तरफ भेज दिया। मैंने उस नौकर से कहा, 'तू वे गट्ठर गिन ले। उन गट्ठरों को बाँधने लग,' तब तक मैंने उस पर (अँगूठी पर) पैर रख दिया।

प्रश्नकर्ता : कितनी उम्र थी तब आपकी?

दादाश्री : तेरह साल का था, उस समय अक्ल कहाँ से आती? क्षत्रिय पुत्र था फिर भी चोरी की दानत कहाँ से आ गई? लेकिन भरा हुआ माल है। मोह! भरा हुआ मोह! इसीलिए फिर मैंने उस अँगूठी पर इस तरह से पैर रख दिया ताकि वह देख न सके। फिर वह नौकर गट्ठर बाँधकर घर गया और मैंने धीरे से अँगूठी अपनी जेब में रख ली।

पड़ी हुई मिली, मैंने कहाँ चोरी की?

इस तरह यों सीधे चोरी नहीं करते थे। यों तो खानदानी घर के बेटे थे इसीलिए चोरी नहीं करते थे, कोई चीज़ उठा नहीं लेते थे क्योंकि वह तो हमारे खानदानियत से बाहर की बात थी। ऐसा बहुत बड़ा अहंकार था कि हम ऐसा कर ही नहीं सकते, इसलिए यों तो चोरी नहीं करते थे। हम खानदानी, हमारी इज़्ज़त चली जाती लेकिन क्या यह चोरी नहीं कहलाएगी? क्या कहलाएगा?

प्रश्नकर्ता : चोरी ही कहलाएगी।

दादाश्री : तो इसका अर्थ क्या निकाला? उन दिनों के ज्ञान ने मुझे ऐसा बताया कि इसे चोरी नहीं कहते। मुझे ऐसा लगा कि 'यह तो मुझे मिली है इसलिए इसे चोरी नहीं कहेंगे,' हमें नीचे गिरी हुई मिली। 'गिरी और मिली', उसमें मैंने चोरी कहाँ की? ऐसा उन दिनों के ज्ञान ने मुझे बताया।

तेरह साल की उम्र में बुद्धि नहीं थी तभी यह हाल हुआ न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा कोई उदय आ गया होगा न!

दादाश्री : लेकिन बुद्धि नहीं थी तब इसीलिए यह हाल हुआ न, और 'मिल गई', ऐसा माना। समझ नहीं थी, तभी न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा तो तेरह साल की उम्र में हुआ था न? किसी को तो तिहत्तर साल की उम्र में भी ऐसा होता है।

दादाश्री : हाँ, तिहत्तर साल की उम्र में नहीं, वह तो अगर तीन लाख जन्म बीतने पर भी ऐसा डेवेलपमेन्ट नहीं होता न!

अँगूठी बेचकर पैसे उड़ा दिए

प्रश्नकर्ता : फिर क्या हुआ?

दादाश्री : फिर दो-तीन दिन बाद पेटलाद जाकर वह अँगूठी बेच आए। उसके चौदह रुपए मिले थे। पोन तोले की होगी, मोटी अँगूठी थी लेकिन यह कितनी चोर नीयत कही जाएगी।

प्रश्नकर्ता : बीस रुपए तोला सोना था न तब?

दादाश्री : बाईस-तेईस रुपए, तो वह नीयत क्या बहुत अच्छी नीयत कहलाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं कहलाएगी। लेकिन फिर क्या किया उन रुपयों का, दादा?

दादाश्री : वे रुपए खर्च कर दिए, छोटे-मोटे कामों में। इन लड़कों के साथ खेलने में खर्च हो गए। अंदर जो मोह का जत्था इकट्ठा हुआ था न, उसमें खर्च हो गए। दोस्तों का कुसंग मिला था न! कुसंग हो तभी ऐसा सब करना आ जाता है वर्ना नहीं आता।

ज्ञान से पहले सभी जैसा ही कलियुगी जीवन

यह तो सभी जानते हैं कि अभी दादा को ज्ञान हो गया है। इसका मतलब क्या पहले का जीवन साफ-सुथरा बीता होगा! लेकिन क्या कलियुग में ऐसा साफ-सुथरा माल हो सकता है? जब गुस्सा हो जाता था न, तब ऐसा बोलता था कि सामने वाले का दिमाग़ घूम जाता था। फिर तीन-तीन, चार-चार घंटे तक वैसा ही रहता था। उसका मन नहीं टूटता था लेकिन दिमाग़ घूम जाता था। तब लोग भी कहते थे, ऐसा कैसा बोल रहे हो कि गधे का भी दिमाग़ घूम जाए? ज़रा, संस्कारों की कमी कही जाएगी वह।

मान के आधार पर यह शोभा नहीं देता

यह जो अँगूठी ली वह तो बहुत खराब संस्कार, ऐसा शोभा नहीं देता। बचपन में मैंने मान देखा है उस आधार पर यह शोभा नहीं देता। दो साल का था तब से लेकर अठारह साल तक मैंने मान देखा है। उस हिसाब से क्या यह शोभा देगा? जहाँ जाऊँ वहाँ पर मान, जहाँ जाऊँ वहाँ पर मान। अपमान तो देखा ही नहीं था। उस हिसाब से यह शोभा नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : सही बात है। इसमें, संस्कारों का और यह जो अँगूठी ली, उसका क्या लेना-देना?

दादाश्री : उसे तो खराब संस्कार कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादाजी! इस उदयकर्म की बात में फिर संस्कार कहाँ आते हैं? उदयकर्म में संस्कार क्या कर सकते हैं?

दादाश्री : लेकिन संस्कार के आधार पर ही उदयकर्म हैं न! वही संस्कार हैं न! संस्कार प्रकट होते हैं। उदयकर्म अर्थात् जो संस्कार थे वे प्रकट हुए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे संस्कार भी कौन से?

दादाश्री : पिछले जन्म के।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा। तो फिर वह पिछले जन्म के हैं न?

दादाश्री : तो यह सारा माल मेरा ही होगा न कि मुझे मान मिलता है सब जगह। वह पिछले जन्म का प्रोजेक्शन है।

प्रश्नकर्ता : यह क्षेत्र मिला, वह भी इन संस्कारों की वजह से ही न? ठीक है न?

दादाश्री : हाँ, माँ-बाप मिले, वह भी।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह सब तो उसी की वजह से है। उसे भोगने के लिए ही मिला यह सब, तो क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि इसका संबंध संस्कारों से हैं?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह ठीक है।

दादाश्री : लेकिन ऐसे संस्कार थे अंदर! अंदर खटकता रहता था कि क्या ऐसा भी? अँगूठी को भी दबा दिया था। देखो तो सही! एक अँगूठी के लिए! ऐसा तो कोई इंसान नहीं करेगा। ऐसी है यह दुनिया! क्या-क्या गलतियाँ नहीं हुई होंगी?

अगर मिल जाए तो पाँच सौ गुना वापस दे दूँ, लेकिन वह अभी भी खटकता है

प्रश्नकर्ता : फिर पैसे वापस करने के लिए गए थे न आप?

दादाश्री : हाँ, फिर उसके मालिक से एक बार पूछने गया, तो कोई नहीं मिला। दस साल बाद फिर से गया था वहाँ पर। मैंने पूछा, 'इस घर में फलाना भाई रहते थे न?' तब कहा, 'वे तो नहीं हैं, वे तो मर गए'। उसके बाद कोई ठिकाना नहीं पड़ा। वर्ना मैंने सोचा था कि उसे दस गुना पैसे दे दूँगा या बीस गुना पैसे दे दूँगा और यदि वे कहें की सौ गुना दो तो सौ गुना, पाँच सौ गुना कहें तो पाँच सौ गुना दे दूँगा। चौदह पंजे सत्तर, सात हज़ार रुपए दे दूँ उसे, लेकिन वह था ही नहीं। जब पता लगाने गया तो बाप या बेटा कोई मिला ही नहीं!

मैंने सोचा, 'अब क्या करूँ? तो कहीं धर्मदान करो'। तो इससे उसे कोई लेना-देना नहीं है लेकिन यह तो ऐसा सब जो हाल किया, वह भी खटकता रहा बाद में। फिर बाद में पता चला कि यह कैसा कर्म था लेकिन वह अभी भी खटकता है।

प्रश्नकर्ता : जब भी याद आता है तब?

दादाश्री : हमेशा खटकता है, याद तो रहता ही है न हमें निरंतर! याद नहीं आता। याद मतलब याद, वह मुझे दिखाई देता है निरंतर।

बचपन में मैंने पोने दो रुपए की एक चीज़ चोरी की थी, वह अभी भी मुझे याद है। उसके बाद ज़िंदगी भर चोरी नहीं की लेकिन किसी कर्म के उदय से अभी भी वह मुझे याद आता रहता है और मन में होता है कि उसे दो सौ-पाँच सौ भिजवा देने चाहिए, उस व्यक्ति को।

हमारी तरफ से प्राप्त हो वह सौंप दिया कुदरत को

प्रश्नकर्ता : दादा! जब आप बताने गए तो तब वे भाई मर चुके थे?

दादाश्री : क्या हो सकता है? वह ताल नहीं बैठा!

प्रश्नकर्ता : तो अब यदि वे नहीं मिलेंगे तो उसका क्या फल आएगा? तो उसका परिणाम क्या होगा?

दादाश्री : वह तो कुछ भी नहीं। उसे तो हमें खुला छोड़ देना है। हमने कह दिया है जितना उनका हो वह योग्य रूप से हमारी तरफ से उन्हें मिल जाए। हमने ऐसा तय ही कर दिया है कि जिस-जिसका जितना योग्य है, वह हमारी तरफ से उन्हें प्राप्त हो जाए। यानी कि वह कुदरत को सौंप दिया।

किसी का भी बाकी न रहे अनेक गुना दे दें

हम देने के लिए तैयार है किसी का भी बाकी न रहे, किचिंत्मात्र बाकी न रहे, अनेक गुना करके दे दें। हमें ऐसे पैसों का क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं, आप तो कुछ भी नहीं करेंगे।

दादाश्री : हमने तो पिछले पाँच-सात-दस सालों से तय किया है कि ये जो कुछ भी है, आगे-पीछे का जो कुछ भी है वह सारा, परिवार में यदि कोई दु:खी है तो उनके पास पहुँचे, अगर रिश्तेदारों में कोई दु:खी हो तो उनके पास पहुँचे या फिर महात्माओं में कोई दु:खी हो तो वहाँ पर। यदि पिछले कोई ऋणानुबंध हों तो वहाँ पर जाए। लेकिन इस लक्ष्मी का किसी अच्छी जगह पर उपयोग हो जाए। अत: हम तो इस तरह से मुक्त हो गए।

वह सब तो चुक जाएगा। जिसे चुकाना है उसे देर ही नहीं लगेगी। जिसकी नीयत है कि 'इतना चुका दें और इतना रहने दें', उसे परेशानी है। इतना ही देखना है कि उसकी नीयत क्या है। नीयत से राजा बनने में क्या हर्ज है लेकिन वह मुआ राजा नहीं बनता है, ज़रा सा बाकी रखता है। कभी भी मन नहीं खोलता।

लेकिन इससे रही पवित्रता चारित्र की

हमें तो सभी रंग लगे थे, कुछ ही रंग नहीं लगे थे। जो रंग, कवि

ने कहा है न कि 'जिनके सभी अंग पवित्र हैं। वे पवित्र अंग हैं...' क्या कहा था आपने?

प्रश्नकर्ता : सर्वांगे पवित्रता वेदी है, अद्वितीय महानता ऐसी है।

दादाश्री : अत: इन सभी अंगों में पवित्रता फैली हुई है। वह मेरा पुरुषार्थ नहीं है। यह तो मैं लेकर आया था ऐसा सारा सामान, सभी अच्छे-अच्छे एविडेन्स।

अत: हमारे द्वारा विकारी संबंध स्थापित नहीं हुए हैं। विकारी संबंध के अलावा बाकी सबकुछ हुआ है। हमें ऐसा मिथ्याभिमान था कि हमारे द्वारा 'विकारी संबंध नहीं होने चाहिए'। कुल के अभिमान की वजह से बहुत संभाला कि 'हम से ऐसा नहीं होना चाहिए'।

अत: चरित्र के अलावा बाकी सभी खराबी हुई है लेकिन चरित्र खराब नहीं हुआ है। चरित्र सही रहा है। चरित्र भ्रष्ट नहीं हुआ।

प्रश्नकर्ता : चरित्र भ्रष्ट अर्थात् कभी मानसिक विकार हुआ था?

दादाश्री : हाँ, शायद कभी मानसिक विकार हुआ हो, उसका भी उपाय कर दिया था फिर। जैसे कि अगर कपड़े पर दाग़ लग जाए तो उसे साबुन से धो देते हैं न! वैसा ही उपाय मेरे पास था। साबुन से धो देते हैं या नहीं? जिनके पास हो, वे?

प्रश्नकर्ता : ठीक है तो आपने क्या उपाय किया?

दादाश्री : वह उपाय तो अभी कहने जैसा नहीं है। वह तो सारा आध्यात्मिक उपाय है। वह स्थूल उपाय नहीं है। वे जो भूलें हुईं वे स्थूल हैं लेकिन उनका उपाय आध्यात्मिक है। लेकिन साफ-सुथरा था, वह वाली साइड साफ-सुथरी थी।

[5]

मदर

[5.1]

संस्कारी माता

बहुत पुण्यशाली और सुंदर थीं झवेर बा

प्रश्नकर्ता : आपके माता जी झवेर बा के बारे में कुछ बातें कीजिए न!

दादाश्री : वे तो बहुत सुंदर थीं, झवेर बा तो! मणि भाई सुंदर थे, पूरा परिवार ही सुंदर था। मूलजी काका (पिता जी) सुंदर, बा सुंदर, सभी सुंदर थे।

प्रश्नकर्ता : झवेर बा के तो दाँत भी अच्छे थे।

दादाश्री : हाँ, अच्छे थे। वे तो पुण्यशाली थीं, बहुत पुण्यशाली और उनकी त्वचा भी हीरा बा जैसी थी। कितनी कोमल त्वचा! नहीं तो ऐसी त्वचा कहाँ से लाएँ? त्वचा पर सोना भी कितना सुशोभित होता है! देखो न, दाँत भी कितने अच्छे हैं न! मुझ पर तो सोना भी शोभा नहीं देगा, त्वचा श्याम है न! जबकि झवेर बा की त्वचा तो संगमरमर जैसी थी!

जहाँ हमेशा सदाव्रत रहता था, उस घर में जन्म झवेर बा का

प्रश्नकर्ता : यह देखा है कि झवेर बा में बहुत उत्तम गुण थे, औरों में ढूँढना भी मुश्किल लगता है!

दादाश्री : वे तो देवी ही कहलाएँगी न! उनके ही संस्कार मुझे प्रेरणा देते हैं न! ऐसे लोग नहीं मिलते, कम होते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत कम, रेयर (शायद ही)।

दादाश्री : उनके पिता और माता, वे तो और ही तरह के थे, दुनिया में देखने योग्य लोग, राजसी घर था। यानी बहुत ही उच्च प्रकार का माल था, शुद्ध माल।

रवजी भाई के घर के उस स्तंभ को धन्य है। उस घर में हमेशा सदाव्रत ही चलता रहता था। बा जिस घर में रहे थे न वहाँ, उनके पिता जी के घर पर हमेशा सदाव्रत ही रहता था। जहाँ पर ऐसा सदाव्रत हो, वहाँ पर बड़े-बड़े लोगों का जन्म होता है, हमेशा ही।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वहाँ पर दादा का जन्म हुआ।

दादाश्री : सदाव्रत यानी वहाँ से कोई भूखा वापस नहीं जाता। कोई साधु-सन्यासी आ जाएँ तो उन्हें रहने की जगह देते थे, खाना खिलाते थे, उनका ध्यान रखते थे।

प्रश्नकर्ता : पहले कई लोग ऐसा करते थे, हमेशा सदाव्रत रखते थे।

दादाश्री : हाँ, इसीलिए बा जैसों का वहाँ पर जन्म हुआ न, वर्ना नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : उस पुण्य का लाभ मिलता है न!

बा का चेहरा देखते ही दु:खी इंसान भी सुखी हो जाता

दादाश्री : मैंने अपनी बा, झवेर बा जैसी कोई नारी देखी ही नहीं। मेरी माँ का चेहरा देखते ही, कोई दु:खी इंसान भी सुखी हो जाए, ऐसी थीं हमारी बा। उनके गुणों का क्या वर्णन करूँ?

हमारे गाँव में सात हज़ार लोगों की बस्ती थी लेकिन मैंने ऐसी मदर नहीं देखी। वह भी फिर निष्पक्षपाती रूप से सोचकर देखा कि क्या

इसलिए मुझे ऐसा लग रहा है क्योंकि 'वे मेरी मदर हैं?' अत: और तरीकों से भी जाँचकर देख लिया। फिर से निष्पक्षपाती भाव से जाँच की लेकिन बहुत अच्छी स्त्री, बहुत सुंदर विचार! आप गाली देकर जाओ और अगर तुरंत ही वापस आओ तो बुलाती थीं। करुणा वाली थीं, बहुत करुणा, ज़बरदस्त करुणा! और ऑब्लाइजिंग नेचर निरंतर! अत: अभी भी अपने हिन्दुस्तान में कुछ संस्कार हैं। अपने यहाँ ऐसा है न कि और कई प्रकार से दिवाला निकल चुका है लेकिन संस्कारों को लेकर दिवालिया नहीं हुए हैं।

झवेर बा की पर्सनालिटी का प्रभाव पड़ा दादा पर

झवेर बा तो पर्सनालिटी (विशिष्ट व्यक्तित्व) वाली थीं! वे जब भी हमारे मुहल्ले में से होकर निकलती थीं, और हम जिस मुहल्ले में जाते थे न, मैं और मदर दोनों जब सामने से आ रहे होते थे तो हर एक घर में से लोग बाहर निकलकर तुरंत ही बा को जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण कहा करते थे। मैं उस समय साथ में होता था तो क्या उस समय समझ नहीं जाऊँगा कि उनका ऐसा प्रभाव पड़ रहा है।

हमारे यहाँ से जब बड़ौदा तक जाते थे तब भी मैं साथ में होता था न, तब पूरे गाँव में सभी लोगों को देखता ही रहता था कि यह (बा की) कैसी पर्सनालिटी है! रात को सात बजे जब बस में से उतरकर जाते थे तब हमारे पास वाला जो मुहल्ला था न, हमें उस मुहल्ले में से होकर जाना पड़ता था तो बा के साथ एक बार वहाँ गया था मैं, तब साथ वाले मुहल्ले में पचास घर इस तरफ और पचास घर उस तरफ, इतना बड़ा मुहल्ला था। उस मुहल्ले में मकानों के बीच में से होकर जाने का रास्ता था। उस मुहल्ले में दाखिल होते ही वहाँ पर हर एक घर में से लोग बाहर निकल-निकलकर कह रहे थे 'बा आ गईं, बा आ गईं'। हर एक स्त्री खाना बनाते-बनाते 'झवेर बा आ गईं, बा आ गईं, बा आ गईं, बा आईं' करते हुए दौड़ी आती। छोटा सा मुहल्ला था इसलिए हर कोई घर से बाहर आ जाता था। दोनों तरफ के घरों में भाग दौड़-भाग दौड़ मच गई। इसी को पर्सनालिटी (प्रभावशाली व्यक्तित्व) कहते हैं

न! तो पूरी गली के लोग ही बाहर आ गए तो क्या हम समझ नहीं जाएँगे कि इन्होंने क्या प्राप्ति की है? समझ जाएँगे या नहीं? क्या प्राप्ति की होगी?

प्रश्नकर्ता : प्रेम प्राप्त किया न?

दादाश्री : एडजस्टमेन्ट। 'हाउ टू एडजस्ट'। क्या वे सभी अच्छी थीं? वे सब लोग जो बाहर निकलकर आए, क्या वे सभी लोग अच्छे थे? तो अच्छे-बुरे सभी लोग बाहर निकलते थे। बा आए, बा आ गए, बा आ गए! तो वह सब हमें देखने मिला या नहीं?

प्रश्नकर्ता : मिला।

दादाश्री : दोनों तरफ के सभी घर। ऐसा ही सब देखा था मैंने। उसी का मुझ पर प्रभाव पड़ा। उनके संस्कार ऐसे थे, इसलिए!

समता व खानदानियत, अतः परेशान करने वाले को भी परेशान नहीं किया

हमारी मदर जब गाँव में निकलती थीं, तो छः-सात हज़ार की बस्ती का गाँव, तो गाँव के सभी लोग, स्त्रियाँ वगैरह सभी खुश हो जाते थे इन्हें देखकर। इतना सुंदर घर कि कोई गालियाँ दे फिर भी बा हँसते थे, बहुत समता वाले। मैंने कभी भी ऐसा नहीं देखा कि बा ने किसी को परेशान किया हो। लोगों ने बा को परेशान किया होगा लेकिन बा ने उन्हें परेशान नहीं किया।

प्रश्नकर्ता : हमारा उनसे थोड़ा-बहुत परिचय है लेकिन देखा कि अब तक मैंने ऐसे इंसान नहीं देखे।

दादाश्री : ऐसे इंसान नहीं देखे। देखने को मिलेंगे ही नहीं न! ऐसी समता! ऐसी खानदानियत, ज़बरदस्त खानदानियत।

लोगों को प्रेम से भोजन करवाने में ही खुद तृप्त हो जाते

हमारी मदर खाना खिलाते समय हमेशा भूखी रहती थीं। तो

मैंने कहा, 'क्यों नहीं खाया?' तब वे कहतीं, 'मेरा पेट तो खाना खिलाते समय ही भर गया, खाना खिलाकर ही!' तो क्या ऐसा होता है कि कोई इस तरह से तृप्त हो जाए? लेकिन ऐसा होता था। यदि तुझे भूख लगी हो और फिर मैं खाना खिलाने लगूँ तो मैं खुद ही तृप्त हो जाऊँ, ऐसा हो सकता है क्या? किसी ने ऐसी कोई बात सुनी है कि खाना खिलाने वालों का पेट भर जाए? मुझे ऐसा अनुभव होता था।

प्रश्नकर्ता : होता है दादा। जो खाना खिलाता है उसे ऐसा होता ही है, दादाजी।

दादाश्री : वह अच्छा है। उन्हें तो बिल्कुल भी भूख नहीं लगती थी। खाना खिलाने में बहुत आगे! मैंने ऐसा प्रेम देखा था।

प्रश्नकर्ता : प्रेम और सहिष्णुता की मूर्ति!

दादाश्री : कोई दही लेने आए तो इतना सारा दही निकालकर दे देती थीं और ऊपर से मलाई वाला, 'वर्ना अपना बुरा दिखेगा', ऐसा करके फ्री दे देते थे और वह भी मलाई वाला। वे लोग पुण्यशाली थे न! नहीं?

बा के धीरज ने बापू जी को बचाया

प्रश्नकर्ता : और फिर वे धीरज वाले भी थे!

दादाश्री : हाँ! एक बार ऐसा हुआ कि मेरे पिता जी रात को बाहर सो गए थे। पाँच-सात फुट लंबा साँप निकला और वह उनके सिर पर चढ़ गया था। तब मेरी बा ने देखा पूरा साँप शरीर पर से होकर गुज़र गया। उसके बाद बा ने मेरे पिता जी को उठाया और कहा कि 'आप बिना ओढ़े सो गए थे। पूरा साँप आपके शरीर पर से होकर निकल गया। अब मैंने गरम पानी रख दिया है तो नहा लीजिए'। बा ने अगर यह समता और धीरज नहीं रखा होता तो पिता जी चौंककर जाग जाते। पिता जी को लगता कि 'मुझे काट लेगा', साँप को लगता कि

'मुझे मारेंगे'। ऐसे में साँप उन्हें काट लेता, लेकिन मेरी बा में कितना धीरज था!

बहुत कोमल, इसलिए घबरा जाती थीं

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि बा बहुत कोमल थीं तो वह क्या है?

दादाश्री : यह हमारी बा तो बहुत ही कोमल थीं तो इसलिए वे जल्दी से घबरा जाती थीं (*शेरडो पड़े*)। अगर कोई पुलिस वाला पूछ ले कि 'ये भाई यहाँ रहते हैं?' तो तुरंत ही घबरा जातीं। अगर कोई व्यक्ति कोमल हो न, तो वह जल्दी से घबरा जाता है। *शेरडो* यानी कि घबरा जाना, इसलिए उन्हें सभी के प्रति ज़्यादा *लागणी* रहती है।

संस्कार उच्च इसलिए बहू की बहू बनकर रहे

प्रश्नकर्ता : दादा, सास के रूप में कैसी थीं बा?

दादाश्री : बा के संस्कार बहुत उच्च थे। हाइ लेवल के संस्कार। ऐसी संस्कारी स्त्री मैंने नहीं देखी। बा उत्तर ध्रुव के और मेरी जो भाभी आई थीं वे दक्षिण ध्रुव, दोनों इकट्ठे हो गए।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : दोनों ध्रुव इकट्ठे हो गए। यानी मैंने तो यह भी देखा और वह भी देखा, मुझे तो दोनों का अनुभव हो गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या बा कुछ नहीं बोलते थे?

दादाश्री : नहीं! कुछ भी नहीं। यह सब तो उन्होंने सहन कर लिया।

प्रश्नकर्ता : बहुत सहनशीलता, ऐसी तो मैंने अभी तक किसी में नहीं देखी।

दादाश्री : हो ही नहीं सकती! हमारे पूरे गाँव में नहीं थी। उनके ऐसे सारे संस्कारों से दिवाली बा (दादा की भाभी) और भी उल्टी चलने लगीं, इस चीज़ का दुरुपयोग हुआ।

प्रश्नकर्ता : उन्होंने ऐसा देखा कि यहाँ पर ढील है।

दादाश्री : हाँ, ढील देखी इसलिए दुरुपयोग हुआ।

प्रश्नकर्ता : उनके दूसरे गुण नहीं देखे?

दादाश्री : वे गुण नहीं देखे और उनकी कमज़ोरियाँ देखीं इसलिए लोग कहते थे कि 'सास बहू को कुछ भी नहीं कहती इसलिए बहू चढ़ बैठी है', तब बा कहती थीं कि 'मैं बहू से क्या कहूँ?' लेकिन जब कोई बाहर वाला आकर कहता था तो मुझे जोश आ जाता था। वे कुछ नहीं कहती थीं इसलिए मुझे मन में ऐसा होता था कि 'मैं कह दूँ उन्हें' उस कारण से फिर मेरा झगड़ा हो जाता था।

तब बा मुझे भी मना करती थीं कि 'भाभी से कुछ मत कहना', लेकिन वह चरित्र बल तो रहा ही होगा। चरित्र बहुत अच्छा, उत्तम! हमारी बा का चरित्र कितना उच्च!

प्रश्नकर्ता : वे बा तो बा ही थीं, झवेर बा!

दादाश्री : उनका (हीरा बा का) भी चरित्र कितना उच्च था। झवेर बा को (कभी नज़र उठाकर सख्ती से) नहीं देखा हीरा बा ने। (संपूर्ण विनय में ही रहे)। उन्हें (हीरा बा को) भी बा के वे अच्छे संस्कार मिले। दिवाली बा को भी अच्छे मिले लेकिन दिवाली बा एकदम सख्त बेल बन गई थीं न! इसीलिए उनमें से कड़वाहट नहीं गई। बाकी, भाभी थे योगिनी जैसे, उसमें तो दो मत नहीं।

इन गुणों की वजह से बा पर मोह

तो मुझे मोह सिर्फ बा पर ही था। हाँ, इतने सुंदर गुण थे इसीलिए मोह उत्पन्न हो गया। प्रेम भरे, पैसे-वैसे कुछ भी नहीं चाहिए था उन्हें, ऐसी थीं मेरी बा।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ बा पर ही मोह?

दादाश्री : हाँ, मुझे तो बचपन में, अज्ञान दशा में सिर्फ बा की ही ज़रूरत थी। वे बाहर जाती थीं तो मुझे अपनी साड़ी देकर जाती थीं। उसे हाथ में लेते ही मुझे नींद आ जाती थी।

[5.2]

पूर्व जन्म के संस्कार हुए जागृत, माता के माध्यम से

बा को परेशान किया कृष्ण भगवान की तरह

प्रश्नकर्ता : आपने बा को परेशान किया था?

दादाश्री : कितनी ही बार बा से बिना पूछे अंदर से दही निकालकर खा गया, अंदर से मलाई निकालकर खा गया, फलाना खा गया। बचपन में ऐसा किया था।

प्रश्नकर्ता : तो आपकी पूजा करनी चाहिए। कृष्ण भगवान ने ऐसा ही सब किया था तो लोग पूजा करते हैं।

दादाश्री : हाँ। वह सब तो बा को बिना बताए खा जाता था। तब मेरे साथ एक-दो लड़के रहते थे, वे कहते थे कि 'आप कृष्ण भगवान हो। इस तरह से सारी मलाई तो कोई भी नहीं खाता'। सारी मलाई खा जाता था। बा के यहाँ घी ही नहीं बन पाता था।

अब यह ज्ञान होने के बाद अभी भी कितने ही लोग मुझसे कहते हैं कि 'आप तो पहले से ही कृष्ण भगवान जैसे थे, ऐसा सब करते थे न!'

क्षत्रिय ब्लड, तो क्षण भर में ही हल्दीघाटी जैसा

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा कि आप शरारती थे तो क्या किसी को मारा था आपने? किसी बच्चे को मारा था या नहीं बचपन में? तब झवेर बा क्या करते थे?

दादाश्री : हाँ, मारा था। शरारत भी की थी। ऐसा नहीं है शरारत नहीं की! मारा था, अच्छी तरह से मारा था लेकिन फिर बा ने मना किया कि 'अब मत मारना किसी को'। बा ने मना किया इसीलिए फिर नहीं किया। मूलत: तो जुनूनी। ज़रा कोई उकसाने वाला चाहिए कि 'साहब ये सब चढ़ बैठे हैं, आ जाओ', क्या कहते हैं? फिर थे राजपूत तो वहाँ और क्या हो सकता था। क्षत्रिय राजपूत, अंदर बहुत ज़ोर था, ब्लड बहुत जोशीला था। क्षण भर में झगड़ पड़ते थे तो हल्दीघाटी जैसा युद्ध भी जम जाता था। झगड़ा शुरू हो जाता कि इस तरफ लोग लाठियाँ लेकर निकल पड़ते थे। अरे! क्यों यह ढिशुम, ढिशुम, ढिशुम? भुजाएँ फड़कने लगती थीं, जबकि इन लोगों ने तो एक सोटी भी नहीं लगाई! कैसी शक्ति? कभी सोटी मारना तो आया नहीं! डाँग से मारते थे, धड़ाम से। मुझे तो एक व्यक्ति डाँग से लगा गया था। तब मैं तुरंत नीचे बैठ गया था, बहुत लगी थी लेकिन अंदर कोई असर नहीं हुआ था। इन दोस्त और दोस्तों के झगड़े में।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : झगड़े। हाँ, एक मतभेद हुआ कि उन लोगों की तो आ बनी। लड़कों की भुजाएँ भी मज़बूत। किसी-किसी की भुजाएँ इतनी मज़बूत नहीं दिखाई देती थीं, पतली दिखाई देती?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ताकत ज़्यादा।

दादाश्री : अरे, वह ताकत भी कैसी ताकत थी! लोहे जैसी ताकत! और आश्चर्य की बात यह थी कि उन लोगों की भुजाएँ मज़बूत नहीं दिखाई देती थीं लेकिन यों देखो तो लोहे जैसी ताकत थी। उनकी हड्डियाँ इतनी मज़बूत भी और मन भी उतना मज़बूत था।

'मार खाकर आना, मारना मत'

बचपन में एक बार किसी को एक छोटे से पत्थर से मारकर आया था तो उसे खून निकल आया। तब फिर, लोग मुझे मारने न आएँ, इसलिए मैं चुपचाप घर आ गया! झवेर बा को पता चल गया।

प्रश्नकर्ता : जब आप किसी को मारकर आते थे, तब बा आपको मारते थे क्या?

दादाश्री : समझाते थे। उसके बाद उन्होंने मुझसे कहा कि 'भाई यह क्या किया? देख, उसे खून निकला। यह तूने क्या किया?' मैंने कहा, 'मारता नहीं तो और क्या करता?' तब उन्होंने कहा, 'वह तो उसकी चाची के पास रहता है, उसकी माँ भी नहीं है तो उसे कौन पट्टी वगैरह बाँधेगा और कितना रो रहा होगा बेचारा और कितना दु:ख हो रहा होगा! अब कौन उसकी सेवा करेगा? और मैं तो तेरी मदर हूँ, तेरी सेवा करूँगी। अब से तू मार खाकर आना लेकिन किसी को पत्थर मारकर और खून बहाकर मत आना। तू पत्थर खाकर आना तो मैं तुझे ठीक कर दूँगी लेकिन उसे कौन ठीक करेगा बेचारे को'।

ऐसी मदर बनाएँ महावीर

प्रश्नकर्ता : अभी तो सब उल्टा ही है। बल्कि ऐसा कहते हैं कि 'देख लेना! अगर मार खाकर आया तो!'

दादाश्री : हमेशा से ही उल्टा, आज से नहीं। अभी इस काल की वजह से यह नहीं हुआ है, वह हमेशा से उल्टा ही था। ऐसा ही है यह जगत्! इसलिए लोग तो ऐसा सिखाते हैं कि 'अगली बार लकड़ी लेकर जाना'। सब दु:खी करने के तरीके! ये माँ जी तो मुझे अच्छा सिखाती थीं, सबकुछ अच्छा सिखाती थीं। मुझे बहुत अच्छा लगता था। बोलो! अब ऐसी माँ महावीर बनाएगी या नहीं? मेरी माँ जी थीं ही ऐसी! बचपन में यह बात हुई थी फिर बड़े होने पर समझदारी बढ़ी तो और ज़्यादा समझ में आया। बाकी, यदि ऐसा सिखाए तो पहले तो अच्छा ही नहीं लगेगा न? लेकिन मुझे अच्छा लगा था। मैंने कहा, 'बा जो कह रही हैं, वह बात सही है। उस बेचारे की मदर नहीं है'। इसलिए फिर समझ गया तुरंत ही, और तभी से मारना बंद हो गया।

क्षत्रिय तो होते हैं समझदार माँ के पागल बेटे

यों संसारी कहावत है कि क्षत्रिय यानी समझदार माँ के पागल बेटे

वास्तव में क्षत्रिय समझदार नहीं माने जाते, संसारिक मामलों में समझदार नहीं माने जाते।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा कहने वाले ही तीर्थंकर बने हैं।

दादाश्री : बनेंगे ही न लेकिन! उनमें अन्य कोई गाँठें नहीं होतीं न, गाँठें नहीं है तभी ऐसा कह सकते हैं न! और गाँठ वाला तो शब्दों की वेल्डिंग करके, पोलिश करके बोलता है। ये तो, अगर पोलिश किया हुआ हो तो उसे भी उखाड़कर बोलते हैं।

और वणिक पुत्र? पागल माँ के समझदार बेटे, बहुत समझदार। उनमें समझदारी होती है, माँ पागल होती है। यह तो लोगों ने बताया है। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, ऐसी कहावत है। मैं क्यों कहूँ? मैं क्यों इसमें पड़ूँ? मुझे क्या लेना-देना? यह तो जो कहावत मैंने सुनी है, वह आपको बता रहा हूँ इसलिए कुछ बुरा मत मानना।

हमें पागल कहा, वह बात मुझे पसंद आई कि 'हाँ! बात सही है क्योंकि मेरी माता जी को देखा था, वे क्षत्राणी जैसी थीं। यों कभी भी भूल वाली नहीं लगीं, कोई दखल नहीं और हम तो मूल रूप से पागल ही थे'।

सरलता की वजह से बा के मना करते ही बंद

प्रश्नकर्ता : दादा, बा ने आपको मारने से मना किया और मारना बंद हो गया, वह कैसे?

दादाश्री : हाँ! हमारी सरलता की तो दाद देनी पड़ेगी! तब छोटा बच्चा था, जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाए। निष्कपटता! लेकिन बा ने करुणा दिखाई कि...

प्रश्नकर्ता : ज्ञान फिट करवाया।

दादाश्री : हाँ। उन्होंने कहा कि 'मैं तो तेरी बा हूँ और मैं तेरी सेवा करूँगी लेकिन उस बिन माँ के बच्चे को मारकर आया तो उस बेचारे का कौन करेगा अब?'

उसके बाद मैं समझ गया कि यह गलत है। फिर बंद कर दिया। मैंने कहा, 'यह तो मुझसे भूल हो रही है'। काँप उठना चाहिए कि 'अरेरे! इसका क्या होगा अब?' काँप जाते थे हम तो। उसे लगी, उसके बाद मन में बहुत ही पछतावा हुआ था कि ऐसा सब कैसे हो गया? बेचारे को खून निकला! उस समय अंदर घबराहट हो गई थी छाती में। ये सभी क्षम्य दोष लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। हमने (खुद में) अक्षम्य दोष तो देखा ही नहीं। इन जैसे निर्दय नहीं, ऐसी निर्दयता नहीं थी। ये तो खून करने के बाद, उस पर बैठकर रोटी और कढ़ी खाते हैं! लोग इस हद तक निर्दयी होते हैं। यों ही किसी को परेशान कर आते हैं, हुल्लड वगैरह चल रहा हो तब पेट्रोल छिड़ककर आ जाएँ, ऐसे हैं ये सब।

बिना हेतु के नहीं लेकिन जैसे ही नाम लिया कि तूफान

प्रश्नकर्ता : दादा, जब आप छोटे थे, तब आपको हुल्लड़ वगैरह में जाने का मन होता था?

दादाश्री : होता तो था लेकिन ऐसा तूफान नहीं मचाते थे। जिसने हमारा कोई भी नुकसान नहीं किया उसका नुकसान कर दें, हमारा हुल्लड़ ऐसा नहीं होता था। हमारा तो, यदि कोई हमारा नाम ले-ले तो वहाँ पर तूफान मचा देते थे।

जबकि दंगे-फ़साद में तो, सब लोग किसी बेचारे ने कुछ भी नहीं किया हो फिर भी उसका घर जला देते हैं और दुकान जला देते हैं। यह सब क्या है?

प्रश्नकर्ता : कोई लेना-देना नहीं।

दादाश्री : लेना-देना नहीं, फिर भी।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ शौक के लिए ही न!

दादाश्री : नहीं, शौक भी नहीं था। यह तो एक तरह की भेड़चाल। उसने किया, उसने किया इसलिए उसने किया। बिना सोचे-समझे

भेड़चाल। हमारा ऐसा नहीं था। हम हेतु देखते थे, फायदा देखते थे, नुकसान देखते थे। यदि हमारा नाम लेते तो फिर एकाध की तो आ बनती थी। अंदर उससे डिस्टर्ब हो जाते थे, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान जैसा हो जाता था। कहते थे, 'आ जा'।

पूर्व के संस्कार, मदर को देखकर जागृत हुए

प्रश्नकर्ता : आपको जो ज्ञान हुआ, उसमें माँ के संस्कारों के साथ-साथ आप अपने भी पूर्व जन्म के उच्च संस्कार लेकर आए होंगे न?

दादाश्री : बहुत उच्च संस्कार होने चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ क्योंकि मुझे बचपन से वैराग्य रहता था, हर एक बात में। मदर भी उच्च कोटि की मिली थीं। मदर अच्छी मिल गई थीं। पूरी तरह से सभी संस्कार सिर्फ मदर के ही! क्योंकि मेरा किया हुआ तो था ही लेकिन जब मैं यह सब देखता, तभी मुझे यह सब आता न!

प्रश्नकर्ता : और नहीं तो क्या?

दादाश्री : अत: मदर का अनुभव देखने मिला, इसलिए आ गया। ये सारे मदर के संस्कार हैं। इस जन्म के संस्कार है लेकिन माल तो मेरा ही है न? संस्कार यानी आपके माध्यम से मेरे माल का जागृत होना। मेरे माल को जागृत करने के लिए अन्य संस्कारों की भी ज़रूरत थी। कितने ही जन्मों से मैं करता आ रहा था तो इस जन्म में वह टंकी भरकर फूटी। यह सब खुद का ही किया हुआ है न! उन्होंने यह सिखाया, तो पूरी ज़िंदगी मुझे वैसा ही रहा। यानी ये तो अपने ही संस्कार हैं न! वर्ना क्या कोई माँ ऐसा कहेगी कि 'तू मार खाकर आना?' ये अपने संस्कार हैं और मूलत: तो मैं अपने सभी संयोग लेकर आया था। नियम ऐसा है कि जैसे खुद के संयोग होते हैं वैसा ही पूरा माहौल मिलता है।

प्रश्नकर्ता : आप मूल रूप से, शुरू से ही यह माल लेकर आए थे?

दादाश्री : हाँ। मैं लेकर आया हूँ और इतना सुंदर माल है। देखना, उससे लोगों का काम निकल जाएगा।

पहले तो खटमल पर बहुत चिढ़ थी

प्रश्नकर्ता : अहिंसा के ऐसे अन्य कोई पाठ जो माँ से सीखे हों, वैसी बातें बताइए न, दादा।

दादाश्री : बचपन से ही बाकी सभी चीज़ों के लिए हमारी चिढ़ चली गई थी लेकिन खटमल पर रह गई थी। झवेर बा और हीरा बा को नींद आ जाती थी। वे नहीं चिढ़ते थे लेकिन मुझे चिढ़ रहती थी। खटमल के प्रति चिढ़ के कारण हमने लोगों को पूरी रात-रात भर जागते हुए भी देखा है। अरे! और किसी की क्या बात करें हमारा ही इतना सेन्सिटीव स्वभाव था कि एक खटमल को भी बिस्तर पर रेंगते हुए देखकर पूरी रात जागते हुई बिताई है।

शुरुआत में तो मैं उन्हें खाने नहीं देता था, निकाल देता था और फिर वैष्णव के घर जन्म हुआ था न, तो मार भी देता था। वहाँ पर हिंसा का इतना अधिक महत्व नहीं था तो घर में भी ऐसा सब नहीं सिखाते थे। फिर यह सब तो बाद में पता चला कि यह सब गलत हुआ है।

खटमल टिफिन लेकर नहीं आते

बहुत साल पहले की बात है। मैं पच्चीस-छब्बीस साल का था उन दिनों घर में मदर बीमार रहती थीं, उस वजह से घर में खटमल हो गए थे, ज़रा ज़्यादा हो गए थे। घर में सभी परेशान हो गए थे। जब इंसान बहुत बुढ़ापे में कमज़ोर हो जाता है न, तब शरीर भी कमज़ोर हो जाता है तब खटमल हो जाते हैं। तो बा के बिस्तर पर बिछाने की दो नरम रज़ाइयाँ थीं तो उनमें खटमल हो गए थे। फिर वे मुझे भी काटते थे! मेरा भी नसीब तो होगा न!

मेरी मदर मुझसे छत्तीस साल बड़ी थीं। मदर से मैंने पूछा कि आज तक कभी भी खटमल नहीं हुए है लेकिन इस साल बहुत खटमल

हो गए हैं तो क्या वे रात को काटते नहीं है? परेशानी नहीं होती? तब उन्होंने कहा, 'भाई काटते ज़रूर है लेकिन उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है'। मैंने पूछा 'क्यों? ये तो पूरी रात काटते हैं'। तब कहा, 'उन खटमलों में यह एक गुण बहुत अच्छा है'। मैंने पूछा 'कौन सा?' तो कहा, ''भाई, वे क्या कोई पोटली लेकर आते हैं? वे खाना खाकर चले जाते हैं। वे कोई पोटली लेकर नहीं आते हैं'।

खटमल तो भिक्षुक हैं। वे कहाँ झोली लेकर आए हैं? जब उन भिक्षुकों का पेट भर जाएगा तो चले जाएँगे। उन्हें घर-वर नहीं बनाने हैं और कल के लिए भी कुछ ले नहीं जाते। दूसरों की तरह वे कोई टिफिन लेकर थोड़े ही आते हैं कि 'हमें कुछ देना न, माई-बाप?' लोग तो टिफिन लेकर आते हैं जबकि ये टिफिन लेकर नहीं आते इसलिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है,'' बा ने कहा।

तो मुझे यह शब्द पसंद आया। मैंने कहा, 'यह बात तो उपकारी है। ये शब्द मुझे काम के लग रहे हैं'। उन्होंने कहा, वे पोटली लेकर नहीं आते हैं। यदि पोटली बाँधकर ले जाते तो उन्हें रोकना पड़ता कि रुको, क्यों बाँध रहे हो? जबकि वे तो खाना खाकर चले जाते हैं। यानी अपने जैसे परिग्रही नहीं है। उन्होंने इतनी अच्छी बात कही कि उससे मुझे हेल्प हुई, मुझे अच्छी लगी। मैंने कहा, 'ये कितनी धीरज वाली हैं! धन्य है माँ जी को! और इस बेटे को भी धन्य है!'

लोग क्या खटमल को जाने देते हैं? हाथ में आया कि उसे मार ही देते हैं। तब फिर मैं उससे पूछता हूँ कि 'क्या तुझे अब पक्का विश्वास हो गया है कि एक कम हो गया होगा? कौन सी गारन्टी से तू समझ गया कि एक कम हो गया? तब तो रोज़ के रोज़ कम ही होते जाएँगे'। तो कहा, 'नहीं! ऐसा कोई नियम नहीं है'। मुझसे पूछा, 'क्या करना चाहिए?' तब मैंने कहा, 'खटमल को मारने की ज़रूरत ही नहीं है'। और फिर भी अगर मारते ही रहेंगे... लेकिन लोग यह नहीं जानते कि खटमल किस वजह से होते हैं? अब, जब सीज़न बदलता है तब जो लोग नहीं मारते हैं उन्हें भी एक भी खटमल नहीं मिलता। तब वे

(खटमल) खत्म हो जाते हैं अपने आप ही, और जो लोग मारते ही रहते हैं उनके यहाँ भी सीज़न में खटमल होते ही रहते हैं। तब अगर पूरी तरह खत्म करना चाहें, फिर भी नहीं होते। आप मारपीटकर खत्म कर भी दोगे तो फिर पड़ोसी के घर में से घुस जाएँगे! तो भाई! छोड़ न इसे, रख न एक तरफ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा चकत्ते पड़ जाते हैं और फिर उसे खुजलाते रहना पड़ता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन नींद में क्या होता है? वे ऐसा कहते हैं कि, 'अगर आप हमें परेशान करोगे तो हम रात को नींद में काटेंगे लेकिन हम अपना हिसाब पूरा करके ही जाएँगे'।

प्रश्नकर्ता : हम तो फ्लिट (जीवजंतु मारने की दवाई) छिड़ककर पूरा पक्का करके फिर सो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ! लेकिन क्या किसी का भी घर खटमल रहित हुआ है? ये सारे उपाय गलत हैं। उल्टे उपाय हैं। इस संसार में सभी लोग जितने भी उपाय करते हैं, वे सभी उल्टे उपाय हैं। उपाय उसे कहते हैं कि फिर से कभी हमें वह दु:ख न रहे। इन उल्टे उपायों से तो वे दु:ख हमेशा ही रहते हैं। यह समझ में आ रहा है? और दूसरा क्या है कि आपको पता नहीं है कि आप जिन्हें मारते हो उनकी आयु कितनी है? क्या उनकी आयु सौ साल है, जो उन्हें मारते हो? कितनी आयु होगी उनकी?

प्रश्नकर्ता : उनकी आयु तो कुछ दिनों की ही होती है।

दादाश्री : उनकी आयु लगभग इक्कीस दिन होती है। अब वह जो खुद ही मरने आया है उसे मारकर आप क्यों जोखिमदारी लेते हो बेकार ही।

जिनका सृजन नहीं कर सकते, उन्हें नहीं मार सकते

फिर उन मेहमानों से (खटमलों से) मैंने पूछा, 'आप यह किस

तरह से करते हो? आपकी आने-जाने की क्या क्रिया है? हम सौ मार देते हैं तो फिर से ये दूसरे नए कहाँ से आ जाते हैं?' तब उन्होंने बताया 'हमारा वंश कम नहीं होता, जितने मारोगे उतना आपको जोखिम रहेगा जबकि हम उतने के उतने ही रहेंगे'। 'इज़ इट पॉसिबल (यह संभव है)?' तब उन्होंने कहा, 'हाँ! क्योंकि दूसरे घरों से (हम) आ जाएँगे'।

तब आसपास में जो जैन थे न, उनके वहाँ मारने-करने का रिवाज़ तो था नहीं। इसलिए यह सब चलता ही रहता था, सारे बिस्तर बाहर डाल देते थे। अपने यहाँ पर कोई भी बिस्तर वगैरह बाहर सुखाने को नहीं डालता। बाहर नहीं डालते थे इसलिए वे सभी यहाँ अपने घर आ जाते थे, मुकाम करते थे। तब मैंने तो यह निष्कर्ष निकाला कि घर में जितने जीवजंतु होते हैं, यदि उन्हें बीन-बीनकर बाहर निकाल देते हैं, बाहर रख आते हैं तो फिर पड़ोस में रहने वालों को परेशानी। इसलिए इस पीड़ा से दूर ही रहो। यह तो चलता ही रहेगा। इसमें यदि चित्त रखेंगे तो अंत ही नहीं आएगा न! और अपने यहाँ मारने का नियम तो है ही नहीं। एक भी जीव को नहीं मारना चाहिए। ऐसा संयोग कहाँ से मिला आपको? ये अकर्मी कितने पाप बाँधते हैं, उसकी उन्हें खबर नहीं है! और खटमल को हम बना नहीं सकते तो फिर उन्हें मार कैसे सकते हैं? क्या आपको यह न्याय लगता है? नहीं मारना चाहिए न? अगर एक खटमल भी बना सको तब पता चलेगा। मारने की शक्ति है लेकिन उसमें यदि बनाने की शक्ति हो तभी मारना चाहिए। इस दुनिया में क्या कोई एक खटमल भी बना सकता है? तो फिर नहीं मारना चाहिए। फिर भी यदि अक्ल काम करती रहे तो क्या करना चाहिए? 'भाई, इन गद्दों को बाहर डाल देना। बाहर बेचारे धूप में तप जाएँगे, फिर बीन-बीनकर इकट्ठे करना और फिर बाहर दूर कहीं फेंक आना'।

उन जीवों को मारने के बाद दूसरे जीव आएँगे या नहीं, उसकी क्या गारन्टी? जीवजंतुओं का साइन्स तो सिर्फ ज्ञानी ही जानते हैं। ये जीव उत्पन्न क्यों हुए हैं और क्यों मर जाते हैं? वह इन मूर्ख लोगों को पता ही नहीं है। हर एक जीव अपनी आयु लेकर ही आता है, वहाँ ये

अकर्मी मारने का निमित्त बनते हैं! वे (आपका) हिसाब ही हैं। चाहे कितने भी मारो फिर भी अगर ग्यारह को काटना होगा तो काटेंगे लेकिन बारहवाँ नहीं काटेगा।

दादा की अनोखी शैली खटमलों से भी बातचीत

प्रश्नकर्ता : फिर क्या हुआ दादा? खटमलों को मारना बंद हो गया? कैसे हुआ?

दादाश्री : मैंने तो फिर दूसरी तरह से जाँच की कि 'भाई, जब हम जाग जाते हैं और लाइट लगाते हैं तो आप भाग क्यों जाते हो?' तब उन्होंने कहा, 'आप लोग मार दोगे, हिंसक हो'। हम लोगों से भयभीत होकर भाग जाते हैं बेचारे! यह तो हमें खूनी जैसा लगता है। मैंने तो उनसे पूछा था कि 'हमें अहिंसक बनना है'। तब उन्होंने बताया, 'आप कैसी हिंसा कर रहे हो? यह आपकी हिंसा का ही फल है। हम फल दे रहे हैं हिंसा का। द्वेषी बनकर आपने हम पर द्वेष किया है'। उसके बाद से मैंने तय किया कि मुझे हिंसक नहीं रहना है।

इंसान के पसीने में से स्वयंभू उत्पन्न होने वाले

तब फिर मैंने पूछा, 'लेकिन आप खाना खाने क्यों आते हो?' तब उन्होंने कहा, 'इसके अलावा हमारी और कोई खुराक नहीं हैं। भैंस का दूध हम से पीया नहीं जा सकता, हम तो सिर्फ मनुष्य का ही खून पीने वाले लोग है क्योंकि हम स्वयंभू चीज़ हैं। आपके पसीने में से उत्पन्न होते हैं इसीलिए हम आपके ही हैं। अब क्या रास्ता निकालोगे?'

खटमलों को तो भगवान ने मनुष्य जाति का बताया है। खटमलों को तिर्यंच नहीं माना है, मनुष्य देह माना है। (उसे स्वेदज कहा जाता है) उन्हें असंगी मनुष्य कहा गया है।

आहार सिर्फ मनुष्य का रक्त

ये खटमल मनुष्य में से ही आए हैं और वे सिर्फ मनुष्य का रक्त ही पीते हैं, वे और कुछ भी नहीं खाते। यही उनकी खुराक है। वे लोग

हम जैसे नहीं हैं। अपने लोग तो ऐसे हैं कि यदि उन्हें कोई भोजन कराए और फिर कहे कि 'कुछ लेना हो तो लेकर जाइए', तो दस-बीस लड्डू ले आते हैं। जबकि इन्हें ऐसा कुछ भी नहीं है। तब फिर कहाँ जाएँ वे बेचारे? यानी इंसान के ब्लड के अलावा उन्हें और कोई ब्लड नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : कहाँ जाएँ वे, यह बताओ? कौन सा ऐसा होटल है जहाँ वे जाएँ? क्योंकि यही उनकी खुराक है। अन्य कोई खुराक नहीं है। यही स्पेशल फूड है। यदि दूसरा फूड होता तो हम लाकर उन्हें खिला देते। वह भी फिर मनुष्य का खून, जानवर-वानवर का खून नहीं चलता। मनुष्य का खून ही उनकी खुराक है। यदि घी-दूध पीते तो हम उन्हें दे देते। लेकिन वे वह नहीं लेते, छूते भी नहीं हैं बेचारे। अपनी होटल (देह) में जो है वही उनकी खुराक है, और कहाँ जाएँ वे? यह सब सोच लिया था मैंने। सोचने में कुछ भी बाकी नहीं रखा था।

निर्भय बनाया और आराम से खिलाते थे

इसलिए फिर उन्हें भोजन करने देता था। आए हो तो, 'खाना खाकर जाओ। यह होटल अच्छा है, खाना खाकर जाओ आराम से। भयभीत मत होना'। वे मेरे हाथ में आ जाते थे, पकड़े भी जाते थे। एक-एक मेरे हाथ में आ जाता था लेकिन वे भयभीत नहीं होते थे। वे समझ गए थे कि 'ये मारेंगे नहीं'। सब समझते हैं। हर जीव समझता है कि 'ये मुझे मारेंगे या नहीं!' आपके भाव को पहचान जाते हैं। सिर्फ मनुष्यों को ही सामने वाले के भावों को पहचान ने में बहुत देर लगती है।

उसके बाद तो हम खटमलों को जान-बूझकर खून पीने देते थे, काटने भी देते थे कि 'यहाँ पर आए हो तो अब खाना खाकर जाओ'। उस बेचारे को निकाल तो नहीं सकते थे न! क्योंकि इस होटल में किसी को दु:ख नहीं देना है, वही हमारा काम। अपनी होटल में आया है तो

क्या खाना खाए बगैर जाएगा? हमारी लॉज में आए तो क्या आप उसे लॉज में से जाने दोगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

'इन्हें अंतिम पद दो'

दादाश्री : तो क्या हम यहाँ से यों ही जाने देते? खटमल को भी खाना खिलाया है। अब अगर नहीं खिलाते तो उसके लिए क्या सरकार हमें कोई दंड देती? नहीं। हमें तो आत्मा प्राप्त करना था। अब उसका क्या फल मिला? खटमल में रहे वीतराग हमारे अंदर रहे हुए वीतराग को फोन करते थे कि 'ऐसे कोई दाता नहीं देखे इसलिए इन्हें श्रेष्ठतम् पद दो'। सिर्फ, जब यहाँ गरदन पर काटते थे तब वह सहन नहीं होता था। जब वह सहन नहीं होता था तब फिर मैंने प्रयोग किया। मैं उन्हें यहाँ से उठाकर पैरों पर रख देता था क्योंकि वे लोग समझ गए थे कि ये अहिंसा वाले हैं इसलिए तुरंत मेरे हाथ में आ जाते थे। होते थे चार ही खटमल लेकिन फिर भी हाथ में आ जाते थे। वे समझ गए थे इसलिए फिर मैं पैर पर रख देता था। यहाँ पर जुदाई नहीं है। कहाँ जाए वह बेचारा भूखा? 'यहाँ (पैर पर) आप खाना खाओ लेकिन इस कमरे (गरदन पर) में मत खाना', कहा।

जब मुझे गरदन पर काटते थे तो मैं उठाकर हाथ पर रख देता था ताकि बेचारा भूखा न रहे! यह जगत् कैसा है? यह अपनी मालिकी का नहीं है। जो खाए उसके बाप का।

काटे तब पता चलता है कि प्रेम कहाँ है

प्रश्नकर्ता : सिर्फ 'इस कमरे में मत खाना लेकिन यहाँ वाले कमरे में खाना', ऐसा कहते थे!

दादाश्री : हाँ। इतनी कमज़ोरी देखी मैंने कि 'यहाँ पर मत खाना। इस कमरे में आपको नहीं खाना है, बाकी सब जगह खाओ। खाना खाकर ही जाओ, खाए बगैर नहीं जाना है'। ऐसा हमें एक-एक खटमल से कहना पड़ा। उन्हें भूखा कैसे निकाल देते? कितने ही खाना

खाकर जाते थे आराम से! तो रात को हमें भी आनंद होता था कि इतने सारे खाना खाकर गए। यों दो लोगों को खाना खिलाने की शक्ति नहीं है जबकि यह तो इतने सारे खटमलों को खिलाया! 'जितने आए उतने आराम से खाओ भाई, आपका ही घर है, हम खाना खिलाकर भेजते थे। बा अपने मेहमानों को खाना खिलाकर भेजते थे और हम अपने मेहमानों को खिलाकर भेजते थे। वह अपना पेटभर खाना खाकर फिर घर चला जाता था और फिर ऐसा भी नहीं है कि आराम से दस-पंद्रह दिन का एक साथ खाता था! एक दिन तो लगभग नौ सौ से एक हज़ार खटमल चढ़ गए थे। फिर भी मैंने कहा, 'तुम हो और मैं हूँ, जितना खाना हो उतना खाकर जाओ'। हम जागते हुए खाना खिलाते हैं। पाँच खटमल खाएँ तो अच्छा है या हज़ार? हज़ार। त्वचा को सुन्न कर देते थे, फिर है कोई संताप? अत: मेरे ज्ञान ने कहा, 'रात को जगाते हैं, ये ध्यान करने में उपकारी हैं'। और देखो! तपोबल से अंदर प्रकाश हो गया। क्योंकि वे आत्मा को नहीं काटते थे, देह को काटते थे। यदि अभी तक देह पर प्रेम है तो आत्मा पर कब प्रेम आएगा? खटमल के काटने पर हमें पता चलता है न कि प्रेम कहाँ पर है?

तप करके भी खटमल के साथ कोई मतभेद नहीं

तो मतभेद नहीं पड़ने दिया हमने, खटमल से भी मतभेद नहीं। घर में कभी जब खटमल हो जाते थे तो उनसे कोई मतभेद-वतभेद नहीं। खटमल भी बेचारे समझ गए थे कि ये मतभेद रहित इंसान हैं। हमें अपना कोटा (हिस्सा) लेकर चलते बनना है।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या प्रमाण है कि आप यह जो दे देते थे तो वह पूर्व का सेटलमेन्ट नहीं हो रहा होगा?

दादाश्री : सेटलमेन्ट ही था, सेटलमेन्ट! यह कुछ नया नहीं था, लेकिन सेटलमेन्ट का प्रश्न नहीं है, अभी तो भाव नहीं बिगड़ना चाहिए न? नया भाव नहीं बिगड़ना चाहिए न? वह सब सेटलमेन्ट है, इफेक्टिव है लेकिन अभी नया भाव नहीं बिगड़ना चाहिए। बल्कि हमारा नया भाव

मज़बूत हो जाता है कि 'भले ही सहन करना पड़े लेकिन यह करेक्ट है'।

आपको अच्छा लगा?

मैं जो बैलेन्स करने का कह रहा हूँ उससे... क्या-क्या फायदे होते हैं?

प्रश्नकर्ता : एक तो शांति रहती है। चिर शांति।

दादाश्री : नहीं, परेशानी तो होती है! सहन करने में परेशानी तो होती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्लेश से मुक्ति रहती है।

दादाश्री : हाँ, क्लेश से मुक्ति रहती है। सहन करने पर क्लेश से मुक्ति रहती है।

जागते हुए खाना खिलाकर हिसाब चुकाए

प्रश्नकर्ता : नींद में तो हमें भी कितने ही खटमल काट लेते होंगे लेकिन जागते हुए नहीं काटने देते।

दादाश्री : वह तो मैंने उनसे पूछा था कि 'हम जाग रहे हैं तब तक तो आपको हटा देते हैं। आपको कोई आपत्ति तो नहीं है न?' तब उन्होंने कहा, 'नहीं! हम तो खा लेंगे इसलिए आप आराम से सो जाओ, अच्छी तरह खा लेंगे'। नींद में तो वे अच्छी तरह खाना खा ही लेते हैं न!

कुदरत का नियम ऐसा है कि 'आपको सुलाए बगैर रहेगी नहीं और हम खाए बगैर रहेंगे नहीं। आपकी इस होटल में हम खाकर ही जाएँगे!' वे खाकर ही जाते हैं।

ये खटमल आकर मुझसे कह जाते हैं कि, 'ये सभी लोग चाहे कितने भी प्रयत्न करें, चाहे हमें कितना भी रोकें, चाहे कुछ भी करें लेकिन उनके सोने के बाद हम ले लेते हैं लेकिन हम हमारा हिसाब तो चुका ही देते हैं'। जो जागते हुए काटने दें, वे शूरवीर। जो जागते हुए

हिसाब चुकाते हैं, उनका हिसाब चुक जाएगा जबकि नींद में हिसाब नहीं चुक पाएगा। वर्ना सोते हुए तो हिसाब चुकाने ही देते हैं न लोग! राजा-वाजा सभी करने देते हैं न? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है, नहीं करने देते।

दादाश्री : मैं तो जागते हुए ही हिसाब चुक जाने देता था। आपके खर्राटे लेते ही सभी खटमल एक साथ इकट्ठे होकर बाहर निकल आते हैं, चढ़ बैठते हैं और आराम से बैठकर खाना खाते हैं! वे खाना खाकर चले जाते हैं। फिर सुबह पाँच बजे एक भी नहीं दिखाई देता। खाना खाया हो या नहीं लेकिन पाँच बजते ही चले जाते हैं। सुबह शांत, फर्स्ट क्लास खाना खाकर शांति से आराम करता होगा। इतना खाता है कि हाथ लगाते ही फूट जाता है बेचारा। अरे! मर जाता है। अपने हाथ बदबूदार हो जाते हैं बल्कि! वे आराम से खाना खाकर जाते हैं, वह भी व्यवस्थित है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

जो जागृत अवस्था में खाना खिलाएँ, उनके चौरासी प्रकार के ताप जाएँ

दादाश्री : तो उसके बजाय जागृत अवस्था में खाने दो न उन्हें, हं, हो जाएगा। जब डॉक्टर इन्जेक्शन देते हैं उस समय नहीं चुभता है क्या? उसे क्यों एक्सेप्ट कर लेते हैं? 'लेकिन बुखार उतर जाएगा न!' तो 'ये जो इन्जेक्शन लगाते हैं न, तो उससे वह वाला बुखार उतर जाएगा', ऐसा कहा है। चौरासी प्रकार के ताप, मन के जो ताप है न, वे सभी एकदम से खत्म हो जाएँगे। ये आपसे रात में ले जाते हैं! दिन में नहीं लेने देते न, जागते हुए?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा! कितना उच्च प्रकार का समभाव आए, तब कहीं ऐसा हो सकता है!

दादाश्री : ऐसा तो मैं अठाईस साल की उम्र में करता था। यहाँ (गले पर) खटमल आते थे न, तो उन्हें यहाँ (पैरों पर) रख देता था।

भूखा नहीं जाने देता था क्योंकि यह तो मैंने खोज की है, समभाव नहीं लाया हूँ। मैंने बिज़नेस किया है। समभाव तो! आपको बिज़नेस करना ही नहीं आता है तो वह तो कैसे करोगे? यों समभाव तो रखा जाता होगा भाई? जो काटे उस पर क्या समभाव रखा जाता होगा?

अद्‌भुत बिज़नेस दादा का, नुकसान में भी किया नफा

प्रश्नकर्ता : तो आपने बिज़नेस किया दादा?

दादाश्री : हाँ। बिज़नेस किया। मूलतः तो व्यापारी हूँ न!

जब आप नींद में खाना खा ही जाते हो और मुझे मूर्ख बनाते हो तो हमारी जागृत अवस्था में ही हमारी होटल में खाकर जाओ न! मैंने बिज़नेस किया न! इसीलिए फिर मैंने एडजस्टमेन्ट ढूँढ निकाला कि ये जो खटमल हैं वे नींद में तो काट ही जाते हैं तो उसके बजाय जागते हुए ही ले जाओ न! इसीलिए जागृत अवस्था में उन्हें खाना खिलाया, 'हाँ, काटो'। और वे भूखे नहीं मरते, रोज़ खाना खा लेते हैं। ये खटमल ऐसे नहीं है कि भूखे मरें। लोग नींद में खाने देते हैं और हम जागृत अवस्था में खाने देते हैं और फिर उन्हें मारने-करने की कोई बात ही नहीं। तब फिर मैंने तय किया 'मैं क्षत्रिय हूँ, मुझे नींद में क्यों खिलाना पड़े, जागृत अवस्था में ही न खिला दूँ?' अहंकार था न उन दिनों? क्षत्रियपन का अहंकार। तो वह अहंकार क्या नहीं कर सकता? लेकिन वह जो काटने देता था, वह अहंकार से था। भूखे क्यों जाने दें?

वे खटमल क्या कहते हैं? 'यदि तू खानदानी है तो हमें हमारी खुराक लेने दे और अगर खानदानी नहीं है तो यों भी हम खाना खाकर चले जाएँगे लेकिन जब आप सो जाओगे, तब। अतः तुम शुरू से ही अपनी खानदानियत रखना!' तो मैं खानदानी बन गया था। यदि पूरे शरीर पर काट रहे होते थे न, तब भी काटने देता था। इस तरह पाँच-पाँच साल निकाले हैं मैंने। मन में ऐसा था कि हम क्षत्रिय हैं, क्यों न वे खाना खाकर जाएँ? इस तरह के सारे तप तो किए हैं मैंने। एक जन्म तो तप करो, अन्य और कोई तप करने के बजाय। लोग तो बल्कि कहते

हैं, 'तप करने हैं मुझे, उपवास करना है मुझे'। 'अरे! क्या उपवास करेगा? जब ये खटमल काटें तब तप करना, खटमल और मच्छरों के सामने', ऐसी कठोरता की है इस शरीर पर लेकिन वह सही रास्ता नहीं था न!

प्रश्नकर्ता : उसे असहज कहेंगे?

दादाश्री : नहीं। वह सब नकल की थी, इगोइज़म से नकल की थी। हालांकि अब हमारे बिस्तर पर खटमल आते ही नहीं हैं। बेचारों का हिसाब खत्म हो गया। यदि हिसाब अधूरा रखते तो हिसाब कच्चा रहता। हम तो आराम से खाना खाने देते थे। खाना खाकर क्या वे मेरे अठहत्तर साल ले गए है? हैं न हम, अठहत्तर साल की उम्र में, आराम से!

जागृत अवस्था में काटने दिया उससे ज्ञान प्रकट हुआ

प्रश्नकर्ता : आप जैसी क्षत्रियता हम में नहीं है, इसलिए काटने नहीं देते हैं तो अन्य कौन सा उपाय कर सकते हैं?

दादाश्री : खटमल काटे तो उसके लिए अन्य उपाय भला क्या है? उन्हें बाहर डाल आओ। आपको शंका रहती है कि 'ये मुझे काट लेंगे', तो आप उन्हें बाहर डालकर आओ, बाकी जगत् शंका करने जैसा नहीं है। आपको ठीक न लगे तो चुनकर बाहर रखकर आओ और मैं तो चुनता भी नहीं था। इससे फिर मेरी पूरी रात जागते हुए ही बीतती थी, इन खटमलों के कारण। फिर भी परेशान नहीं हुआ। हमें खटमल काटते थे न, लेकिन कभी भी हमने उठाकर बाहर नहीं फेंके। हमने काटने दिया है लेकिन आपमें इतनी शक्ति नहीं आएगी इसलिए आपसे ऐसा नहीं कहता हूँ। आपको तो खटमल पकड़कर बाहर डाल आने हैं ताकि आपको मन में संतोष हो जाए कि यह खटमल बाहर चला गया।

हम तो, जब सर्दी के दिनों में ज़रा नींद आ जाए तो धीरे से ओढ़ा हुआ निकाल देते हैं, फिर वही (ठंड ही) जागृत रखती है। ज्ञानी को

तो कोई नहीं जगाता तो उन्हें ऐसा कुछ चाहिए न? अगर किसी के घर पर गेस्ट आएँ तो वे जगाते हैं। गेस्ट देखे हैं आपने? एक-दो खटमल घुस जाएँ तो वे जगाते हैं। मैं समझता हूँ कि 'अच्छा हुआ, कल्याण किया। यह अच्छा है कि ये उठा देते हैं'। वे गेस्ट कहलाते हैं। वे साथ में कुछ ले नहीं जाते। भर पेट खाकर जाते हैं। क्या कभी देखे नहीं आपने? कभी हमारी भी बारी आती थी लेकिन अब मुझे नहीं छूते।

ये नीरू बहन कहती हैं, 'अंदर खटमल दिखाई दे रहे हैं'। मैंने कहा, 'आपको ठीक लगे वह करना, बीन लेना'। तब कहने लगीं, 'एक दिन सब निकाल दें तो?' मैंने कहा, 'नहीं ऐसा मत करना, भले ही खाएँ बेचारे, हैं तो खा रहे हैं। मरने के बाद नहीं खाएँगे।

प्रश्नकर्ता : नहीं खाएँगे!

दादाश्री : वे समझ जाते हैं कि होटल चली गई। यह हमारा क्षत्रिय गुण है! यह गुण हमारे लिए बहुत हेल्प फुल है। यह अहंकार सख्त है, ढीला नहीं पड़ता। ऐसे प्रयोग तो हमने भी किए हैं कि जागृत अवस्था में काटने दिया इसीलिए तो ज्ञान प्रकट हुआ! यह तो इतना अद्‌भुत ज्ञान है कि ज़रा सा भी असर न हो।

चुका दो हिसाब, फिर नहीं काटेंगे खटमल

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारा धीरज तो कम पड़ जाता है कि कब इन खटमलों के काटने का अंत आएगा?

दादाश्री : वह तो गलत भ्रम है। इससे भी उनके साथ का हिसाब पूरा होता है, खटमलों का भी हिसाब पूरा होता है। यदि आप हिसाब चुकाने दोगे न, तो हिसाब खत्म होने के बाद खटमल आपको छुएँगे भी नहीं। आपको खटमल वाले बिस्तर पर सुला देंगे फिर भी आपको नहीं छुएँगे। इस जगत् का न्याय ही ऐसा है। नहीं है क्या न्याय? यह जगत् बिल्कुल न्याय स्वरूप है। फिर वे आपको छुएँगे भी नहीं, मच्छर-वच्छर आपको कुछ भी नहीं छुएँगे। जहाँ मच्छरदानी बाँधते हैं न, वहाँ घूमते रहते हैं। हिसाब चुक जाने के बाद आप अगर ओपन में सो जाओगे

फिर भी आपको नहीं छुएँगे। लोग तो धकेलते रहते हैं और हिसाब नहीं चुकने देते। लेकिन बात भी सही है, जब तक कमज़ोरी है तब तक मच्छरदानी बाँधकर सोओ।

प्रश्नकर्ता : मारने से तो अच्छा है न?

दादाश्री : अगर उसमें कमज़ोरी है तो। बाद में कभी धीरे-धीरे कम हो जाएगा लेकिन अपना भाव ऐसा ही रखना है कि मारना नहीं है।

खटमल को निकालो, लेकिन मारो नहीं

प्रश्नकर्ता : ऐसा ही मच्छरों का भी है। अब मच्छरदानी लगाकर हम ऐसा करते हैं कि वे हमें काटें नहीं और ज़रा चैन से आराम करने दें।

दादाश्री : मच्छरदानी लगाने में हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या उसमें हर्ज नहीं है?

दादाश्री : ना। उसमें हर्ज नहीं है। आप उन्हें मारो तो उसमें आपत्ति है। वर्ना पूरी रात जागकर खटमल को निकालो तब भी कोई आपत्ति नहीं है। पूरी रात जागते रहोगे तो खटमल चले जाएँगे। अब इसमें तो कोई मच्छरदानी है नहीं, खटमलों के लिए कैसे लाओगे? मच्छरदानी लगाना आराम से। हम ऐसा नहीं कहते हैं कि आप मच्छरदानी मत लगाओ। क्योंकि इस काल के मनुष्यों की ताकत नहीं है न, यह सब सहन करने की! सहन करने की शक्ति भी होनी चाहिए न! उसे क्या कहते हैं? तितिक्षा।

बिस्तर पर रखने पर भी न काटें तो हो गया हिसाब पूरा

प्रश्नकर्ता : हम जब यात्रा पर गए थे, तब आपके डिब्बे में तो कितने सारे खटमल थे!

दादाश्री : हाँ। फिर भी मुझे नहीं छू रहे थे। जितने लोग इन खटमलों को मारने की हिंसा करते हैं न, उन्हें जितने खटमलों ने काटा,

उतना मुझे नहीं काटा। आपके बिस्तर पर खटमल रखने पर भी अगर वे आपको नहीं काटें तो समझना कि 'उनके साथ का अपना हिसाब चुक गया है'।

ये खटमल बेचारे कितने समझदार हैं! ये हमारे ऊपर रेंगते हैं लेकिन काटते नहीं हैं क्योंकि जानते हैं कि ये मारेंगे नहीं।

खाना खत्म हुआ और मेहमान आए

प्रश्नकर्ता : आप जब बच्चे थे तब बा ने आपको समझाया। उसी प्रकार क्या ऐसा भी कुछ हुआ था कि बड़े होने के बाद आपने बा को समझाया हो?

दादाश्री : हाँ, एक बार ऐसा हुआ था। उस समय मैं पच्चीस-छब्बीस साल का था। तब एक बार हमारे घर पर ऐसा हुआ कि दोपहर के बारह-साढ़े बारह हो गए थे, तो ऐसे समय पर हम सब खाना खाने बैठे थे। घर में उन दिनों तीन ही लोग थे। मैं, मेरी वाइफ हीरा बा और बा। हम शहर में रहते थे, तो गाँव में से अक्सर हमारे यहाँ लोग आते ही रहते थे। तो ऐसे में कुछ ही देर बाद भादरण से तीन-चार मेहमान आ गए! दूसरे तीन-चार तो अलग लेकिन उनमें हमारे एक मामा थे, वे आते ही बोले कि 'भाँजे हम आए हैं, खाना खाएँगे'।

अब, खाना खाने से पहले यदि चार लोग आए होते न, तो हम खाना रहने देते और दूसरा सरप्लस करके थोड़ी देर बाद साथ में बैठ जाते लेकिन यह तो हमारे खाना खाने के तुरंत बाद ही आए। अंदर पतीली में सब्ज़ी, दाल-चावल वगैरह थोड़ा-थोड़ा बचा था, लगभग सब खत्म हो गया था। अब खाना हो चुका था तो पतीली में सिर्फ एक कटोरी दाल पड़ी थी। बाई ले जाए उतनी ही, चावल भी बस बाई ले जाए उतने ही बचे थे। हमने चार लोग (खुद तीन और चौथी काम वाली बाई) जितना ही बनाया था अगर और दो लोग आ जाते तो ज़्यादा बनाते। वर्ना शहर में तो इन लोगों का ज़्यादा बनाकर फेंकने का रिवाज़ ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अब, जान-पहचान वाले और उसमें भी खास तौर पर रिश्तेदार हों तो वे कहेंगे तो सही न, कि अभी हम खाना खाएँगे, ऐसा कहते हैं न, मज़ाक करते हैं न? तो उन्हें घर में आते देखा तो मैंने आवाज़ लगाई, मैंने कहा, 'आइए, आइए, पधारिए, पधारिए। बैठिए वहाँ पर'। तो वे आगे वाले कमरे में बैठ गए।

'अभी कहाँ से आ गए?', देखी बा की कमज़ोरी

गर्मी का मौसम, सख्त गर्मी, मेरी माँ जी मेरे सामने ही खाना खाने बैठी थीं। मुझे कहा, 'ये अभी कहाँ से आ गए?' क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : ये अभी कहाँ से आ गए?

दादाश्री : उन लोगों को सुनाई दे उस तरह से नहीं, लेकिन यों हावभाव पर से मैं समझ गया कि ये क्या कहना चाह रही हैं? वे लोग तो आगे वाले कमरे में कपड़े बदल रहे थे और अपने थैले रख रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि ये क्या कह रही हैं? लेकिन मैं माँ जी के हावभाव से समझ गया इसलिए मैंने माँ जी से कहा 'बैठिए, अभी शांति रखिए'। इशारे से ऐसे किया तो वे समझ गए।

हम तो वैष्णव डेवेलपमेन्ट वाले, फिर भी बा जो थीं न, वे बहुत अच्छे स्वभाव वाली थीं। हमारी बा का मन तो कभी भी, ज़रा सा भी बिगड़ा ही नहीं था न, लेकिन उस दिन बिगड़ गया! उनके मुँह से कमज़ोरी सुनी एक बार, तब ऐसा लगा कि 'इनका मन बिगड़ रहा है'। ऐसी बा तो मैंने कहीं भी नहीं देखी थीं! अड़तालीस साल उनके साथ रहा, लेकिन मुझे उनका कोई दोष दिखाई नहीं दिया। लेकिन एक ही बार उनका दोष देखा था उस क्षण कि खुद की मति से या चाहे कुछ भी हो लेकिन बा के मुँह से यह निकल गया कि 'ये मरे अभी कहाँ से आ गए!' बा ने अंदर ही अंदर कहा, वह मैंने सुन लिया।

'ऐसे खानदानी इंसान ने ऐसा कहा?' वह अच्छा नहीं लगा

हमारी बा बहुत ही खानदानी थीं। बा का स्वभाव बहुत ही उमदा

था। हमारी बा बहुत बड़े मन की थीं, बहुत दिलदार मन की, बहुत प्रेम वालीं। वे तो बिल्कुल देवी जैसी थीं। मुझे संस्कार तो उन्होंने ही दिए थे। फिर भी उनका खुद का मन टूट गया और उस क्षण उनकी भावनाएँ चली गईं। जो कभी भी नहीं बोलीं, खुद उन्होंने मुझसे कहा, 'ये मरे अभी कहाँ से आ गए?' वे तो नोबल थीं लेकिन मुझे उनकी 'यह' नोबिलिटी अच्छी नहीं लगी।

अब जिन्हें मैं सब से महान आत्मा मानता हूँ और जिन बा ने मुझे संस्कार दिए थे, वे बा इतनी अधिक मनुष्य प्रेमी थीं कि पूरी ज़िंदगी उसी में अर्पण की थी। जब उनका भी धीरज खो गया तो मुझे घबराहट हो गई कि ये क्या कह रही हैं?

अत: मेरे मन पर असर हो गया कि ऐसे खानदानी व्यक्ति यदि ऐसा बोल सकते हैं तो और लोगों की बिसात ही क्या? ऐसे असल खानदानी इंसान को मैंने अपनी ज़िंदगी में देखा था। तो मुझे हुआ कि ये भी ऐसा कह रही हैं। जो मुझे ऐसा सिखाती थीं कि 'कोई पत्थर मारे तो मार खाकर आना लेकिन मारकर मत आना', वे भी ऐसा कह रही हैं? उनमें भी इतनी हीनता आ गई! इसका क्या कारण है? उन्हें ऐसा विचार आया!

थक गई थीं इसलिए फिर से मेहनत करने में परेशानी थी

फिर मैंने पता लगाया कि, 'इन्होंने ऐसा क्यों कहा?' तो यह कि अब थक तो गई हैं और बा से बेचारे से काम तो नहीं हो पाता लेकिन उनके मन में ऐसा था कि 'हमारी बहू को अब खाना बनाना पड़ेगा, कितनी मुसीबत है!' इसलिए बेचारी बा ने ऐसा कहा।

'आज सुबह से, पूरे दिन काम करके थक गई और फिर अब यह भी करना पड़ेगा?' क्योंकि मेहमान भी ऐसे संयोगों में आए थे जब वे बेचारी थक चुकी थीं, और अब वापस बनाना पड़ेगा। अत: वे मन ही मन परेशान हो गईं और मैं भी समझ गया था कि बा और हीरा बा थक चुके हैं, तो अब कौन बनाएगा? तो मैंने कहा कि 'यदि आपसे नहीं हो पाएगा तो मैं बना लूँगा'। उनकी मदद तो करनी पड़ती न बेचारों की!

समय के आधार पर हम समझ जाते हैं न, कि अब ये तो आ गए हैं। फिर बा के मन में ऐसा हुआ कि 'अभी तो दाल भी नहीं है और कुछ भी नहीं है, जल्दी आए होते तो! हमारे खाना खाने से पहले आए होते तो दाल थोड़ा इधर-उधर करके, थोड़ा कम लेकर भी इसका हल निकाल देते'।

'थोड़ी दाल बची होती तो चावल बना देते। अब तो दोबारा दाल भी बनानी पड़ेगी। अभी दाल खत्म हो गई है। फिर दोपहर में ज़रा सोने का समय हुआ तब ये आए हैं। अब फिर से कब दाल बनाएँगे? दस बजे आए होते तो ऐसा नहीं कहते। अभी यह सब फिर से करना पड़ेगा न,' इसलिए मन में परेशानी हो गई। यानी क्या कि चावल-दाल की नहीं पड़ी थी लेकिन महेनत की पड़ी थी इसलिए मैं मन में समझ गया कि इन लोगों को महेनत नहीं करनी है। शरीर में कमज़ोरी आ गई है। बा ऐसे हैं कि कभी भी ऐसा नहीं कहते, लेकिन उन्होंने भी ऐसा कहा और उनके सामने तो अच्छी तरह से बात की कि 'आइए, पधारिए' आँखें भी अच्छी रखकर, लेकिन मन में था कि 'ये मरे अभी कहाँ से आ गए?'

मैंने कहा 'ऐसा? क्या कहा यह?' धीरे से पूछा। वे लोग तो बाहर बैठे थे। मैंने कहा 'आपने ऐसा? आप मुझे ऐसा सिखाते हो, ऐसा शोभा नहीं देता'। तब वे तुरंत ही पलट गए। 'नहीं, कुछ भी नहीं' ऐसा कहा। तब मैं समझ गया कि इनका कोई दोष नहीं है और 'अब ये लोग थक गए हैं, मन से थक गए हैं। अन्य कोई भाव नहीं बिगड़ा है'।

झटपट आसान सा खाना बना दिया, दादा ने

अत: बा को उस समय मैंने कुछ नहीं कहा, उस समय मैंने लेट गो किया। वे लोग बाहर बैठे थे न! इसलिए मैंने इनसे अकेले में कह दिया, 'आप सब आराम से सो जाओ, आप ज़रा आराम करो। आज मुझे बनाने दो इन लोगों के लिए'।

उसके बाद मैंने कहा, 'मैं सबकुछ कर लूँगा, आप आराम करो।

सादा बनाऊँगा, बहुत हुआ तो रोटी नहीं बनाऊँगा, आटे का हलुवा बना दूँगा। मुझे तो आता है हलवा, सब्ज़ी, खिचड़ी वगैरह सब और इस तरह से कुछ भी कर लूँगा। ऐसा मुझे करना आएगा। आप परेशान मत होना। आप परेशानी में दाल बनाने रखोगे और चावल बनाओगे तो वे भी आपसे पॉज़िटिवली नहीं होगा और मैं तो यह समझा दूँगा कि 'मामा खाना खा लो, चलो झटपट, आपको भूख लगी होगी। वर्ना बहुत देर हो जाएगी'। हलुवा है, सब्ज़ी है ऐसा सब उनके लिए बना देंगे तो वे खुश हो जाएँगे। अपने यहाँ लोग हलुवा परोसने पर खुश हो जाते हैं और आलू को तलकर फर्स्ट क्लास सब्ज़ी बना दें तो बहुत खुश हो जाते हैं। और क्या करें फिर?

प्रश्नकर्ता : तो आपने बनाया?

दादाश्री : हाँ, फिर मैंने बना दिया। इधर-उधर करके हलुवा-वलुवा हिला-हिलाकर दे दिया सारा और थोड़ी कढ़ी बना दी, इतना हलुवा बनाया था और थोड़ी खिचड़ी चढ़ा दी। दाल-चावल तो राम तेरी माया! मैंने सोचा, 'यह बिल्कुल आसान है, दाल-चावल बनाने की परेशानी क्यों मोल ले', उसके बाद उन लोगों ने अच्छी तरह से खाना खाया। हलुवा खाकर खुश हो गए वे लोग।

चाहे कैसे भी संयोग हों, लेकिन भाव मत बिगाड़ना

फिर उन लोगों के खाना खाकर चले जाने के बाद अगले दिन माँ और वाइफ से मैंने कहा 'अब यदि फिर से कभी भी ऐसा व्यवहार होगा, घर में कभी भी ऐसे भाव होंगे, तो मैं घर से वैराग्य ले लूँगा। मैं यहाँ से संसार का त्याग करके साधु दशा अपना लूँगा'। डराने के लिए इस तरह सख्ती से कहा था। उन दिनों ज्ञान नहीं था लेकिन इतनी सख्ती से कहा था। इस तरह धमकाया था मैंने। *त्रागा* (अपनी मनमानी करवाने के लिए किया जाने वाला नाटक) किया था। ऐसा कैसे चलेगा? फिर ये लोग डर गए।

लेकिन मुझे कहना पड़ा कि 'कोई भी इंसान रात को तीन बजे आए तब भी उसे खाना खाने के लिए पूछना और किसी का मन ज़रा

सा भी नहीं बिगड़ना चाहिए, चाहे कैसे भी संयोग हों। अगर यहाँ किसी भी समय कोई गेस्ट आए, चाहे आधी रात को कितने ही लोग आएँ तब भी मन का भाव ज़रा सा भी नहीं बिगाड़ना चाहिए'। उस दिन दोनों से मैंने यह व्रत लिवाया।

आपका मन बिगड़ेगा तो वैराग्य ले लूँगा

'दोपहर बारह बजे बाद यदि कोई व्यक्ति आए और आपकी तबियत ज़रा नरम हो तो सोते रहना। मैं खुद बना लूँगा। आया है तो भाव नहीं बिगाड़ना, वर्ना खाना तो फिर भी खिलाना ही पड़ेगा लेकिन भाव बिगाड़कर खिलाओगे तो मुझे नहीं पुसाएगा। आचार बिगड़ेगा तो चलेगा लेकिन आपका मन बिगड़ेगा तो मैं वैराग्य ले लूँगा'। मैंने इतनी धमकी दी थी।

उसके बाद उन्होंने ऐसा नहीं किया। उसके बाद से कभी भी किसी के लिए भाव नहीं बिगड़ा ज़रा सा भी। ऐसा कैसे शोभा दे सकता हैं हमें? उसके बाद से सब बदल गया क्योंकि उनमें डर बैठ गया कि 'ये वैराग्य ले लेंगे', तो उसके बाद घर पर वातावरण ऐसा ही हो गया। चाहे कोई भी आए लेकिन भाव नहीं बिगड़े। मैंने कहा, उसके बाद तो कई सालों तक ऐसा रहा, मन भी नहीं बिगड़ा।

फिर शरीर कमज़ोर हो गया, अब तो कोई किसी का कर ही नहीं सकता न, लेकिन ऐसा ही रहा था। फिर अभी तो बुढ़ापा आ गया, इसीलिए ऐसा सब नहीं हो पाता।

सादा बनाना लेकिन भाव मत बिगाड़ना

लोग कहाँ आते हैं बेचारे! वे तो एनी टाइम आ जाते हैं तो मैंने उनसे कहा, 'आपको खाना नहीं बनाना हो तो हर्ज नहीं है लेकिन जो कुछ भी हो, वह परोस देना। जो आ पहुँचे हैं उनके लिए खिचड़ी, सब्ज़ी जो भी हो, वह दिल से बनाना। अंदर भाव बिगड़ते रहें तो वह किस काम का? वे लोग भी समझ जाएँगे आपकी आँखों पर से कि इन लोगों के भाव औरों जैसे ही हैं'।

'अभी नहीं आए होते तो अच्छा था', ऐसा भाव नहीं होना चाहिए। ऐसे भावों से तो यदि मन एक बार बिगड़ जाए तो सुबह अगर उस व्यक्ति को बिस्तरे बाँधता हुए न देखें, तो लगता हैं कि 'अरे! ये मुए तो वापस आज भी रुकेंगे ही। ठीक है शाम को जाएँगे लेकिन आज का खाना तो बनाना ही पड़ेगा' और वह भी बिगड़े हुए मन से खिलाना पड़ता है। उसके बाद शाम को भी अगर बिस्तरा बाँधते हुए न देखें तो फिर से चेहरा बिगड़ जाएगा। उसके बाद तो चाहे मन बिगाड़कर, नाखुश होकर भी करना पड़ता है।

भले ही भतीजे का जमाई हो, लेकिन जो कुछ भी हो वह, खिचड़ी और सब्ज़ी रख देना। आपको जो ईज़ी लगे वह, लेकिन उन्हें भाव से, प्रेम से खाना खिलाना, बस। सब्ज़ी-रोटी, जो जल्दी से बन सके वह बनाना। मैं ऐसा नहीं कहता कि कंसार बनाना इनके लिए।

इज़्ज़त के लिए नहीं लेकिन प्रेमपूर्वक भोजन करवाना है मुझे

प्रश्नकर्ता : दादा, अपनी इज़्ज़त रखने के लिए अच्छा-अच्छा बनाते हैं, फिर भले ही भाव बिगड़े हुए हों!

दादाश्री : मैं तो ऐसे नियम वाला हूँ कि चाहे कोई भी रिश्तेदार आए, उल्टे-सीधे टाइम पर आए, लेकिन मन में ऐसा कुछ भी नहीं रहता कि 'मुझे मेरी इज़्ज़त रखनी है'। मुझे उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन करवाना है। चाहे कुछ भी, रोटी या सब्ज़ी रख दें, मेरी इज़्ज़त नहीं जाती। मैं इज़्ज़त बनाने नहीं आया हूँ कि मेरे यहाँ ऐसा भोजन होना चाहिए, और ऐसा चाहिए। हमारे यहाँ ऐसा नियम था जबकि लोग तो इतने इज़्ज़तदार हैं कि वे सुबह-सुबह श्रीखंड-पूड़ी खिलाते हैं? श्रीखंड खिलाएँगे तभी उन्हें इज़्ज़तदार मानेंगे न, इज़्ज़तदार! 'ऐसा क्यों कर रहे हो?' 'श्रीखंड-पूड़ी का रौब तो जमाना है'। मैंने बा से कह दिया कि 'मुझे रौब नहीं जमाना है। यहाँ रिश्तेदार या जमाई आएँ तो आपको जैसी सुविधा हो वह बनाना लेकिन प्रेम से खिलाना'।

प्रश्नकर्ता : समझ में आया।

दादाश्री : विचार नहीं बिगड़ने चाहिए बिल्कुल भी, आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होना चाहिए। 'आइए, पधारिये आपका ही घर है'। ऐसी पोलिश नहीं करनी है हमें। पोलिश नाम मात्र को भी नहीं होनी चाहिए, साहजिक। जो हो वह दे दो। यदि सब्ज़ी नहीं हो तो मत देना, अचार निकालकर दे देना। साफ-साफ कह देना कि आज सब्ज़ी नहीं है भाई, चलेगा? लेकिन प्रेम से देना। रोटी खाने को तैयार है यह दुनिया। आप जो भी प्रेम से दो, यह दुनिया वह खाने को तैयार है। ये लोग खाना खिलाने वालों से परेशान हो गए हैं। प्रेम से दी गई मोटी रोटी लोगों को पसंद है। अत: यदि प्रेम से खिलाया तो बहुत हो गया।

जगत् प्रेम ढूँढ रहा है, चीज़ें नहीं

प्रेम की ज़रूरत है, अन्य कोई ज़रूरत नहीं है। जगत् प्रेम ढूँढ रहा है, चीज़ें नहीं ढूँढ रहा। वहाँ पर तू भोजन माँग रहा है? अगर तुझ पर प्रेम रखते हैं तो तुझे ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है। कोई बुराई नहीं करनी है न! खिचड़ी-कढ़ी खिलाएँ, तब भी? हाँ। और अगर बुराई करें तो भी हर्ज नहीं है। चाहे कुछ भी हो फिर भी प्रेम से खिलाओ। हाँ, इंसान को भूख के समय पर भोजन चाहिए। क्या वह उसके घर पर खिचड़ी-कढ़ी नहीं खाता है? तो फिर अपने यहाँ क्यों नहीं खाएगा? वह अपने घर पर रात को खाता होगा तो अपने यहाँ दिन में खिलाएँगे। स्टॉक में जो भी हो वह दे देना। अपने लिए तो प्रेम ही भोजन है।

प्रश्नकर्ता : स्टॉक ही न हो तो?

दादाश्री : किस चीज़ का।

प्रश्नकर्ता : रोटी या कुछ भी नहीं हो तो?

दादाश्री : नहीं हो तो क्या हर्ज है? आप कहना, 'बैठिए जी, खाने को कुछ भी नहीं है, आज खाली है। अभी चना-नमकीन मँगवा देते हैं। ये छ: आने हैं मेरी जेब में, उसमें से हम सभी खा लेंगे। चलो, चाय और नाश्ता कर लेते हैं'।

एक बार चेतावनी देने के बाद हमेशा उस नियम का पालन किया

प्रश्नकर्ता : हमारे यहाँ तो 'अतिथि देवो भव:' ऐसा कहते हैं न?

दादाश्री : हाँ! तिथि तय किए बिना, चिट्ठी-विट्ठी लिखे बिना जो आएँ, वे अतिथि। और उस समय यदि अपनी परिणति अच्छी रही तो उसे जागृति कहेंगे, वह पुरुषार्थ कहलाएगा। तब फिर मोक्ष के लिए सर्टिफाइड होने की तैयारी हो गई। कसौटी पर खरा तो उतरना पड़ेगा न? तब वे लोग भी समझ गए कि 'मैंने खुद खाना बनाया'। फिर मैंने उन लोगों को समझाया कि 'इनकी तबियत ज़रा ठीक नहीं है'।

प्रश्नकर्ता : फिर सब ढकना पड़ता है। नहीं?

दादाश्री : ढकना तो पड़ेगा ही न। वर्ना अपनी ही कमी उजागर होगी न?

प्रश्नकर्ता : ठीक है। लेकिन दादा! वे जो आए, वे भी भगवान ही हैं न?

दादाश्री : वह तो अब पता चला कि 'भगवान हैं'। भगवान के लिए मन बिगाड़ने में हर्ज नहीं है क्योंकि उन्हें बुलाने वाले तो लाखों लोग हैं लेकिन इन्हें (मेहमान) बुलाने वाला तो कोई नहीं है इसीलिए अपने यहाँ पर भाव नहीं बिगाड़ना चाहिए। हम कौन लोग हैं! कहाँ अपना व्यवहार! निश्चय न हो तो ठीक है लेकिन व्यवहार तो उच्च होना चाहिए न! यही सब से बड़ा तप है। उसके बाद ज़िंदगी भर उन्होंने इस नियम का पालन किया लेकिन इस घटना से उन्हें बहुत ही पछतावा हुआ। वे जो मेहनाम आए थे, वह व्यवस्थित। वे रहे, वह भी व्यवस्थित। वे गए, वह भी व्यवस्थित। तब क्या फिर उल्टा सोचना चाहिए? सोचना ही नहीं चाहिए न। फिर वे जो कुछ भी खाते हैं, वह अपने हक़ का ही खाते हैं तो फिर उनके लिए उल्टा विचार ही नहीं आएगा और प्रेम से खाना खाकर जाएगा।

तो यह नासमझी घुस गई थी। संस्कारी परिवार में नासमझी घुस जाती है औरों का देखकर, पड़ोसियों का लेकिन उसके बाद तो इस एक ही घटना ने उन्हें सावधान कर दिया। ऐसा तो शायद ही कभी होता है, ऐसा कहीं रोज़-रोज़ नहीं होता। उसके बाद तो जो कोई भी आता है, आराम से खा-पीकर ही जाता है।

दूसरों के मन बिगड़े, इसलिए नहीं खाया किसी के भी यहाँ

प्रश्नकर्ता : आप तो इतने जागृत थे इसलिए, लेकिन बाहर अन्य कहीं पर तो ऐसा ही हो गया है कि मन बिगड़े बगैर रहता ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, इसीलिए कम उम्र से ही पचास साल की उम्र तक किसी का मेहमान नहीं बना। एक ही जगह पर गए थे। वहाँ भोजन के समय उनका चेहरा फूला हुआ देखा होगा। उसके बाद से मैंने सोच लिया कि 'इन लोगों के यहाँ खाना खाने जाने जैसा नहीं है। अपने पास हो तो खिला देंगे लेकिन खाने के लिए तो जाना ही नहीं है'। मैंने तो किसी के यहाँ खाना नहीं खाया है, ननिहाल में भी नहीं जाता, बहुत हुआ तो एकाध दिन के लिए जाता हूँ। लोगों के मन बिगड़ चुके हैं और वह चिढ़ा हुआ इंसान क्या नहीं कर सकता?

'हम' छोटे थे फिर भी बा पूछते थे

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा भी सुना है कि आप छोटे थे, फिर भी बा आपसे पूछते थे?

दादाश्री : हाँ। एक बार व्यवहार में किसी को कुछ देना था तब हमारी बा ने हम से पूछा कि 'इसमें क्या करना चाहिए? क्या दूँ?' तब मैंने कहा, 'बा, आप छोटी-छोटी बातों में मुझसे क्यों पूछती हो? आप अस्सी साल की, मैं चवालीस साल का, तो मुझसे ज़्यादा तो आप जानती हो। आपको जो ठीक लगे वह करना'। तब बा ने कहा, 'नहीं! पूछना चाहिए तुझसे। मन जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकते'। 'अस्सी साल का सुथार और पाँच साल का मालिक' लेकिन मालिक से पूछना पड़ता है। मैं चाहे कुछ भी (माँ) हूँ फिर भी सुथार ही मानी जाऊँगी।

बा का महान उपकार, परदेश नहीं जाने दिया

प्रश्नकर्ता : बा की अन्य कोई बातें हों तो बताइए न, दादा?

दादाश्री : आई.वी.पटेल मुझे आफ्रिका ले जाना चाहते थे। मुझे वहाँ की किसी कंपनी में लगाना चाहते थे लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मुझे वहाँ पर नौकरी करनी पड़ेगी और वहाँ पर फिर मुझे झिड़केंगे। मेरी मदर को भी ऐसा था कि परदेश नहीं भेजना था।

प्रश्नकर्ता : कितनी उम्र थी तब आपकी?

दादाश्री : अठारह साल का था तब से भेज रहे थे, आफ्रिका जाने कि लिए...

प्रश्नकर्ता : मूलजी भाई भेज रहे थे?

दादाश्री : मूलजी भाई के मामा के बेटे लगते हैं आई.वी.पटेल। आई.वी.पटेल ने कहा, 'मैं ले जाऊँ अंबालाल को?' वह तो फिर बा ने नहीं जाने दिया, बा ने कहा 'मुझे परदेश नहीं भेजना है, मेरे पास ही अच्छा है'। मुझे तो ज़्यादा कुछ नहीं चाहिए था। ऑल रेडी कॉन्ट्रैक्ट का यह सारा काम चल रहा है। बाकी, घर पर तरसाली में (पाँच-सात बीघा ज़मीन) थी, ज़रा उसकी आमदनी थी और यहाँ (दस बीघा भादरण की ज़मीन) की आमदनी थी।

प्रश्नकर्ता : बा ने तो पूरी दुनिया पर बहुत बड़ा उपकार किया!

दादाश्री : बा तो मुझे कहीं जाने ही नहीं देती थीं। मेरे बिना बा को अच्छा नहीं लगता था। वहाँ चले गए होते तो बहुत हुआ तो अमीर बन गए होते तो अमीर बनकर फिर लोगों की गुलामी करो। छोड़ो न, यह क्या भूत? भगवान को खोजने की इच्छा थी बचपन से ही। उस गोल (ध्येय) के स्टेशन तक पहुँच गए। यह पूरी दुनिया जिसे खोज रही है, हम उस जगह पर पहुँच गए हैं इसलिए शांति हो गई, काम पूरा हो गया।

'मेरे लिए तो तू आ गया, तो बस'

जब हमारी बा की बहुत उम्र हो गई थी न, तब बा छिहत्तर साल

की थीं। आखिरी आठ साल तक मैं उनके पास ही रहा था क्योंकि वे 'मेरा अंबालाल, मेरा अंबालाल, मेरा अंबालाल' करती रहती थीं और कुछ भी नहीं चाहिए था। मेरा चेहरा देखते कि खुश। रात को कई बार वे अचानक ऐसे उठ जाती थीं, 'मुंबई से नहीं आया, मुंबई से नहीं आया'। इसलिए फिर मैंने अपने पार्टनर से कहा 'कुछ समय के लिए आऊँगा लेकिन ज़्यादातर यहाँ बा के पास रहूँगा'।

हाँ, मदर तो बहुत अच्छी थीं, मेरे बगैर उन्हें बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता था। मुझे बाहर गाँव से वापस आना पड़ा था। वहाँ उनके पास रहना पड़ा था। 'बाकी सब करना। मुझे पैसे भी नहीं चाहिए, कुछ भी नहीं चाहिए।' पैसे तो कभी भी माँगे ही नहीं, कभी भी नहीं। देते थे तब भी कहती थीं कि मुझे पैसों का क्या करना है? मेरे लिए तो तू आ गया तो बहुत हो गया!

मैंने कहा 'बा, आपको पैसे क्यों नहीं चाहिए?' तो ऐसा कहा कि ''अपने यहाँ कहावत है कि 'बाप देखता है लाते हुए और माँ देखती है आते हुए'। मेरे लिए तो तू आया तो बहुत हो गया।'' और बाप तो, 'क्या लाया', ऐसा पूछते रहते हैं। मुंबई से आया तो तू कुछ लाया है क्या? अभी ऐसा नहीं होता है न? माँ भी लाता हुआ ही देखती है?

बा को चौबीसों घंटे अंबालाल याद रहते थे। मैं अगर मुंबई जाऊँ तो उनसे रहा नहीं जाता था, सहन नहीं हो पाता था। और कुछ भी नहीं चाहिए था, बस अंबालाल चाहिए। चौबीसों घंटे, सिर्फ यही ध्यान, जब देखो तब ध्यान में वही रहता था। अत: मुझे काम-धंधा छोड़कर सात-आठ सालों तक यहीं रहना पड़ा। उनके साथ ही बैठा रहता था। फिर मंत्र बुलवाता था, दूसरा कुछ बुलवाता था, और कुछ बुलवाता था।

'दर्शन करने जैसा तो सिर्फ तू ही है'

बा तो कभी भी बाहर मंदिर में दर्शन करने नहीं गए। अष्टमी हो या गोकुलाष्टमी हो, सभी दोस्त क्या कहते थे कि कल बा को दर्शन करवाने के लिए गाड़ी भेजूँगा। तब मुझे किसी से गाड़ी लेना अच्छा नहीं

लगता था इसीलिए फिर मैंने बा से पूछा कि 'कल दर्शन करने के लिए जाने के लिए ज़रूरत हो तो...' तब बा ने कहा 'भाई, मैं तो अपनी ज़िंदगी में सिर्फ यही मानती हूँ कि अगर दर्शन करने योग्य कोई है तो सिर्फ तू ही है'।

मैं कहीं भी दर्शन करने नहीं जाता था। तो हमारे घर में से हम दोनों लोग दर्शन करने के लिए नहीं गए किसी भी जगह पर। बा कहती थीं 'दर्शन करने के लिए तू तो घर में है ही, फिर मुझे दर्शन करने क्यों जाना है? मुझे दर्शन करने बाहर जाने की ज़रूरत ही नहीं है'। अत: बा कभी भी दर्शन करने नहीं गए। बा के लिए तो यही दर्शन, जो भी कहो सब, यही।

'मेरा भगवान तू है,' पहचान लिया था बा ने

लोग क्या देह को नमस्कार करते हैं? नहीं, वे तो पूज्य गुणों की वजह से नमस्कार करते हैं। हमने अपनी बा से कहा था, 'अब आपको बाहर दर्शन करने जाने की ज़रूरत नहीं है। अब घर पर ही दर्शन करना'। तो हमारी बा रोज़ हमें नमस्कार करती थीं।

बा तो कम्प्लीट मानती थीं कि 'तू भगवान हैं, मेरा भगवान तू हैं'। मैंने कहा भी था कि 'आपके यहाँ भगवान आए हैं', तब उन्होंने कहा, 'हाँ मेरे यहाँ आए हैं'। बा मानती थीं लेकिन बाकी सब लोगों को कैसे समझ में आए बेचारों को? समझ में आना चाहिए या नहीं? समझ में आए बिना क्या करते वे? हीरा हो फिर भी कोई ले जाए दो बिस्किट देकर। ले लेंगे या नहीं लेंगे?

प्रश्नकर्ता : ले लेंगे।

दादाश्री : इस दुनिया का आश्चर्य ही कहे जाएँगे ये दादा भगवान!

तेरी ऐसी बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या बचपन से ही बा का आपके प्रति ऐसा भाव रहा?

दादाश्री : हाँ। बा ने मुझसे एक बार पूछा कि 'भाई, आज तूने दातुन नहीं किया'। तब मैंने कहा कि 'अगर इकट्ठे करे तो पूरा कमरा भर जाए उतनी दातुन इकट्ठी की होंगी फिर भी यह जीभ साफ नहीं हुई तो इसका अंत है या नहीं?' तब बा ने कहा, 'तेरी ऐसी बातें सुनना मुझे बहुत अच्छा लगता है, फिर भी दातुन तो करना पड़ेगा न?'

बा का मन आहत न हो, इसलिए तीन-तीन बार खाता था

प्रश्नकर्ता : दादा, आप भी बा का बहुत ध्यान रखते थे न?

दादाश्री : बड़ौदा में जब मैं बाहर निकलता था तो मेरा सर्कल ऐसा था कि किसी जगह पर फ्रेन्ड के वहाँ जाता तो फ्रेन्ड के वहाँ कोई गेस्ट आए हुए होते तो कहते कि 'आज तो खाने पर बैठ ही जाओ'। तब मुझे बैठना ही पड़ता था, मेरा चलता ही नहीं था। आज ये एकदम नई ही तरह के आम लाए हैं, आप बैठ जाओ'। वह पीछे पड़ जाता था, तब फिर उसे मैं मना नहीं कर पाता था। वहाँ पर एक पूड़ी और इतना थोड़ा सा रस ज़रा-ज़रा सा खा लेता था। फिर मैं कहता था कि 'मेरी तबियत ज़रा ठीक नहीं है, तबियत ठीक नहीं है' तो वहाँ पर इतना ही खाता था।

फिर दूसरी जगह किसी जान-पहचान वाले के यहाँ जाता और वह कहता कि 'आज तो आप खाना खाकर जाओ', तब फिर से कभी ऐसा संयोग मिल जाता तो दूसरी जगह पर भी खा लेता था, लेकिन शुरू से मैं ज़रा सा ही लेता था। मैं जानता था कि यह सब तो खेल है अपना।

फिर जब घर आता था तब बा के साथ खाता ही था। नहीं तो बा बिना खाए ही बैठी रहती थीं और अगर घर पर आकर न खाऊँ तो बा को बुरा लगता। बा कहतीं कि 'तू मेरे साथ नहीं खाता है लेकिन मैं तेरे साथ खाती हूँ'। तब फिर बा के साथ खा लेता था।

प्रश्नकर्ता : तो अगर बा के साथ नहीं खाते तो नहीं चलता था?

दादाश्री : नहीं। अगर मैं नहीं खाऊँ तो बा का मन दुःखता था।

इसीलिए तो मैं दोस्तों के वहाँ थोड़ा-थोड़ा ही खाता था, इतना-इतना सा और घर आकर थोड़ा खा लेता था। बचपन से ही ऐसा प्रयोग किया था। दोपहर को एक ही बार खाता था, उसके बजाय तीन-तीन बार खाना हो जाता था मेरा। एक जगह पर साढ़े ग्यारह, दूसरी जगह पर बारह और तीसरी जगह पर साढ़े बारह बजे खाता था।

तीनों के ही मन के समाधान के लिए

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय इस तरह तीन जगहों पर क्यों खाना खाते थे?

दादाश्री : कोई बहुत ही पीछे पड़ जाए तो उसके मन के समाधान के लिए। फिर कोई दूसरा कहे तो उसके मन का समाधान करने के लिए और बा के साथ।

प्रश्नकर्ता : तीनों के ही मन का समाधान करने के लिए।

दादाश्री : हाँ। पहले वाले के वहाँ एक रोटी खाता, फिर दूसरे वाले के वहाँ एक रोटी खाता, और अंत में दो रोटी खा लेता था लेकिन सभी को खुश रखता था। दोस्त को भी खुश रखता था, वहाँ दूसरे को भी खुश रखता था और बा को भी खुश रखता था। मेरी तरह ऐसा तो कोई भी नहीं करता होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर बा को खुश नहीं रखते तो चल जाता।

दादाश्री : लेकिन क्या बा को चल जाता? और उस फ्रेन्ड को भी खुश रखना पड़ता था। क्योंकि उसके यहाँ पर कभी गेस्ट आए हुए हों और मेरे जैसे को न बैठाए तो उसके मन में दु:ख होता।

प्रश्नकर्ता : अत: ज्ञान के बाद से ऐसा सब था या सब पहले से?

दादाश्री : ज्ञान से पहले। ज्ञान के बाद तो ऐसा रहेगा ही नहीं न! पहले तो किसी के वहाँ खाना खाने नहीं जाते थे। उसके बाद तो कहीं खाना खाने बैठे ही नहीं न! (1968 में मुंबई में मासी बा के वहाँ पर

शुरू हुआ) और अभी अगर हम खाना खाएँ तो कोई नहीं डाँटेगा। ज्ञान से पहले यह सब बा के समाधान के लिए, बुज़ुर्ग बा के लिए! अतः इस प्रकार से कई बार तीन-तीन बार खाना पड़ा था मुझे। फिर भी उनके मन के समाधान के लिए घर पर भी खाना खाता था। मन को बिल्कुल भी वह नहीं होना चाहिए। पहले मैं उन्हें मना करता था और यदि मान जाते तो ठीक। 'मेरी तबियत ठीक नहीं है' ऐसा कहता था लेकिन यदि फिर भी कहते तो खा लेता था।

खाने की मात्रा उतनी ही

प्रश्नकर्ता : फिर भी उससे खाने की मात्रा नहीं बदलती थी, भोजन लेते थे लेकिन उसकी मात्रा संभालकर।

दादाश्री : मात्रा उतनी ही। उससे ज़्यादा नहीं खाते थे। चाहे कितना भी स्वादिष्ट भोजन हो फिर भी नहीं खाते थे। मात्रा संभालने के लिए। कोई ऐसी चीज़ होती जो खा सकते थे, गेहूँ की होती फिर भी एक तरफ रख देता था। उसके बावजूद भी यदि तीन बार खाने से अगर अजीर्ण हो जाए तो शाम को कह देते थे कि 'आज तबियत खराब है, शाम को नहीं खाना है'। लेकिन किसी को वह (दुःख) नहीं होने देते थे। बा को तो मैंने इतना सा भी बुरा नहीं लगने दिया, ज़िंदगी भर। ऐसी बा नहीं मिलेंगी। कभी भी देखने को नहीं मिलेंगी, ऐसी बा! और यदि उन्हीं के साथ ऐसा करता तो मेरा क्या होता? इसीलिए तीन-तीन बार खा लेता था।

खुश रखकर काम लेना है

फिर आखिर में बा से कहा भी था कि, 'मैं तीन-तीन बार खा लेता हूँ, आपके लिए'। बा ने पूछा, 'वह कैसे भाई?' फिर मुझसे पूछती थीं। फिर हीरा बा उन्हें सिखाती थीं न, ऐसा कुछ पूछिए कि 'कम क्यों खा रहे हैं? 'भाई, क्यों आज खाया नहीं जा रहा है?' हीरा बा जानती थीं कि बाहर खाकर आए हैं। बा मुझसे पूछती थीं, 'क्यों आज तुझसे खाया नहीं जा रहा है? क्यों भाई आज खाया नहीं जा रहा है?' मैं कहता

था, 'ज़रा ऐसा है न', तो वे समझ जाती थीं फिर। फिर कह देता था कि 'मुझे बाहर खाना पड़ा है और आपके साथ तो खाना ही पड़ेगा'। फिर और क्या हो सकता था? देखो, जितना हो सके उतना खुश रखकर सारा काम करना है। बाकी सब व्यवस्थित के ताबे में हैं। ठोकर मारकर चले जाएँ तो वह नहीं चलेगा। तुझे कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है दादा।

तटस्थता से निरिक्षण किया बा के स्वभाव का

प्रश्नकर्ता : झवेर बा का देहांत कब हुआ था?

दादाश्री : 1956 में। मैं अड़तालीस साल का हुआ तब तक वे थे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि बा के जाने के बाद ज्ञान हुआ?

दादाश्री : हाँ। बा के जाने के दो साल बाद ज्ञान हुआ। बा तो कहना पड़ेगा... मूर्ति थीं!

तब मेरी मदर की उम्र चौरासी साल थी। रोज़ ऐसा कहती थीं कि 'जब तक मुझे आँखों से दिखाई देता है, तब तक मुझे कोई हर्ज नहीं है'। थोड़ा खा सकती थीं, चल-फिर नहीं सकती थीं, तो फिर मैं उनके पास बैठे-बैठे क्या करता? अतः रोज़ सहजात्म स्वरूप का मंत्र बुलवाता रहता था। मैं बुलवाता था तो वे बोलती थीं। मुझे ज्ञान नहीं हुआ था उस समय। यों तो उनके मन में ऐसी इच्छी थी कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं तो मुझे कोई हर्ज नहीं है'। एक बार मैंने पूछा था, 'बा, अब जाना है?' तब कहा 'नहीं, शरीर अच्छा है, मेरी आँखें-वाँखें अच्छी हैं'। तो मैं समझ गया कि अंदर से इनकी जाने की नीयत नहीं है। 'मुझे यह रास आ गया है' कहते हैं। चौरासी साल हो गए थे। इतनी परेशानियाँ थीं फिर भी अभी यह नहीं छूटता कि 'रास आ गया है'।

अब मुझे तो मातृप्रेम रहेगा ही न? मातृभक्ति रहेगी न? लेकिन किसलिए? मैं तटस्थ रूप से देखता था कि 'ओहोहो! मनुष्यों के स्वभाव

कैसे-कैसे होते हैं! कितने बड़े, महान! इतने बड़े नोबल माइन्ड वाले थे, फिर भी कहते हैं कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं न!' तब मैंने सोचा 'नीयत है इनकी जीने की'।

मौलिक खोज दादा की, आज बा ने हस्ताक्षर कर दिए

मैं तो रोज़ जाँच करता रहता था, हर बात में जाँच करता था। हमारे वहाँ मामा के बेटे रावजी भाई आए हुए थे। वे उम्र में मुझसे चार-पाँच साल छोटे थे। मैं और रावजी भाई, हम दोनों साथ में बाहर सो रहे थे।

रात के बारह बज चुके थे तो हम तो सो गए थे। रात के बारह-एक बजे होंगे और हमारी बा के पेट में दर्द हुआ होगा तब वे धीरे से बोलने लगीं, तो रात को एक बजे मैं जाग उठा। तब अंदर वे बोल रही थीं 'हे भगवान अब तो उठा ले मुझे, अब छूट जाए तो अच्छा है! अब छोड़', तब मैंने साथ में सो रहे रावजी भाई को जगाया। मैंने उन्हें हिलाकर जगाया। मैंने कहा 'देखो, बा ने हस्ताक्षर कर दिए!' मैं रोज़ कहता हूँ हस्ताक्षर, तो आज हस्ताक्षर कर दिए, सुनना।

तब बा फिर से बोले, 'हे भगवान! उठा ले'। दो बार बोले। दूसरी बार में उन्होंने सुन लिया। मुझसे कहा, 'क्यों ऐसा कहा? ऐसा क्यों कहा? मैंने कहा, 'कोई दु:ख हो तभी कोई कहेगा न!' क्योंकि अंदर जो दु:ख होता है वह सहन नहीं हो पाता तब इंसान ऐसा भाव कर लेता है कि 'अरे! छूट जाएँ तो अच्छा' तो वे हस्ताक्षर कर देते हैं, देखो न! बा ने हस्ताक्षर कर दिए। इसी तरह से कुदरत हस्ताक्षर करवा लेती है। अंदर ऐसी मार लगाती है कि हम से हस्ताक्षर करवा लेती है। फिर हस्ताक्षर कर लेंगे या नहीं?

अब कुछ ही दिनों के मेहमान हैं, करो तैयारी

तो मृत्यु से पंद्रह दिन पहले बा रात को ऐसा बोल रहे थे। तब मैंने रावजी भाई से कहा 'ये तैयारियाँ हो गई, हस्ताक्षर करवा लिए'। तब मुझसे पूछा, 'कैसे?' तब मैंने कहा, 'आपने हस्ताक्षर नहीं सुने?' तब कहा, 'सुना तो है'। मैंने कहा, 'अब तैयारी करके रखो'।

फिर दूसरे दिन सुबह-सुबह, हमें पता था फिर भी रावजी भाई के सामने मैंने बा से पूछा, 'बा, अब यहाँ रहना अच्छा लग रहा है या जाने का विचार है? अब आपकी जाने की इच्छा है न? अब जाने में कोई हर्ज नहीं है न?' तब कहा, 'नहीं भाई। मेरा शरीर तो अच्छा है, मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है। अभी तो अच्छा है। मुझे तो आँखों से भी अच्छा दिखाई देता है न! मुझे कोई तकलीफ नहीं है। मुझे यहाँ पर सब अच्छा लगता है'। लेकिन इस तरह हस्ताक्षर तो हो चुके थे। वह उन्हें पता नहीं था लेकिन मैं समझ गया था।

तब उस दिन सुबह मैंने रावजी भाई से, हीरा बा से, सभी से कहा कि 'अब कुछ ही दिनों की मेहमान हैं बा। अभी तक इस फॉर्म पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, अब हस्ताक्षर कर दिए हैं, इसलिए अब तैयारी है। अब पाँच-दस दिनों में वे (यमराज) लेने आएँगे। इन्होंने ऐसा कहा, इसका मतलब हस्ताक्षर कर दिए। अब पंद्रह दिन निकालेंगी। पंद्रह दिन तक ध्यान रखना। अब पंद्रह दिनों में तैयारी करो, विदिन फिफ्टीन डेज़'।

मैंने रावजी भाई से कह दिया, 'अब तैयारी रखना आप। आप अभी नहीं जाना। आप तैयार होकर आ जाओ, बुआ जी को भेजने के लिए। अब दस-पंद्रह दिनों का हिसाब है'। उसके बाद दस-पंद्रह दिनों में वे चले गए।

असह्य दुःख के समय छूटने के लिए हस्ताक्षर हो जाते हैं।

कोई भी इंसान बिना हस्ताक्षर किए नहीं मर सकता। यह किसी और का नियम नहीं है। मूल मालिक के हस्ताक्षर होने चाहिए। मालिक के हस्ताक्षर के बिना नहीं मर सकते। लोग हस्ताक्षर करने के बाद ही मरते हैं! तो लोग हस्ताक्षर कैसे करते हैं। क्या लोग हस्ताक्षर कर देते हैं? तो लोग कहते हैं कि 'हम इतने कच्चे नहीं है कि हम हस्ताक्षर कर दें!' 'अरे भाई! ऐसा दर्द होगा, ऐसा दर्द होगा कि तू कहेगा कि भाई साहब, अब छूट जाएँ तो अच्छा'। वह खुद ही कहेगा और ऐसा कहते ही हस्ताक्षर हो गए। हस्ताक्षर के बिना नहीं हो सकता। जब छाती में

हार्ट फेल होने की तैयारी होती है न, तब इतना दर्द होता है कि तब कह देता है कि, 'छूट जाऊँ तो अच्छा है, छूट जाऊँ तो अच्छा है'। तो तुरंत हस्ताक्षर और तुरंत हल।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर कोई जल जाए या एक्सिडेन्ट हो जाए तब...

दादाश्री : हाँ, वह हस्ताक्षर किए बगैर नहीं रहता। अंदर भाव होता है कि 'सहन नहीं हो रहा है और छूट जाऊँ तो, इससे छूट जाऊँ तो अच्छा है। इस दु:ख से मुक्त हो जाऊँ तो अच्छा है'। दु:ख से मुक्त होने की इच्छा को कहते हैं 'हस्ताक्षर करना'।

हस्ताक्षर होने के बाद में ही आती है मृत्यु

इस प्रकार से हस्ताक्षर करवा लेती है (कुदरत)। हस्ताक्षर किए बिना जा ही नहीं सकते। वास्तव में आपके मालिक कौन हैं? आपका *ऊपरी* कोई नहीं है। क्या इन्कम टैक्स के लिए सिग्नेचर नहीं लेते? सभी के लिए सिग्नेचर लेते हैं। यहाँ पर परदेश में आना-जाना हो तो पासपोर्ट में भी हस्ताक्षर की ज़रूरत पड़ती है। जन्म होते समय हस्ताक्षर नहीं किए जाएँ तो जन्म ही नहीं हो सकता। यह क्या किसी के बाप का है कि कोई हमें ले जा सके वहाँ पर? नियमराज तो नियम है, वह चीज़ अपने हस्ताक्षर से तो हल्की ही है। हमारे हस्ताक्षर होंगे तभी नियमराज आएँगे। यह यमराज नहीं है, नियमराज है। यमराज नहीं है। अपने हस्ताक्षर के बिना कैसे जा सकते हैं? आपको समझ में आई यह बात!

यह सारा तो मैं अपने अनुभव के सार पर से लाया हूँ। मेरा तो काम ही यही था।

जब मदर अंतिम स्थिति में थीं...

हमारी बा थीं न, चौरासी साल की उम्र में उनकी डेथ हो गई। यों तो उस समय बा की तबियत बहुत अच्छी थी। हमारी बा का जब अंतिम समय था तब वे बिस्तर पर ही थीं। तब मृत्यु के दो घंटे पहले

पूछा कि 'कौन-कौन बैठे हैं? तो उन्होंने आँखें खोलीं और सभी तरफ देखा कि कौन-कौन है! हमारी मामी थीं और उनका बेटा था। मैंने कहा कि 'ये जयराम भाई' तो कहा 'हाँ, हाँ बैठो'। और दो घंटे बाद तो अंदर से चलने की तैयारी कर ली। उसके बाद फिर उनकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी, तब मैं जान गया कि तैयारी कर ली है। अब ये जा रही हैं। तब मैंने सब से कहा 'आज तैयारी है'।

फिर मैंने कहा, 'आप अपनी विधि करना, नवकार मंत्र बोलना और मैं मेरी विधि कर रहा हूँ'। हीरा बा को उनके सामने बैठाया और (मैं) सभी विधियाँ करने लगा। मैंने डेढ़-दो घंटे तक विधियाँ कीं। और बा विधियाँ खत्म होने पर गईं।

मदर का प्रेम और अज्ञान था इसीलिए रोना आया

प्रश्नकर्ता : दादा आप पर किसी के मृत्यु का ऐसा कुछ असर हुआ था?

दादाश्री : 1956 में हुआ था। ज्ञान होने से पहले हमारी मदर की डेथ हो गई थी। उस दिन रोना आया था।

प्रश्नकर्ता : तो वह जो आप पर असर हो गया, रोना आ गया, उस समय आप कहाँ थे?

दादाश्री : कहाँ?

प्रश्नकर्ता : आप जो दृष्टा भाव में...

दादाश्री : नहीं! उस समय दृष्टा भाव नहीं था। उस समय तो 'मैं अंबालाल ही हूँ', वही था। उसके दो साल बाद यह ज्ञान हुआ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब कांति भाई गए तब आप पर ज़रा सा भी इफेक्ट नहीं दिखाई दिया।

दादाश्री : नहीं, उस दिन रोना नहीं आया था। उस दिन तो मैं दूसरे गाँव गया था। यहाँ होता न... मुझे रोना किस पर आता है? मरने

वाले पर नहीं आता लेकिन लोगों को कमज़ोर देखता हूँ न, इसलिए मुझे रोना आ जाता है। अगर कोई वहाँ पर सुबक-सुबककर रो पड़े तो फिर मुझ पर असर हो जाता है। अभी भी असर हो जाता है। यहाँ पर अगर कोई रोने लगे न, तो असर हो जाता है लेकिन उससे दूसरे लोगों पर ज़्यादा असर पड़ेगा, ऐसा मानकर उस पर भी कंट्रोल कर लेते हैं हम। दूसरों पर ज़्यादा असर हो जाएगा न! बाकी, शरीर तो ऐसा ही है, देह तो ऐसी ही है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं है, दादा। वे दोनों स्थितियाँ, जब मदर की डेथ हो गई, तब और अभी, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : उन दिनों तो सिर्फ मदर का प्रेम था, प्रेम ही रुलाता है।

[6]

फादर

राजसी इंसान और सरल जीवन

प्रश्नकर्ता : पिता जी के संस्कार कैसे थे? पिता जी क्या करते थे?

दादाश्री : वे तो राजसी इंसान थे? वहाँ हमारी ज़मीन थी। वहाँ पर घोड़ा रखते थे न! जब वे साफा पहनते थे न, तब राजकुमार जैसे दिखाई देते थे। फादर ने लाइफ ईज़ी रखी थी। कोई बिज़नेस नहीं करते थे क्योंकि घर की कमाई से साधारण रूप से काम चलता रहता था।

प्रश्नकर्ता : खेती-बाड़ी थी?

दादाश्री : खेती-बाड़ी की कमाई से चलता रहता था। वह भी ज़्यादा नहीं, सिर्फ इतना ही कि परिवार का गुज़ारा हो सके।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : सरल तरीके से।

पिता जी को लगा कि यह लड़का अलग ही है

प्रश्नकर्ता : फादर के साथ की कुछ बातें बताइए न!

दादाश्री : मेरे फादर ने मुझसे कहा कि 'कुछ कसरत करनी चाहिए, सुबह घूमने जाना चाहिए'। मैंने कहा, 'घूमने का टाइम नहीं मिलता'। तब उन्होंने कहा कि 'टाइम निकालना चाहिए, शरीर अच्छा रहेगा'। तब मैंने कहा, 'जाऊँगा'। तब उन्होंने पूछा कि, 'किस तरफ जाएगा?' तब मैंने कहा, 'यहाँ गाँव की सीमा की ओर'। तब उन्होंने

कहा, 'नहीं, नज़दीक ही अपना जो खेत हैं, वहाँ जाना'। मैंने कहा, 'खेत पर जाकर क्या करना है?' तब उन्होंने कहा, 'वहाँ पर आम के पेड़ लगाए हुए हैं, हमने दसेक आम के पेड़ लगाए हैं, तो रास्ते में से बाहर से एक थैली में थोड़ा दड़ (उपजाऊ मिट्टी) ले जाना। और थोड़ा-थोड़ा दड़ डालकर आना'। अपने यहाँ दड़ होता है न...

प्रश्नकर्ता : मिट्टी *(दड़)*, हाँ।

दादाश्री : रोड पर से मिट्टी ले जाकर उनमें डालना, जब भी समय हो तब। दड़ डालकर आओगे तो फिर आपका घूमना हो जाएगा और कसरत भी हो जाएगी। फादर से मना नहीं कर सकते थे इसलिए थोड़ा-बहुत करते थे। फादर को मना नहीं किया लेकिन मैंने कहा, 'मुझे आम के पेड़ का लालच नहीं है, आम खाने का कोई लालच नहीं है। यह काम मेरा नहीं है। जिन्हें आम खाने हों वे डालें'। तो कुछ समय बाद जब वह खेत बेचा तब मैंने उनसे कहा कि, 'देखो अगर आम होते तो पेड़ के साथ ही बिक जाते न! यह धूल-वूल डालना सब बेकार ही जाता न!' आम किसने खाए? अरे! छोड़ो न यह बात! कहाँ किसानों के नियम और यह सब कहाँ चला गया! मैं जानता हूँ इस दुनिया का रिवाज़, जिसके हाथ में खेत है उसी के आम। बाद में खेत पर से आम घर पर ला सकते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बेचने के बाद तो नहीं ला सकते।

दादाश्री : तो फिर हमारा धूल डालना बेकार जाएगा न? दड़ डालना बेकार जाएगा न? फिर भी हमने क्यों डाला था?

प्रश्नकर्ता : यह तो दृष्टि पर आधारित है। दृष्टि बदल जाए तो वह दड़ ठीक है, दूसरे के पास चला गया।

दादाश्री : नहीं, लेकिन यह सब फँसाव है! इसलिए मेरे पिता जी ने कहा कि 'इसे अंदर से पता होगा कि ऐसा होने वाला है!' मैंने कहा, 'आपको जो मानना है वह मानिए'। तब उन्होंने कहा, 'तेरी जन्मपत्री बहुत अच्छी है!'

मुझे तो भगवान ही चाहिए थे

ऐसा सब तूफान था! कहाँ इस तरह दड़ डालें और कहाँ सारे आम के पेड़ उगाएँ', तो वे कब खाएँगे और कौन खाएगा, उसका क्या ठिकाना? ये तैयार आम खाओ न चुपचाप! हाँ, जिसे बाग उगाने हों, बाग का मालिक बनना हो, वह भले ही उगाए। हमें इसका मालिक नहीं बनना हैं। हमें इसका गर्वरस नहीं चाहिए। गर्वरस वाले बहुत हैं, वे अपनी तरह से बाग बनाएँगे, पेड़ उगाएँगे और उनमें आम आएँगे! ऐसे बहुत लोग हैं! यहाँ क्या कमी है? सभी तरह के लोग हैं!

मुझे ऐसा सब नहीं चाहिए था, मुझे तो भगवान ही चाहिए थे। इन आम-वाम की मुझे नहीं पड़ी थी। फिर भी यह ममता छोड़नी नहीं है। ममता रखनी है, लेकिन कैसी? मालिकी रहित ममता। ओनरशिप नहीं, टाइटल नहीं।

मेरी जन्मपत्री बहुत अच्छी थी, इसलिए सभी आदर करते थे

प्रश्नकर्ता : आपने पहले बताया उसके अनुसार क्या आपकी जन्मपत्री के योग बहुत बड़े बताए गए थे?

दादाश्री : हाँ, यह पद मिलना था, वह तो ज्योतिषी ने कहा था फादर-मदर से कि अलग ही तरह के पुत्र ने आपके यहाँ जन्म लिया है!

प्रश्नकर्ता : जन्मपत्री किसने बनाई थी?

दादाश्री : उन्होंने ही बनाई थी।

ऐसा गोल-गोल पीला सा बनाया हुआ है। यहाँ से पच्चीस फुट लंबा, तो उसे पढ़ रहे थे।

उसके बाद से फादर मेरी इज़्ज़त करने लगे थे।

फादर बड़े भाई को भी डाँटने नहीं देते थे

बड़े भाई जब मुझे डाँटते थे, हालांकि वे मुझसे बीस साल बड़े

थे, इसलिए डाँटते थे। मैं बारह साल का था और वे बत्तीस साल के। तो फिर ब्रदर तो बड़े ही कहलाएँगे न, ज़्यादा उम्र वाले। वे तो फिर डाँटेंगे ही न, बाकी फादर ने कभी नहीं डाँटा। फादर ने तो ब्रदर से ऐसा कहा था कि 'इसे मत डाँटना। इसकी जन्मपत्री अलग ही तरह की है!' लेकिन ब्रदर तो डाँटते थे।

तो फिर जब मेरे बड़े भाई डाँटते थे न, तो मेरे बापू जी कहते थे, 'मणि भाई, इससे कुछ मत कहना, एक अक्षर भी नहीं कहना है इसे! जन्मपत्री तो देखो, इसकी जन्मपत्री देखी है क्या? यह इंसान ऐसा नहीं कि इससे कुछ कहा जाए, इससे लड़ना मत'।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते थे?

दादाश्री : हं। फिर भी बड़े भाई तो लड़े बगैर रहते ही नहीं थे न! बड़े भाई थे न, तो उसके पीछे प्रेम था, सच्चा प्रेम। और सच्चे प्रेम की खातिर अगर वे मुझे डाँटना तो क्या, लेकिन अगर मारते तब भी मैं नहीं लड़ता। अत: मैंने तो बा का प्रेम देखा, पिता का प्रेम देखा, बड़े भाई का प्रेम देखा, सभी का प्रेम देखा।

जिज्ञासा वश फादर से प्रश्न पूछता रहता था

प्रश्नकर्ता : दादा, आप शुरू से ही फादर से बहुत प्रश्न पूछते थे?

दादाश्री : हाँ। हालांकि मेरे फादर मुझसे चिढ़ते नहीं थे लेकिन उनके मन में ऐसा होता था कि 'यह बहुत पूछता रहता है'। क्योंकि 'यह इसके साथ क्यों है? इसे ऐसा क्यों कहा जाता है? इसे ऐसा क्यों कहते हैं?' ये सारा पूछ-पूछकर उनका दम निकाल देता था।

प्रश्नकर्ता : किस उम्र में पूछते थे दादा? बचपन से ही?

दादाश्री : सात साल का था तभी से। यह क्या और यह क्या? सिर्फ पूछना, पूछना, और पूछना... जहाँ पर कोई भी बात की, उसके बारे में पूछते रहने की आदत! और फादर से उन लोगों ने कहा था।

फादर को लालच दिया था जन्मपत्री लिखने वाले ने कि आपके पुत्र तो ग़ज़ब के पुरुष बनेंगे! और उसमें फिर महाराज ने ऐसा भी कहा कि 'पूछता नर पंडिता'। इस तरह से सब मेल खाने लगा। लेकिन पंडित भी नहीं बने न! और ज्ञानी बन गए!

पहचानकर दुनिया के स्वभाव को, व्यवहार किया फादर के संग

प्रश्नकर्ता : फादर के साथ की हुई और कोई विशेष घटना हो तो बताइए न?

दादाश्री : मैं बचपन में एक बार परोस रहा था, बारह-तेरह साल का था, तो हमारे चाचा जी और हमारे फादर बैठे थे, सब खाना खाने बैठे थे। तो सब से कम सब्ज़ी मेरे फादर को परोसी और उनसे थोड़ी ज़्यादा चाचा जी को परोसी। बाकी सब को ज़्यादा-ज़्यादा दिया। तभी से लोग समझ गए थे कि 'यह लड़का बहुत तेज़ है। कितना विनय वाला है! फादर को इतना सा ही परोसा'। जबकि फादर अंदर चिढ़ रहे थे कि 'सब्ज़ी भी नहीं परोस रहा है'। ''दुनिया को मालूम है मेरा और आपका संबंध। इसलिए ज़्यादा नहीं परोस सकते। अगर ज़रा सा भी ज़्यादा दे दिया तो लोग उधर देखते कि 'देखो, अपने बाप को कितना परोसा!''

फादर को छला, उसके बाद में खूब प्रतिक्रमण किए

प्रश्नकर्ता : फादर के प्रति कोई भूल हुई थी?

दादाश्री : हाँ, हमारे फादर से एक ज्योतिषी ने कहा था कि 'आपके घर में एक बहुत बड़े रत्न ने जन्म लिया है। देखते रहना कि इसके संस्कारों में ज़रा सी भी कमी नहीं पड़े'। अब फादर तो कितना ध्यान रख सकते थे? मैं उन्हें छलता तो वे कितना देख पाते? मैं सिनेमा-नाटक देखने जाता था, भादरण में। जब मैं नाटक देखने जाता था तब फादर को ऐसा रहता था कि यह सो गया है। क्योंकि पहले सो जाता था फिर उठकर खिड़की से कूदकर निकल जाता था। सिर्फ बा को ही यह पता रहता था। बा मुझसे कहती थीं कि, 'भाई, तू गिर जाएगा। ऐसा

मत करना'। मैंने कहा, 'नहीं, वे मुझे डाँटेंगे। मैं तो ऐसा ही करूँगा'। ऐसी बहुत सी शरारतें की हैं।

फादर को छला, बा को नहीं छला। मैं जो कुछ भी करता था, वह सिर्फ बा को बता देता था। मुझे ऐसा डर रहता था कि फादर डाँटेंगे इसलिए उनसे कह देता था कि 'मैं नहीं गया। रात को सो गया था'।

हालांकि मैं नाटक देखकर आया होता था। फिर जब लोग उन्हें कहते थे कि 'आपका बेटा तो नाटक देखने आता है'। तब फिर वे कहते थे कि 'तू कब गया था? तू कब उठा था?' मैंने कहा, 'मैं तो कुछ देर बाद वापस आ गया था'।

इन सब के लिए बहुत प्रतिक्रमण किए। घर में मैंने क्या-क्या किया, यहाँ क्या-क्या किया? फादर के साथ में क्या-क्या दगा किया? वे कहते थे कि 'नाटक आया है, तुझे देखने जाने की ज़रूरत नहीं है'। तब कहता था, 'हाँ, नहीं जाऊँगा'। और नाटक देखकर आकर चुपके से, बा को पहले से ही बता देता था कि दरवाज़ा ज़रा खुला रखना तो वे दरवाज़ा खुला रखती थीं और मैं एकदम से अंदर घुस जाता था। ये सारे गुनाह ही किए हैं न!

हमारी उपस्थिति में फादर का देहांत

प्रश्नकर्ता : मूलजी भाई किस उम्र में गए?

दादाश्री : पचास-इक्यावन साल की।

प्रश्नकर्ता : ऐसा? बहुत कम उम्र में चले गए!

दादाश्री : कम उम्र में लेकिन उन दिनों तो इक्यावन साल तक जीना भी बहुत कहा जाता था।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए तो बहुत खुशी मनाते थे लोग, वन मनाया, ऐसा करके मनाते थे।

दादाश्री : इक्यावन-वन में आया, कहते थे।

प्रश्नकर्ता : (विक्रम संवत) 1983 में मूलजी भाई गुज़र गए थे, 1983 यानी कि आज से साठ साल पहले (संवत 2043, ई.स. 1987)।

दादाश्री : हाँ, 1983 की बाढ़ के समय।

प्रश्नकर्ता : 1983 में बाढ़ आई थी, उस बात के साठ साल हो गए, तो जब आपके पिता जी गए तब आपकी उम्र कितनी थी?

दादाश्री : मैं जब बीस साल का था तब फादर गुज़र गए थे। क्या हु आ कि हमारे फादर की तबियत अच्छी नहीं थी, तब मैं यहाँ कॉन्ट्रैक्ट के काम पर जाता था। इसलिए हमारे बड़े भाई मणि भाई ने मुझसे कहा कि 'तू काम पर रह और मैं फादर की तबियत पूछकर आता हूँ। मैं ज़रा मिल आता हूँ'। मैंने कहा, 'तो ठीक है, आप जाकर आइए। मैं बाद में आऊँगा'। मेरी इच्छा बहुत थी, अगर कहीं शरीर छोड़ दिया तो? फिर उस दिन मेरे ब्रदर भादरण गए। उन दिनों बोरसद और भादरण के बीच में गाड़ियाँ नहीं चलती थीं, तो घोड़ा गाड़ी मिल गई वर्ना कई बार यों ही चलकर जाना पड़ता था!

उनके जाने के कुछ देर बाद मुझे कुदरती रूप से यों ही विचार आया कि 'चलो न भाई, मैं भी जाऊँ, मैं भी तबियत पूछकर आता हूँ। ये काम दूसरों को सौंप देता हूँ और फिर मैं भी जाता हूँ'। इसलिए फिर मैं भी बापू जी से मिलने गया। मैंने वह काम किसी और को सौंप दिया, और मैं तो चल पड़ा घोड़ा गाड़ी में बैठकर।

फिर देखा, मणि भाई तो वापस लौट रहे थे, उन्हें मिलने गए थे वहाँ से, और मैं जा रहा था। तब हम आमने-सामने मिले। उन्होंने मुझसे पूछा 'तू आ गया?' मैंने कहा, 'हाँ, मुझे अंदर से ऐसा विचार आया कि जाऊँ, तो मैं सभी को काम सौंपकर आया हूँ'। तब उन्होंने मुझसे कहा, 'अब तू वहाँ घर जा और मैं वापस काम पर जाता हूँ। तू रहना अभी दो-चार दिन। बापू जी की तबियत नरम है। मैं वहाँ सब कर लूँगा'। तो ब्रदर वापस गए वहाँ पर और मैं 'फादर' के पास आ गया तो उन्होंने उसी रात जाने की तैयारी कर ली, तब तक वे जा नहीं रहे थे। मैं आ गया तो तैयारी कर ली, वर्ना तब तक तैयारी नहीं कर रहे थे। तब बा

ने कहा, 'अच्छा हुआ तू आ गया। आज तो हालत ज़्यादा खराब है'। फिर कुछ देर बाद वे गुज़र गए। रात को ही उन्होंने सफर तय कर लिया।

तो मेरे आते ही फादर चल बसे! अत: जिसके कंधों पर जाना हो उसी के कंधों पर चढ़ते हैं। मैं चार घंटे पहले आया था बड़ौदा से, जबकि बड़े भाई एक दिन पहले ही आकर गए थे। लेकिन जिसके कंधे पर अर्थी जानी होती है, जितना हिसाब होता है, वही चुकता होता है।

उन्हें मेरे कंधे पर चढ़कर जाना था, तो उस प्रकार से गए। हमारे ऋणानुबंध खत्म किए। फिर लोग कहते हैं कि 'भाई, इसके कंधे पर चढ़कर जाना लिखा था'। तो इनके कंधे पर चढ़कर गए, मणि भाई के कंधे पर नहीं'। लोगों ने ऐसा सब ढूँढ निकाला।

सभी के फादर अभी तक हैं, मेरे क्यों नहीं?

मैं बीस साल का था तब फादर का देहांत हो गया। तब मुझे समझ में आया कि मैंने क्या दगा किया था, जिसकी वजह से फादर का देहांत हो गया। इसका मुझे तुरंत पता चल गया, और मदर आराम से और भी पचास साल तक रहीं। अत: यह सब इस दगाबाज़ी की वजह से हैं। तो अब ये सारी दगाबाज़ी छोड़ देने की ज़रूरत है। जहाँ कहीं भी ऐसा कुछ हुआ हो न, तो वहाँ कुदरत में वह नोट हो जाता है।

तब मुझे तुरंत पता चल गया कि इससे क्या होता है? लोगों के तो, पचास-पचास साल के होने पर भी फादर ज़िंदा होते हैं और मेरा क्या है? लेकिन यह गुनाह किए थे।

प्रश्नकर्ता : फादर का देहांत हो गया तो उसमें क्या गुनाह है?

दादाश्री : वह दगाबाज़ी ही की थी न! अत: पितृ भावना के प्रति दगाबाज़ी की थी न! उस दगाबाज़ी का परिणाम मिला। मातृभाव में ऐसा नहीं किया था, तो मातृभाव रहा।

चलो अब, यह नई बात निकली। मेरे फादर की बात निकली। मैंने भी हिसाब निकाला था। मैंने कहा, 'बीस साल की उम्र में इन सब

के फादर हैं लेकिन मेरे क्यों नहीं हैं?' क्या मेरे भी फादर नहीं होने चाहिए अभी तक? व्यवहार तो अच्छा होना चाहिए न, पूरा ही।

माँ-बाप की सेवा वह प्रत्यक्ष-नकद

प्रश्नकर्ता : आपके पहुँचते ही चार घंटे के अंदर-अंदर फादर चले गए, तो उन्होंने आपसे सेवा नहीं ली?

दादाश्री : नहीं, फिर मैंने बा की सेवा की थी। बापू जी के समय मेरी उम्र बीस साल थी, यानी कि भरपूर जवानी की उम्र थी। हम बापू जी को कंधा देकर ले गए थे, उतनी ही सेवा हुई। फिर हिसाब मिला कि 'अरे, ऐसे तो कितने ही बापू जी हो चुके! अब क्या करेंगे?' तब मैंने कहा, 'जो हैं उनकी सेवा कर। जो चले गए, वे गॉन। लेकिन अभी जो हैं, तू उनकी सेवा कर। न हों, तो चिंता मत करना। ऐसे तो बहुत हो चुके हैं। जहाँ से भूल गए वहाँ से गिनना शुरू करो। माँ-बाप की सेवा, वह प्रत्यक्ष, नकद है। भगवान दिखाई नहीं देते, जबकि ये तो दिखाई देते हैं। भगवान कहाँ दिखाई देते हैं जबकि माँ-बाप तो दिखाई देते हैं'।

जीवन भर जो किया अंत में वही मिलता है

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के समय फादर की स्थिति कैसी थी?

दादाश्री : जब मेरे फादर की मृत्यु होने लगी न, तब फादर के पास हमारी एक बुआ थीं, रईबा। फादर की अंतिम रात को उन्होंने मुझसे कहा कि 'तू जा भई'। मैंने कहा, 'आपको यहाँ क्या काम है?' तो कहा, 'मुझे भगवान का नाम लेने दे'। तो आकर, उस समय वे ज़ोर-ज़ोर से फादर के कान में कहने लगीं, 'बोलो रा..म...' क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : बोलो, राम।

दादाश्री : तो कान में बोले न, तो इतनी ज़ोर से आवाज़ हुई कि अंदर जीव यों ही डरा हुआ होता है, तो इससे और ज़्यादा डर जाता है। तब मैंने कहा कि, 'अब रहने दो न। अंदर गूंज रहा है, मत बोलो। बल्कि

यहाँ से आपका मुँह हटा दो'। बेकार ही, यहाँ अंदर लाउड स्पीकर जैसा लगता है। ऐसा लगता है कि बड़ा लाउड स्पीकर बोल रहा है। उससे अंदर जीव घबरा जाता है बेचारा।

तब मैंने उनसे कहा, 'बोल दिया, बस! अब माथाफोड़ी मत करना। जब वे बोल सकते थे, तब भी नहीं बोले तो अब क्या बोलेंगे?' तो 'राम बोलो' कहते हैं। यदि पहले किया होता तो अभी उन्हें ऐसा सब नहीं मिलता? जो सामान हो, वही मिलता है न!

अब यह सब किस काम का? अब जाते समय, गाड़ी में से उतरते समय हम कहें कि 'कैसे हो? मज़े में हो, तबियत अच्छी है?' तो वह पोटली उठाकर हमें ही मारेगा! अरे भाई! उतरने तो दे आराम से। अब क्या उनकी खबर पूछ रहे हो? यह तो मैं अपने फादर की हकीकत बता रहा हूँ।

मैं तो बीस साल का था और समझ गया। मैंने कहा, 'ये अंदर घबरा रहे हैं, और बेकार ही आवाज़ कर रहे हैं। ये किस तरह के लोग हैं? अंदर घबराहट क्यों करवा रहे हैं? अरे, जीने दो न अच्छी तरह से! अंदर धमाधम हो रहा है बेचारों को!'

अब उस समय 'राम, राम' करने से क्या बदल जाता? बिना बात के उस समय 'जय जिनेन्द्र' बोलो, 'जय जिनेन्द्र'। अरे भाई, इस समय क्यों बुलवा रहे हो? जब ठीक थे, उस समय बैठने नहीं दिया ठिकाने! तब तो कहते थे, 'चीनी ले आओ, यह ले आओ'।

अंतिम समय में आता है पूरे जीवन का सार

प्रश्नकर्ता : दादा, अंतिम घंटे में ये तिब्बत के लामा कुछ क्रियाएँ करवाते हैं। लामा ऐसा कहते हैं, जब इंसान मृत्यु शैया पर होता है तब वे लोग उसकी आत्मा से कहते हैं कि 'तू इस तरह से जा,' या फिर अपने में जो गीता का पाठ करवाते हैं कि कोई अच्छे शब्द उन्हें कहें... उससे अंतिम घंटों में उस पर कोई असर होता है क्या?

दादाश्री : कुछ भी नहीं होता। आप बारह महीने का अकाउन्ट

लिखते हो, तो धन तेरस से आप उसमें नफा लिखते रहो और पूरे साल का नुकसान उसमें से निकाल दो तो चलेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं चलेगा।

दादाश्री : ऐसा क्यों?

प्रश्नकर्ता : वह तो पूरे साल का ही आएगा न!

दादाश्री : तब इसमें भी पूरी ज़िंदगी का आता है! लोग तो उनके साथ छल करते हैं! लोगों को मूर्ख बनाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा जब इंसान की अंतिम अवस्था होती है, जागृत अवस्था होती है, अब उस समय कोई उन्हें गीता का पाठ सुनाए, या फिर और किसी शास्त्र का सुनाए, अगर वह उसके कान में पड़े...

दादाश्री : यदि वह इंसान खुद कहे और उसकी इच्छा हो तब। वह राम कह रहा हो तो राम! लेकिन अभी इस समय वह किसमें है, वह आपको कैसे पता चलेगा? उस समय तो वह न जाने कहाँ हो 'कि मेरे छोटे बेटे का ठिकाना नहीं पड़ रहा है!' मरते समय तो पूरी ज़िंदगी का सार आता है। एकदम नाम लेने का कहेंगे तो उससे क्या होगा? तब लोग उन्हें इस तरह की बातें कहते रहते हैं। अगर वे कहें कि 'मेरी हेल्प करो' तो ठीक है। मेरी ऐसी इच्छा है। तो तब उस समझ को टिकाना चाहिए लेकिन अगर उन्हें भान ही न हो और फिर कान में 'राम राम' करें तो वहाँ राम कैसे रहेंगे? आप कौन से राम की बात कर रहे हो? राम तो बहुत सारे लोगों के बच्चों का नाम है। क्या आप दशरथ के बेटे की बात कर रहे हो? ऐसा सब नहीं चलेगा।

[7]

बड़े भाई

राजवंशी पुरुष जैसे लगते थे बड़े भाई

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके भाई कैसे थे?

दादाश्री : हमारे बड़े भाई को यदि देखा होता न, तो वे राजपुरुष लगते थे! ऐसे लोग मैंने नहीं देखे, गायकवाड़ सरकार (राजा) जैसे दिखाई देते थे। यों बहुत ही दर्शनीय व्यक्ति थे। देखकर लगता था कि राजवंशी पुरुष हैं।

प्रश्नकर्ता : ब्रदर आपसे कितने बड़े थे, दादा?

दादाश्री : बीस साल बड़े थे, फादर जैसे।

चेहरे पर पर्सनालिटी और यों दर्शनीय पाटीदार थे! रंग तो मेरे जैसा ही था। गेहुँआ रंग था लेकिन थे दर्शनीय थे। आँखें-वाँखें ऐसी, कपाल बड़ा था।

तो मैंने एक दिन बा से कहा कि 'मणि भाई का कपाल कितना अच्छा है और मेरा कपाल ऐसा क्यों है? इन मणि भाई का कपाल तो बहुत अच्छा है और मेरे कपाल में यहाँ पर बाल उगते रहते हैं, इसलिए मेरा कपाल बड़ा नहीं हो पाता'। तब बा ने कहा, 'उनका कपाल फकीर के तकिये जैसा (बड़ा कपाल-कपाल में बाल कम हों ऐसा) है, जबकि तेरा कपाल सब से अच्छा है'। कौन सा कपाल अच्छा है, उसका कारण मुझे समझ में नहीं आता था। इसलिए लोग जब बड़ा कपाल, बड़ा कपाल कहते थे तो पहले ऐसी कोई कहावत थी कि घोड़े के कद जितना कपाल... इसलिए बचपन में दवाइयाँ भी लगाई थीं लेकिन कुछ हुआ नहीं।

लेकिन बा ने कहा कि 'भाई, कपाल तो तेरा अच्छा है'। ऐसा कहा तब से समझ गया। फिर मुझे समझाया कि कपाल कितना होना चाहिए? तब कहा, 'देख भाई, यह भाग, यह भाग, और यह भाग, (कपाल, कपाल से नाक और नाक से ठुड्डी) ये तीनों एक सरीखे दिखाई दें तो वह कपाल अच्छा कहा जाता है'। इस तरह मुझे समझाया, मेरे मन का समाधान कर दिया उन्होंने।

देखने जैसा वैभव था बड़े भाई का

मणि भाई तो उस ज़माने में फर्स्ट क्लास कपड़े पहनते थे। ओहोहो! कैसे-कैसे कोट वगैरह सब! हाँ, तो हमारे भाई को सब चीज़ें कैसी चाहिए थीं? वे तो (ऐसे रहते थे) जैसे किसान के बेटे हों! उनकी गर्मी की ड्रेस अलग, बरसात की ड्रेस अलग वॉटर प्रूफ वाली और सर्दी की ड्रेस अलग।

तो ऐसा था कि गर्मी में वे हेट पहनते थे, सर्दी में साफा पहनते थे और बारिश में रेनकोट पहनते थे। बारिश में ऐसी ड्रेस पहनते थे ताकि पानी अंदर न घुस जाए। अत: तीनों सीज़न की अलग-अलग ड्रेस थी।

कपडवंज के पास हमारी दो सौ बीघा ज़मीन थी। वहाँ पर घोड़ी-वोडी सब रखते थे। बड़े भाई उस घोड़ी पर बैठते थे तो घोड़ी ज़ोर से हिनहिनाती थी, और वे साफा पहनकर राजकुँवर की तरह घूमते थे। बड़े भाई प्रिन्स जैसे थे।

प्रश्नकर्ता : आप भी बाँधते थे साफा?

दादाश्री : राम तेरी माया! मेरी यह जो टोपी है, वैसी ही। उससे ज़्यादा नहीं।

प्रश्नकर्ता : आपने वैसा नहीं किया दादा?

दादाश्री : मुझे ऐसा कुछ भी नहीं था। मैं तो सीधा था, भाई राजसी इंसान थे। जन्म से ही राजसी व्यक्ति थे और उन्होंने जैसा सुख देखा था, मैंने तो वैसा कोई सुख देखा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप उस घोड़ी पर नहीं बैठे थे?

दादाश्री : घोड़ी पर तो बैठा था न! बाकी, उनका वैभव देखा था, उन्होंने वैभव भोगा था बस इतना ही।

पर्सनालिटी और तेजस्वी आँखों की वजह से काँपते थे सभी

मेरे बड़े भाई तो बहुत प्रभावशाली थे। उनकी हाई पर्सनालिटी थी, 'मेन ऑफ पर्सनालिटी'। झवेर बा की कोख से सिंह जैसा पुरुष जन्मा था! वे दिखते भी सिंह जैसे थे! पुण्य भी था न, ज़बरदस्त पाटीदार जन्मे थे। यदि सौ-दो सौ लोग बैठे होते तो हैरत में पड़ जाते थे, डर जाते थे उन्हें देखकर। ऐसी ज़बरदस्त पर्सनालिटी। लोग उनकी आँखें देखकर डर जाते थे, बड़े-बड़े ऑफिसर भी। मैं भी डरता था और मेरे फादर भी डरते थे।

उनका इतना प्रभाव था कि बाहर पाँच-पचास लोग खड़े होते और वे बाहर निकलते न, तो सब इधर-उधर हो जाते थे, यों ही। सूबेदार-सरसूबेदार (कलेक्टर) भी उन्हें देखकर काँप जाते थे। फौजदार (पुलिस ऑफीसर), वगैरह इधर-उधर हो जाते थे, उनकी आँखें और चेहरा देखकर। उनका चेहरा ही ऐसा था। उनके चेहरे की चमक देखकर लोग चौंक जाते।

हमारे भादरण का हर एक पाटीदार उन्हें देखते ही यों काँप जाता था। वे जब चलते थे तो उनकी नज़र पड़ते ही, सिर्फ उनकी दृष्टि से ही सौ लोग इधर-उधर खिसक जाते थे ऐसी थी उनकी लाइट।

उनकी आँखें तो बहुत प्रतापी थीं, सिंह जैसी तेजस्वी। उनकी आँखें देखते ही यहाँ खंभात में कोई पैसन्जर खड़ा नहीं रहता था। आँखें इतनी ज़बरदस्त, ऐसे सख्त इंसान थे। उनकी आँखों में इतना अधिक तेज था, मैं भी घबराता था न, जैसे सियार घबराता है न, उस तरह से ऐसे-ऐसे होता था! उनके साथ ज़्यादा नहीं बोल सकते थे, बातचीत नहीं कर सकते थे।

पूर्व जन्म के योगी थे, इसलिए उनका ज़बरदस्त 'ओ' पड़ता था

प्रश्नकर्ता : आपको मणि भाई से बहुत डर लगता था, दादा?

दादाश्री : बहुत! यदि अंदर सिंह बैठा हो तो जा सकता था लेकिन अगर ये बैठे हुए हों तो नहीं जा सकता था। मुझे तो उन्हें देखते ही पसीना आ जाता था। उन्हें देखते ही घबराहट हो जाती थी। उनका दिमाग़ बहुत ही सख्त और प्रभावशाली, तो मुझे भी ऐसा-ऐसा होता था, घबरा जाता था। उन्हें देखते ही डर लगता था।

प्रश्नकर्ता : कैसा डर लगता था, दादा?

दादाश्री : उनकी आँखें ही ऐसी थीं कि मुझे बहुत डर लगता था। मुझे बहुत डर लगता था उनके साथ रहने में भी। वे आँखें अलग ही तरह की थीं! लोग उसी से घबरा जाते थे न! और यों उनका चेहरा देखें तो बहुत ही भव्य, लेकिन चेहरा देखते ही घबराहट हो जाती थी!

प्रश्नकर्ता : लेकिन बड़े भाई का डर क्यों?

दादाश्री : बहुत डर! बड़े भाई से मुझे बहुत डर लगता था। ऐसा नहीं था कि मैं छोटा था इसलिए डरता था, लेकिन जब मेरे बड़े भाई बाहर निकलते थे, तब यहाँ जोगी दास का पूरा मुहल्ला घबरा जाता था। जब सरकारी ऑफिस में जाते थे, तब वहाँ का पूरा ऑफिस घबरा जाता था क्योंकि उनकी पर्सनालिटी ही ऐसी थी। बाहर निकलते थे तो लोगों को ऐसा दिखाई देता था जैसे सिंह बाहर निकला। आँखें ही ऐसी दिखती थीं क्योंकि अंदर उनका शील भी था, एक प्रकार का। लेकिन यदि उनका वह शील पूर्ण होता तो वे अलग ही तरह के इंसान होते!

प्रश्नकर्ता : लेकिन कल आप जो बात कर रहे थे, उन्हें वैसा शीलवान कह सकते हैं न? आपने जो कहा था कि यदि शीलवान आएँ तो साँप भी एक-दूसरे पर चढ़ जाते हैं।

दादाश्री : नहीं। पर वे ऐसे शीलवान नहीं थे। वे तो यहाँ (बड़ौदा) आकर फिर सारा शील लीकेज हो गया, लेकिन फिर भी कुछ बच गया।

प्रभाव ही ऐसा था। जैसा अच्छे-अच्छे ठाकुरों का भी न हो, वैसा प्रभाव था उनका और वाणी भी वैसी थी। इतना अधिक प्रभाव पड़ता था। चेहरे पर प्रभाव! उसे योगीपन कहते हैं। उन्हें देखते ही घबराहट हो जाए हम सब को। इतना अधिक ताप लगता था हमें कि न पूछो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब यह क्लू मिला कि डर क्यों लगता था! पूर्व जन्म के योगी थे और उन योगियों का ताप ज़बरदस्त होता है।

दादाश्री : बहुत ताप, बहुत ताप। इतना ताप था कि उनके पास सोएँ तो वह भी सहन नहीं हो सकता था।

भाई ने टोका, 'तुझे घोड़ी पर बैठना नहीं आया'

प्रश्नकर्ता : दादा। मणि भाई ने आपको कभी टोका हो, कोई गलती बताई हो, ऐसी कोई बात बताइए न!

दादाश्री : उनकी घोड़ी ने मुझे भी एक बार गिरा दिया था। फिर घर आकर मैंने बड़े भाई को यह बताया। अब तेरह साल की उम्र में मैंने ऐसा कहा कि 'इस घोड़ी ने मुझे गिरा दिया, मुझे लग गई है'। तब उन्होंने कहा, 'यह घोड़ी इतनी कीमती है तो क्या वह गिरा देगी? तुझे बैठना ही नहीं आया होगा'।

बाद में मैंने बहुत सोचा कि इतनी अच्छी घोड़ी जो किसी को नहीं गिराती, तो उसने मुझे गिराया या मैं गिर गया? मुझे बैठना नहीं आया या उसने गिरा दिया? फिर मुझे समझ में आ गया कि मुझे बैठना ही नहीं आया था।

मैं समझ गया। मैंने कान पकड़ लिए। हमें बैठना नहीं आया। निक्कमे गिर जाते हैं! और फिर लोगों से क्या कहता है कि 'घोड़ी ने मुझे गिरा दिया' और घोड़ी अपना न्याय किसे बताने जाए? तुझे घोड़ी पर बैठना नहीं आया उसमें तेरी गलती है या घोड़ी की? और घोड़ी भी उसके बैठते ही समझ जाती है कि 'यह तो जंगली जानवर बैठा है, इसे बैठना ही नहीं आता'।

गुस्से में फेंक दिए स्टोव और कप-प्लेट

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई का यदि इतना ताप व प्रभाव था तो भाभी के साथ उनका व्यवहार कैसा था?

दादाश्री : हमारे बड़े भाई बहुत गुस्सैल थे। एक बार मेहमान आए थे और मेहमानों को ज़रा जल्दी होगी, तो इसलिए उन्होंने कहा, 'जल्दी चाय रख दो'। मुझसे पूछा कि 'तू कहकर आ गया चाय बनाने के लिए?' मैंने कहा, 'हाँ, कह दिया'। तो भाभी को जल्दी से चाय बनाने के लिए कहा। हमारी भाभी स्टोव जलाने गईं लेकिन स्टोव ठीक से नहीं जल रहा था।

तो स्टोव में पिन नहीं लग रही होगी, ऐसा कुछ हो गया होगा, पहले तो ऐसा ही था न सब? यह तो साठ साल पहले की बात कर रहा हूँ। स्टोव में पिन डाली लेकिन अंदर भरा हुआ कचरा नहीं निकला। अंदर फूँक मार रहे थे। स्टोव को पटक रहे थे। एक कंकरी भर गई होगी, तो उस दिन स्टोव ठीक से नहीं चला तो हमारी भाभी को चाय बनाने में ज़रा देर लगी। बड़े भाई को जल्दी थी और यह सब झंझट हुई, इससे हमारे बड़े भाई का मिज़ाज ज़रा बिगड़ गया। फिर वे हमारी बा के सामने चिल्लाने लगे कि 'पंद्रह मिनट हो गए इतनी देर में तो पूरा खाना बन जाए लेकिन चाय का भी ठिकाना नहीं है'।

अब चिढ़ा हुआ इंसान क्या नहीं कर सकता? इसलिए वे चिढ़कर अंदर (रसोईघर में) आए और चिढ़ ही चिढ़ में कहा, 'तुझसे कुछ भी नहीं हो सकता'। तब वे जल्दी करने गई, जल्दी में पिन मारने गईं तो पिन अंदर टूट गई तब भाई और ज़्यादा चिढ़ गए।

फिर भाई ने क्या किया? उन्होंने तो गुस्सा होकर स्टोव को उठाकर बाहर फेंक दिया एकदम से। जलते हुए स्टोव को फेंक दिया, और जो कप-प्लेट थे न, उन्हें भी लात मारकर फेंक दिया।

तपस्वी तो बहुत क्रोधी होते हैं। न जाने क्या कर दें! गुस्सा आ जाए तो क्या कुछ नहीं करेंगे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है। जुनून आ जाए तो क्या नहीं कर सकते?

दादाश्री : एक तो अज्ञानता और फिर जुनून आ गया, इसलिए सबकुछ बाहर फेंक दिया। तब मुझे हँसी आ गई।

अंदर सभी मेहमान बैठे थे। इसलिए मैंने कहा, 'अब क्या करें?' तब कहा, 'अब क्या करें? पिछले दरवाज़े से जाकर कहीं होटल से चाय ले आ'। मैंने कहा, 'होटल से नहीं लानी चाहिए। मैं अभी स्टोव लेकर आता हूँ पड़ोस में से'। फिर मैंने कहा, 'अब क्या कप-प्लेट नहीं लाने पड़ेंगे?' तो थोड़ी देर बाद कहा, 'लाने तो पड़ेंगे न!' यही झंझट!

तब मैंने कहा, 'ये कप-प्लेट फोड़ दिए, नहीं फोड़ते तो अच्छा रहता न!' तो कहा, 'हाँ, वह तो गुस्से में फेंक दिए'। बोलो अब, उसका क्या... ऐसा है यह जगत्! सारे कप-प्लेट फोड़ दिए। क्या वह उन्हें शोभा देता? स्टोव भी बाहर फेंक दिया, कप-प्लेट सभी फेंक दिए और ऐसा सब! इस तरह इंसान चिढ़ता है और सिर्फ चिढ़ ही पैदा करता है। तब चाय बनाने वाले के मन में दहशत घुस जाएगी न। दो बादाम की (ज़रा सी) चाय और कितना बड़ा तूफान? और भाभी भी क्या करतीं उसमें? स्टोव खराब हो तो वे क्या करतीं?

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे ऐसा कुछ समझते नहीं थे न!

दादाश्री : नहीं, लेकिन ऐसे कैसे मेहमान कि भगवान से भी बढ़कर? मेहमान से कहना चाहिए कि 'भाई स्टोव नहीं जल रहा है। आपमें से कोई होशियार हो तो ज़रा जलाकर दो न!' उसमें क्या कुछ बिगड़ जाता? अपना भाव है उन्हें चाय पिलाने का लेकिन उन्हें ऐसा नहीं रहा। मेहमानों के सामने इज़्ज़त रखने के लिए यों फेंका। इज़्ज़तदार इंसान को क्या कभी कपड़े पहनने पड़ते होंगे? यह सब किसलिए? इज़्ज़त बचाने के लिए कपड़े पहनते हैं।

मैं बाहर सब देखकर आया हूँ। ये सब नक्शे मैं यों ही भूल जाऊँगा क्या? ये नक्शे क्या भूल सकते हैं? ये सभी नक्शे देखे हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, देखे हैं।

दादाश्री : तो स्टोव को बाहर पड़ा हुआ देखा, और जले हुआ भी देखा! मज़ा आता है, हँसना भी आता है याद करके।

प्रश्नकर्ता : दादा, इस तरह से फेंकने से (स्टोव का) सारा कचरा निकल जाता है कई बार।

दादाश्री : हाँ, निकल जाता है, फिर जलने लगता है। हाँ, तो हमारे भाई ने ऐसा किया था लेकिन कचरा नहीं निकला। फिर हमारी भाभी ने कहा, 'वे भले ही फेंकें लेकिन आप ले आओ न, स्टोव तो ले आओ। ये कप-प्लेट गए तो गए लेकिन स्टोव तो लाना पड़ेगा न?' उसे ठीक करवाकर फिर काम में लेते थे न! सब यों ही थोड़े ही मुफ्त में दे देते हैं? सात रुपए लेते थे पीतल के स्टोव के।

प्रश्नकर्ता : उन दिनों सात रुपए आसान नहीं थे।

दादाश्री : हाँ, आसान नहीं थे।

बहुत अहंकारी इसलिए पंगत में नहीं बैठते थे

प्रश्नकर्ता : लोग उनसे घबराते हों, ऐसी कोई घटना बताइए न!

दादाश्री : मुहल्ले में जैनों के घर थे न, तो मुहल्ले में जब सेठों के वहाँ पर खाने के लिए जाना होता था न, तब सेठ घबराते थे। पूरा मुहल्ला घबराता था। 'मणि भाई साहब, मणि भाई साहब' करते थे। आप जैसे वे सभी सेठ क्या करते थे? 'मेरी बेटी की शादी है तो आपको आना है मणि भाई,' वे आकर ऐसा कह जाते थे। क्योंकि! मुहल्ले में थे इसलिए लोगों को खाना खिलाना पड़ता है न। जान-पहचान है इसलिए खाना तो खिलाना पड़ता था न! शादी के समय हम दोनों भाईयों को खाने पर बुलाते थे लेकिन मेरे बड़े भाई का रिवाज़ क्या था, जानते हो आप? मेरे बड़े भाई क्या कहते थे? 'हाँ, लेकिन हम कहीं भी किसी के यहाँ खाना खाने नहीं जाते हैं'। क्योंकि हमारे बड़े भाई का ऐसा नियम था कि 'खुले सिर मैं खाना खाने नहीं बैठूँगा। लोग खाने को बुलाते थे

तब कहते थे कि, 'मैं किसी भी जगह पर सिर खुला रखकर बाहर खाना खाने नहीं बैठता हूँ'। वे तो साफ-साफ कह देते थे।

प्रश्नकर्ता : लाइन में नहीं बैठूँगा, वह भी ऑर्डिनरी लगता है।

दादाश्री : हं, खाना वगैरह नहीं खाते थे। लोग कहते थे, 'मैं घर पर भिजवा दूँ?' तब कहते, 'हमारे घर पर भी नहीं'। फिर मैं उन्हें समझाता था कि 'घर में बैठाओगे तो आएँगे, पंगत में नहीं बैठेंगे'।

तो वे सब आसपास वाले सेठ क्या करते थे कि 'भाई, आप दोनों भाईयों को घर में बैठना है'। तब वे कहते थे, 'अच्छा, तो जाऊँगा। मैं घर में बैठूँगा'। तो लोग घर में बैठाते थे। पूरी जाति के लोग हों, मुहल्ले में चाहे कहीं भी खाना खाने जाना हो, लेकिन मणि भाई खाना नहीं खाते थे। बाकी, मैं तो बाहर बैठ जाता था। मैं तो बाहर बैठ जाता था, मुझे कोई हर्ज नहीं था। हम ऐसे इज़्ज़त वाले नहीं थे न!

हमारा ऐसा रौब-वौब नहीं था, हम तो सामान्य इंसान कहे जाते थे। वे असामान्य थे, तो वे ऐसा कहते थे 'खुले सिर पब्लिक के बीच में खाना खाने नहीं बैठूँगा?' अब हम उसमें क्या कर सकते थे? फिर लोग बेचारे क्या करते थे? अब लोग ऐसे आड़े आदमी के साथ *निकाल* (निपटारा) तो करते न, नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : *निकाल* तो करना ही पड़ता है न!

दादाश्री : उनके मुँह पर ऐसा कौन कहे कि 'आड़े हो?' 'भाई, आपके लिए तो हमने घर में खाना खाने की व्यवस्था रखी है तो मणि भाई साहब! आपको खाना खाने घर में बैठाएँगे', ऐसा कहते थे। घर में पीढ़ा रखकर उस पर बैठाकर खाना खिलाते थे। मुहल्ले में कोई भी उन्हें खाना खाने बाहर नहीं बैठाता था। मुहल्ले में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कहने आया कि 'जहाँ सब लोग बैठे हैं, आप भी वहाँ खाना खाने बैठिए'। उन्हें घर में बैठाते थे हमेशा। उन्हें और मुझे दोनों को घर में बैठाते थे और बाकी सब को बाहर बैठाते थे। पूरी जाति के लोग बाहर बैठते थे। दिमाग़ ऐसा था कि उन्हें घर में बैठाना पड़ता था। वे कभी भी

रास्ते पर, खुले सिर खाना खाने नहीं बैठे किसी भी जगह पर। बारात में जाते तो वहाँ भी उन्हें किसी के घर में ही बैठाना पड़ता था। कभी भी लाइन में खाना खाने नहीं बैठते थे।

ऐसा रौब कहाँ से? कौन से देश से आए थे, वह भी पता नहीं चलता था! हालांकि उनके ये सारे नियम मुझे अच्छे नहीं लगते थे लेकिन मुझे उनके साथ बैठना पड़ता था न! अपना भी रौब पड़ जाता था न! हमें बैठाते थे तो उनका भी रौब पड़ता था और उनके साथ मुफ्त में मेरा भी रौब पड़ जाता था। अब, आमदनी कितनी थी? ज़रा भी आमदनी नहीं थी। उनकी जायदाद में क्या था? कुछ भी नहीं था! बहुत शोर-शराबा, बहुत उछल-कूद, ऐसा था यह सब। लेकिन पाटीदार कैसे थे वे! क्षत्रियों का रक्त था।

पूर्व जन्म के पुण्य की वजह से लोग राजा की तरह रखते थे

प्रश्नकर्ता : क्या शुरू से ही ऐसा नियम था उनका?

दादाश्री : उन्हें लोग ऐसा कहते थे कि उनमें 'मियाँपन,' बहुत है। मियाँपन क्यों कहते थे? बादशाही होती तो मियाँपन नहीं कहते। यह तो ऐसा था कि घर पर बादशाही नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : बादशाही नहीं हो तो उसे मियाँपन कहते हैं?

दादाश्री : वर्ना और क्या कहते? बहुत मियाँपन लेकिन मुँह पर कहकर तो देखो!

प्रश्नकर्ता : उनके मुँह पर नहीं कहते थे। आपके बड़े भाई ने जो बात की, तो पिछले जन्म के संचित पुण्य के हिसाब से वे मियाँपनी रखते थे न?

दादाश्री : किस हिसाब से?

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई जब ऐसा कहते थे कि 'मैं बाहर नहीं खाऊँगा। मैं अंदर ही खाऊँगा' लेकिन वह तो उनका पुण्य होगा तभी लोग उस अनुसार करते थे न?

दादाश्री : ज़बरदस्त पुण्य! राजा की तरह रखते थे। आज हाथ में कुछ भी नहीं था लेकिन पहले का कुछ होगा!

प्रश्नकर्ता : पहले का होगा।

दादाश्री : बहुत बड़ा पुण्य कहलाएगा। आपकी बात सही है। क्या पुण्य के बिना लोग उन्हें बुलाते? कोई खाना खाने भी नहीं बुलाता। बाहर (बैठाकर) भी खाना खाने नहीं बुलाते न! बाहर बैठकर खाते, तब भी नहीं बुलाते। ये तो क्या कहते थे कि 'बाहर नहीं, अंदर घर में बैठाएँगे'। और लोगों ने बैठाया भी था, मैंने देखा है। मुझे भी बैठाते थे।

'बच्चों को क्या धाड़ में देना है', इसलिए नहीं हुए बच्चे

लोग मुझसे कहते हैं, 'आप दोनों ही भाई नि:संतान क्यों हैं? क्या आप दोनों भाईयों का व्यवस्थित ही ऐसा है?' तब मैंने कहा, 'हमारे भाई से अगर कोई बच्चे की बात करता कि, 'आप बच्चों के लिए वापस शादी कीजिए,' क्योंकि पहली बार की पत्नी से एक बेटा था, वह बेटा मर गया और पत्नी का भी देहांत हो गया। उसके बाद दूसरी बार फिर से शादी की और फिर तीसरी बार के लिए कह रहे थे, 'फिर से शादी करो' तब बड़े भाई ने कहा, 'बच्चों को क्या धाड़ में देना है?' बोलो 'जहाँ पर ऐसी वाणी निकले तो वहाँ व्यवस्थित में ही नहीं होगा न!' अत: हम दोनों ही भाई ऐसे हैं। बच्चों-वच्चों की कुछ भी नहीं पड़ी थी।

प्रश्नकर्ता : दादा, 'धाड़ में देना' ज़रा ये शब्द समझाइए न!

दादाश्री : 'सेना में भरती करवाकर लड़ने भेजना हो', उसे धाड़ में देना है, ऐसा कहते हैं। धाड़। धाड़ में कहा और हमारे यहाँ किसी पटेल को बेटा होने पर अगर वे पेड़े बाँटें, तब बड़े भाई क्या कहते थे? 'अरे भाई, अगर राजा के यहाँ जन्म हुआ होता तो ठीक है, सिर्फ एक दरांती (घास उखाड़ने का छोटा सा हथियार) ही बची है, उसमें क्या बाँटना?' वे तिरस्कार से उसे ऐसा कहते थे।

एक बार हमारे मामा-मामी का एक छोटा बच्चा था, साल-डेढ़

साल का, तो उसे डॉक्टर के यहाँ ले जाना था। तब मामी ने उनसे कहा कि, 'भाँजे जी, चलो हमारे साथ। इस बच्चे को दिखाने ले जाना है'। तब भाई ने कहा, 'चलिए, मैं आता हूँ'। तो भाई भी मामी के साथ एक डॉक्टर के यहाँ गए थे। फिर होस्पिटल से जब वापस लौट रहे थे, तब रास्ते में एक तालाब आया। उस तालाब को देखा तो बड़े भाई ने मामी से कहा, 'इस लोथड़े को फेंक दो इसमें'। अब ऐसे इंसान का क्या करें? उन्हें बच्चों की कुछ भी नहीं पड़ी थी।

प्रश्नकर्ता : यानी कि योगी ही थे न, एकदम योगी।

दादाश्री : वे तो क्या कहते थे? 'बच्चे को धाड़ में देना है?' फिर बोलो, यदि बुद्धि के आशय में ही नहीं हो तो फिर होंगे ही नहीं न! बच्चे ही नहीं होंगे। यदि बच्चे की इच्छा की हो तो बच्चे होते हैं, अंदर आशय में हो तभी। सब आपकी इच्छा के अनुसार ही होता है, बुद्धि के आशय के अनुसार।

लेकिन 'धाड़ में देना है' ऐसा कहते थे न, तो जब मैं भी छोटा था तब ऐसा कहता था, 'धाड़ में देना है?' लेकिन फिर समझ में आ गया कि ऐसा नहीं कहना चाहिए। लेकिन फिर बेटा नहीं माँगा। अरे! क्या इतना झंझट कम है कि फिर यह झंझट बढ़ाऊँ? फिर बाप बनता है, और फिर लोथड़े को ऐसे डालकर चलना पड़ता है। बाप बनने गए!

अर्थात् पूर्व जन्म के ऐसे वसूली वाले ऋणानुबंध नहीं थे न! तो इतना ज़रा सा ऋणानुबंध हो तो वह पूरा करने के लिए आते हैं। सिर्फ पैसों का ही नहीं कषायों का भी होता है, यहाँ का सब होता है। आकर बाप को मार दे, तब जाकर उसका ऋण पूरा होता है। तब हिसाब चुकता होता है। ऐसे हिसाब होते हैं।

राजसी और दयालु, इसलिए लोगों की मदद करते थे

प्रश्नकर्ता : दादा, कहते हैं न कि क्रोधी इंसान का दिल बहुत साफ होता है, तो बड़े भाई का दिल कैसा था?

दादाश्री : हाँ, हमारे मणि भाई का मन बहुत बड़ा था। राजसी

मन वाले थे। जो कुछ भी उनके पास होता, वह सब दे देते थे। अगर रास्ते में कोई कहे कि 'मुझे ऐसा दु:ख है', तो वे उसे दे देते थे। बहुत सारा दे देते थे। अगर रास्ते में भी आप कहो कि 'मेरे साथ ऐसा सब हुआ', तो आपका सारा दु:ख ले लेते। 'आपका दे दो' कहते थे, ऐसे इंसान थे। यों बहुत दयालु, और प्रेम मय इंसान थे, लेकिन भोले थे बेचारे। कितने ही राजसी लोग बहुत भोले होते हैं, दिलदार होते हैं वैसे इंसान। मैं भोला नहीं हूँ, वे तो शुरू से ही भोले थे। उनसे ज़रा सी भी मीठी बात करो न, तो जो माँगो वह दे देते। मैं नहीं देता हूँ, मैं समझकर देता हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वह *खुमारी* (गौरव, गर्व, गुरूर) है।

दादाश्री : बहुत ज़बरदस्त। फिर यहाँ रसोईघर में खाना भी खिलाते थे। कितने ही लोग दोपहर होते ही चाय पीने निकलते थे, यहाँ शहर में भी। अपने मणि भाई के यहाँ ऐसे कई लोग आते थे। वे घर पर चाय नहीं बनाते थे, हं। दो लोग होते थे न, तो एक कहता था, 'तू वहाँ जा, मैं इधर जाता हूँ'। तो घर पर चाय नहीं बनाते थे, नहीं पीते थे। अभी तक भी, मैंने तो देखा है यह सब।

मणि भाई तो राजसी इंसान थे इसलिए वे कुछ नहीं कहते थे, कुछ भी नहीं। ऐसी-वैसी कोई झंझट नहीं। मैं बहुत सूक्ष्मता से सोचने वाला इंसान हूँ, मैं हिसाब निकाल लेता था कि ये चाय पीने आए हैं लेकिन उनके मुँह पर नहीं कहता था। मुँह पर तो ऐसा ही कहता था कि, 'आइए, पधारिए' लेकिन मन में लगता था कि 'यह चाय पीने आया है'। मुझे बेवकूफ बना जाए, वह अच्छा नहीं लगता था।

मज़दूरों का पक्ष लेकर पुलिस ऑफिसर को किया नरम

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि बड़े भाई से फौजदार (पुलिस ऑफिसर), सब बड़े-बड़े ऑफिसर भी घबराते थे, तो ऐसी कोई बात बताइए न!

दादाश्री : हमारे बड़े भाई का कॉन्ट्रैक्ट का काम था। वहाँ पर

फौजदार (पुलिस वाला) काठियावाड़ी मज़दूरों को घुसने नहीं देता था। मज़दूरों को डाँटता था तो मज़दूर उसे एक-दो रुपए देते थे। बड़े भाई को पता चला कि यह ऑफिसर मज़दूरों से पैसा खा जाता है। तो एक दिन बड़े भाई चबूतरे पर बैठे हुए थे, उन्होंने फौजदार को आते हुए देखा। तब फौजदार से पूछा 'आप फौजदार हो क्या? आपने हमारे लोगों से पैसे लिए हैं? यहाँ पर ऐसा नियम नहीं है'। फिर पास में जो डंडी रखी हुई थी, वह फौजदार के सामने उठाई! 'अरे! मज़दूरों को लूटता है?' तो फौजदार तो भागा और भाई पीछे-पीछे दौड़े। तब उसने कहा, 'मैं आपकी गैया हूँ'। उसके बाद बड़े भाई ने उसे छोड़ा।

हमारे बड़े भाई कहते थे कि 'पहला वार राणा का'। अगर फौजदार के सामने नरम पड़ जाएँ तो फौजदार चढ़ बैठेगा कि, 'ऐसे मज़दूरों को क्यों लाते हो?' नरमी की भी हद होती है।

नहीं घबराते थे गायकवाड़ के चचेरे भाई से भी

मेरे बड़े भाई तो बहुत सख्त मिज़ाज वाले थे। यहाँ पर एक व्यक्ति उन्हें डरा रहा था। गायकवाड़ सरकार का चचेरा भाई था, मामा का बेटा, श्यामराव महाराज। वह कुछ बड़े-बड़े लोगों को घर पर बुलाकर और उन्हें हन्टर मारकर सीधा कर देता था। वे तो सेठ कहलाते थे न, वहाँ उन्हें कोई बाप भी पूछने वाला नहीं था।

तब मामा साहब, फूफा साहब या मौसा साहब, हर कोई घुस गए थे। राजा के नाम पर जब ऐसा करते, तब फिर लोग भी क्या करें? महाराज ऐसे नहीं थे। महाराज बहुत अच्छे थे लेकिन उनके नाम का इन सब लोगों ने फायदा उठाया। बड़े-बड़े नेता लोग, दो सौ-दो सौ बीघा के मालिक यों राजा जैसे दिखाई देते थे, तब नशा नहीं चढ़ता क्या?

तो श्यामराव महाराज ने एक बार मणि भाई के फ्रेन्ड को फटकारा। वे इटौरा के एक पाटीदार थे, उन्हें हंटर मार-मारकर उनका तेल निकाल दिया।

तब हमारे बड़े भाई को, एक श्यामराव महाराज का कोई कर्मचारी

होगा, तो फिर वह बताने आया। उसने कहा, 'मेरा नाम मत लेना। मैं तो वहाँ पर नौकरी करता हूँ'। तो उनका कर्मचारी श्यामराव की बात बताने लगा। उस कर्मचारी ने मणि भाई को श्यामराव की लोगों को डराने की और हंटर मारने की बात बताई और कहा कि 'आपका भी नाम लेने की तैयारी कर रहा है वह'।

जब ब्रदर को पता चला कि उस पटेल को हंटर से मारा तो उनका दिमाग़ फटने लगा कि 'क्या समझता है वह? तेरे श्यामराव की ऐसी की तैसी'। कहना तेरे श्यामराव से। तब उनके जो कर्मचारी थे न, तो उन्होंने कहा, 'आप श्यामराव महाराज के लिए ऐसा कह रहे हैं, लेकिन महाराज को अगर यह पता चलेगा तो आपकी क्या दशा होगी?'

तब उन्होंने कहा, 'अरे, तेरे श्यामराव की ऐसी की तैसी। जा, कह दे, ऐसे तो कितने ही देखे हैं मैंने। तेरे श्यामराव जैसों को तो मैंने लपेटकर रख दिया है, न जाने कहाँ उड़ा दिया है!' वह कर्मचारी तो घबरा ही गया। उसने जाकर श्यामराव से कहा, लेकिन श्यामराव से कुछ भी न हो सका। ये तो बहुत तेज़ इंसान थे! ये तो किसी से भी झगड़ा मोल ले लें, ऐसे इंसान! खुले आम झगड़ा करें, ऐसे! किसी को कुछ मानते ही नहीं थे। मेरे बड़े भाई तो इतने खट्टे स्वभाव वाले थे कि उन्हें परवशता तो बिल्कुल भी नहीं चलती थी। वे श्यामराव से भी ऐसा कह देते थे! लेकिन वे पुण्यशाली इंसान थे इसलिए कुछ नहीं हुआ।

किसी की भी गुलामी पसंद नहीं थी बड़े भाई को

आप पुरानी बातें नहीं जानते हो। ये सारी पुरानी बातें हमारे दिमाग़ में भरी हुई हैं। ये राजा तो बहुत विषम होते थे, उनके चचेरे भाई भी बहुत विषम होते थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मामा साहब, फूफा साहब और चाचा साहब। ऐसा तो कहीं होता होगा? इंसान पर ऐसा अत्याचार करना अच्छा नहीं है! उसके बजाय तो यह डेमक्रैटिक (जनतंत्र) बहुत अच्छा है। इसमें वैसा तो नहीं

होता। वे लोग तो जिसे चाहे उसे मारते थे। जिसे चाहे उसे मारते थे। जब खुद का मनचाहा नहीं होता था, तब। ये तो किसी को भी हंटर मार देते थे। उसका क्या अर्थ है? श्यामराव ने मेरे ब्रदर के दोस्त को भी मारा था। उससे उनका दिमाग़ घूम गया और फिर उन्होंने क्या शब्द कहे कि 'इस देश में इंसान की तरह जीने के बजाय इंगलैन्ड में कुत्ते की तरह जीना अच्छा है'। कम से कम स्वतंत्र देश तो है!

इस गायकवाड़ सरकार के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। इस सरकार का शासन! इसलिए यह वाक्य ढूँढ निकाला कि 'इंगलैन्ड का कुत्ता अच्छा, लेकिन यहाँ पर मनुष्य होना बुरा है', ऐसा कहा। ऐसा कह रहे थे वे।

हालांकि वह माँग भी गलत थी। उससे क्या फायदा? कुत्ते की योनि में क्या फायदा? लेकिन उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगा था।

प्रश्नकर्ता : अच्छा नहीं लगा।

दादाश्री : ऐसा नहीं होना चाहिए। कैसे सहन होता यह? लोगों को इस तरह से परेशान करते रहते थे तो वह उनसे सहन नहीं होता था। वे तो काट ही देते, और कुछ नहीं करते। बहुत सख्त इंसान थे।

सूबेदार को भी डरा देते थे और घर बैठे चेक मँगवाते थे

प्रश्नकर्ता : कहते हैं, मणि भाई तो सूबेदार (कलेक्टर) को भी सुना देते थे।

दादाश्री : हमारे भादरण में अपने जेठा भाई नारण भाई करके एक सूबेदार थे, वे हमारे चचेरे भाई होते हैं। हमारी छठी पीढ़ी के चचेरे भाई थे, वे जेठा भाई। वे यहाँ अहमदाबादी मुहल्ले में अंतिम घर में रहते थे।

वे यहाँ पर बड़ौदा पंचायत के प्रेसिडेन्ट थे। गवर्नमेन्ट ने उन्हें सूबेदार बना दिया।

ब्रदर कॉन्ट्रैक्टर थे, तो वे बड़ौदा आकर कॉन्ट्रैक्ट का काम करते थे। काम कॉन्ट्रैक्ट का था न! तो उन्हें पंचायत में टेन्डर रखना था। उन्हें

जो बिल के पैसे लेने होते थे न, तब क्लर्क वगैरह जल्दी नहीं देते थे। वे बिल लेने पंचायत में जाते थे। उस समय अंदर घुसते ही पास वाले रूम में, पहले ऑफिस में ही हमारे चचेरे भाई, सूबेदार बैठे होते थे।

तो बड़े भाई यहाँ से पंचायत के ऑफिस में जाते समय शोर मचाते हुए ही जाते थे और सभी क्लर्कों के सामने कहते थे कि 'अरे, हमारा वह चचेरा भाई, वह *'पाडा रांडवो'* आया है या नहीं?' प्रेसिडेन्ट को, अब उसे ऐसा कहते थे, उस सूबेदार को और फिर वह सूबेदार भी वह सुनते थे। अब क्लर्क के सामने सूबेदार को *'पाडा रांडवो'* कहते थे, तो उन क्लर्कों की क्या दशा होती होगी बेचारों की? वे घबरा जाते थे कि 'मणि भाई आया', ऐसा कहते थे! और अंदर ही अंदर वह सूबेदार भी घबराता रहता था कि 'आया मणि भाई, आया मणि भाई!'

इसलिए फिर मणि भाई जब ऑफिस में घुसते थे तब क्लर्क तुरंत ही बिल निकालकर दे देते थे। 'तैयार नहीं हो फिर भी दे दो', ऐसा कहते थे। फिर सूबेदार कहते थे कि, 'मणि भाई बैठ, मैं कह देता हूँ, तेरा चेक अभी दे देंगे'। यों वे अंदर ही अंदर घबराते थे और जल्दी ही क्लर्क को बुलाकर कहते थे, 'पहले इन मणि भाई का चेक बना दो'। तब मणि भाई कहते थे, 'मेरा चेक घर बैठे पहुँच जाना चाहिए'। 'हाँ, हाँ, घर बैठे भिजवा दूँगा' सूबेदार कहता था।

न्यायी हिसाब-किताब नहीं था इसलिए हमें अच्छा नहीं लगता था

वे ऐसा बोल देते थे, उनका कामकाज बहुत खराब था, न्यायी नहीं था, इसलिए मुझे अच्छा नहीं लगता था। बाकी बहुत मर्दानगी थी! बहुत ज़ोरदार इंसान, कुछ अलग ही तरह का ब्रेन फिर भी ऐसा तो नहीं कहना चाहिए। ऐसा तो कहना ही नहीं चाहिए।

फिर वे सूबेदार आकर हमारी बा से कह जाते थे कि 'हमारे भाई लगते हैं। मैं क्या करूँ? ये ऐसा कहते हैं! *'पाडा रांडवो'* कहते हैं'। फिर मुझसे कहा, 'भाई ऐसा कह रहे थे ये मणि भाई, देखो न! क्या

ऐसा अच्छा लगता है? शोभा देता है क्या?' तब मैंने कहा, 'यह सब गलत है। ऐसा नहीं बोलना चाहिए'। खुद के चचेरे भाई और कितने अच्छे सूबा! वे बहुत लायक इंसान थे लेकिन मणि भाई उन्हें ऐसा सब कहते थे।

वे सिर्फ उन्हें अकेले को ही ऐसा नहीं कहते थे, बाकी सब को भी कहते थे। फौजदार को, फौजदार के बाप को भी कह देते थे। वे किसी की नहीं सुनते थे। मैंने नहीं देखा कि उन्होंने कभी किसी सूबेदार की सुनी हो! और हम तो नम्र। हम सख्त के साथ ही सख्त रहते थे, लेकिन मेरी सख्ती तो दो आने की। यह बरछी है न मेरी, बरछी कहलाती है। एक्ज़ेक्ट हमारे पास बरछी थी, लेकिन उसका तभी पता चलता था जब हम उसका उपयोग करते थे। वाणी ही ऐसी निकलती थी कि सामने वाले का हार्ट बैठ जाए, छाती बैठ जाए। वह एक्ज़ेक्ट बरछी, हं। लेकिन अगर आपने हमारे बड़े भाई की बरछी देखी हो तो बहुत ग़ज़ब की थी! मैं भी घबराता था उनसे। कोई सही बात भी नहीं कह सकता था।

ब्रान्डी की लत से कीमत चली गई बड़े भाई की

तो ऐसा मिज़ाज कैसे पुसाए? उन्हें मार भी बहुत खानी पड़ती थी, हं। वह तो सरकार की वजह से ऐसी सारी झंझट थी लेकिन ब्रान्डी की वजह से उनकी जो बरछी थी वह खत्म हो गई। ब्रान्डी में उड़ा देते थे लोग। 'जाने दो न, पीते हैं' ऐसा कहते थे।

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई ब्रान्डी पीते थे?

दादाश्री : हाँ, उन्हें पीने-करने को चाहिए था। एक तुलसी भाई थे न, उन्हें तो वे इतना-इतना कहते थे। तुलसी भाई ने एक ही बार कहा था, 'मणि भाई, इतनी दारू और यह सब... आपको इतनी ज़्यादा नहीं पीनी चाहिए, ज़रा हिसाब से लो न!' तब उन्होंने कहा, 'मैं अपनी कमाई में से पीता हूँ, मेरे पैसे से लाकर पीता हूँ। आप मुझे सलाह मत देना'।

हाँ, ऐसा कहते थे। किसी की नहीं सुनते थे। भाषा गलत थी और बहुत अहंकारी। अब ऐसा गलत तो नहीं बोलना चाहिए, ऐसा नहीं बोलना

चाहिए, लेकिन तुलसी भाई को भी इतना सब सुना दिया इसलिए तुलसी भाई बहुत घबराते थे।

मेरी बैर बाँधने की तैयारी नहीं थी, बड़े भाई तैयार

मणि भाई ऐसे इंसान थे कि जब बाहर निकलते थे, तो पूरे मुहल्ले में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था जो उनके सामने दो अक्षर भी कह सके, फिर चाहे वह सूबेदार हो या फौजदार हो।

प्रश्नकर्ता : उनके सामने कोई भी नहीं बोला।

दादाश्री : उनके सामने एक अक्षर भी नहीं। पीछे से बहुत कुछ कहते थे, लेकिन उनके सामने चुप, बिल्कुल चुप। जब वे बोलते थे तब उनका नाम भी नहीं ले सकते थे। किसी ने नाम लिया तो खत्म। फिर यह नहीं देखते थे कि इससे क्या बैर बँधेगा। बैर भोगने के लिए तैयार, वे खुद ही तैयार। मैं पहले से ही बैर बाँधने को तैयार नहीं था। बैर की वजह से बहुत मार खाई थी मैंने। मुझे सारे अनुभव हैं, याद हैं सभी पूर्व जन्म के। बैर से क्या फायदा हुआ, वह मुझे याद है! मैं तो बैर से परेशान हो गया था।

पीछे से तो सब कहते हैं मेरे सामने कहें तो मानूँ

एक दिन मैंने उनसे कहा, 'इस घड़ी वाले की दुकान पर आपकी बातें हो रही हैं। पच्चीस हज़ार रुपए का उधार हो गया है। लोग पीछे से आपका नाम लेते हैं कि, 'ये कर्ज़दार हो गए हैं'। आपके पीछे सब लोग उल्टा बोलते हैं'। तब कहा, 'सूर्यनारायण पर उनके सामने जाकर धूल उड़ाएँ, तो ठीक है! पीछे से तो हर कोई उड़ाता है। वह तो उसकी आँखों में ही गिरेगी। मेरे सामने किसी ने कुछ कहा? मुँह पर कोई कहने वाला मिला? मेरे मुँह पर कहे तो ठीक है'। उनके सामने कभी कोई फौजदार भी नहीं बोला।

उस घड़ी वाले से ऐसा कहना कि, 'तू उधार लेकर देख, पच्चीस हज़ार ले आ। कोई उधार देता है तुझे?' पूछकर आना। 'मुझे जो उधार दिया वह मेरे बल बूते पर दिया है न! क्या यों ही उधार दे देते हैं?'

ऐसा कहते थे। वे रक्षण करने के लिए ऐसा कहते थे कि 'किसी से पूछना कि आप क्यों नहीं लाते?'

'उस दुकान के लिए कोई पाँच हज़ार भी उधार नहीं देगा। मुझ पर पच्चीस हज़ार का उधार है तो मेरे कंधों पर भार है', जा ऐसा कहकर आ जा। खुलेआम ऐसा कहते थे।

लेकिन फिर उन्होंने चुका दिए। मरते समय मुझसे ऐसा कहा था कि 'किसी भी व्यक्ति के पैसे बाकी नहीं रहने चाहिए'। कोई शराबी क्या कभी ऐसी मर्यादा रखता है? और उन्होंने सब चुका दिया। मेरे हिस्से में तो चुकाने का थोड़ा-बहुत ही रहा। फिर जायदाद बेचकर दे दिया, कुछ भी करके, लेकिन चुका दिया।

मारकर आना, बेचारा बनकर मत आना

वे मणि भाई शूरवीरता वाले क्षत्रिय, पक्का क्षत्रिय कहना पड़ेगा! सौ लोग हों फिर भी कोई उनका नाम नहीं ले सकता था, वह मैंने देखा है और मेरी कोई सुनता तक नहीं था, वह भी मैंने देखा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या आपको अंदर से ऐसी इच्छा थी कि 'मेरी कोई सुने?'

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं था। ऐसी इच्छा ही नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : फिर सुनने का सवाल ही नहीं है न!

दादाश्री : मुझे (लोगों में) प्रिय बनने की आदत थी। मैं उनसे क्या कहता था कि 'लोग मुझसे कहते हैं कि भाई पर पच्चीस हज़ार का उधार है, फिर भी इतनी *ग्रेमराजी* (अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने) कैसे?'

तब उन्होंने मुझसे कहा, 'तुझे कहता है, मेरे मुँह पर क्यों नहीं कहता? तू बेचारा बनकर घूमता है। यह बेचारा अच्छा है, यह बेचारा अच्छा है'। तो किसी का बेचारा बनकर मत आना यहाँ पर। मारकर आना, लेकिन बेचारा बनकर मत आना'।

मेरे बारे में तो लोग पीछे से कहते भी थे, 'दो भाईयों में से यह बेचारा बहुत अच्छा है। छोटा वाला अच्छा है'। हाँ, वह 'शेर' और यह 'बेचारा' बन गया। लोग भी ऐसा कहते थे कि हम दोनों में उत्तर-दक्षिण का फर्क है।

प्रश्नकर्ता : तो एक-दूसरे के कम्पैरिज़न में आपको क्या होता था तब?

दादाश्री : मुझे अच्छा नहीं लगता था 'बेचारा' शब्द।

प्रश्नकर्ता : हं, दादा को अच्छा नहीं लगता था। आप जैसे सिंह को कैसे अच्छा लगता?

दादाश्री : मेरे बड़े भाई ही कहते थे न, 'अरे, वह कह रहा था कि आपका भाई बेचारा बहुत अच्छा है'। यह तूने क्या घुसा दिया है?

प्रश्नकर्ता : भाई साहब ने ऐसा कहा?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई को भी अच्छा नहीं लगा 'बेचारा?'

दादाश्री : नहीं। मार ही देते वहीं पर, अगर सुन लेते तो! 'बेचारा' क्यों कह रहा है? बड़े भाई तो शब्दों को तौलने वालों में से थे। अतः हमारे बड़े भाई क्या कहते थे? 'अगर बेचारा कहें तो यहाँ पर मत आना तू'। 'बेचारा' शब्द मेरी डिक्शनरी में नहीं होना चाहिए, ऐसा कहते थे। इतना सब तूफान, ऐसी सारी झंझट!

मुझे हिंसा का भय, बड़े भाई को बिल्कुल भी नहीं

प्रश्नकर्ता : मणि भाई तो बहुत ही दबंग थे।

दादाश्री : बहुत विषम। फौजदार को मारते थे, नायब सूबेदार को मारते थे, सूबेदार को मारते थे, सभी को मारते थे। वहीं पर उड़ा दें ऐसे इंसान थे वे तो। उसकी बंदूक लेकर उसी को मार देते। उन्हें किसी भी तरह का भय-वय नहीं था। मुझे तो हिंसा करने में बहुत डर लगता था।

हम दोनों में इतना ही फर्क था कि मुझे हिंसक भाव अच्छा नहीं लगता था। मेरी सिर्फ दहाड़ होती थी, उनके जैसी दहाड़! उन्हें भी पीछे छोड़ दे, ऐसी दहाड़ निकलती थी।

उनके शरीर की शक्ति भी कैसी थी कि एक व्यक्ति को पीछे से धौल लगाई थी तो छः महीनों तक उसका खून जमा हुआ रहा। सिर्फ एक हाथ से धौल लगाई, उतने में ही खून जम गया। तो कैसी होगी उनकी कलाई-वलाई!

बहुत विषम स्वभाव, तो सब जगह रौब जमाते थे

प्रश्नकर्ता : जब कांति भाई हमें आपके घर भेजते थे तो हम भी हर बार बहुत घबराते थे।

दादाश्री : हाँ, वे भी घबराते थे। कांति भाई, भाँजे भाई को भेजते थे। एक बार वे कांति भाई के पीछे भी जूता लेकर दौड़े थे। 'मेरे भाई को बिगाड़ रहा है तू' ऐसा कहा था। अगर मेरे भाई को बुलाने आया तो तेरी ख़ैर नहीं! उन्होंने कांति भाई पर भी जूता फेंका था। वे भले आदमी तो भाग गए। क्या हो सकता था फिर? क्या करते? कांति भाई भी बहुत विषम, लेकिन क्या हो सकता था? ये तो बहुत विषम पुत्र, भादरण गाँव में तो ऐसा ढूँढना मुश्किल हो गया था। अंत तक, सब पर भारी पड़े थे क्योंकि उनका कामकाज बहुत सख्त था, बहुत विषम कामकाज।

प्रश्नकर्ता : सख्त, सख्त।

दादाश्री : मणि भाई बंदूक रखते थे। वे बाबरिया की हेल्प करते थे। अपने यहाँ बाबरिया नाम का लुटेरा था, वह वहाँ पड़ा रहता था। बाबरिया वहाँ उनके घर में घुस जाता था क्योंकि उन्हें खुद को कोई हर्ज नहीं था न, उनकी तो बाबरिया से दोस्ती थी। लेकिन मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता था। हिंसक चीज़ मुझे अच्छी नहीं लगती थी। रौब जमाना अपना काम नहीं है। वे बंदूक चलाकर मार देता था। इनके साथ नहीं जमेगी, इन बड़े भाई के साथ।

बिच्छुओं को मार देते थे इसलिए बड़े भाई को ज़्यादा काटते थे

उनकी खोपड़ी बहुत भयंकर थी, राजवंशी खोपड़ी थी ज़बरदस्त! वे अलग ही तरह के इंसान थे, हमें नहीं पुसाता था। बिच्छू को भी मार देते थे, लो! और फिर वे ऊपर लटका देते थे। किसने उन्हें ऐसा ज्ञान दिया होगा? तब मैंने उन्हें समझाया कि 'मुझे, बा और हीरा बा को, हम तीनों को बिच्छू नहीं काटते, आप दोनों को (बड़े भाई और भाभी को) काटते हैं। सिर्फ आप दोनों ही बिच्छुओं को मारते हो'। तब उन्होंने कहा 'तू भगत है, तू बैठ यहाँ पर। मुझे तेरी बात नहीं सुननी है'। तो इस तरह मारते ही रहते थे जबकि हमें तो कभी बिच्छू मारने का ख्याल तक नहीं आया।

उन दिनों तो बड़ौदा में जगह-जगह पर बिच्छू काटते थे। तो 1938-39 तक बिच्छू काटते थे, फिर खत्म हो गए। उस हिटलर ने मंथन किया न, उसके बाद का काल कुछ और ही तरह से बदल गया! उसने बिलोया तो उससे बदल गया, वर्ना अंत ही नहीं था बिच्छुओं का! वे बहुत काटते थे, उन दोनों को लेकिन मुझे तो बिच्छू वगैरह ने कभी भी नहीं काटा। हमारे बड़े भाई को हर महीने बिच्छू काटता था। उन्हीं को ढूँढकर काटता था।

मुझे नहीं पुसाती हिंसा, बड़े भाई से अलग था इस बारे में

एक खटमल को मारने के लिए वे चार दियासलाई जलाते थे और उसे सती बना देते थे। मुझे तो यह पुसाता ही नहीं था न! मैं इससे कुछ अलग पक्ष में था, हिंसा पक्ष से बिल्कुल अलग। हिंसा पक्ष मुझे पुसाता ही नहीं था, यह मारना-करना!

ऐसे-ऐसे तूफान सब देखे थे मैंने। इस तरह तो संसार में से कैसे छूट सकते हैं? लेकिन यह तो पुण्य अच्छा था कि छूट गया, वर्ना नहीं छूट सकते थे। कैसे छूटते? लेकिन बा के ये संस्कार थे न! बा बहुत संस्कारी थीं! हाँ, इसीलिए सभी लोग बा से कहते थे कि 'अरे बा, आप

तो देवी जैसी हों! यह बड़ा तो राक्षस जैसा ही है और दूसरा छोटा संत जैसा है। एक भाई कैसा, और दूसरा भाई कैसा!' इन दोनों का सबकुछ अलग ही है, ऐसा भी कहते थे।

भाई का प्रेम बहुत था, लेकिन और कुछ भी मेल नहीं खाता था

प्रश्नकर्ता : मणि भाई का बा के प्रति कैसा व्यवहार था?

दादाश्री : मणि भाई तो राजसी इंसान थे, बा को कभी भी एक अक्षर भी नहीं कहा।

प्रश्नकर्ता : और दादा, आपका और मणि भाई के बीच कैसा था?

दादाश्री : हमारा भी उतना ही मेल खाता था। प्रेम बहुत था लेकिन आपस में और कुछ भी मेल नहीं खाता था। बड़े भाई का प्रेम बहुत था। बाकी यह सब तो मैंने देखा था। यह पूरी दुनिया देखी और दुनिया का प्रेम भी देख लिया। प्रेम में क्या मिला, वह भी देख लिया।

हिंसा के मत में अलग लेकिन अहंकार के मठ में एक

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या आपका बड़े भाई से मतभेद होता था? कब होता था?

दादाश्री : बहुत फर्क था हम में। बड़े भाई और हम में। हम दोनों भाई थे लेकिन दोनों के मत अलग-अलग थे। ऐसे थे, जैसे एक ही मठ में से आए हों फिर भी विचारों में भेद था। वे हिंसा को स्वीकार करते थे, मैं हिंसा को स्वीकार नहीं करता था। तब मैं कहता था, 'आपको इसके फल भुगतने पड़ेंगे'। तब कहते थे, 'तू आया बड़ा भगत, नरसिंह मेहता जैसा'। अत: इस बारे में हमारा मतभेद था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आप हिंसा को स्वीकार नहीं करते थे और आपके बड़े भाई हिंसा को स्वीकार करते थे, तो ये मतभेद होने के बावजूद भी एक ही मठ, किस प्रकार से? वह समझाइए।

दादाश्री : अहंकार में दोनों एक ही लाइन में।

प्रश्नकर्ता : अहंकार में।

दादाश्री : किसी जगह पर दंगा करना हो तो दोनों तैयार रहते थे। दोनों का खून उबलता था। अरे! यदि कोई बड़ा आदमी किसी दु:खी आदमी को मार रहा होता न, तो उसका तेल निकाल देते थे। यानी खरा क्षत्रियपन था! क्षत्रियपन किसे कहते हैं कि वे रास्ते चलते लड़ाई मोल ले लेते हैं। यदि कोई शक्तिशाली किसी कमज़ोर इंसान को मार रहा हो तो कमज़ोर का पक्ष लेकर बलवान इंसान का तेल निकाल दे, उसके साथ बैर बाँध ले। उसे कहते हैं 'क्षत्रिय!'

सिंह घास नहीं खाता कभी भी

प्रश्नकर्ता : बड़े होने के बाद तो आपको बड़े भाई के सामने बोलने की हिम्मत आई होगी न?

दादाश्री : हमारे बड़े भाई रोज़ मुझसे कहते थे कि, 'तुझ में बरकत नहीं है, बरकत नहीं है'। तो एक दिन मैंने उनकी बरकत निकाल दी।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह?

दादाश्री : वे बहुत मुश्किलों में फँस गए थे। वे राजा जैसे इंसान, और जैसे वे कभी भी नहीं करते थे, वैसे कार्य करने लगे।

हमारे बड़े भाई ने एक बार सौ-दो सौ रुपए का कमिशन खाया होगा किसी से। एक व्यक्ति ने कहा कि 'मणि भाई साहब, हमें इतना लकड़ियाँ चाहिए और आप तो कॉन्ट्रैक्टर हो तो इतना भिजवा देना' तो उन्होंने तो भिजवा दी लेकिन कमिशन रख लिया। उन्हें सौ-डेढ़ सौ कमिशन मिला। तब घर आकर कह रहे थे कि 'आज तो उसे लकड़ियाँ भेजकर अच्छा कमिशन मिला, डेढ़ सौ रुपया'।

मैंने कहा, 'कमिशन खाया? यह काल बदला! ऐसा करते हो? ऐसा पुरुष जिनकी आँखें देखते ही सौ लोग तितर-बितर हो जाते हैं।

आपको देखते ही फौजदार-वौजदार, सूबेदार-वूबेदार सब इधर-उधर हो जाते हैं, वे इस तरह से कमिशन खाना सीख गए?'

तब मैंने बड़े भाई से कहा कि 'यह शेर तिनके खाने लगा है। नहीं खाना चाहिए। खाना तो क्या, छूना तक नहीं चाहिए। कौन हैं आप? किस जाति के हैं आप? आप किस तरह के इंसान हैं और तिनके खा रहे हैं?'

मैंने कहा, 'शेर घास नहीं खाता। किसी भी जन्म में नहीं खाई है, और पहली बार ये घास खा रहे हैं'। भाभी बैठी थीं और मैंने कहा, 'अनफिट हैं ये। यह मुझे स्वीकार नहीं हो रहा है। घास खाई आपने?' तब उन्होंने कहा, 'संयोग मिले तो करना पड़ता है'। मैंने कहा, 'नहीं! शेर किसी भी संयोग में घास नहीं खाता। उसी को शेर कहते हैं!'

मणि भाई को तो मिट्टी में मिला दिया एक दिन। 'अनफिट' कहा तब फिर उनका पारा तो उतर ही जाता न! मूलत: तो वे शेर जैसे इंसान, जब उनकी भूल दिखाई, तो पहले तो हमारी भाभी ने रक्षण किया। कहने लगीं, 'अगर ऐसी अड़चन हो और उससे सौ-डेढ़ सौ ले लिए तो उसमें क्या हुआ? उसके लिए चक्कर लगाया, उसका काम किया है और उसका फायदा करवा दिया है'। मैंने कहा, 'नहीं! लेकिन जिसे कमिशन कहते हैं। वह हमारे काम का नहीं है। हम शेर के बच्चे हैं। शेर ने किसी भी जन्म में घास नहीं खाई'।

वे ऐसे नहीं थे कि कमिशन लें लेकिन भाभी के दबाव की वजह से हुई भूल

वास्तव में ऐसा कभी भी नहीं हुआ था। हमारी लाइफ में भी ऐसा नहीं हुआ था। उस दिन मणि भाई ने ऐसा किया लेकिन वह तो हमारी भाभी का बहुत दबाव था न, इसलिए ऐसा किया था। यों कभी भी कमिशन नहीं खाते थे। वे ऐसे नहीं थे कि कमिशन खाएँ। तिनका भी न छुएँ। लाख रुपए हों तब भी न छुएँ। खुद पर गरीबी आ जाए फिर भी न छुएँ। इसलिए फिर मैंने मणि भाई से ऐसा कह दिया कि 'आपको

यह शोभा नहीं देता। आप कैसे इंसान हो? किसके बेटे हो वह तो समझो? हमने ज़िंदगी भर कभी किसी का कुछ भी नहीं छुआ है और अब आप कमिशन खाते हो?'

किसी ने आपको काम सौंपा है और आप व्यापारी से अपना कमिशन लेते हो? किसी व्यक्ति ने कहा कि 'वहाँ से मुझे ज़रा इतना करवा देना न!' तो पच्चीस हज़ार के माल में हम तीन सौ-चार सौ खा जाएँ। क्या उस व्यक्ति ने ऐसा सोचा होगा कि आप कमिशन खाओगे? क्या इसलिए आपको दिया है? वह तो यही समझता है कि 'ये खानदानी इंसान हैं, हमारा पैसा नहीं बिगड़ेगा!' और ऐसा विश्वासघात! ऐसा हमें शोभा नहीं देता!

क्या किसी व्यक्ति से कमिशन लेना चाहिए? अगर हमारा दलाली का काम हो तो बात अलग है। दलाल की दुकान हो तब तो कहेंगे कि 'भाई, इनकी तलवार तो आते-जाते दोनों तरफ छीलती है,' लेकिन हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? आपको तो उन्होंने सब से अच्छे 'मणि भाई साहब' मानकर यह काम सौंपा था कि 'अगर इन साहब को काम सौंपूंगा तो मेरा काम बहुत अच्छी तरह से हो जाएगा'। बल्कि हम तो इतने खानदानी इंसान हैं कि घोड़ा गाड़ी का किराया भी अपने घर से दिया है, असल खानदानी! ऐसा हमें शोभा नहीं देता है, कमिशन नहीं लेना चाहिए। अगर खाने को कुछ न मिले तो क्या घास खानी चाहिए? 'सिंह के पुत्र हैं'। तब उन्होंने कहा, 'तूने मुझे बताया उसके बाद से समझ में आ गया। यह तो तेरी भाभी ने उस दिन कहा तो तब मुझे वह बात अच्छी लगी'। लेकिन फिर बड़े भाई ने कहा कि 'यह सब कमिशन नहीं रखना चाहिए। अब तू इसे लौटा दे'।

यदि आप खानदानी हो तो ऐसा शोभा नहीं देता

प्रश्नकर्ता : यह सब भी नैचुरल है न? आप कुछ करने गए थे क्या?

दादाश्री : नैचुरल है, खानदानियत है यह तो। उनकी कैसी खानदानियत! मैंने देखी है उनकी खानदानियत कि किसी का भी पैसा

नहीं लेते थे, बल्कि हमेशा खुद अपने ही पैसे खर्च करते थे, और उन्होंने ऐसा किया? पैसों के बारे में ज़िंदगी में अगर उन्होंने कोई भी गलत काम किया हो तो वह यह था। इसलिए मैंने कहा, 'यदि आप अपने आपको खानदानी मानते हो तो यह शोभा नहीं देता, वर्ना आप खानदानी नहीं हो'। खानदानियत का अहंकार होगा तो उसमें हर्ज नहीं है, वह अहंकार खानदानियत को संभाल लेता है। वर्ना यदि वह अहंकार नहीं होगा तो खानदानियत खत्म हो जाएगी, दिवाला निकाल देगा।

भाई की बुरी आदतों की वजह से पैसों की कमी

मणि भाई यों तो बहुत अच्छे इंसान थे, जैसे राजसी परिवार से हों। जो कुछ पास में होता था, वह दे देते थे। पैसों की पड़ी ही नहीं थी। काफी बड़ा कामकाज। बहुत आमदनी थी लेकिन भाई को पीने की लत लग गई थी।

प्रश्नकर्ता : पटेलों में तो कई लोगों में ऐसा होता ही है, दादा।

दादाश्री : ये भाई तो राजसी थे और उन्हें इन सब की छूट थी! सिंह को तो पूरी छूट होती है न? वे तो सिंह वंश के थे तो छूट तो रहेगी न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, छूट रहेगी।

दादाश्री : बड़े भाई बहुत शराब पीते थे इसलिए पाँच दस सालों तक पैसों की तकलीफ हुई थी। उन पाँच-दस सालों में हमारे भाई के राज में पैसों की कमी हो गई थी, बाकी उसके बाद पैसों की कमी नहीं पड़ी। पैसे तो, जहाँ हाथ डालूँ न, वहाँ से पैसे मिलते थे। व्यवसाय में तो पैसे बहुत आते थे, लेकिन बड़े भाई के पीने में वे कैसे टिक पाते? आमदनी बहुत थी लेकिन जहाँ पर शराब होती है न, वहाँ पैसा शोभित नहीं होता, और भाई तो रोज़ पचास-सौ रुपए की दारु पीते थे।

प्रश्नकर्ता : ओहो!

दादाश्री : हमारे भाई को तो रोज़ चालीस-पचास रुपए की बोतल

की ज़रूरत पड़ती थी। अब यह काम हमें कैसे पुसाता? पचास रुपए की बोतल चाहिए और वह भी विलायती उसमें भी अच्छी तरह से पीते थे। उस घर में रुपया कैसे टिकता? कितनी आमदनी होती थी? 1930-32 के ज़माने में।

प्रश्नकर्ता : पचास रुपए तो बहुत बड़ी चीज़ थी। आज के पाँच हज़ार रुपए जितने।

दादाश्री : यानी सारी आमदनी तो उनके पीने में ही चली जाती थी। फिर घर-बार सबकुछ गिरवी रख दिया था। तरसाली की ज़मीन भी गिरवी रख दी। गाँव की दस बीघा, तरसाली की साढ़े छः बीघा और घर-बार वगैरह सब गिरवी रख दिया।

बहुत बीती, उसके बाद स्वतंत्र काम किया भाई से अलग होकर

व्यापार में आमदनी थी उन दिनों। उन दिनों कॉन्ट्रैक्ट का काम बहुत अच्छा माना जाता था लेकिन फिर पैसों की कमी पड़ने लगी। हम पर उधार चढ़ने लगा। फिर मुझे अलग हो जाना पड़ा।

प्रश्नकर्ता : वह किस उम्र में दादा?

दादाश्री : तीस साल की उम्र में स्वतंत्र। मुझ पर भी दस साल बहुत बुरी बीती थी न! इसलिए फिर मुझे याद रह गया थोड़ा-बहुत। व्यापार में बड़े भाई के साथ रहा था, तब बहुत बुरी बीती थी।

प्रश्नकर्ता : क्या बीती थी, दादा?

दादाश्री : बहुत बुरी बीती थी। पैसे उधार लाने पड़ते थे और ऐसा सब करना पड़ता था। अनाज उधार लेकर आना पड़ता था। क्या उसे बहुत बुरी बीती नहीं कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बुरी बीती ही कहा जाएगा न, उसे तो।

दादाश्री : हं। व्यापार अच्छा था, बड़ा व्यापार था लेकिन फिर

भी ऐसा करना पड़ता था। क्योंकि भाई का ऐसा सब खर्चा था। ब्रान्डी का झंझट था सारा! मेरे स्वतंत्र, अलग हो जाने के बाद मुझ पर कुछ भी बुरी नहीं बीती।

बड़े भाई की शराब छुड़वाने के लिए ज़बरदस्ती नहीं की

हमारे अलग हो जाने के बाद दो-तीन लोग मेरे पास आए और मुझसे कहा कि 'आपके भाई की शराब तो छुड़वा दो'। मैंने कहा, 'अब अगर वे अपने आप छोड़ दें, तभी ठीक है, ज़बरदस्ती करने से परेशान हो जाएँगे'।

मैंने तो ऐसे सब तूफान देखे हैं लेकिन यह तरीका अच्छा है न? वर्ना मोह चढ़ जाता न? लेकिन परेशानियाँ तो सब तरह की हुई थीं, सभी तरह की परिस्थितियाँ देखीं। उन्होंने सुख भोगा और दस सालों तक दु:ख भी आ पड़ा, वह भी मैंने देखा।

प्रश्नकर्ता : किस चीज़ का दु:ख आ पड़ा?

दादाश्री : ज़रूरत की चीज़ें कम पड़ जाती थीं। मेहमान आ जाएँ तो माँगना-करना पड़ता था। पहले खूब मेहमान आते थे तो चल जाता था लेकिन फिर सभी मेहमान भी समझ जाते थे कि कुछ कम पड़ रहा है! उधार लाने का समय आ गया था। यह सब अच्छा नहीं कहा जाएगा न!

प्रश्नकर्ता : कौन से साल में, दादा?

दादाश्री : 1930 से 1936 तक।

प्रश्नकर्ता : 1930 से 1936 तक आप साथ में काम करते थे?

दादाश्री : तब मैं साथ में काम करता था। उसके बाद अपना अलग व्यवसाय करने लगा।

प्रश्नकर्ता : अलग व्यवसाय?

दादाश्री : व्यवसाय अलग होने के बाद भी मुझे देना पड़ता था।

उनका बिज़नेस इतना नहीं चलता था इसलिए फिर मुझे देना पड़ता था। फिर 1939 में उनसे अलग हो गया।

मेरा हित इसी में है कि भाई को सुख हो

बाईस-तेईस साल की उम्र में एक व्यक्ति हम दोनों के बीच में यों ही दरार डालना चाहता था। वे व्यक्ति मुझसे पच्चीस साल बड़े थे, वे दरार डाल रहे थे। यों तो अच्छे इंसान थे। अब, वे जान-बूझकर दरार नहीं डाल रहे थे। वे मुझसे ऐसा कहते थे कि 'इसमें तेरा हित नहीं है'। मैंने कहा, 'मेरा हित इसी में है कि मेरे भाई को सुख हो। मेरा सुख मेरी जायदाद बचाने में नहीं है'। वे बुज़ुर्ग तो अवाक् रह गए। यानी उनके कहने से पहले ही मैं समझ गया कि ये दरार डालने आए हैं।

यदि ऐसी लत नहीं होती तो...

मणि भाई को पीने की लत पड़ गई, वह बहुत बुरा हुआ। पीना सीखे रौब मारने के लिए, और उसी वजह से रौब जमाया, वर्ना हमारे गाँव में उन जैसा कोई पटेल नहीं था।

ऐसा तो हमारे गाँव के कई लोगों ने कहा कि, 'अपनी पूरी जाति में बस यही एक मर्द है। यदि यह एक बुरी आदत न होती तो यह अपने गाँव का सब से बड़ा व्यक्ति माना जाता। यदि पीते नहीं तो अपनी जाति में वे नामी होते'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, नामी होते। लेकिन वह थोड़ा पीते थे या बहुत?

दादाश्री : ज़्यादा। बहुत ज़्यादा पी लेते थे कई बार। टोपी भी भूल जाते थे। छोटा भाई ने भी मणि भाई से कहा कि 'मणि भाई, अगर आपको यह लत नहीं होती तो आप अपने गाँव के ज़बरदस्त नेता माने जाते'। लेकिन फिर ज़रा सी वह बुरी आदत पड़ गई न, तो सबकुछ बिगड़ गया।

स्पिरिचुअल लेवल पर से उल्टी लाइन पर

नहीं तो एक्सेप्शनल (असाधारण) थे, सिंह जैसे। हमारे बड़े भाई

बाहर सिंह माने जाते थे लेकिन यह बुरी आदत थी इसलिए उनकी वैल्यू नहीं रही। ब्रान्डी की आदत थी न, वे ब्रान्डी पीते थे तो बस, खत्म! इंसान के रूप में माने जाने की कीमत ही कहाँ रही? पी लिया तो सब खत्म। चाहे कैसा भी प्रभावशाली व्यक्ति हो लेकिन यदि उसमें यह आदत हो तो वह खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुख्यत: वह ज़ोर तो नहीं जाता न, दादा?

दादाश्री : ज़ोर तो नहीं जाता लेकिन शराब की आदत थी न, इसलिए लोगों ने नकार दिया। यों भी उनका वज़न नहीं पड़ने देना चाहते थे तो इस लत के बहाने नकार दिया लोगों ने कि 'जाने दो न, पीते हैं'।

प्रश्नकर्ता : क्या उनका स्पिरिचुअल लेवल हाई था, दादा?

दादाश्री : स्पिरिचुअल लेवल पर से इस उल्टी लाइन पर आ गए।

पुण्य के प्रताप से रौब सहित बिस्तर पर ही मृत्यु हुई

जानते हो हमारे बड़े भाई को सब लोग क्या कहते थे, 'मणि भाई, आप बिस्तर पर नहीं मरोगे'। क्या कहते थे?

प्रश्नकर्ता : बिस्तर पर नहीं मरोगे।

दादाश्री : जो भी आता था, वह ऐसा ही कहता था कि 'मणि भाई, आप बिस्तर पर नहीं मरोगे। लोगों पर आप इतनी ज़ोर-ज़बरदस्ती करते हो, तो बाहर ही कोई आपको उड़ा देगा'। तो वे कहते थे, 'बाहर नहीं मारे जाएँगे, हम तो बिस्तर पर ही मरेंगे! हम तो राजसी इंसान हैं!'

हमारे एक चाचा थे चतुर भाई करके, तो वे कहते थे कि 'मणि भाई, तू बिस्तर पर नहीं मरेगा, बाहर ही मरेगा। कोई तुझे मार देगा'। तब वे कहते थे, 'वह आपकी समझ की बात है, मेरी बात अलग है। मैं बिस्तर पर मरूँगा। आप आना'। तो वे ऐसे पुण्यशाली थे कि बिस्तर पर ही मरे। नहीं तो ऐसा इंसान बिस्तर पर नहीं मरता है। किसी को भी नहीं छोड़ा था उन्होंने। फिर भी, रौब से बिस्तर पर मरे, आराम से। मरते समय ऐसा कहने वाले उनके पास ही खड़े थे, मैंने देखा था।

नहीं गए किसी के लिए स्मशान में, फिर भी लोग आए

बड़े भाई की मृत्यु के समय मेरे मन में भय घुस गया कि 'अगर कोई नहीं आया तो क्या करूँगा? अगर कोई स्मशान में नहीं आया तो क्या करूँगा? सभी लोग सत्याग्रह कर लेंगे तो?' क्योंकि हुआ क्या था कि वे किसी के लिए भी स्मशान में नहीं गए थे। ऐसे पाटीदार थे भाई! किसी के वहाँ वे खुद स्मशान नहीं जाते थे और मुझे भी नहीं जाने देते थे। कहते थे, 'अरे! स्मशान में नहीं जाना है'।

तब मैंने कहा, 'जब बा मरेंगे तब कौन आएगा?' तब वे कहते थे, 'वह तुझे नहीं देखना है। स्मशान में नहीं जाना है'। इसलिए मैं नहीं जाता था। लेकिन फिर मुझे भी ऐसा भय रहा करता था। हमारी बा बूढ़ी थीं। तब मैंने कहा, 'अगर बा मर जाएँगी तो अपने यहाँ कोई नहीं आएगा'। लेकिन मणि भाई को तो किसी की भी नहीं पड़ी थी। इसलिए मैं चुपचाप जाकर आ जाता था। हम तो थे व्यवहारिक इंसान, व्यवहार संभाल लेते थे। लेकिन फिर बा से पहले तो उनकी मरने की बारी आ गई।

लेकिन जब वे गए न, उस दिन चालीस-चालीस लोग बैठे हुए थे! कोई भी आँच नहीं आई।

प्रश्नकर्ता : ईश्वर काका तो यह बात बताते हुए रो पड़े थे।

दादाश्री : ईश्वर भाई रो पड़ते थे। वे तो, जब मणि भाई रात को ढाई बजे मर गए न, तो 'ओ! मेरे भाई रे' करके खूब रोए थे। 'अरे, हमें तो रोना नहीं आ रहा है फिर आपको क्यों रोना आ रहा है?' वे ईश्वर भाई इतने भावुक थे। भावुकता रहित नहीं थे। भावुक थे, वे थे ईश्वर भाई घड़ियाली।

अंत में शराब छोड़कर किए उपवास

मणि भाई पुण्यशाली थे, लेकिन क्या हो सकता था? कम उम्र में ही मृत्यु हो गई न!

प्रश्नकर्ता : किस उम्र में?

दादाश्री : पचास साल की उम्र में। पूरा शरीर खत्म हो गया था उनका। क्योंकि उन्होंने उस समय इकतीस उपवास किए थे। तो उपवास की वजह से मृत्यु हो गई। उपवास से उन्हें हेल्प नहीं हुई थी ठीक से।

प्रश्नकर्ता : क्या मणि भाई ने उपवास किए थे?

दादाश्री : इकतीस उपवास किए थे, सिर्फ पानी पीते थे वे।

प्रश्नकर्ता : *संथारा* जैसा ही हुआ यह तो?

दादाश्री : वे क्या *संथारा* करते? (मृत्यु तक उपवास) बैरी पुरुष थे वे तो। वे तो, जैसा उनके खुद के मन में आता था, वैसा ही करते थे। किसी की सुनते ही नहीं थे न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उन्होंने उपवास क्यों किए थे, दादा?

दादाश्री : उन्होंने उपवास तो इसलिए किए थे कि 'मेरे शरीर में जो शराब के परमाणु हैं, उन सब को साफ कर देना है'। तो उन्होंने शरीर की शुद्धि के लिए ऐसा किया था। वे शराब पीते थे न, तो इसलिए किए ताकि शरीर में से ज़हर निकल जाए।

हालांकि शराब छूट गई थी, उन्होंने अपने आप ही छोड़ दी थी दो साल पहले ही। उसके बाद उपवास किए। यों तो फिर से संत पुरुष जैसे बन गए थे, क्योंकि उनका ब्रेन सुपर था। शरीर में बदलाव करने के लिए, शरीर को फिर से पुण्यशाली बनाने के लिए और पाप धोने के लिए इकतीस उपवास किए थे।

डॉक्टर तो निमित्त थे, मुख्य कारण तो उपवास

उन्होंने उपवास तो किए लेकिन उपवास छोड़ना नहीं आया।

प्रश्नकर्ता : उपवास छोड़ना नहीं आया। एकदम से खा लिया।

दादाश्री : अपने रमण लाल डॉक्टर हैं न, तो रमण लाल डॉक्टर ने कहा कि 'ज़रा फीके दही की छाछ दोगे तो हर्ज नहीं है'। तो रमण

लाल ने छाछ पिलवाई। उन्होंने छाछ पीने को कहा और उससे विकार हो गया। पेट बिगड़ गया।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बिगड़ जाता है, छाछ भारी रहती है।

दादाश्री : उस छाछ की वजह से परिणाम बदल गया। डॉक्टर की वजह से बिगड़ा अंतिम उपवास के दिन। डॉक्टर को उपवास छुड़वाना नहीं आया। डॉक्टर से वह भूल हो गई। इसलिए क्योंकि उनका हिसाब रहा होगा।

वैष्णव डॉक्टर के हाथों से बिगड़ने के बाद जैन डॉक्टर को बुलाया। उसके बाद अपने वे प्राण लाल आए तो उन्होंने कहा कि 'नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए। इसमें तो मूँग का पानी देना चाहिए। छाछ क्यों पिलाई? वह नहीं देनी चाहिए। अभी तो मूँग के पानी की ही ज़रूरत थी क्योंकि इकतीस दिन का उपवास छोड़ना था। यह सब क्या है? अब तो अंदर सब उल्टा हो गया है। यह बहुत बड़ी भूल हो गई है'।

तब कहा, 'जो होना था, समय आने पर वह हो गया'। यह जो होना था वह हो गया। जैन डॉक्टर नहीं आए और वैष्णव डॉक्टर आ गए। अगर पहले जैन डॉक्टर आ जाते तो...

प्रश्नकर्ता : पता चल जाता कि क्या देना है।

दादाश्री : हाँ... मूँग का पानी पिलवाते। और इस वैष्णव डॉक्टर ने तो क्या पिलवाया? छाछ पिलवा दी, फीके दही की। यानी उन्हें उपवास छुड़वाना नहीं आया। रमण लाल डॉक्टर से ऐसी भूल हो गई, और वे निमित्त बने। अब वे तो निमित्त मात्र हैं। हम उन्हें गुनहगार नहीं मानते हैं लेकिन भाई की जो मृत्यु हुई न, तो वे खुद उपवास करके मरे थे। इकतीस उपवास करने के बाद उनकी तबियत बिगड़ने की वजह से उनकी लाइफ फेल हो गई।

'मैं हूँ पूर्व जन्म का योगी' अंतिम चौबीस घंटों में ऐसा कहा था

मरने से पहले बड़े भाई दो-दिन तक बोलते रहे। क्या कह रहे

थे? मरते समय कह रहे थे, 'मैं हूँ पूर्व जन्म का योगी। किसी पाप के बल से यहाँ पर आ गया'। चौबीसों घंटे बस यही बोलते रहते थे, और कुछ भी नहीं बोलते थे। यानी कि योगी पुरुष थे, शीलवान पुरुष थे वे तो! मरते समय भी वैसे ही तेजस्वी और दर्शनीय दिखाई दे रहे थे। मुझे तो लगता था कि ये कोई योगी पुरुष होंगे!

प्रश्नकर्ता : होंगे ही न!

दादाश्री : योगी ही थे, मैंने देखा था। शुरू से ही कई तरह के लोगों को देखा था और हर एक में क्या विशेषता है, वह मार्क करता रहता था। और हमारे बड़े भाई तो अच्छे इंसान थे, महान योगी पुरुष! योगी पुरुष यानी कैसे? जो चाहे सो कर सकते थे, इतना स्ट्रोंग माइन्ड! और 'कैसे स्ट्रोंग इंसान थे वे!' एक दिन कहने लगे, 'मुझे अब सिर्फ दूध पर रहना है'। तो छः महीने तक दूध पर रहे। एक दिन तय किया कि 'हमें तो सिर्फ सब्ज़ी पर ही रहना है'। तो छः महीने तक सब्ज़ी पर रहे। बिल्कुल भी विचलित नहीं होते थे। इतने स्ट्रोंग इंसान तो आपने किसी ने नहीं देखे होंगे। मैं इन चीज़ों में स्ट्रोंग था ही नहीं। वे इतने स्ट्रोंग इंसान थे! वे तो बहुत रौब वाले थे। यदि कहें कि छः-छः महीने तक मीठा नहीं खाना है तो कहते थे, 'चलो, तो ऐसा ही'। छः महीने तक दूध पर रहना है, तो कहते थे, 'चलो ऐसा ही!' कंट्रोलर इंसान थे।

दिवाली बा ने कभी भी चावल वगैरह छौंककर नहीं खाए थे। हमारे मणि भाई का स्वभाव बहुत तेज़ था। उन्हें खाने में सब शुद्ध ही चाहिए था। साइन्टिफिक तरीके से जीते थे फिर भी पचास साल की उम्र में मर गए, दिवाली बा उस समय तीस साल की थीं।

[8]

भाभी

[8.1]

भाभी के साथ कर्मों का हिसाब

भाभी थीं दूसरी बार की और रुतबे वाले गाँव की

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी भाभी दिवाली बा कौन से गाँव से थीं?

दादाश्री : हमारी भाभी गजेरा की। हमारी जो भाभी हैं वे दूसरी बार की हैं, पहली बार की भाभी नडियाद से थी। पहले नडियाद में शादी की थी हमारे भाई ने और फिर गजेरा में शादी की। वह छोटा सा गाँव था लेकिन बहुत ही रुतबे वाला गाँव था।

मेरी भाभी बहुत ही समझदार थीं लेकिन वे थीं बहुत ही रौबदार। भतीजा कहता था, 'चाची हमारे खेत में गेहूँ बहुत उगे हैं, दो मन भिजवा दूँगा'। तो कहती थीं 'नहीं भाई मुझे गेहूँ वगैरह नहीं चाहिए'। वे किसी का मुफ्त का नहीं लेती थीं, इतनी रौबदार थीं। भतीजे कहते थे लेकिन नहीं लेती थीं।

तू 'हाँ' कह, वर्ना अंबालाल से शादी करवा दूँगा

हमारे बड़े भाई पहले वहाँ पर शादी करने के लिए मना कर रहे थे। 'मैं शादी नहीं करूँगा' ऐसा कहा था, क्योंकि वह छोटा गाँव था। तब मेरे फादर ने कहा, 'मैंने हाँ कह दिया है। मेरा नाम बचाने के लिए, मैं यह रिश्ता नहीं तोड़ूँगा। यदि तू मना करेगा तो मैं तो अपने अंबालाल से शादी करवा दूँगा'।

प्रश्नकर्ता : अंबालाल से शादी करवा दूँगा?

दादाश्री : हाँ, ऐसा कहा था।

प्रश्नकर्ता : उन दिनों ज़ुबान की कीमत थी न!

दादाश्री : वह *खुमारी* अलग थी।

प्रश्नकर्ता : हाँ। आपकी शादी करवा देते दिवाली बा से।

दादाश्री : हाँ। शादी करवा देते।

प्रश्नकर्ता : आप उनसे छोटे थे फिर भी?

दादाश्री : वे शादी करवा देते। यों तो झबेर बा भी मूलजी भाई से दो साल बड़े थे। पहले ऐसा था, 'बल्कि वाइफ ज़रा बड़ी हो तो अच्छा था, (घर की) व्यवस्था अच्छी तरह से चलाएगी'।

प्रश्नकर्ता : व्यवस्था अच्छी तरह से चलाती थीं वे।

दादाश्री : भाई तो मुझसे बीस साल बड़े थे और भाभी से उन्नीस साल बड़े थे, दूसरी बार शादी हुई थी इसलिए।

प्रश्नकर्ता : तो भाभी आपकी उम्र की होंगी?

दादाश्री : हाँ, मेरी उम्र की, मैं और वे, दोनों एक समान।

भाई की वजह से महारानी जैसा रौब

तूने देखा था?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। यों दिवाली बा प्रभावशाली लगती थीं।

दादाश्री : बहुत प्रभावशाली थीं वे। बहुत सुंदर थीं। बा भी इतनी सुंदर थीं, बहुत सुंदर। पूरा चेहरा ही सुंदर था। दिवाली बा बहुत सुंदर थीं। यह तो अभी कोढ़ हो गया हैं उन्हें। कोढ़ होने की वजह से। पहले तो एकदम गोरी थीं। महारानी जैसी दिखाई देती थीं। हमारे बड़ौदा के जोगीदास विठ्ठल के मुहल्ले में जब वे बाहर निकलती थीं, तो उन्हें सब 'महारानी' कहते थे।

प्रश्नकर्ता : उनका ऐसा रौब पड़ता होगा!

दादाश्री : पूरे मुहल्ले में रानी जैसा रौब रखती थीं। अब उनका इतना रौब नहीं रहा है लेकिन तब हमारे भाई की वजह से उनका रौब रहता था। भाई तो मानो जैसे राजा ही थे लेकिन ये महारानी की तरह घूमती थीं साथ-साथ! मुहल्ले के लोग तो उन्हें 'राजा और रानी' ही कहते थे। हमारे भाई का बहुत दबदबा था उस मुहल्ले में, बहुत रौब था, इसलिए उन्हें 'महारानी' कहना पड़ता था। 'आईं! महारानी जी' ऐसा कहते थे। भाई की वजह से तो उनकी कीमत बढ़ गई, वर्ना भाभी की क्या कीमत? भाई के नाम पर रौब जमाती थीं, लोगों को डाँटती रहती थीं, ऐसा सब करती थीं।

प्रश्नकर्ता : भाभी को तो बहुत सुख था।

दादाश्री : भाभी को बहुत सुख था, भाभी ने बहुत सुख भोगा। बीस साल पति का सुख भोगा उन्होंने। उसके बाद विधवा हुईं। पचास साल से (दादाश्री की उपस्थिति में दिवाली बा 80 साल की थीं, तब दादाश्री उनके लिए पचास साल कह रहे हैं) आराम से जी रही हैं वे, पुण्यशाली स्त्री! हमारी भाभी ने जो महारानी पद भोगा है, उसका रौब, वह सख्ती अभी भी जाती नहीं है न!

स्त्री चरित्र को पहचानना सीखे भाभी से

प्रश्नकर्ता : दादा आप कई बार कहते हैं कि आप भोले थे, लेकिन भाभी से स्त्री चरित्र के पाठ सीखे और स्त्री चरित्र को पहचानने में आप मज़बूत हुए, तो आपने भाभी में ऐसा तो क्या देखा कि आपको ऐसा सीखने मिला?

दादाश्री : जब मणि भाई जीवित थे तब, जब वे खाना खाने बैठते थे तब हमारी भाभी रोज़ उनसे कहती थीं कि 'आपके बिना मैं जी नहीं पाऊँगी'। दूसरी बार शादी की थी न! तो वह जोड़ी कुछ अलग तरह की होती है।

मुझे मन में ऐसा होता था कि 'भाभी ने यह पानी पिला दिया'।

मुझे चिढ़ बहुत थी ऐसी जाति पर। यानी कि मेरे मन में खटका रहा करता था, चिढ़ मचती थी कि 'ये कह क्या रही हैं? ये स्त्री उन्हें दबा रही हैं। वे बाघ जैसे, सिंह जैसे और ये उन्हें दबा रही हैं,' तो मैं बहुत चिढ़ता था लेकिन बड़े भाई ने तो मान ही लिया कि यह बात करेक्ट है। त्रिकाल सत्य कह रही हैं ये। क्या मान लिया? 'अगर आप नहीं होंगे तो मैं आपके बिना जी नहीं पाऊँगी'। भाई खुश हो जाते थे कि 'कितनी अच्छी स्त्री मिली है! कैसी महारानी जैसी मिली है!' उनके मन में ऐसा था कि 'ओहोहो! ऐसी स्त्री फिर से नहीं मिलेगी'। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उन्होंने भाई पर चारों तरफ से जाल डालकर उन्हें डरा दिया। यानी कि पिंजरे में डाले हुए बाघ जैसे हो गए थे भाई। उन्होंने मेरे ब्रदर से जो स्त्री चरित्र खेला, वह मैंने पकड़ लिया। मैं तो समझ गया, 'ओहोहो! स्त्री इतनी शातिर!'

वह स्त्री रोज़ इस तरह पानी पिलाती रहती थी, जैसे कि बाघिन शिकार करने जाती है न, उस तरह से। 'आपके बिना मैं जी नहीं पाऊँगी, मैं नहीं रह पाऊँगी'।

प्रश्नकर्ता : उनसे ऐसा कहती थीं!

सिंह जैसे भाई को कपट से बना दिया बकरी

दादाश्री : हमारे घर में आकर उन्होंने इतना ज़्यादा बदलाव ला दिया, मेरे बड़े भाई में! उन्होंने कैसे बकरी बना दिया होगा, वह तो आप जानते हो न? कपट करके। कपट करके भाई को बकरी बना दिया।

प्रश्नकर्ता : और क्या कपट करती थीं भाई से?

दादाश्री : हमारी भाभी तो पूरे दिन खाती रहती थीं और फिर जब हमारे बड़े भाई आते थे न, तब कहती थीं, 'अरे! मैं कुछ खा ही नहीं पाती हूँ!' उन्होंने ही मुझे स्त्री जाति की पूरी विद्या सिखाई, स्त्री चरित्र। होता अलग है और कहती कुछ अलग है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, दादा।

दादाश्री : फिर जब मेरे भाई की मृत्यु हो गई तब मैंने भाभी से

पूछा कि 'भाई तो गए, तो आप क्यों नहीं चली गईं? आप कहती थीं न?' तो कहा, 'ऐसे कोई मरता होगा? आप जाओ'।

प्रश्नकर्ता : 'आप जाओ,' कहती थीं...

दादाश्री : हं, कपट बहुत था, कपट समझ गया था मैं। यदि मणि भाई नहीं होते न तो, तो तीन मिनट में सीधा कर देता। अगर मणि भाई मुझसे कहते कि 'इसे सीधा कर दे,' तो तीन मिनट में सीधा कर देता उन्हें। ज़िंदगी भर के लिए सीधा कर देता, सारा खेल भूल जातीं लेकिन मेरा वहाँ चलता नहीं था न, तो फिर वहाँ मैं क्या बोल सकता था? वर्ना मैं कह देता कि 'इससे तो वह इस्त्री अच्छी कि वह कपड़े तो इस्त्री कर देती है, जबकि यह स्त्री तो किसी काम नहीं आती'।

पहचानते थे पैर से सिर तक भाभी को, इसलिए नहीं आए गुनाह में

प्रश्नकर्ता : दादा, जब आप भाभी का कपट समझ जाते थे तब फिर व्यवहार में उनके साथ टकराव हो जाता था क्या?

दादाश्री : हाँ, एक बार मेरे और उनके बीच झंझट हो गई। मेरी और उनकी बनती नहीं थी। वे बोलती रहती थीं, तब फिर उनके प्रति मेरी वाणी कैसी निकलती? लोग भी समझ जाते थे कि सिर दु:ख जाए ऐसी यह वाणी निकली। कैसी? सिर दु:ख जाए, ऐसी।

वे बोलती ही ऐसा थीं न, तो जवाब भी उसी तरह के होते थे। क्योंकि हमारी भाभी मुझे गुनहगार साबित करने की कोशिश करती रहती थीं लेकिन मैं भाभी को पैर से सिर तक पहचानता था, इसलिए मैं तुरंत कह देता था। मुझे भी बोलना आता था, मैं बोले बगैर रहता नहीं था न!

दिवाली बा कहती थीं, 'आप बोलते हो तो मेरा सिर दु:ख जाता है'। मैंने कहा, 'जब आप बोलती हो तब क्या मेरा सिर नहीं दु:खता होगा?' वे मुझसे भी ज़्यादा भारी शब्द बोलती थीं, इतना-इतना बोलती थीं। इन्हें (हीरा बा को) बोलना नहीं आता था। वे और बा दोनों ही नहीं बोलते थे बेचारे। हम दोनों आमने-सामने खूब बोलते थे, तो बड़े

भाई क्या समझते थे कि, 'तू इस तरह से बोलता है इसलिए घर में ऐसा होता है'।

मुझे खुद को भी पता चलता था कि, 'अरे!' यह तो गधे का भी सिर दु:ख जाए'। गधे का कभी भी सिर नहीं दु:खता लेकिन मेरी वाणी ऐसी निकलती थी कि उसका भी सिर दु:खने लगे तो सोचो वे कैसे शब्द निकलते होंगे?

'गिर जाऊँगी सुर-सागर में', त्रागा करके डराया भाई को

प्रश्नकर्ता : आप दोनों के टकराव में बीच में भाई कुछ बोलते थे क्या?

दादाश्री : भाई कुछ कहने जाते थे न, तो भाभी *त्रागा* करती थीं, कपट करती थीं। उन्हें जब काम करवाना होता था न, तो वे हमारे भाई को किस तरह दबाती थीं, वह जानते हो? हमारे बड़े भाई को डराने के लिए क्या कहा उन्होंने? 'मुझे सुर-सागर में डूबना पड़ेगा, आपके भाई की वजह से। मैं तो चली सुर-सागर में डूबने।'

'मैं तो सुर-सागर में चली।' ऐसा कहती थीं उन्हें डराने के लिए। क्योंकि बुद्धि बहुत काम करती थी, ज़बरदस्त काम करती थी। और भाई राजा जैसे राजसी स्वभाव वाले थे, कोमल थे इसलिए इनके ज़रा से भी *त्रागे* से घबरा जाते थे बेचारे! तो मणि भाई घबरा गए। उन्हें अंदर बहुत घबराहट होती थी, पहली पत्नी मर चुकी थी न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो उन पर आरोप लगा था कि 'इन्होंने मार दिया था'।

प्रश्नकर्ता : अच्छा!

दादाश्री : अत: उनके मन में ऐसा था कि अगर दूसरी बार भी ऐसा हो जाएगा तो मेरी क्या दशा होगी? अगर ऐसा कुछ हो गया तो मुझ पर आरोप लगेगा। यह मर जाएगी तो बहुत परेशानी होगी। यह सेकन्ड मैरिज थी इसलिए डर-डरकर चलते थे। यानी कि वे दब गए

थे। वर्ना वे किसी से नहीं दबे। वे तो ऐसे थे कि किसी को भी बेच दें। यानी कि 'जब पहली पत्नी मर गई थी तब तो लोगों ने मेरे सिर पर आरोप मढ़ा, और अगर ये दूसरी बार वाली भी मर जाएगी तो लोगों को प्रमाण मिल जाएगा और आरोप मेरे सिर लगेगा'। अब सही-गलत तो भगवान जाने, लेकिन आरोप तो लगा था न!

प्रश्नकर्ता : इसलिए वह डर बैठ गया था?

दादाश्री : वे मुझसे कहते थे, 'वर्ना इस स्त्री की क्या बिसात?'

कला करके भाई को दिखाया भाभी का कपट

प्रश्नकर्ता : तो फिर डर बैठ गया था न?

दादाश्री : हाँ, डर बैठ गया था। फिर हमारे भाई ज़रा अंदर ठंडे पड़े, तब मैंने कहा, 'आप बैठिए। मैं ज़रा भाभी को धक्का मारकर आता हूँ'। फिर भाभी से कहा, 'चलो न, अभी मैं आपको सुर-सागर तक ले जाता हूँ। चलो, मैं आपके पीछे आता हूँ, वहाँ अकेले डर लगेगा आपको। आपको अकेले कूदना नहीं आएगा। मैं वहाँ पर खड़ा रहूँगा। यदि आपकी हिम्मत नहीं होगी तो मैं आपको धक्का मार दूँगा पीछे से'। तब उन्होंने मुझसे कहा, 'आप गिरो'। तो हमारे बड़े भाई ने वह सुन लिया।

मुझे तो बड़े भाई के सामने भाभी से यह बुलावाना था। ताकि हमारे बड़े भाई देख लें कि 'यह स्त्री तो खूब है!' और बल्कि मेरे भाई को कहती हैं। इस तरह हमारे बड़े भाई के सामने पेपर खुल गया। बड़े भाई समझ गए। मैंने अपने बड़े भाई से कहा कि, 'देखा यह!' देखो यह रूप, यह सार देखो, यह स्त्री चरित्र देखो। यह जाति ऐसी नहीं है कि कूद पड़े। कोई फालतू नहीं है और अगर कूदने को तैयार हो जाए तो हमें कहना चाहिए कि 'चलो, मैं आपको धक्का मार दूँगा'।

प्रश्नकर्ता : नहीं कूदेगी। पुरुषों पर दबाव डालती है।

दादाश्री : बहुत पक्की।

प्रश्नकर्ता : जिसे कूदना हो, वह किसी से कहता नहीं है।

दादाश्री : ऐसा क्यों कहते हैं? सामने वाले पर दवाब डालने के लिए। कोई भी नहीं मरता, देखो न! क्योंकि उन्होंने पट रखा है बीच में, अंतर पट रखा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : नाटक करते हैं, कम्प्लीट नाटक।

दादाश्री : ऐसा कर दूँगी, ऐसा कर दूँगी लेकिन अंदर पर्दा रखा था। उसके बाद हम समझ गए। आखिर में फिर भाई को पता चल गया। उन्होंने जान लिया कि अंदर ये कपट खेल रही हैं। आखिरकार उन्हें ऐसा दिखाई दिया।

दूसरी बार शादी करके मूर्ख बने

प्रश्नकर्ता : दादा, भाभी इतनी स्ट्रोंग थीं?

दादाश्री : यह तो, दूसरी बार की पत्नी थीं इसलिए बहुत तेज़ थीं। दूसरी बार की महारानी थीं न, इसलिए हम दोनों भाईयों को फटकार देती थीं। ब्रेन इतना था हमारी भाभी का कि भाई को डराकर तेल निकाल दिया था। पति पर दवाब ही डालती रहती थीं। मैं तो तुरंत समझ जाता था। हमारे भाई भी समझ जाते थे लेकिन प्रेम की वजह से सब भूल जाते थे। दूसरी बार शादी नहीं करनी चाहिए लेकिन लोग दूसरी शादी करके मूर्ख बनते हैं। उस उम्र में भी भाई को मूर्ख बनाती थीं!

बाहर हमारे बड़े भाई से सौ लोग काँपते थे। वे ऐसे विकराल थे, ऐसी पर्सनालिटी वाले थे। कैसे इंसान? राजसी इंसान। जिनकी ऐसी छाती थी लेकिन वे बेचारे काँप गए पत्नी के सामने। राजा जैसे, सिंह ही देख लो न! सिंह जैसा पाटीदार था दिखने में। सिंह जैसे पाटीदार को मिट्टी में मिला दिया था। जिनकी आँखें देखकर सब तितर-बितर हो जाते थे, वही खुद बकरी बन गए। उन सिंह जैसे को बकरी बना दिया। वे बाघिन की तरह खड़ी रहती थीं। मुझे तो आश्चर्य होता था कि मेरा यह बाघ जैसा भाई और इसे बकरी बना दिया?

भाई को वश में करने के लिए करती थीं तरकीब

प्रश्नकर्ता : वह बात बताइए न दादा, आपकी भाभी ने कुछ छुपा दिया था।

दादाश्री : हाँ, छुपा दिया था।

प्रश्नकर्ता : क्या? ज़रा वह बात बताइए न, दादा।

दादाश्री : हमारे पास पैसों की बहुत कमी थी। उन दिनों भाई पर पच्चीस हज़ार का उधार हो गया था, कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस में। पैसे नहीं थे तो (भाभी को) उनसे पैसे माँगने पड़ते थे तो उन्होंने यह तरकीब की। वे कोयले की बोरियाँ छुपा देती थीं, चावल छुपा देती थीं, कुछ भी छुपा देती थीं।

फिर अगर हमें लाने में देर हो जाती न, और हम ऐसा पूछते कि 'यह किसमें से बनाया?' तब बताती थीं, 'पड़ोस में से ले आईं थोड़ा'। तो इस तरह इधर-उधर हमें दवाब में रखती थीं। यह गप्प नहीं लगा रहा हूँ। नज़रों से देखी हुई बात बता रहा हूँ। दो मन चावल ऊपर रख आती थीं।

उसके बाद कहती थीं कि 'चावल ले आओ, चावल नहीं हैं'। वे थाह लेती थीं कि भाई को क्या होता है? तब भाई कहते, 'तेरे पास पाँच-पचास पड़े हैं? सौ एक?' अब सौ रुपए में कितने आते, पाँच रुपए भाव वाले? कितने दिन चलते?

इसी तरह से एक बार क्या किया? कोयले की बोरी उन्होंने नौकरानी से ऊपर चढ़वा दी और हमें कहने लगीं कि 'यह देखो कोयले खत्म हो गए'। उन दिनों तो डेढ़ रुपए की एक बोरी आती थी लेकिन दो-चार बोरियाँ एक साथ लाते तो लाने का किराया कम लगता न! तब मैंने कहा, 'आज तो पैसे नहीं हैं और आपकी तो सभी बोरियाँ खत्म हो गई हैं'। तो हमारे भाई ने कहा, 'अरे भाई जा न, उधार लेकर आ'। तब उन्होंने कहा, 'मैं आपको दूँगी लेकिन अगर आप मुझे वापस दे देंगे, तो'। और वे तो घर की सेठानी, तो हमारे बड़े भाई ने कहा, 'अरे, दे

दो न, आप दे दो'। तब मैं समझ गया कि उनसे पैसे ऐंठने के लिए ऐसी तरकीब कर रही हैं इसलिए, ताकि हमें उनसे लेने पड़ें। लेकिन बड़े भाई और मैं दोनों ऐसे नहीं थे कि किसी से लें। जो हाथ पसारें वे कोई और होंगे। मैं फिर ढूँढ निकालता था। कोयले की बोरी तीसरी मंज़िल पर छुपा दी थी। मैंने खुद देखी थी बाद में क्योंकि मुझे दोपहर में हलुवा खाने की आदत थी। वे जब बाहर जाती थीं न, तब मैं अपने आप ही स्टोव लेकर हलुवा बनाकर खा लेता था।

प्रश्नकर्ता : सेकन्ड वाइफ के साथ ऐसा ही सब होता है, दूसरी बार की थीं न वे, इसलिए।

दादाश्री : दूसरी बार की थीं, इसीलिए तो गलत मिलीं। दूसरी बार की होती हैं तो ज़रा और ज़्यादा पुचकार-पुचकार कर रखते हैं। नहीं तो बहुत मर्द इंसान थे। हमारे बड़े भाई फर्स्ट वाइफ की तो सुनते ही नहीं थे। सेकन्ड वाइफ को मान देते थे हमारे बड़े भाई। 'इस साल हमारा व्यापार ऐसा चल रहा है, वैसा चल रहा है', उन्हें खुश करने के लिए ऐसा सब कहते थे। अब उन्हें खुश करके क्या करना है? और 'तुम्हें कोई साड़ी वगैरह चाहिए तो साड़ी ले आ। ज़रूरत है? ले, दूसरी ले आना। सोने की चूड़ियाँ बनवानी हैं? ले। हीरे की बूटियाँ बनवानी हैं?' क्या उन्हें ऐसा बताने की ज़रूरत थी कि 'इस साल बिज़नेस ऐसा हुआ, वैसा हुआ?' जब नुकसान होगा, तब वे हम पर चिल्लाएँगी। 'आपको बिज़नेस करना नहीं आता', ऐसा कहेंगी। उस समय हमारी क्या इज़्ज़त रहेगी?

भाई भोले थे इसलिए भाभी को हाथ डालने दिया व्यापार में

मणि भाई भोले थे इसलिए दिवाली बा बिफर गए थे। उसके बाद उन्होंने व्यापार में हाथ डाल दिया। हम और हमारे भाई व्यापार करते थे न, तो वे इस तरह आकर पूछते थे जैसे इन्कम टैक्स ऑफिसर न हों, 'क्या हुआ इसमें? इस चीज़ से आपको कितना लाभ हुआ? इसमें कितना लाभ हुआ?'

हमारा कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था मेरे ब्रदर के समय में। हमारी

भाभी बहुत होशियार थीं। वे हम दोनों भाईयों से हिसाब माँगती थीं कि 'अभी क्या कमाई चल रही है वगैरह, वगैरह'। हमारे बड़े भाई उन्हें सब बता देते थे, दूसरी पत्नी थीं न इसलिए।

मेरे भाई भाभी से क्या कहते थे? आज काम किया उसमें लगभग छः सौ रुपए मिले होंगे।

प्रश्नकर्ता : छः सौ रुपए!

दादाश्री : हाँ। ऐसा कहते थे। अब उस समय मुझे पता नहीं था कि यह सब कहने का परिणाम क्या आएगा! उसके बाद फिर जब काम ठीक से नहीं चल रहा था। तब उन्होंने कहा, 'पहले तो रोज़-रोज़ छः सौ लाते थे, अब क्यों ठंडे पड़ गए?' मैंने कहा, 'अरे भाई! ये भला हमारे में कहाँ हाथ डलवाया?' ये भाई भी खूब हैं न! व्यापार तो कभी चले या कभी न भी चले!

मैं हिसाब नहीं दूँगा, मेरी स्वतंत्रता पर रोक नहीं चलेगी

उसके बाद वे मुझसे भी पूछने लगीं, 'हिसाब बताओ'। मैंने कहा, 'ऐसा कहाँ से लाए अपने घर में? ऐसा हाल कब से हुआ?' हमारा कोई *ऊपरी* नहीं है, और फिर वापस ये *ऊपरी* बन बैठीं! बड़े भाई *ऊपरीपना* नहीं करते थे। ये बड़े भाई की ढील की वजह से हैं और क्योंकि भोले-भाले इंसान थे, तो दूसरी पत्नी चढ़ बैठती थीं हमेशा। ये चढ़ बैठी थीं। 'मेरी स्वतंत्रता पर रोक नहीं चलेगी'। मैंने कहा, 'मैं यहाँ पर सर्वन्ट नहीं हूँ, मैं तो मालिक हूँ। मणि भाई से हिसाब लेना', ऐसा कहा।

वे मुझसे ऐसा पूछने लगीं इसलिए मैंने कह दिया। अहंकार ज़रा भारी था न मेरा। मैंने कहा, 'मैं हिसाब नहीं दूँगा। बिज़नेस में आपको बिल्कुल भी हाथ नहीं डालना है। चुप! आप मेरी साहब बन बैठी हो? यहाँ मेरे पास नहीं चलेगा'।

भाभी की वजह से घर छोड़कर भाग गए

प्रश्नकर्ता : दादा, भाभी के साथ में ऐसी कोई घटना हुई थी कि

जिससे इस दुनिया से आपका मन उठ गया और अध्यात्म की तरफ का वेग खूब बढ़ गया।

दादाश्री : हाँ, ऐसी घटना हुई थी न! उस घटना में हमारी भाभी निमित्त बनी थीं। उसमें भी फिर एक बार भाई के साम्राज्य में भी हमें वहाँ से भाग जाना पड़ा था। हाँ, भाग गया था घर छोड़कर। कहे बिना अकेला अहमदाबाद चला गया था।

रूठा नहीं था लेकिन तय किया था कि अब यहाँ नहीं रहना है। उसे रूठना नहीं कहेंगे लेकिन उन सब को ऐसा लगा कि यह रूठकर चला गया। मैंने तय ही कर लिया था कि, 'अब हमें यहाँ पर रहना ही नहीं है। इनके साथ मेल नहीं बैठेगा, इस स्त्री के साथ'।

घुमा-फिराकर दु:ख देती थीं हमें

प्रश्नकर्ता : क्या हुआ था, दादा?

दादाश्री : हमारी भाभी के साथ हमारा मतभेद चलता ही रहता था। बड़े भाई तो राजसी इंसान थे। उनका कॉन्ट्रैक्ट का अच्छा बिज़नेस था लेकिन भाभी से मेरा मतभेद चलता रहता था। मेरा दिमाग़ ज़रा गरम था तो भाभी के साथ टकराव होता रहता था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे ऐसा क्या करती थीं?

दादाश्री : कुछ बातों में बहुत अड़चन डालती थीं। वे मेरी ज़रूरत की चीज़ें नहीं देती थीं। मुझे जिस तरह से पाला-पोसा था मेरी मदर ने, उस तरह से नहीं रखती थीं। दूसरे टेढ़े तरीके अपनाती थीं इसलिए मेरा दिमाग़ खिसक जाता था। उन दिनों तो पूरा ही मनुष्य स्वभाव था न, तो अच्छा-अच्छा खाने-पीने को चाहिए था, और उसमें वे रुकावट डालती थीं।

वेढमी में ज़्यादा घी लेता था और भाभी देती थीं कम

मुझे बा ने अलग ही तरीके से पाला-पोसा था और ये कुछ अलग ही तरह से रखती थीं। क्योंकि बा ने अच्छी तरह से खिलाया-

पिलाया था, घी खाने की आदत बा ने ही डाली, इसलिए शुरू से ऐसी ही आदत थी कि हर चीज़ में घी ज़्यादा चाहिए था। खाने का शौक ज़रा ज़्यादा था। *वेढमी* (पूरनपूरी, मीठा पराठा) बहुत भाती थी मुझे। जब *वेढमी* होती थी तब ज़रा ज़्यादा घी चाहिए होता था। भाभी जब *वेढमी* बनाती थीं न, तो मुझे तो कटोरी में घी की ज़रूरत पड़ती थी अलग से, लेकिन भाभी थोड़ा-थोड़ा देती थीं। वह मुझे अच्छा नहीं लगता था। वे घी कम देती थीं तो मेरा दिमाग़ खिसक जाता था। मैं बहुत त्रस्त हो जाता था।

खाते समय पर ही भाभी शिकायत करके सब बिगाड़ देतीं

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों करती थीं भाभी?

दादाश्री : यह तो ऐसा है कि मुझसे भी जुदाई रखती थीं ज़रा। मणि भाई को अच्छा-अच्छा परोसती थीं। फिर मणि भाई कहते भी थे कि 'आप ऐसा क्यों करती हो?' तब कहती थीं, 'नहीं। उनके लिए भी रखा है। जितना चाहिए उतना ले लें!' और फिर मैं चिढ़ के मारे, गुस्से के मारे नहीं लेता था। हमने ऐसा सब देखा नहीं था न! हमने तो ऐश से खाया-पीया था, और फिर यहाँ पर ऐसा था तो कैसे जमता? मणि भाई जानते नहीं थे बेचारे। अगर मैं कहता तो शिकायत हो जाती, और पलभर में उन्हें निकाल देते, एक ही सेकन्ड में! ऐसी है यह पूरी दुनिया! मेरे तो दस साल बहुत ही खराब निकले, भाभी के साथ।

प्रश्नकर्ता : आपको पसंदीदा चीज़ें नहीं देती थीं?

दादाश्री : हाँ, जब भी *वेढमी* होती थी तब मुझे जितना चाहिए होता था, उतना घी तो मिलता ही नहीं था। तब मुझे ठीक नहीं लगता था, मज़ा नहीं आता था। मेरा शौक पूरा नहीं होता था। इसलिए फिर रोज़ मतभेद होते रहते थे, झंझट होती रहती थी और मुझे गुस्सा आता रहता था लेकिन अगर किस्मत में यह सब सहन करना लिखा था तो करना ही था न! चारा ही नहीं था न! नसीब में लिखा हुआ क्या नहीं करते लोग? कहाँ पर लिखा हुआ करते हैं?

प्रश्नकर्ता : नसीब का लिखा हुआ करते हैं।

दादाश्री : लेकिन दो चीज़ें थी। एक तो नसीब में लिखा हुआ और फिर कलह। जब खाना खाने बैठते थे तब भाभी रोज़ खाने के समय पर ही भाई से शिकायतें करती थीं। इस तरह भाई का खाना बिगाड़ती थीं और मुझे हेडेक हो जाता था। मुझे हेडेक हो जाता था, क्योंकि मैं बड़े भाई के प्रेशर में रहता था, मैं एक अक्षर भी नहीं बोल सकता था। बेचारे भाई का खाना बिगड़ता था, अच्छे इंसान का। भाभी को इस तरह कलह करने की आदत थी!

भाभी के वश में रहने के बजाय भाग छूटो यहाँ से

उसके बाद एक दिन जब भाई नहीं थे, उस समय भाभी से बहुत ही बोला-चाली हो गई। उससे मुझे मन में बहुत बुरा लगा। तब मुझे ऐसा लगा कि, 'मैं तो ऐसा हूँ कि भगवान को भी गालियाँ दूँ। मेरा गुनाह हो तो बता दो, लेकिन यह सब किसलिए? किसलिए परवश रहना है हमें?' मुझे मन में ऐसा हुआ कि 'अरे! इन भाभी से दबकर रहने के बजाय तो हम स्वतंत्र रहकर खाएँ तो अच्छा, फिर चाहे कुछ भी करें'।

इसलिए फिर मैंने उस दिन तय किया कि, आज तो चलो, अब यहाँ से चले जाना है। अब यहाँ पर नहीं रहना है हमें। हमेशा के लिए अब अलग बिज़नेस कर लेना है। इन भाभी के साथ नहीं रह सकते। भाग चलो यहाँ से। अब ज़रा ज़्यादा ही हो गया है।

एक भी पैसा साथ में नहीं रखा ऐसी मॉरेलिटी

फिर भाई के साथ खाना खाने बैठा। भाई खाना खा रहे थे और मैंने जल्दी खाना खत्म कर लिया। जल्दी खाना खाकर ग्यारह बजे मेरा कोट पहना, उन दिनों मेरी उम्र तेईस साल की थी, लेकिन लंबा कोट पहनता था। मूल रूप से कॉन्ट्रैक्ट का काम था इसलिए सेठपन तो था न, तो बाहर सेठपन तो माना जाएगा न! इसलिए लंबा कोट पहनता था।

बिज़नेस कॉन्ट्रैक्ट का था और कॉन्ट्रैक्ट के काम पर जाता था। इसलिए हाथ में पच्चीस-पचास रुपए तो रहते थे। यों फिर रौब भी इतना था! इसलिए कोट में जो बिज़नेस के पैसे पड़े हुए थे न, पच्चीस तीस रुपए वे सब नोट निकालकर छुट्टे पैसे वगैरह सब जो कुछ भी था, भाई की जेब में रख दिए। मैंने अपनी जेब में एक भी पैसा नहीं रखा।

क्योंकि जब तक बड़े भाई के तहत हूँ, तो ये पैसे उन्हीं के कहे जाएँगे। पैसे मेरे कहलाएँगे ही नहीं। मॉरेलिटी उन दिनों भी थी। देखो न, जेब में जो पैसे थे, वे रखकर गए हम। उन्हें मन में ऐसा नहीं लगना चाहिए कि, 'बिज़नेस के पैसे ले गया'। वे पीछे से आरोप न लगाएँ। उनके मन में ऐसा लगना चाहिए कि 'कुछ भी नहीं लिया। कुछ भी लिए बगैर गया है!' तो इससे उन्हें हमारी सिन्सियरिटी दिखेगी।

बड़े भाई की जेब में पैसे रखकर, ग्यारह बजे कोट पहनकर वहाँ से निकल गया और फिर रौब से स्टेशन की ओर चला। घोड़ा गाड़ी वाला स्टेशन का एक आना लेता था लेकिन एक आना लाऊँ कहाँ से? मेरी जेब में पैसे ही नहीं थे। क्या करता? तब चलते-चलते बड़ौदा के स्टेशन पर पहुँच गया। गाड़ी चलने में पंद्रह मिनट की देरी थी। गाड़ी अहमदाबाद जा रही थी।

माँगना नहीं आया तो झूठ बोलकर लिए पैसे

अब वहाँ स्टेशन पर गया, तो जयंती भाई करके एक परिचित मित्र मिल गया। उसने कहा, 'क्यों, कहाँ जा रहा है? भादरण जाना है?' मैंने कहा, 'नहीं भाई, मुझे कहीं और जाना है। मुझे अहमदाबाद जाना है। न जाने जेब बदल गई है या क्या, कोट नहीं बदला लेकिन पैसे उस जेब में रह गए'। तो उन्होंने पूछा, 'कितने रुपए चाहिए? पाँच रुपए ले जाओ'। तब मैंने कहा, 'नहीं, पाँच रुपए नहीं। तेरे पास एकाध रुपया हो तो दे। मुझे उधार चाहिए'। उससे एक रुपया उधार लिया'। दोस्त था इसलिए उससे एक रुपया उधार लिया, वर्ना नहीं माँगते। माँगना नहीं आता था। वह भी ज़रा झिड़ककर ले रहे हों, उस तरह से नहीं कि 'मुझे रुपया दो, ऐसा नहीं। 'एकाध रुपया हो तो दे दो' ऐसा कहा तो उसने रुपया दिया।

यों तो मैं किसी से नहीं लेता, लेने की आदत ही नहीं थी। हाथ फैलाना और मरना एक जैसा लगता था। निरा झूठ बोला लेकिन सच बोलकर तो माँग ही नहीं सकता था। हम क्षत्रिय लोग हैं, हमसे माँग नहीं पाते। किसी से माँगना हो फिर भी माँग नहीं पाते। माँगना ही नहीं आता। मैंने अगर आपको पैसे उधार दिए हों, फिर भी मुझे कभी वापस माँगना नहीं आता। फिर भले ही मैं बहुत परेशानी में रहूँ। तो इस प्रकार की आदत वाला इंसान हूँ मैं।

लेकिन मेरी स्थिति ऐसी हो गई थी। पूरी ज़िंदगी में, इतनी लाइफ में, मुझे उस दिन मन में ऐसा लगा था, 'किसी से एक रुपया माँगना पड़ा? यह भी कोई तरीका है?' वर्ना मैंने तय किया था कि 'ये हाथ फैलाने के लिए नहीं हैं। दिए ज़रूर है, लेकिन ये हाथ फैलाने के लिए नहीं हैं। देते समय भी अहंकार से नहीं देना है। उसका हाथ भी फैलाने के लिए नहीं है, लेकिन वह परेशानी नहीं झेल सकता और मैं झेल सकता हूँ'।

ज्ञान के बाद नहीं रहा वह अहंकार

हालांकि ये सारी बातें ज्ञान होने से पहले की हैं। उसके बाद तो ज्ञानी बन गया। अब कोई आपत्ति नहीं है। भीख माँगने को रहा ही नहीं न! अभी तो अगर कोई मुझे हाथ फैलाने को कहे तो, मैं यहाँ पर भिक्षा में भोजन माँगने भी जा सकता हूँ। कल अगर आप कहो कि 'दादा आप भिक्षा लेकर आओ' तो मैं भिक्षा ले आऊँगा क्योंकि अभी तो मुझे ऐसा कुछ है ही नहीं न! अभी तो मैं वहाँ जाकर कहूँगा कि 'बहन, एक रोटी और इतने चावल दे दीजिए'। हर जगह पर जाकर पूछ आऊँगा, मुझे तो कोई जुदाई नहीं है न! चाहे कहीं भी जाऊँ, कोई भी बहन खुश हो जाएँगी। वे तो बल्कि मुझे देखकर खुश हो जाएँगी। 'दादा, फिर से आएँ तो अच्छा'।

ज़रूरत लायक ही पैसे लिए

अब उन भाई ने रुपया निकालकर दिया और मुझसे कहा, 'और

दूँ?' मैंने कहा, 'नहीं, नहीं'। मुझे पता था कि यहाँ से अहमदाबाद की लोकल की टिकट पंद्रह आने हैं। लोकल की ही न, फास्ट-वास्ट की नहीं। कम से कम चार्ज लोकल का था। तो एक रुपया तो है, हमें और क्या चाहिए? वहाँ जब स्टेशन पर उतरेंगे तब उस समय तो उजाला होगा, उजाले में ही जमनादास के यहाँ चला जाऊँगा।

प्रश्नकर्ता : जमनादास.... ?

दादाश्री : हाँ, मेरे दोस्त जमनादास के यहाँ जाना तय किया था। वहाँ पर एक दोस्त रहता था। और भी बहुत जान-पहचान थी लेकिन यह दोस्त तो खास तौर पर चिट्ठियाँ लिखता रहता था कि 'एक बार आप आइए, आइए,' लेकिन मेरे पास ऐसा टाइम नहीं था क्योंकि कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था। यह तो भाग आया था इसलिए उनका नंबर आया।

हेल्प की थी मित्र की, तो वे बहुत उपकार मानते थे

प्रश्नकर्ता : उस मित्र को आप पर बहुत प्रेम था?

दादाश्री : ऐसा है न, जमनादास का मेरे प्रति इतना भाव क्यों था? क्योंकि मैंने उसकी हेल्प की थी। उसे जब दुकान लगानी थी तब। अब वह हेल्प भी कितनी? उसके फादर उसे अहमदाबाद जाने का किराया नहीं दे रहे थे, तो वह मैंने दे दिया था। उसे अहमदाबाद आने के लिए उसके पिता जी ने चार आने भी नहीं दिए थे। उसके पास किराया नहीं था, तो उस मित्र ने मुझसे कहा कि 'मुझे अहमदाबाद जाना है और फादर चार आने भी नहीं दे रहे हैं। किराया वगैरह कुछ भी नहीं है'। तब मैंने कहा, 'मैं तुझे पाँच रुपए देता हूँ'। उन दिनों के पाँच यानी पाँच सौ के समान थे। 'पाँच रुपए तो बहुत हैं। फिर तो मेरा काम हो जाएगा' उसने कहा।

मैंने उसे दिए थे और कहा कि 'तू जा, तू अपनी तरह से व्यापार कर'। मेरे पास पैसे-वैसे कुछ ज़्यादा नहीं होते थे लेकिन इस तरह से किराया वगैरह के पैसे दे देता था तब। यों वह पाँच रुपए लेकर आया था। इसलिए वह मित्र फिर बहुत उपकार मानता था। इसी बात से कि 'आपने मुझे पैसे

दिए तो मैं अहमदाबाद आ सका' ऐसा कहता था। वह मुझे बहुत मानता था।

किसी के यहाँ जाने की इच्छा नहीं थी, इसलिए एड्रेस ही नहीं रखता था

वह मुझे चिट्ठियाँ लिखता रहता था, 'यहाँ आइए, यहाँ आइए, यहाँ आइए'। तब मैंने सोचा, 'चलो न वहाँ जाते हैं'। लेकिन मैं शुरू से ही किसी का एड्रेस-वेड्रेस नहीं लेता था। आज भी नहीं लेता हूँ क्योंकि मुझे जाने की इच्छा ही नहीं है किसी के यहाँ। इसलिए किसी का कोई एड्रेस नहीं रखता था, चाहे मित्र हों या कोई और। वे मेरा एड्रेस लिख लेते थे लेकिन मैं किसी का नोट ही नहीं करता था न! अभी तक नोट नहीं किया है किसी का भी। वहाँ जाकर किसी से पूछना पड़े कि वे भाई कहाँ रहते हैं, तो फिर क्या होगा?

फिर मन में इतना गुमान था कि, 'मुझे तेरे एड्रेस का क्या करना है? मुझे जिस समय ज़रूरत होगी तब मिल जाएगा। मुझे भला वहाँ कहाँ जाना है? और अगर जाना होगा तो वह सामने से लेने आएगा'। इसलिए उस गुमान में किसी का भी पता (एड्रेस) नहीं लिखा था। ज़िंदगी में किसी का भी एड्रेस मैंने नहीं लिखा। तो उस मित्र का भी एड्रेस नहीं लिया था। जब जाएँगे तब मिल जाएगा।

अब उस दिन मैं मुश्किल में पड़ गया। यह तो फँसाव हो गया फिर भी मन में ऐसा तय किया कि दिन की गाड़ी है न, तो कोई हर्ज नहीं है। दोपहर की ग्यारह बजे की गाड़ी है, यह तो चार घंटे में पहुँच जाएगी इसलिए फिर दिन के उजाले में ढूँढ लेंगे, पहुँच जाएँगे *'ढाल की पोल'* (अहमदाबाद का एक मुहल्ला)। वहाँ से ग्यारह बजे की गाड़ी से निकला ताकि दिन में पहुँच जाएँ, तो घूम-फिरकर उसे ढूँढ निकालेंगे। यदि पास में पैसे होते तो घोड़ा गाड़ी वाले से भी कह सकते थे कि 'भाई उस मुहल्ले में ले जा'। सिर्फ मुहल्ले का नाम ही जानता था।

टिकट का चार्ज बढ़ गया इसलिए फँस गया

फिर मैं एक रुपया लेकर अहमदाबाद की टिकट लेने गया। उन

दिनों ऐसी क्यू (कतारें) नहीं होती थी, जब जाते तब खिड़की खुली ही मिलती थी और कोई लेने वाला भी नहीं होता था। क्यू वगैरह तो बाद में लगने लगीं। तब मेरी उम्र इक्कीस-बाईस साल थी, तो कितने साल पहले की बात है यह? बावन साल पहले की बात है न...

प्रश्नकर्ता : हाँ, 1930 की।

दादाश्री : बोलो, अब बावन साल पहले हिन्दुस्तान कितना सुंदर रहा होगा!

मैं टिकट लेने गया बड़ौदा से अहमदाबाद की लेकिन हुआ कुछ विचित्र। अब स्थिति बदल गई। टिकट मास्टर जी ने कहा कि 'भाई, एक रुपए नहीं चलेगा, एक आना और चाहिए। चार्ज बढ़ गया है, सरकार ने किराया बढ़ा दिया है। पंद्रह आने था उसके बजाय अब एक रुपया, एक आना कर दिया है'। अरे! यह क्या फज़ीता? मैंने समझा कि एक आना बचेगा, तो रास्ते में उससे चाय-पानी वगैरह पीएँगे तो बहुत हो जाएगा अपने लिए।

अब एक आना कहाँ से लाते? मैंने कहा, 'रुको, मैं छुट्टे करवाकर लाता हूँ'। अब अगर दूसरा एक आना और होता तब देता न? फिर दूसरा विचार आया कि 'अगर एक आना लाए तो टिकट तो मिल जाएगी लेकिन फिर भाई साहब को चिट्ठी कैसे लिखेंगे?' उन दिनों दो पैसे का आता था पोस्टकार्ड। मैंने कहा, 'कहाँ से लाऊँ अब?'

अक्ल चलाकर निकाला रास्ता

अब ऐसी स्थिति आ गई थी। अब एक आना कहाँ से लाते? अब किससे माँगते? और कोई परिचित दिखाई नहीं दिया। वे भाई तो चले गए थे, जो ज़्यादा पैसे दे रहे थे वे। अब क्या हो सकता था? अब अहमदाबाद जाना है और यहाँ पर तो रात को रुक नहीं सकते थे, तो, 'आज की गाड़ी में ही जाना है'। फिर दूसरी एक गाड़ी थी लेकिन वहाँ पहुँचने में रात हो जाती। अहमदाबाद पहुँचने में रात हो जाती तो फिर दोस्त के वहाँ कैसे जाता? पहुँचता कैसे? फिर एक बात सूझी।

इसलिए फिर अक्ल चलाई। अक्ल अच्छी थी, तो अक्ल से कहा, 'तू क्या कहती है?' तो उसने कहा, 'ऐसा करो न, टिकट के बिना बैठ जाओ यहाँ से और वासद का स्टेशन मास्टर अपनी जान-पहचान वाला है, वहाँ उतरकर वहाँ से टिकट ले लेना तो दो आने बच जाएँगे'। तो अंदर ऐसी बात सूझी कि 'भाई, यों ही गाड़ी में बैठ जाओ न'। फिर मैंने कहा, 'रहने दो, हमें टिकट ही नहीं लेनी है। यों ही बैठ जाओ वासद से टिकट ले लेंगे। दो-तीन आने का इतना रास्ता तो कट जाएगा न!'

बिना टिकट के, खुदाबक्ष की तरह

अत: वहाँ फिर हमने तय किया कि 'आज तो रेलवे की चोरी करो'। क्योंकि अब मेरे पास एक आना भी नहीं मिल सकता था और गाड़ी में जा नहीं सकते थे, 'उसके बजाय गाड़ी में बैठ जाओ न, जो होगा देखा जाएगा'। तो इस तरह अक्ल का उपयोग किया, तो बिना टिकट के खुदाबक्ष की तरह बैठ गए थे गाड़ी में।

प्रश्नकर्ता : फिर आप वासद तक बिना टिकट आ गए?

दादाश्री : हाँ! बिना टिकट आ गए, 'खुदाबक्ष'! वह खुदाबक्ष नाम भी किसी ने नहीं रखा था क्योंकि उस समय नाम रखने वाले को भी अक्ल नहीं थी कि इसे क्या कहते हैं? जो बिना टिकट के जाते हैं उन्हें क्या कहते हैं? उनका नाम रखने वाला भी कोई नहीं था। कोई अक्ल वाला होता तो नाम रखता न? फिर जब बहुत बढ़ गए तो उसे 'खुदाबक्ष' नाम दे दिया। खुदा द्वारा बक्षे हुए!'

उन दिनों टिकट नहीं लेनी होती थी तो टॉयलेट में बैठे रहते थे। ठेठ मुंबई तक जाते थे तब भी टॉयलेट में, बाहर ही नहीं निकलते थे। एक बार तो पाँच रुपए के लिए रुके रहे थे। पाँच रुपए कहाँ से लाते? पाँच रुपए तो बहुत बड़ी चीज़ थी। बेचारे स्टेशन मास्टर जी के महीने की तनख्वाह ही सात रुपए थी।

टिकट की चोरी करने से बचे दो आने

उसके बाद वहाँ से मैं दो-तीन स्टेशनों तक बिना टिकट के बैठा।

फिर वासद स्टेशन पर उतरा, दो आने बचाकर। वासद स्टेशन के स्टेशन मास्टर जी परिचित थे इसलिए कोई परेशानी नहीं थी।

उन स्टेशन मास्टर जी ने कहा, 'अभी कहाँ से आए?' मैंने कहा, 'घर से आया'। मैंने कहा, 'मुझे अहमदाबाद की टिकट दीजिए'। तो वहाँ पर एक रुपए दिया, तो मुझे टिकट दे दी। दो-एक आने बचे, वह जो चोरी की थी न इसलिए। वहाँ पर एक रुपए में दो आने कम लिए। इसलिए मेरे पास दो आने बच गए।

वासद में खाए पकौड़े और पी चाय

फिर वासद में एक जगह एक परिचित पकौड़े वाला था। वह होटल वाला था वहाँ। मुझे पकौड़े खाने का शौक था। खाना खाकर निकला था लेकिन अब दो-ढाई बज चुके थे इसलिए फिर भूख तो लगती ही न! तो वहाँ पर जाकर फिर दोपहर को एक आने के पकौड़े खा आया, शौक था, इसलिए। जब खा लिया तब जाकर संतोष हुआ और फिर दो-एक पैसे की चाय वगैरह पी। उन दिनों आधे आने (तीन पैसे) में देते थे।

उसके बाद बाहर निकलकर दो पैसे का एक पोस्टकार्ड लिया, तो दो पैसे उसमें खर्च हो गए।

इज़्ज़त न जाए इसलिए भाई को लिखा पोस्टकार्ड

पोस्टकार्ड लिखा बड़े भाई को। मैंने सोचा, 'वर्ना आबरू जाएगी'। कल सुबह कहेंगे कि, 'इतना बड़ा बीस-बाईस साल का लड़का भाग गया'। तो अपनी क्या इज़्ज़त रहती फिर? मैं तो बड़ा कॉन्ट्रैक्टर कहा जाता था न! मेरा कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था और अगर 'भाग गया' कहते, तो मेरी क्या इज़्ज़त रहती? इसलिए चिट्ठी तो लिखनी चाहिए कि 'मैं इस जगह पर जा रहा हूँ,' वर्ना गाँव में ढूँढ मच जाएगी कि 'भाई, तालाब में गिर गया, मर गया या क्या हो गया,' ऐसी झंझट हो सकती थी न? उसी दिन चिट्ठी लिख लेनी चाहिए ताकि फिर ढूँढने न लगें।

फिर घर पर ब्रदर को लिखा कि 'मैं रूठा नहीं हूँ, भाग नहीं गया हूँ और चला भी नहीं गया हूँ, और फिर मुझे आपकी तरफ से कोई दु:ख भी नहीं है लेकिन मेरी ऐसी इच्छा है या फिर शायद मेरा प्रारब्ध बदला है। मैं अब अहमदाबाद जाकर कुछ करूँगा। मैं भाग नहीं रहा हूँ, लेकिन मेरी इच्छा है कि अब मुझे अहमदाबाद में स्टेडी (स्थिर) होना है, मुझे कोई बिज़नेस करना है। अत: मेरी चिंता मत करना, मुझे ढूँढना भी मत'। अहमदाबाद जा रहा हूँ इतना लिखा, किसके यहाँ जा रहा हूँ ऐसा नहीं लिखा। 'मैं अहमदाबाद में हूँ, इसलिए आप मुझे खोजना मत' ऐसी चिट्ठी लिख दी।

प्रश्नकर्ता : तो उस समय गुस्सा नहीं था। आपने ही पोस्टकार्ड लिखा न?

दादाश्री : हाँ, वहाँ पर पोस्टकार्ड लिखा।

प्रश्नकर्ता : यह पूरा सूझ वाला काम है।

दादाश्री : पोस्टकार्ड लिख दिया तो अगले दिन वहाँ सभी को शांति हो गई, वर्ना घबराहट हो जाती सभी को, मूर्ख कहलाते हम। वह तो ऐसा था कि भाई का ओजस (ताप) मुझसे सहन नहीं होता था इसलिए उनसे आमने-सामने नहीं कह सका। वर्ना उन्हें कहकर निकलता लेकिन उनके सामने कहने में तो घबरा जाता। उनका ओजस ही ऐसा था। इसलिए बाद में चिट्ठी लिखनी पड़ी। फिर बैठ गया गाड़ी में।

पुण्यशाली इसलिए चाय के समय पर चाय मिल गई

अब आणंद स्टेशन पर उतरा तो एक परिचित मिल गए। मुझसे कहा, 'कहाँ जाने की तैयारी है?' मैंने कहा, 'अहमदाबाद की'। तो उन्होंने कहा, 'आइए, पधारिए। बिना चाय-वाय पीए नहीं जा सकते आप। चाय पीकर जाओ'। मैंने कहा, 'चलो, चलते हैं। चाय-वाय पीते हैं। ज़रूरत थी और वैद्य ने कहा'।

आणंद स्टेशन पर पाँच-सात परिचित मित्र मिल गए। सभी चाय

पी रहे थे। फ्रेन्ड सर्कल था न, तो सब के साथ चाय पी। यों आम तौर पर ऐसी आदत नहीं थी कि बहुत लोगों के साथ मिलकर चाय पीएँ, लेकिन उस दिन तो खुश होकर चाय पी। वहाँ चाय पीने के बाद उन्होंने कहा, 'थोड़ा नाश्ता वगैरह भी करो'। तो मैंने कहा, 'नहीं, नाश्ता तो अभी नहीं हो सकेगा। मुझे तो यह परेशानी है कि गाड़ी रात को पहुँचाएगी'। क्योंकि वह गाड़ी तो चली गई थी इसलिए दूसरी गाड़ी में बैठना पड़ा।

दोपहर की चाय की ज़रूरत थी तो वह मिल गई, चाय के टाइम पर चाय मिल गई। मेरा क्या कहना है? पुण्यशाली हैं न! हर कहीं पर चाय-नाश्ता मिल जाता है!

फिर वापस बैठ गए गाड़ी में, तो ठेठ अँधेरा होने तक शाम को छः-सात बजे गाड़ी वहाँ पहुँची। क्योंकि पहली वाली गाड़ी से उतर चुके थे, फिर दूसरी गाड़ी में बैठना पड़ा इसलिए रात को गाड़ी से उतरना हुआ। मैं रात को अहमदाबाद पहुँचा।

पैसे नहीं, एड्रेस नहीं, मित्र के यहाँ पहुँचूँ कैसे?

रात को वहाँ अहमदाबाद स्टेशन पर उतरा। उन दिनों स्टेशन ऐसे थे कि आसपास खास बस्ती नहीं होती थी कोई। अब मकान ढूँढना था, एड्रेस था नहीं। कान में थोड़ा बहरापन था।

प्रश्नकर्ता : दादा, उन दिनों भी बहरे थे, बाईस साल की उम्र में?

दादाश्री : थोड़ा बहरापन तो था ही।

प्रश्नकर्ता : शुरू से ही?

दादाश्री : ज़रा बहरे तो थे इसलिए मुझे हुआ कि अगर वह कहेगा कि 'इस तरफ है। अभी कहाँ से आ रहे हैं?' तो फिर ऐसा होगा न कि मैं समझ नहीं पाऊँगा? इसलिए फिर ऐसा हुआ कि घोड़ा गाड़ी में बैठ जाऊँ, उन दिनों घोड़ा गाड़ी चलती थी। उन दिनों रिक्शा वगैरह कुछ भी नहीं था, सिर्फ घोड़ा गाड़ियाँ ही। गाड़ियाँ नहीं, बहुत लोग भी नहीं थे।

अब उसके घर जाने के लिए घोड़ा गाड़ी में कुछ पैसे खर्च करने पड़ते और उस समय तो पैसे नहीं थे, तो घोड़ा गाड़ी में कैसे जाता? पैसे नहीं थे, अब क्या करता? किराए के पैसे नहीं थे।

इतने में तो अँधेरा हो गया। मैं सोच में पड़ गया कि 'दो आने भी नहीं हैं घोड़ा गाड़ी में जाने के लिए,' वर्ना घोड़ा गाड़ी वाले से कहता कि, 'भाई, मुझे ढाल की पोल पर उतार', तो वह बेचारा वहाँ उतार देता।

मुझे इतना ही याद था कि ढाल की पोल (मुहल्ला) में है लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था कि वहाँ किस तरह जाना है। सिर्फ पोल का नाम ही याद था, और कुछ भी पता नहीं था मुझे। पोल में पहुँचने के बाद, मैं तुरंत ढूँढ निकालता लेकिन पैसे होते तो घोड़ा गाड़ी में बैठ पाता न?

अब एड्रेस नहीं था, जेब में पैसे नहीं थे, अब सोऊँ कहाँ? रहूँ कहाँ? इसलिए मकान ढूँढे बिना कोई चारा ही नहीं था, घर का पता नहीं था फिर भी। उस दिन पता चला कि 'अगर यह पता नोट कर लिया होता तो अच्छा था लेकिन पता ही नोट नहीं किया था न! ज़िंदगी में पता नोट करने की आदत ही नहीं थी, प्रकृति ही नहीं थी ऐसी।

मुझे कभी भी ज़रूरत ही नहीं पड़ी थी किसी के यहाँ जाने की। और अगर ज़रूरत होती तो पैसे लेकर निकलता तो घोड़ा गाड़ी, गाड़ी वगैरह सब साधन थे। फिर मुझे क्या परेशानी? यानी कि पता नहीं लिखता था, और उसी दिन ऐसा हो गया, बिना पते के कैसे पहुँचता? घोड़ा गाड़ी भी कैसे करता? पैसे नहीं थे न! इसलिए फिर मैं पैदल चलने लगा। कोई भी साथ में नहीं था, कोई भी नहीं।

बिना पते के होशियारी से ढूँढ निकाला घर

फिर सोचते-सोचते हुआ ऐसा कि दरवाज़ों (अहमदाबाद शहर के परकोटे के दरवाज़े) के भी नाम नहीं जानता था। क्योंकि ऐसी कुछ पड़ी ही नहीं थी इस दरवाज़े पर यह है या फलाना है। ऐसे, जैसे कि कल यह काम ही नहीं आएगा और जैसे निर्भय स्थान पर नहीं घूम रहे

हों, ऐसा सब था। किसी का भी नंबर-वंबर वगैरह नहीं रखता था। तब फिर इस तरफ चला तो एक दरवाज़ा ढूँढकर, उस दरवाज़े में घुस गया। फिर नाम जान लिया दरवाज़े का। फिर चलते-चलते रास्ते में कुछ भी नहीं मिला। फिर हुआ कि अब यह घर कहाँ ढूँढूँ और इस सर्दी में यह सब कैसे हो पाएगा? इस तरह तो पूरी रात घूमता रहूँगा फिर भी नहीं मिलेगा। हम अहमदाबाद के गाइड नहीं हैं। अहमदाबाद शहर में घूमा नहीं था। अहमदाबाद के रास्ते नहीं जानता था। शायद दो-चार बार ही गया था, बहुत बार नहीं गया था।

फिर बुद्धि से सोचा कि यह मित्र कोयले का व्यापारी है इसलिए कुछ ऐसा रास्ता ढूँढ निकालें कि वे कहाँ मिलेंगे! हाँ, उन दिनों की अक्ल की बात बता रहा हूँ कि मेरी अक्ल क्या काम कर रही थी उस दिन। अंदर ब्रिलियन्सी तो थी न! तो टैली कर लेता था कि भले ही इसका एड्रेस नहीं है, लेकिन वह इंसान कोयले का व्यापार करता है तो इसे कौन पहचानता होगा? तो अंदर अक्ल ए खुदा ने बताया। कहा कि, 'कोयले का व्यापार करता है तो होटल वाले उसे पहचानते होंगे। सभी होटल वाले उसके ग्राहक होंगे'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, कोयले खरीदने वाले।

दादाश्री : इसलिए हमने होटल वाले से पूछा। कोई होटल वाला जानकार मिल आएगा। कोई होटल वाला तो उसका परिचित निकलेगा। हम होटल वाले से पूछते-पूछते जाएँगे तो कुछ हो पाएगा।

तो रास्ते में जाते-जाते होटल वाले से पूछने लगे कि 'भाई, जमनादास पटेल करके कोयले के व्यापारी हैं, क्या आप उन्हें पहचानते हैं?' ऐसा करते-करते आठ दस होटलों पर पूछा। सात-आठ लोगों ने कहा कि 'नहीं, भाई हम नहीं पहचानते'। इस तरह एक-एक होटल पर पूछते-पूछते गए तब एक होटल वाले ने कहा कि 'हाँ, पहचानते हैं। आप कहो तो आपको वहाँ छोड़ने आएँ। जमनादास करके हैं, ढाल की पोल में'। मैंने कहा, 'ढाल की पोल कहाँ है?' तो कहा, 'ढाल की पोल यहाँ नज़दीक ही है। अब यहाँ से होकर इस रास्ते पर से सीधे चले

जाइए आप, उस तरफ से'। मुझे रास्ता दिखा दिया। एड्रेस वगैरह सब लिखवा लिया और मैं वहाँ पहुँच गया।

प्रश्नकर्ता : यों तो साधारण वाक्य है यह कि घर छोड़कर गए, और उन भाई से एड्रेस नहीं लिया था अहमदाबाद का। आप कहते हैं कि 'एड्रेस तो मैं किसी का नहीं लेता था, मुझे किसी की ज़रूरत ही नहीं थी'।

दादाश्री : मुझे ज़रूरत नहीं थी, एड्रेस ही नहीं लेता था न! किसी का भी एड्रेस नहीं लिखता था। कोई अगर लिखकर देता था तो वह भी खो जाता था मेरे पास से।

प्रश्नकर्ता : और अगर ज़रूरत होती थी, अब ज़रूरत पड़ी उन भाई की तो किस तरह वहाँ पहुँचना है, उसकी सूझ भी आ गई।

दादाश्री : हाँ, उसकी सूझ उत्पन्न हो गई।

प्रश्नकर्ता : उस होटल वाले से पूछा कि 'भाई, यह कोयले वाला कहाँ रहता है?'

दादाश्री : हाँ, कोयले का बिज़नेस करता था न, इसलिए मैंने हिसाब लगाया। सूझ पड़ी कि 'यह किसी होटल वाले से पूछो'। फिर उन्होंने बताया। इस तरह ऐसी सूझ पड़ती है।

घूमता-फिरता था, बातें करता था लेकिन बोधकला वाला जीवन था। इस बोधकला की वजह से ढाल की पोल मिल गई, वर्ना क्या घर-घर पूछने जा सकते हैं कि हमारे मित्र कोयले के व्यापारी हैं उन्हें पहचानते हो?

धन्य भाग्य हमारे कि आप हमारे घर आए

ढाल की पोल पहुँचा और उनके घर गया। नीचे से आवाज़ लगाई कि 'जमनादास, जमनादास, जमनादास है क्या?' तो जमनादास तो सुनकर बहुत खुश हो गए कि 'ओहो! मेरे यहाँ आए हैं! वह तो इतना उत्साहित था, बहुत ही खुश हो गया। क्योंकि मैं जाता नहीं था न!

उसने कल्पना भी नहीं की होगी कि आएँगे! उसने ऐसी आशा ही नहीं रखी होगी न कभी!

वह भागते-भागते नीचे आया, दोनों जने नीचे आए। 'धन भाग्य हमारे कि आप हमारे यहाँ आए! हमारे आनंद की कोई सीमा नहीं है'। वह तो एकदम ही द्रवित हो गया उस दिन, बहुत ही प्रेम जताया उस दिन। अब उन्होंने ऐसा समझा कि खुशी से आए होंगे! मैं कैसे आया था, वह मैं ही जानता था। मैंने कहा, 'अच्छा हुआ, लेकिन भाई पहले खाना निकाल। खाना खाने के बाद बातें करेंगे'।

फिर, खाना तैयार रहा होगा तो उन्होंने परोस दिया। फिर खाना खाकर, फिर जब आराम से सोने गए तब मैंने बताया, 'मैं यहाँ रहने आया हूँ। मैं फँसकर यहाँ आया हूँ, यों ही नहीं आया हूँ। मैं भागकर आ गया हूँ'। तब कहा, 'लेकिन ऐसा क्यों कर रहे हो?' मैंने कहा, 'मेरी भाभी के साथ नहीं बनती है। पूर्व जन्म का हिसाब अलग तरह का है'।

सुख में से ढूँढा दु:ख, संडास में भी क्यू

उसके बाद फिर सुबह-सुबह संडास के सामने दस-पंद्रह लोगों की लाइन लगी थी। मैंने कहा, 'अरे! भला हो इस शहर का! यह मैंने क्या देखा? यह कहाँ से मिला मुझे?' लेकिन जाऊँ कहाँ? घर से भागकर आए थे।

अब भाई! इसमें भी दु:ख है आपको! बाकी सब जगह पर दु:ख हो तो ठीक है, यहाँ भी दु:ख है आपको? जिसने जुलाब लिया हो उस बेचारे का क्या होगा? हं? भले ही इतने सारे सुख हैं इन लोगों को, लेकिन उस सुख में ही मुझे दु:ख महसूस हुआ। देखो यह खोज़ की है इन लोगों ने, सुख में भी दु:ख ढूँढ निकाला! किसमें दु:ख ढूँढ निकाला?

प्रश्नकर्ता : सुख में दु:ख ढूँढ निकाला।

दादाश्री : नहीं, सुख की वजह से दु:ख मिला। बेहिसाब सुख है यहाँ अभी। ये संडास बंद कर दें और कहें कि जो जल्दी उठकर साढ़े

पाँच बजे आएगा, उसी को जाने की छूट है, तो कितने लोग जल्दी उठ कर जाएँगे?

प्रश्नकर्ता : सभी जाएँगे।

दादाश्री : हं, आपको समझ में आया न? सरकार ने उस तरह से बंद नहीं किया है, उस वजह से सुख है यह।

तो मुझे क्यू में जाकर खड़ा रहना पड़ा। उन्होंने मुझे कहा, 'थोड़ी देर, पाँच मिनट खड़ा रहना पड़ेगा'। मैंने कहा, 'नहीं, एक मिनट भी नहीं, मैं बाद में वापस आऊँगा'। इस समय मुझे संडास नहीं जाना है इससे तो बेहतर है यों ही बैठा रहूँगा! हमें इस तरह संडास नहीं जाना है। हाँ! अगर कब्ज़ हो जाएगा तो परसो चूरन ले लूँगा। यह नहीं पुसाएगा हमें!' यह कैसे पुसाता? वहाँ खड़े रहकर किस चीज़ की राह देख रह हो? अरे! घनचक्कर क्या इसकी भी कीमत है? संडास की कीमत इतनी बढ़ गई! तो भाई यहाँ पर भी ऐसी भीड़-भाड़! अरे, लॉज में कीमत बढ़ गई हो तो ठीक है, यहाँ भी कीमत बढ़ गई? अरे! मुझे तो शर्म आ रही थी!

क्यू में तो मैं खाना खाने के लिए भी खड़ा न रहूँ। उसके बजाय तो यों ही, 'अरे! तेरी रोटी तेरे घर पर ही रहने दे। थोड़े चने खा लूँगा। अगर तू मुझे मोक्ष दे रहा है तो चल खड़ा रहूँगा, रात दिन खड़ा रहूँगा क्यू में!' इसमें भी क्यू!

प्रश्नकर्ता : सोनापुर (शमशान) में भी क्यू लगती है।

दादाश्री : मरते समय फिर से क्यू? कितनी निम्नता है यह! मैंने तो अहमदाबाद में ऐसा संडास देखा, तो चिढ़ गया कि ऐसा जंगलीपन!

आगे लल्लू भाई खड़े हों, पीछे नगीन सेठ खड़े हों। उनके पीछे नगीन सेठ की सेठानी खड़ी हों। सेठानी-सेठ, आप दोनों संडास के लिए आए हो? और क्यू में खड़े हो? अरे, कैसे घनचक्कर हो? कैसी शर्मिंदगी वाली बात है, क्यू में खड़ा रहना पड़ता है! शर्मनाक लगता है!

अहमदाबाद के सब सेठ देखे हैं मैंने। जब उनके ऑफिस में बैठे

हों तब लोग ऐसे-ऐसे करते हैं (सलाम करते हैं) और वहाँ क्यू में खड़े रहते हैं डिब्बा लेकर! अरे! यह शर्मनाक नहीं कहलाएगा क्या? ऐसा तो क्या अच्छा दिखाई देता है? इसके बजाय तो अगर कब्ज़ हो जाएगा तो जुलाब के लिए फंकी ले लेंगे।

हमें तो कुदरती रूप से कभी क्यू मिली ही नहीं

यह हमें नहीं पुसाएगा। जो क्यू में खड़े रहते हैं, उन्हें तो सामान्य जनता कहते हैं। जिनका खुद का स्वमान जैसा कुछ भी नहीं है, वह तो सामान्य जनता कहलाती है! जिस तरह भेड़-बकरियों को लाइन में खड़े रखते हैं, उस तरह से ये भेड़ें खड़ी रहती हैं! हमें तो कुदरती रूप से कभी क्यू (कतार) मिली ही नहीं! क्या ऐसा शोभा देता है? क्या वहाँ पर अंदर त्रिलोक नाथ बैठा हुआ है?

आपके यहाँ पर अभी भी यह चल रहा है? पूरे मुंबई शहर की इज़्ज़त जाएगी! लेकिन बाकी सब जगह पर भी ऐसा ही है न?

प्रश्नकर्ता : सब जगह चॉल सिस्टम में ऐसा ही चलता है।

दादाश्री : देखो! अब बेचारे इंसान का स्वाभिमान कितना आहत हो रहा है। क्या इसे स्वमान कहेंगे? संडास जाने की भी स्वतंत्रता नहीं है? जब जाना हो तब जा नहीं सकते! मुझे तो बहुत तरह के विचार आ जाते हैं कि यह किस तरह का है? इतनी कीमत बढ़ गई इस चीज़ की!

जिसमें हाथ काले हों वह काम मेरा नहीं

प्रश्नकर्ता : फिर क्या हुआ?

दादाश्री : मेरे मित्र ने कहा कि, 'मेरे कोयले के व्यापार में आपको पार्टनर की तरह रखेंगे। अपने यहाँ पर कोयले की दुकान में पार्टनरशिप'। मैंने कहा, 'नहीं भाई, कोयले का व्यापार मेरा नहीं है। जिसमें हाथ काले हों वह व्यापार मेरा नहीं है। जहाँ कोयला हो वहाँ मेरा काम नहीं है। क्या मेरे हाथ कोयले जैसे हैं? मैं तो कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस वाला इंसान

हूँ। हम तो अपने कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस में ही ठीक हैं। यह बिज़नेस मुझसे नहीं हो पाएगा। तेरे साथ कुछ और बातचीत करूँगा'। इसलिए फिर उसने बंद रखा।

मैंने योजना बनाई कि कोयले की दलाली अपनी लाइन है ही नहीं। यह काम तो वही करे, मेरा काम नहीं है। यह व्यापार मुझे शोभा नहीं देगा। उन दिनों अंदर ऐसा अहंकार था कि मैं अपना व्यापार खुद ढूँढ निकालूँगा। और मुझे तो वह आता था क्योंकि मुझे शुरू से ही हर एक चीज़ चला लेने की आदत थी, लेकिन अहम् था कि 'मैं कुछ हूँ' अंदर ऐसा भान था।

कॉन्ट्रैक्ट के काम में सर्विस नहीं करनी पड़ती, इसलिए बनाई योजना

अब क्या करना चाहिए? यहाँ किसी के घर पर खाने के लिए पड़े नहीं रहना है। इसलिए फिर मैंने तय किया कि किसी कॉन्ट्रैक्टर को ढूँढ निकालो।

फिर कॉन्ट्रैक्टर को ढूँढ निकाला। मैं सुबह वहाँ जाकर एक व्यक्ति से पूछ आया। मुझे तो अपनी लाइन में जाना था। कुशलता थी व्यापार करने की लेकिन वह सेठ तो मुझसे नौकरी करवाना चाहता था। तब मैंने एक योजना बनाई।

कॉन्ट्रैक्टर से कहा, 'भाई! सर्विस तो मैं कभी भी नहीं करूँगा और वह करने नहीं आया हूँ'। सर्विस तो मैं करूँगा नहीं। पहले से नियम ही ऐसा बनाया है। किसी के वहाँ सर्विस करने के लिए जन्म नहीं लिया था इसलिए सर्विस तो नहीं करूँगा। कॉन्ट्रैक्ट के काम में होशियार था, ब्रेन अच्छा चलता था।

फ्री काम करूँगा, तब फिर वह मुझे नहीं छोड़ेगा

मैंने कहा कि 'भाई, मैं आपके यहाँ फ्री ऑफ कॉस्ट काम करूँगा। आपको जब ठीक लगे तब मुझे पार्टनरशिप देना और जब तक ठीक

नहीं लगे तब तक मत देना। आप मुझे अपना यह कॉन्ट्रैक्ट का काम सौंप दो। जो भी काम सौंपोगे, उसकी पूरी ज़िम्मेदारी मेरी। आपको नहीं आना है, आपके उस कॉन्ट्रैक्ट का सब काम मैं कर दूँगा। आप मुझे काम सौंप दो फिर अगर आपको अपना काम सही सलामत लगे और आपकी कमाई हो तो आपको मुझे जो परसन्टेज देना हो वह देना। अगर कमाई नहीं हो तो मत देना। मैं खुद के खर्च पर रहूँगा। आप दे सको तो देना और नहीं दे सको तो चलेगा लेकिन मुझे पार्टनरशिप में रहना है। आपको मुझे पार्टनरशिप में लेना पड़ेगा'।

क्योंकि मैं जानता था कि तीन महीने बाद वह क्या करेगा? वह मुझे छोड़ेगा ही नहीं। अच्छा सुपरविज़न करना आता है इसलिए वे खुश हो जाएगा। ऐसी कुशलता थी मुझ में। मैं जानता था कि हम शुरू से ही, यों ही फ्री ऑफ कॉस्ट रहेंगे, तो फिर वह अपने आप ही मुझे जाने नहीं देगा और नौकरी करने की बात ही नहीं रहेगी।

मैं आपका सर्वेन्ट नहीं बल्कि पार्टनर की तरह रहूँगा

प्रश्नकर्ता : नौकरी नहीं पुसाती इसलिए आपने उससे साफ-साफ कह दिया?

दादाश्री : हाँ, इसलिए मैंने उससे कह दिया कि, ''देखो आपके कॉन्ट्रैक्ट के बिज़नेस में 'आई विल हेल्प यू!' मैं आपके पार्टनर की तरह जीना चाहता हूँ, सर्वेन्ट की तरह नहीं। मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिए। सिर्फ मेरे खर्चे लायक जितना चाहिए, वह मैं अपने आप ही ले लूँगा। आपको देने और लेने का अधिकार नहीं है। मुझे ठीक लगेगा तो मैं लूँगा और उसमें आपको यदि अनुकूल आए तो अगले महीने के लिए आप 'हाँ' कहना। आपका किसी भी तरह का दखल नहीं रहेगा।'' क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : मैं आपकी हेल्प करूँगा और अपने आप ही पैसे ले लूँगा। आपकी दखलंदाज़ी नहीं चाहिए।

दादाश्री : तू दे और मैं लूँ तब तो मैंने भिक्षा ली, ऐसा कहा

जाएगा न? हाँ, मैं तेरा सब काम कर दूँगा, मुझे घर पर पैसे नहीं ले जाने हैं लेकिन मेरा रौब रख। रौब होना चाहिए मेरा तो, बस! और कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : दखलंदाज़ी नहीं चाहिए।

दादाश्री : नहीं और कुछ भी नहीं चाहिए, इसमें सब आ गया। वह व्यक्ति तो इतना खुश हो गया, उसे बहुत अच्छा लगा। अरे! यह तो बहुत अच्छी बात है, ऐसा कहा। उसने हाँ कह दिया, 'हर तरह से जैसा आप कहोगे वैसा, आपको तीन आने (अठारह प्रतिशत) की पार्टनरशिप दूँगा'। मैंने कहा, 'मेरे लिए बहुत हो गए तीन आने। मेरा खर्च निकल जाएगा तो बहुत हो गया। मैं पैसे इकट्ठे करने नहीं आया हूँ आपके यहाँ। मैं तो इसलिए आया हूँ क्योंकि मुझे मेरा ओहदा नहीं छोड़ना है'।

उस शर्त पर मैं वापस घर आ गया, जिस दोस्त के यहाँ रुका हुआ था उनके वहाँ। अगले ही दिन मणि भाई लेने आ गए। रहने ही नहीं दिया न! फिर बड़े भाई ने वहाँ नहीं रहने दिया, वर्ना मैं तो जमा देता, देर ही नहीं लगती।

बड़े भाई की मर्यादा रखी, वापस घर चले गए

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई आपको ढूँढकर लेने आए थे?

दादाश्री : उसके बाद बड़े भाई आकर खड़े रहे। मेरे दोस्त के यहाँ नहीं ठहरे। उनके साढ़ू रहते थे पूँजा भाई करके, यों अपने मुहल्ले के थे, उनके वहाँ जाकर रुके। फिर उनके साढ़ू और वे, दोनों ही ढूँढते-ढूँढते यहाँ आए थे गाड़ी लेकर।

बड़े भाई और वे आए थे इसलिए मुझे तो मन में ऐसा लगा कि अब तो वापस जाना पड़ेगा। आँखों से आँखें मिलीं न, तब उन्होंने मुझसे कहा, 'यह नहीं हो सकता'। उनकी आँखों में ज़रा पानी भर आया था।

प्रश्नकर्ता : आएगा ही न, दादा।

दादाश्री : मैंने कहा, 'आप क्यों आए हैं?' तो कहा, 'अरे! कहीं ऐसा करते हैं? तुझे इस तरह से आ जाना चाहिए क्या? यह तो बहुत बुरा दिखेगा'। मैंने कहा, 'मैं फिर कभी नहीं करूँगा ऐसा'।

मुझसे कहा, 'ऐसा क्यों किया? क्या यह शोभा देता है'। मैंने कहा, 'नहीं करना चाहिए, लेकिन फिर भी हो गया'। उन्होंने कहा, 'अपने में ऐसा नहीं करते'। चिट्ठी मिली इसलिए समझ गया कि अहमदाबाद जा रहा है, 'लेकिन ऐसा किसलिए? ऐसा क्यों किया तूने?' मैंने कहा, 'क्या करूँ? मुझे वहाँ ठीक नहीं लगता। मुझे अनुकूल नहीं आता'। तो कहा, 'नहीं, सबकुछ अनुकूल आएगा, क्यों नहीं आएगा?'

फिर हम वापस चले गए। बड़े भाई की शर्म रखनी पड़ती है न, बड़े भाई की मर्यादा नहीं तोड़ सकते थे। फिर जब मैं बड़े भाई के साथ चला गया तो उस कॉन्ट्रैक्टर के साथ सौदा करना बेकार गया, सौदा फेल। इतनी परेशानी हुई थी, एक ही दिन की। फिर ऐसी परेशानी कभी भी नहीं हुई। हुई होगी लेकिन बहुत कम, कोई खास परेशानी नहीं हुई।

नासमझी की झंझट, इसलिए भागने का दाग़ लगा

बड़े भाई आए इसलिए वापस जाना पड़ा। वापस आए, उसके बाद तो जैसा था वापस वैसा ही हो गया। आपको तो कहीं जाना ही नहीं पड़ा होगा न? इस तरह तो मुझे ही जाना पड़ा। मेरा वहाँ तक का अनुभव है। हर एक चीज़ का जो अनुभव होता है न, तो मेरा ध्यान उसी में रहा करता है। वह कभी भी विस्मृत नहीं होता। ये सारे अनुभव, ज्ञान होने से पहले के हैं।

ऐसे कई, अनेक प्रकार के अनुभव हुए थे। क्या-क्या नहीं हुआ होगा? ज्ञानी पुरुष पहले का कोई आश्रम (पूर्वाश्रम) भूल जाते हैं क्या? सब याद रहता है। लेकिन इतना यह सब हुआ था। इतिहास है यह सारा। इतना दाग़ लग गया। भाग जाने का दाग़ कहलाएगा न यह तो! नहीं कहलाएगा? खुद का व्यापार था, घर में कोई परेशानी नहीं। यह तो नासमझी की झंझट थी सारी! और कोई झंझट नहीं थी। सिर्फ खाना खाने

की ही झंझट। उसे क्या अच्छा कहेंगे? वह सारा तो पागलपन कहा जाएगा, उसमें मज़ा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं, लेकिन उस समय भी इतनी सूझ थी कि बेईमानी से नहीं जीना है।

दादाश्री : वह सब तो था।

प्रश्नकर्ता : किसी का भी सहन नहीं करना है, घी के प्रति राग नहीं छोड़ना है।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : उस समय घी के प्रति जो राग था उसमें कोई परिवर्तन आया?

दादाश्री : किसके प्रति?

प्रश्नकर्ता : घी कम दिया था इसलिए!

दादाश्री : नहीं, परिवर्तन आता होगा कहीं? जिनमें परिवर्तन आए वे अलग। ऐसी मान्यता बना दी थी कि घी शरीर का तेज है और ऐसा सब है, और वे सारी मान्यताएँ मान ली थीं, इसलिए चला। फिर भी घी बहुत हितकारी चीज़ नहीं है, नॉर्मेलिटी में अच्छा है। जबकि मुझे तो कटोरी में डुबोकर *वेढमी* खानी होती थी। जगत् को यह किस तरह पुसाता? हमारी भाभी तो हमारी गुरु थीं। मैं उनसे कहता हूँ कि 'आप मेरी गुरु हैं, मुझे इस मार्ग पर धकेला। इस मोह में से छुड़वाया!'

बड़े भाई ने कहा, 'अरेरे! तुझे इतनी परेशानी!'

प्रश्नकर्ता : फिर क्या भाई को पता चला कि भाभी आपको परेशान करती हैं?

दादाश्री : हाँ, एक बार उन्होंने खुद अपने आप कहा कि, 'चल आ, हम होटल में चाय पीएँगे'। तब मुझे लगा, 'ये तो कभी साथ में

नहीं बैठते और आज मुझे ऐसा कह रहे हैं!' हम दोनों भाई कभी भी होटल में एक साथ नहीं बैठे थे। मर्यादा कभी भी नहीं छोड़ी।

फिर मुझसे कहा, 'तुझे तेरी भाभी की तरफ से बहुत परेशानी है। वे तुझे बहुत दु:ख देती है'। मैंने कहा, 'अब वह बहुत याद करने जैसा नहीं है। आप मन पर मत लेना। आपको पता चला, वही काफी है! वास्तव में तो झगड़ा न हो जाए इसलिए अभी तक आपको नहीं बताया था'। फिर उनकी आँखों में पानी आ गया था। मुझसे कहा कि 'यह तो बहुत शिकारी स्त्री है'। मैंने कहा, 'तब फिर आपको पहचानना चाहिए न?' उन्होंने कहा, 'इसने तो मुझे छला है अभी तक'। मैंने कहा, 'यह माल अलग तरह का है, इसलिए ज़रा समझ लो'। उस दिन तो भाई की आँखों से आँसू बह निकले, 'अरेरे! तुझे इतना दु:ख! मैंने कहाँ इससे शादी की कि तुझे दु:ख दे रही है! मेरे भाई को इतनी परेशानी हो रही है, उसका मुझे अब पता चला'। तब मैंने कहा, 'आप मन में ऐसा कुछ भी मत रखना। वह तो, जो सिर पर आ पड़ा है, उसे भुगत लेना है। लेकिन जैसा आप मान रहे थे, यह वैसा नहीं है'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : उनके मन में इतना विश्वास तो हो गया कि इस स्त्री ने परेशान किया है।

प्रश्नकर्ता : इसी को संसार कहते हैं।

दादाश्री : तो यह बीती थी न, हम पर भी बीती थी भाभी द्वारा।

आश्वासन देने वाला ही रुलाकर दु:खी करता है

फिर तो हमारे बड़े भाई गुज़र गए। उस समय हमारी भाभी की उम्र कम थी, तब जो कोई भी आता था, वह उन्हें रुलाता था। तब मुझे ऐसा लगा कि 'ये भाभी ज़रा ज़्यादा सेन्सटिव हैं, तो ये लोग उस बेचारी को मार देंगे!' इसलिए फिर मैंने बा से कहा कि 'आप सब लोगों से ऐसा कह देना कि बहू से भाई के बारे में कोई बातचीत न करे'। अरे! यह क्या तूफान? अरे! बंदर के घाव जैसा कर रहे

हो? आपसे तो बंदर अच्छे! बंदर घाव को कुरेद-कुरेदकर बड़ा करके मार डालते हैं, वैसे ही आप इन्हें कह-कहकर परेशान कर रहे हो तो आपमें और बंदर में क्या फर्क है? लोगों को रुलाने के लिए आए हो या हँसाने के लिए? आश्वासन देने के लिए जाना है, उसके बजाय ये तो बेचारी को मार ही देते हैं! लेकिन दुनिया का नियम ऐसा है कि यदि आश्वासन देने वाले व्यक्ति को, खुद को ही दु:ख है तो वह क्या आश्वासन देगा? वह तो वही देगा न, जो उसके पास है। आज लोग दु:खी हैं न! इसलिए हमें लोगों से ऐसा कहना है कि 'कोई व्यक्ति सुखी हो, अंतर से सुखी हो तभी यहाँ पधारना, वर्ना यहाँ मत पधारना और घर बैठे आश्वासन पत्र लिख देना'। यहाँ इन भूतों का क्या करना है? ये भूत तो बल्कि यहाँ आकर इन बेचारी को रुलाएँगे।

भाभी के त्रागा को पहचानकर घबराया नहीं

प्रश्नकर्ता : बड़े भाई की डेथ के बाद भाभी के साथ कैसा रहा?

दादाश्री : हमारे भाई की डेथ होने के बाद एक बार भाभी ने *त्रागा* किया। विधवा होने के लगभग दो-तीन महीने हुए होंगे। तब बा और सभी के मन में घबराहट हो गई कि 'यह स्त्री अब जिएगी नहीं'। मैंने कहा, 'कुछ नहीं होगा। यह स्त्री तो ऐसी है कि सब को मारकर मरेगी। बेकार ही सब पर दवाब डाल रही है'। तो उन्होंने क्या *त्रागा* किया? हमारे मामा के बेटे रावजी भाई आकर बैठे थे, तब हमारी भाभी छाती कूटने लगीं, एकदम ऊपर कूद-कूदकर! हाय-हाय करके कूदने लगीं। तब रावजी भाई घबरा गए, डर गए!

तब मैंने उनसे कहा कि 'रावजी भाई आप क्यों अशांत हो गए? चेहरे पर यह इतना सब क्या हो गया है?' तब रावजी भाई ने मुझसे कहा, 'भाई, भाभी को यह क्या हो गया है?' मैंने कहा, 'कुछ भी नहीं हुआ। कसरत कर रही है। आप क्यों घबरा रहे हो? आपको मज़ा नहीं आया? कितना अच्छा कूद रही हैं ये! कितनी कला दिखा रही हैं!' तो कहा, 'ऐसे कहीं बोलना चाहिए?' तब मैंने कहा, 'हाँ! देखो

तो, देखने जैसा ही है। ये तो अभी चाय पीएँगी। आप बैठो न! यहाँ बैठते हैं हम, फिर थोड़ी देर बाद चाय-वाय पीते हैं। उनके मन में खुशी है न, तो वे कूद लें, फिर बाद में हम चाय पीते हैं'। मैंने ज़ोर से कहा। वे सुन लें इस प्रकार से। 'देखो न, ये कितना आनंद भरा नाच है! यह नाच तो देखो! कितना कूद रही हैं! आनंद करने जैसा है, इसमें आप घबरा क्यों गए?' तो फिर भाभी ने बंद कर दिया, वे भी घबरा गईं।

भाभी तुरंत ही बोल उठीं, 'आपने मुझे कभी भी चैन से नहीं बैठने दिया। इसे नाच कह रहे हो आप? अभी भी इसे कसरत कह रहे हो?' तब मैंने कहा, 'तो क्या आप इससे शक्ति बढ़ा रही हो? *त्रागा* करना है क्या मेरे सामने?' फिर मुझसे कहा, 'बैठो, बैठो, आपका सब देख लिया!' मैंने कहा, 'अच्छा है! मैंने आपको देख लिया और आपने मुझे देख लिया'।

उन्होंने रावजी भाई को डरा दिया, उसे *त्रागा* कहते हैं। *त्रागा* यानी सामने वाले को डरा देना।

करना नहीं आता लेकिन मैं पहचान लेता हूँ त्रागा को

ज्ञानी तो अभी बने हैं। बाकी, पहले अहंकार तो था ही न! तब मैं कहता था कि 'सिर पटको न, देखते हैं! सिर फोड़ो, चलो! मुझे डराना चाह रही हो? पूरी दुनिया को डराकर, मैं इस पर बैठा हूँ!'

त्रागा से मुझे बैर है। बहुत *त्रागे* वाला इंसान तो हमें आगे ही नहीं बढ़ने देगा। *त्रागा* करने का मतलब है बहुत ज़्यादा दवाब डालना। मुझे नहीं आता, हमारी अक्ल वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। इसमें बहुत अक्ल की ज़रूरत है। कोई अगर *त्रागा* कर रहा हो तो उसे ढूँढ ज़रूर निकालता हूँ लेकिन *त्रागा* करना नहीं आता। *त्रागे* वाले इंसान से तो मुझे बहुत चिढ़ मचती है।

पूरी दुनिया का त्रागा उतारूँ, ऐसा जादूगर हूँ

पूरी दुनिया में किसी का *त्रागा* नहीं चलाऊँगा, ऐसा हूँ मैं। पूरी

दुनिया के *त्रागे* उतार दूँ, ऐसा इंसान हूँ, जादूगर हूँ मैं तो। पूरी रामायण खत्म होने के बाद में मेरी भाभी ने आखिर में इतना कहा, 'आपकी बराबरी तो भगवान भी नहीं कर सकते'।

अभी मेरी भाभी मुझसे क्या कहती हैं कि 'मैंने आपके जैसा इंसान नहीं देखा। मैंने किसी भी पुरुष की नहीं सुनी है। मैं किसी की भी नहीं सुनती, फिर चाहे कोई भी क्यों न हो! *त्रागा* करती हूँ, कुछ भी करती हूँ। आपके भाई की भी नहीं सुनी। सिर्फ आपकी सुनी है। इतने लोग मिले, अगर किसी से अपना मनचाहा नहीं करवा सकी, तो वह सिर्फ आप ही हो। आपको नहीं जीत सकी। सिर्फ आप ही ऐसे हैं जो डिगे नहीं, मेरे काबू में नहीं आए। आपने ही मुझे डरा दिया और कोई ऐसा नहीं है, जो मुझे डरा सके'। क्या कहती हैं?

प्रश्नकर्ता : कोई ऐसा नहीं है, जो मुझे डरा सके।

दादाश्री : हाँ, आपके भाई ने इतना भी नहीं डराया। मुझे कभी डराया ही नहीं है, आपने मुझे डराया।

आपसे ही सीखी यह कला

तब मैंने कहा, 'मैं आपकी जानी हुई विद्या सीख गया। सारी कलाएँ मैं आप से ही सीखा हूँ न! आपने मुझे जो ज्ञान सिखाया है, वही ज्ञान आप पर आ रहा है। आपके ही स्त्री चरित्र के हथियार का उपयोग मैंने आप पर किया है। आपने मुझे यह विद्या सिखाई, तो मैंने ही आपको अंटी में डाल दिया'।

हमारी भाभी इतनी तेज़ थीं लेकिन मेरे घर में प्रवेश करते ही, बूट की आवाज़ आते ही चुप। क्यों? क्योंकि हमारी एक आँख में सख्ती देखी थी। इसे तो स्त्री चरित्र कहते हैं। वहाँ तो एक आँख में पूज्य भाव और दूसरी आँख में सख्ती हो, तब काम होता है।

कला से शांत कर दिया भाभी को

प्रश्नकर्ता : आपने पहले बताया, उस तरह भाभी सिर्फ आपको

ही नहीं जीत सकीं तो ऐसी कोई घटना हुई है जहाँ आपकी बुद्धिकला से उनकी बोलती बंद हो गई हो?

दादाश्री : एक बार हमारे घर पर एक बिल्ली अपने दो बच्चों को उठाकर ले आई। छोटे-छोटे दो बच्चे रख दिए। फिर वे धीरे-धीरे आने लगे। ज्ञान होने से पहले मैं बच्चों में फँस गया था, क्योंकि दया थी न! लेकिन फिर से क्यों फँसूँ?

प्रश्नकर्ता : बिल्ली के बच्चों को पाला था?

दादाश्री : मुझे पालने की इच्छा नहीं थी, लेकिन पीते-पीते चाय गिर गई थी तो वह लपक-लपककर आई तो मैंने दूध भी डलवाया। छोटे-छोटे बच्चे घूमते-घूमते आ जाते थे तो मैं ज़रा दूध रख देता था। मेरे मन में ऐसा था कि बेचारे भूखे मर जाएँगे! ओहोहो! ये आए दुनिया के पालनहार! कौन आए?

प्रश्नकर्ता : उनके पालनहार आए।

दादाश्री : हाँ, दुनिया के पालनहार आए! बेचारे भूखे मर जाएँगे! मैंने कहा, 'इस तरह कोई नहीं मरता। अरे भाई! यह तेरी ही दखल है'।

फिर तो उनकी आदत हो गई। एक बार आए तो आदत सी हो जाती है तो फिर पास में ही बैठे रहते थे और फिर तो बहुत ही पास में आने लगे। फिर तो हटते ही नहीं थे न! फँस गए भाई, फँस गए! तो इस तरह करते-करते वे बड़े हो गए और बहुत समझदार हो गए। मैं जब भी घर आता था तब बिल्ली इंतज़ार करके बैठी रहती थी कि 'भाई, अभी आएँगे'। ग्यारह बजे, साढ़े ग्यारह बजे, साढ़े बारह-एक बजे तक, अगर देर हो जाती तब भी वहाँ दरवाज़े पर आकर बैठी रहती थी, यों करके बैठी रहती थी।

मैं जब आता था तो फिर वह मुझे देखते ही तुरंत वहीं से मेरे पीछे चलने लगती थी।

प्रश्नकर्ता : कोई ऋणानुबंध होगा तभी तो न?

दादाश्री : हाँ, होगा तभी तो न! वह सोचती थी कि 'अब खाने-पीने का मिलेगा'। तो इतना अधिक फँस गया था। उसके बाद हमारी भाभी आईं न, वे ज़रा तेज़ स्वभाव वाली थीं और स्वामीनारायण धर्म का पालन करती थीं। उनमें तो कुत्ते-बिल्ली को छूते भी नहीं थे, तो मैं जब बाहर गया होता था न, तब भाभी बिल्ली को अच्छी तरह मारती थीं क्योंकि यदि उन्हें छू जाए तो वे खाना नहीं खा सकती थीं न! इसलिए उन्हें निकालने के लिए मारती थीं। 'यह रांड चली जाए न, तो इन भाई से जो लफड़ा चिपका है वह छूट जाएगा!' ऐसा कहती थीं।

हीरा बा : लेकिन उन्हें तो काट लिया था न!

दादाश्री : ऐसा? उन्हें?

हीरा बा : हाँ, तभी तो।

दादाश्री : तब तो फिर वह ऐसा ही करती न! उन्हें दाँत दिखातीं तब तो फिर वे काटती ही न! दाँत दिखाने चाहिए क्या? ये जो बंदर होते हैं, वे दाँत निकालते रहते हैं, आपने नहीं देखा? हमारी भाभी तो दाँत निकालकर दम निकाल देती थीं। वह भी मर्यादा धर्म के लिए। अरे! भला इसे धर्म कैसे कहेंगे? आपको काटा था कभी भी?

हीरा बा : नहीं, मुझे नहीं।

दादाश्री : इसलिए फिर बा ने मुझसे एक बार कहा कि, 'इस बिल्ली को तू यहाँ पर खाना खिलाता है और वह मारती है'। तब मैंने उसका तरीका ढूँढ निकाला ताकि वे बिल्ली को न मारें। मैंने उनसे कहा, 'बिल्ली को क्यों मारती हो? क्या पता, अगर ये हमारे मणि भाई ही आए हों तो आप क्या करोगी? वर्ना मैं क्या किसी को दूध पिलाता रहूँगा? मैं क्यों दूध पिला रहा हूँ? शायद भाई आए होंगे, कौन जाने कि 'ये मेरे भाई ही आए हैं!' तो पूछा, 'आ सकते हैं?' तब मैंने कहा, 'हाँ, देखना! आते हैं और सत्संग में जाते हैं। चुकाने के लिए फिर से आएँगे या नहीं आएँगे?' उसके बाद फिर चुप, फिर नहीं मारती थीं।

भाभी से सीखा और बना स्त्री चरित्र में अव्वल

मैं तो उनके सामने ही कहता था कि मैं आपकी तो क्या, मैंने ईश्वर की भी नहीं सुनी है। आप जैसों को तो मैं अंटी में डालकर घूमता हूँ। हाँ, पेट का पानी तक नहीं हिले, वहाँ पर ऐसे *त्रागे* की क्या कीमत? अब मैं आपके ताबे में नहीं आऊँगा। स्त्री चरित्र कैसा होता है उसका पाठ आपने सिखाया है। अब मैं धोखा नहीं खाऊँगा, आप जैसी लाखों स्त्रियाँ आ जाएँ, फिर भी। ये दूसरे सभी लोग आपसे परेशान हो जाएँगे लेकिन मैं परेशान नहीं होऊँगा। ऐसे *त्रागे* तो मैंने बहुत देखे हैं, वर्ना मैं भी भोला था। आपके कपट के सारे संग्रह स्थान मैंने सभी तरफ से देख लिए हैं इसलिए जगत् में मैं स्त्री चरित्र (पहचानने) में अव्वल बन गया। आपका ही सिखाया हुआ है न! आपकी ही ढाल है!

प्रश्नकर्ता : आपने उस ढाल का उपयोग किया था?

दादाश्री : उनके साथ उसी ढाल का उपयोग करता था। इस चीज़ में अन्य कोई पुरुष उनका पार नहीं पा सकता था।

मैं पहचान जाता हूँ स्त्री चरित्र को, अब धोखा नहीं खाता

ये *त्रागे* तो हमने अपने घर में देखे हैं, अनुभव किया है न! ज़बरदस्त सिखाया भाभी ने तो! पूरा चरित्र आज़माकर देखा मुझ पर। मैं समझ गया कि 'स्त्री चरित्र दिखाया है यह'। कौन सा चरित्र? स्त्री चरित्र। आज की सभी स्त्रियों के चरित्र पहचान जाता हूँ कि इसने यह स्त्री चरित्र किया। इस प्रकार *त्रागा* करते ही मैं समझ जाता हूँ कि यह *त्रागा* करने लगी है। अत:, स्त्री चरित्र क्या कर सकता है, वह सब मेरे *लक्ष* (जागृति) में है। मैं किसी भी स्त्री से धोखा नहीं खा सकता।

मुझे कोई भी स्त्री बेवकूफ नहीं बना सकती। स्त्रियों को यह सब करना आता है न? सब आता है। मैं समझ जाता हूँ कि यह करने लगी है। स्त्री चरित्र पहचानकर सब को मुँह पर ही कह देता हूँ। यहाँ पर कोई नहीं करता, क्योंकि सभी जानते हैं कि दादा स्त्री चरित्र पहचानने

में अव्वल हैं। अत: स्त्री चरित्र एक बहुत बड़ा विषय है, ज़बरदस्त विषय (सब्जेक्ट) है।

भाभी मास्टर जी और मैं शिष्य, सीखा स्त्री चरित्र

स्त्री चरित्र सब से बड़ा विज्ञान है। आपने यह शब्द सुना है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा, बहुत।

दादाश्री : स्त्री चरित्र बहुत बड़ा विज्ञान है। ज़बरदस्त!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, आप उसका कारण समझ सके क्योंकि आप खुले थे, वर्ना नहीं समझ पाते थे।

दादाश्री : स्त्री चरित्र को समझ गया था इसलिए स्त्रियों को पहचान लेता हूँ। मैंने स्त्री चरित्र पढ़ा है।

प्रश्नकर्ता : आपने पढ़ा है, दादा?

दादाश्री : हाँ, भाभी तो मेरी गुरु ही हुईं न! हमारी भाभी मास्टर जी और मैं शिष्य। उन्होंने पूरी लाइफ मुझे स्त्री चरित्र सिखाया।

प्रश्नकर्ता : ओहो!

दादाश्री : और उसमें से फिर स्त्री चरित्र का मैंने अभ्यास किया था। स्त्री चरित्र अच्छे-अच्छे लोगों को उड़ाकर रख दे, वह सब मैं सीख गया था। मुझे सिखाया था इसलिए मैं सीख गया। पास हो चुका हूँ। एक हज़ार स्त्रियों में ऐसा कोई मास्टर नहीं होगा, जो बाकी सभी स्त्रियों को अंटी में डाल दे। उनके सामने पुरुष की बिसात ही क्या? इस स्त्री चरित्र का कोई भी पार नहीं पा सकता। बहुत तरह के स्त्री चरित्र देखे हैं।

स्त्री चरित्र में पास होने के बाद ही ज्ञानी बन सकते हैं

यह सब मैंने देखा था, अभ्यास बहुत हुआ था न! और हमारी

भाभी थीं न, इसलिए इस मार्ग पर आ पाया, वर्ना आ ही नहीं पाता। स्त्री चरित्र में पास होने के बाद ही ज्ञानी बन सकते हैं, वर्ना कैसे बन पाते? और भाभी ने तो बल्कि भगवान बनाया।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही बात है।

दादाश्री : वर्ना स्त्री तो मार देती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, मार देती है।

दादाश्री : पास तो मुझे होना ही पड़ा स्त्री चरित्र में लेकिन वे बहुत अच्छी हैं, उपकारी हैं। अभी भी हैं, लेकिन अब मैं ऐसा नहीं कह सकता। वे तो मेरी बुज़ुर्ग हैं न? ये सब पुरानी बातें हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, उनका मोक्ष होगा ही?

दादाश्री : हम उसमें नहीं पड़ते। सभी का कभी न कभी तो मोक्ष होना ही है, पूरी दुनिया का!

[8.2]
भाभी को उपकारी माना
भाभी ने उतारा हमारा अहंकार

हमें हीरा बा ने कभी परेशान नहीं किया। हीरा बा ने तो दु:ख ही नहीं दिया कभी भी। झवेर बा ने भी नहीं, मणि भाई ने भी नहीं, मूलजी भाई ने भी नहीं।

इन भाभी ने ज़रा परेशान किया था, हिसाब होगा न पिछला?

प्रश्नकर्ता : हिसाब के बिना तो हो ही नहीं सकता न!

दादाश्री : यह सारा हिसाब ही है। वह तो मुझे पहले से ही पता चल गया था कि यह हिसाब चुका रही हैं।

प्रश्नकर्ता : पता चल गया फिर भी आपका झगड़ा होता रहता था भाभी से?

दादाश्री : बहुत! पूरी ज़िंदगी चला। अभी भी चल रहा है। अभी भी कमी नहीं हुई है। मेरी भाभी कहती हैं कि 'जब तक आपमें क्रोध है, तब तक आप सर्वज्ञ नहीं बन पाओगे'। तब मैंने कहा, 'मैंने ज़रा एक कोने में जो क्रोध रखा हुआ है न, वह आपके लिए ही छोड़ा है'।

यों तो वे ज़रा साफ इंसान थीं न, इसलिए ज़रा बेअदब थीं! वे भी बेअदब और मैं भी बेअदब। फिर देख लो मज़े! दोनों ही बेअदब थे न!

प्रश्नकर्ता : तो वे छोड़ क्यों नहीं देती थीं?

दादाश्री : यों ही छोड़ देतीं क्या वे? मेरे साथ बहुत भारी बैर था।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसका क्या कारण रहा होगा?

दादाश्री : ऋणानुबंध।

प्रश्नकर्ता : इसलिए भाभी अपमान करती रहती थीं?

दादाश्री : हाँ, भाभी बहुत अपमान करती थीं। भाभी ने तो तेल निकाल दिया था। भाई भी अपमान करते थे, वे तो समझो कि बड़े भाई थे इसलिए हम उनका बुरा नहीं मानते थे, लेकिन भाभी तो जब से आईं तब से अपमान ही देती रहीं। हमारी भाभी ने हमारा अहंकार उतार दिया।

प्रश्नकर्ता : उस समय बहुत मुश्किल लगता होगा, दादा?

दादाश्री : बहुत मुश्किल।

लगती थीं दुश्मन लेकिन समझ में आ जाए तो काम करें मित्र जैसा

प्रश्नकर्ता : यों बहुत ही मुश्किल था, दादा।

दादाश्री : मेरे वे जो दस साल बीते न, वैसे तो किसी के भी नहीं बीते होंगे। मेरे वे जो दस साल बीते तो उसमें जन्मोंजन्म का इकट्ठा करें न, तो भी उसकी बराबरी न हो इतना ग़ज़ब का बीता है। मेरी आपबीती की आप कल्पना भी नहीं कर सकते। भाभी ने दु:ख देने में कुछ भी बाकी नहीं रखा था! इसमें उनका दोष नहीं है हिसाब तो मेरा ही है न! इस जगत् में किसी की भी *नोंध* (बैर सहित नोट करना) करने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई बार दुश्मन भी मित्र का काम कर देता है।

दादाश्री : हमेशा मित्र ही होते हैं लेकिन समझ में नहीं आता। मुझे ऐसा लगता है कि मेरी ही कितनी गलतियाँ होंगी। लेकिन उन दिनों तो ऐसा लगता ही नहीं था न! उन दिनों तो ऐसा ही लगता था न, कि वे ही गलत हैं। उन दिनों कम उम्र में तो ऐसा ही लगता न, कि वे मुझे दु:ख दे रही हैं इसलिए मैं कहता था कि 'जिस तरह नरसिंह मेहता को उनके बराबरी के मिले थे, वैसे ही मुझे ये मिल गईं!'

मेरे लिए भी हितकारी बनीं भाभी

इसलिए मुझे तो याद आता था, मुझे तो क्या करना पड़ता था? रात को उठकर मैं सोचता था। मैं बीस-बाईस साल की उम्र में क्या कहता था कि 'नरसिंह मेहता को उनकी भाभी ने एक वचन कहा, तो मेहता को आग लग गई। तो मुझे जब इन भाभी ने वचन कहा, तो उससे मुझे भी आग लगा करती थी'। तब मैंने कहा, 'हम एक जैसे ही हैं, नरसिंह मेहता और हम'।

इस प्रकार मुझे उनसे यह हेल्प मिली थी। भाभी ने क्या हेल्प की? वे जब ऐसा करती थीं तो उसका रिएक्शन आता था। तो रात को मन में सोचता था कि नरसिंह मेहता की भाभी उनके लिए हितकरी रही, मेरे लिए भी हितकारी हैं। उसका सही उपयोग करूँगा तो काम निकल जाएगा न! हमें रास्ता मिला हैं, लाभ उठाना हो तो उठा सकता हूँ, वर्ना मोह मार्ग पर चले जाते, न जाने मोह में कहाँ ठोकरें खाते रहते! लेकिन वास्तव में उन्होंने इस तरह लालबत्ती ही दिखा दी! इतना तो अच्छा हुआ न, मुझे बहुत आनंद हुआ। मुझे भी भाभी काम में आईं! तो उस वजह से हम सुधर गए, वर्ना सुधरते ही नहीं न!

वे मेरे मोह को तोड़ ही देती थीं। वे खुद मेरे मोह को तोड़ने के लिए ऐसा नहीं करती थीं। उनका हेतु तो यह था कि मुझे सुखी नहीं होने देना है। मैं बहुत पंप मारता था, फिर भी मोह उत्पन्न नहीं होता था। क्योंकि जहाँ अहंकार है वहाँ मोह खड़ा नहीं रहता और ऐसा अहंकार जो हर प्रकार से चढ़ बैठा था।

ज्ञानी बनने में निमित्त भाभी

मैं उनसे कहता भी हूँ कि, 'आपके प्रताप से ही मैं यह बना हूँ'। मैंने उनसे ऐसा भी कहा है कि नरसिंह मेहता को उनकी भाभी मिली थीं तो वे बड़े भगत बने और आप मुझे मिले तो मैं भगवान बन जाऊँगा! मुझे ये भाभी मिली हैं तो मुझे मोक्ष में जाने का रास्ता मिल गया।

प्रश्नकर्ता : और वास्तव में आप बन गए दादा भगवान!

दादाश्री : हाँ! लेकिन वह निमित्त ऐसा था। निमित्त ही थीं न? निमित्त ही कहलाएँगी न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, निमित्त।

दादाश्री : वैराग्य लाने वाली निमित्त बनीं, मेरा तो हालांकि यह सब होना ही था, लेकिन निमित्त वे बनीं। जब यह ज्ञान हुआ न, तब भाभी से मैंने कहा भी कि 'आपके अच्छे व्यवहार की वजह से मुझे यह ज्ञान हुआ है। आपने मुझे दुनिया दिखाई'।

प्रश्नकर्ता : जय सच्चिदानंद।

दादाश्री : ये भाभी मुझे मोक्ष में ले जाने में हेल्प करेंगी। दु:ख होगा तभी अंदर से तैयारी होगी न? मैंने कहा, 'इन भाभी ने मुझे सिखाया। डाँटा लेकिन सिखाया है काफी कुछ'।

प्रश्नकर्ता : दादा, उनका उपकार है।

दादाश्री : हाँ, मानना तो पड़ेगा। अभी उनका उपकार मानता हूँ कि उन्होंने मुझे इस रास्ते पर आने में हेल्प की।

प्रश्नकर्ता : भाभी ने आपको इस तरफ मोड़ा।

दादाश्री : हाँ, अनंत जन्मों से इस (संसार) तरफ था तो उन्होंने (मोक्ष की तरफ) मोड़ा। यहाँ (संसार में) क्या लेना है?

इसलिए अभी भी कहता हूँ, 'भगत बनाया भाभी ने। भाभी का तो सब से बड़ा उपकार मानना चाहिए'। और आखिर तक उनका उपकार माना था। इससे मुझे इस तरफ मुड़ने के बहुत से कारण मिल गए। उन्होंने मुझे ज्ञानी बनाया।

अब्स्ट्रक्शन से होता है प्रगति की ओर प्रयाण

प्रश्नकर्ता : तो भाभी ने आपको अध्यात्म की ओर मोड़ा?

दादाश्री : बचपन से ही अध्यात्म तरफ झुकाव वाला स्वभाव था और उसमें ये मेरी भाभी थीं न, उनका अब्स्ट्रकशन था। अब्स्ट्रकशन से

ही शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, लेकिन मशीन हॉर्सपावर वाला होना चाहिए। मेरे बड़े भाई और मेरी भाभी मेरे लिए अति उपकारी बन गए। धर्म में मेरे लिए बहुत ही मददगार बने। उनके अब्स्ट्रक्शन से ही मैं आगे बढ़ा हूँ।

मेरे वैराग्य की निमित्त बनीं भाभी

मेरी भाभी तो मेरा तीर्थधाम हैं। यह ज्ञान हुआ, उसके लिए उनका आभारी हूँ। वे अगर ऐसी नहीं होतीं तो मुझे वैराग्य नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : यानी कि पूर्णत: वैराग्य के बीज वहीं से बोए गए, ऐसा कह सकते हैं न? दादा के वैराग्य की निमित्त भाभी बनी थीं।

दादाश्री : उन्होंने हेल्प की वैराग्य में, ऐसा हुआ कि मूल रूप से वैराग्य तो था ही, और भी अधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया। अत: उनका उपकार मानता था।

मोक्ष के रास्ते पर ले जाती हैं चीकणी फाइलें

मोक्ष में जाने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा उपकारी कौन है? तो वह है, *चीकणी फाइलें* (गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग)। और हल्की फाइलें हमें निकलने नहीं देतीं। हल्की यानी कि जो मीठी लगती हैं, वे हमें मोक्ष में जाने में मदद नहीं करतीं। आपको जाना हो तो जाओ, वर्ना कोई बात नहीं। वर्ना नाश्ता करो आराम से। अत: मैंने तो जमा किया है। इसलिए हमारी भाभी से रोज़ कहता हूँ कि, 'आप हो तो मुझे प्राप्त हुआ है, वर्ना मैं नहीं पा सकता था। धन्यभाग्य! मेरा कल्याण हो गया!'

अब इन बातों को सुनने में टाइम बेकार जाएगा इतनी ही बात हैं न, क्या फायदा है इससे?

प्रश्नकर्ता : इससे तो ताल बैठता है, दादा। यह तो महान पुरुषों के जीवन से ताल बैठाते हैं कि जब यथार्थ दर्शन होता है तब इंसान इस प्रकार तेज़ी से प्रगति करता है। यों कितने सारे साइन्टिफिक सरकमस्टन्शियल एविडेन्स मिल जाते हैं!

[8.3]

व्यवहार लक्ष्मी का, भाभी के साथ

कर्म की उलझनें, इसलिए नहीं संभाल पाते थे भाभी को

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के बाद कैसा रहता था भाभी के साथ?

दादाश्री : ज़िंदगी भर हमारी भाभी को नहीं संभाल सका, इन सब को संभाल सकता हूँ।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह किसलिए? ऐसा क्यों?

दादाश्री : कर्म की उलझनें।

प्रश्नकर्ता : चाहे कितना भी खुश करने जाओ फिर भी वे खुश नहीं होतीं।

दादाश्री : कुछ भी दे दो, फिर भी खुश नहीं होती हैं न!

प्रश्नकर्ता : हं।

दादाश्री : तो मुझे ऐसी दुनिया मिली। भाभी मिलीं लेकिन वे खुश हो ही नहीं सकतीं, चाहे कितने भी प्रयत्न करें, फिर भी। चाहे उन्हें कुछ भी देना चाहो फिर भी राज़ी नहीं होतीं और नहीं देना चाहो तब भी....

प्रश्नकर्ता : अब उसके पीछे क्या कारण होगा, दादा? राज़ी ही नहीं होती हैं, तो उसका क्या कारण है?

दादाश्री : लोभ था ऐसा।

प्रश्नकर्ता : संतोष ही नहीं होता, कम ही लगता है।

दादाश्री : हाँ।

हकदार नहीं थे फिर भी जो माँगा वह दिया भाभी को

प्रश्नकर्ता : देवर थे न आप, दादा।

दादाश्री : देवर के तौर पर सभी कुछ दे दिया मैंने। हमारी भाभी आई थीं तो उनसे कह दिया था कि 'आपको जो चाहिए वह, जितना माँगोगे उतना दूँगा'। यह ज़मीन उनके नाम की है, हर एक चीज़ उन्हें दे दी थी। यानी यह पूरा गाँव जानता है, इसलिए कोई मुझ पर उँगली नहीं उठा सकता न! वर्ना दम निकाल देते, यदि दिवाली बा का लेता तो। तब तो लोगों को लेकर आ जातीं बीच में कि 'इन भाभी का ज़रा देखो तो सही!' उनका कुछ भी नहीं रखा, सबकुछ दे दिया। सबकुछ उनके पास ही है। महीने का तीन सौ रुपए तो ब्याज आता है। सब का ब्याज मिले ऐसा कर दिया था। वे हकदार नहीं थीं, लेकिन उनके मन का कुछ समाधान तो होना चाहिए, 'मेरे देवर इतने बड़े भगवान हैं न!'

भाभी का केस निपटा दिया सब देकर। वास्तव में पूरा घर उन्हें दे दिया। मैंने हाइ क्लास मकान बनवा दिया, आर.सी.सी का। अब क्या है उन्हें? सिर्फ अकेले ही रह रही हैं। भादरण का वह घर उन्हें सौंप दिया है। मैंने कहा, 'काम में लेना आप'। क्योंकि उपकार है न! उन्हें अकेले को सौंप दिया था।

भाभी का क्लेम नहीं रखा बाकी

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने तो ऐसा कहा था कि, 'मैं किसी का भी क्लेम बाकी नहीं रखता'।

दादाश्री : हाँ, नो क्लेम। कह देते हैं सभी से कि, 'भाई, मेरा किसी भी तरह का क्लेम नहीं है'। ऐसा साफ कह देते हैं हम। क्लेम तो शुरू से ही नहीं रखा था उनके साथ का। उनसे कोई पूछे कि आपका दादा पर किसी भी तरह का क्लेम है? तो वे कहेंगी, 'नहीं। वास्तव में मेरा तो कोई क्लेम नहीं है'। नो क्लेम ऐसा कर दिया था।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वास्तव में 'कोई क्लेम नहीं था' ऐसा कहती थीं और फिर भी यदि क्लेम नहीं है ऐसा यदि हो...

दादाश्री : मैंने शुरू से ऐसा ही रखा है कि वे क्लेम नहीं रखें। मैं तो बहुत ही सतर्क इंसान हूँ न, तो कोई बीच में हाथ नहीं डालता था कि, 'दिवाली बा के साथ न्याय करना है'। मैंने न्याय करने जैसा रखा ही नहीं न कुछ भी, बल्कि हेल्प करने का रखा है। अन्य कोई भी झंझट नहीं थी मेरे और उनके बीच में।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर मुझे जो देना होता था, वह मैं दे देता था।

प्रश्नकर्ता : दे देते हैं, वह ठीक है।

दादाश्री : फिर मैंने उनसे कह दिया कि 'और भी कुछ चाहिए? इससे ज़्यादा भी कुछ चाहिए?' अंत में उन्होंने कहा कि, 'नहीं भाई, अब मुझे नहीं चाहिए'। ऐसा तो बहुत अच्छा आता है! इतना है कि मुझ पर राग-द्वेष नहीं है उन्हें।

धोखा खाकर भी किसी का क्लेम बाकी नहीं रखा

उनके भाई (दिवाली बा के भाई) खुद ही कह देते थे न कि, 'आपका उनके प्रति कुछ भी बाकी नहीं है। वे आपको कुछ भी नहीं कह सकतीं'। उनकी ओर से कोई शिकायत करने नहीं आ सकता। क्योंकि मैं हमेशा एक चीज़ रखता था कि आपके और मेरे बीच में अगर कोई झंझट हो जाए और अगर मेरे दस हज़ार आपके पास रहें तो भी मुझे आपत्ति नहीं है लेकिन आपके पाँच हज़ार मेरे पास आ जाएँ तो उसमें आपत्ति थी। वह क्यों? क्योंकि फिर आप बुलाओगे आर्बिट्रेटर को और आर्बिट्रेटर मेरे यहाँ आएगा कि बहीखाते देखने हैं। तब मैं कहूँगा कि 'भाई, साढ़े बारह तो हो चुके हैं, कल आना'। लेकिन ऐसा चलता नहीं है न! आर्बिट्रेटर को उपकारी माना जाता है। लेकिन मैंने कोई क्लेम नहीं रखा था, वर्ना आर्बिट्रेटर मेरे यहाँ आते। और मैं तो आर्बिट्रेटर को निकाल ही देता तुरंत। फिर आर्बिट्रेटर आकर कहेगा, 'चाय बनाइए'। तो फिर हमें चाय बनानी पड़ेगी या नहीं? मैं आर्बिट्रेटर बना हूँ लेकिन मैंने कभी भी ऐसा व्यवहार नहीं किया। बल्कि अपने घर पर चाय पिलाता हूँ उन्हें।

अत: गाँव में कोई मुझे ऐसा नहीं कह सकता कि 'आपकी भाभी की शिकायत है'। वर्ना हमारे पाटीदार तो 'चलो, डाँटते हैं, इस बहाने मज़ा आएगा'। हमारे यहाँ काम ही यह है, लोगों का। लेकिन मैं ऐसा कैफ रखूँ तभी न! कैफ ही नहीं रखता और किसी जगह पर क्लेम बाकी नहीं रखता। पच्चीस हज़ार दे दूँ लेकिन सामने वाला क्लेम कर सके, ऐसा नहीं रखता।

नहीं मिलेगा ऐसा भगवान जैसा देवर कहीं भी

उनके भाई क्या कहते थे, जानते हो आप? उनके सगे भाई हैं लेकिन वे साफ-साफ ऐसा कहते थे कि इस पाटीदार की पूरी जाति में मैंने ऐसा कोई पटेल नहीं देखा जो मेरी इस बहन को पाल लेता। पूरी बिरादरी में आपके जैसा कोई देवर नहीं मिलेगा, जिसने अपनी भाभी जो इतनी कम उम्र में विधवा हो गई हो, उसे इस प्रकार से रखा हो! हमारे यहाँ तो सब को माँ-बाप ही संभालते हैं, हमारी बिरादरी में जो भी विधवा हो जाए, उसे! उसे उसके हिस्से की जायदाद दे देते हैं लेकिन और किसी भी तरह से ध्यान नहीं रखते। मैंने कहा, 'हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं है। हमारे घर पर ज़रा सा भी दु:ख नहीं होने देते'। इन हीरा बा ने भी दु:ख नहीं होने दिया। दिवाली बा ने खुद हीरा बा से कहा था कि, 'आपको तो मैंने दु:ख दिया था लेकिन क्या आप भी मुझे दु:ख दोगी? उसका बदला लोगी?' तो हीरा बा ने कहा कि, 'नहीं, मुझे नहीं लेना है'। अत: उन्होंने (हीरा बा ने) किसी भी तरह का क्लेम रखा ही नहीं। मैंने कहा, 'वर्ना हमारी खानदानियत चली जाएगी। वे भले ही पूरे मकान का उपयोग करें, और भी कुछ चाहिए तो देते रहेंगे'। लेकिन फिर भी उनकी भूख मिटी नहीं कभी भी!

खुद उनके भाई भी कहते थे कि, 'इतना लोभ है लेकिन भगवान जैसा देवर मिला है'। वे तो भगवान ही कहते हैं। उनकी बहन से ऐसा कहते हैं कि, 'ऐसा देवर नहीं मिलेगा'। फिर भी उनकी बहन के मन में ऐसा ही है कि, 'नहीं, ऐसा तो आप कहते हो, मैं नहीं मानती। आप मानते हो'।

ज्ञान के बाद लेट गो करके निभाया भाभी को

हमारी भाभी सभी को छलती थीं। मुझे भी छलती थीं न! वह उनका बहुत ही पक्का काम-काज था! तो कितने कपट, ज़बरदस्त कपट के पर्दे थे! वे कितने बड़े होंगे! उसे 'स्त्री चरित्र' कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : जब कभी आपकी भाभी आपके सामने कपट करती थीं तो आप उनके सामने सख्ती से रहते थे?

दादाश्री : यदि सख्ती से रहता तो वह फिर मेरा तेल निकाल देतीं। मैं तो लेट गो करता था, समझा-बुझाकर निपटाता था। फिर ज़रा ज़्यादा कपट कर रही होतीं तो मैं सब के सामने कह देता था कि, 'हमारी भाभी की वजह से घर बना है, वर्ना घर कैसे बन पाता?' तो फिर वे वापस शांत हो जातीं।

प्रश्नकर्ता : तब तो और ज़्यादा चढ़ जातीं।

दादाश्री : भले ही चढ़ जाएँ लेकिन उस समय तो वे शांत हो जाती थीं। फिर जब चढ़ जाएँगी तब मैं एक ऐसी करारी दूँगा कि सीधा कर दूँगा। लेकिन अभी तो गाड़ी राह पर आ गई न!

प्रश्नकर्ता : ऐसा जो कहा न, कि भाभी के साथ आप बहुत सख्ती से रहते हैं, तो वह क्या है?

दादाश्री : सख्ती रखता ही हूँ मैं उनके सामने। इनसे कहता था कि देने ज़रूर हैं, लेकिन अगर वे दो हज़ार कहें तो एक हज़ार देना है। फिर भले ही बाद में हमें दो हज़ार देने पड़ें, या उससे ज़्यादा देने पड़ें लेकिन हमें हज़ार ही कहना है। अगर वे कहें कि, 'नहीं, नहीं, ज़रा तो बढ़ाइए'। तो ऐसा कर-करके बढ़वाती थीं। अभी (स्वामीनारायण) मंदिर में खाना खिलाना था, महाराज वगैरह सभी को तो उन्होंने मुझसे कहा कि 'आप पैसे देंगे? संतों को खाना खिलाना है'। तब मैंने कहा, 'मैं हाँ कहूँगा लेकिन पहले से रकम तय कर दो तो हाँ कहूँगा। मुझे आप बजट बताओ तो दूँगा, वर्ना नहीं दूँगा। आप जो बजट कहोगी, वह दूँगा'। यह उदाहरण दे रहा हूँ। उन्होंने बारह सौ का बजट बताया।

तब मैंने कहा, 'अब और बढ़ाने की बात तो नहीं आएगी न?' तो कहा, 'नहीं, बारह सौ में भोजन हो जाएगा'। तब मैंने कहा, 'तेरह सौ नहीं होगा न?' तब कहा, 'नहीं, बारह सौ'। तब मैंने कहा, 'तेरह सौ होगा तो जोखिमदारी आपकी'। वहाँ पर मैं गया, वहाँ सब लोगों ने खाना खा लिया उसके बाद जब सारे बिल आए तो अठारह सौ के आए। जब अठारह सौ के बिल आएँ तो देने तो पड़ते न! मैं क्या करता, देना ही पड़ता न?

हमें भोला मानकर, अंटी में डालने जातीं

अभी स्त्रियों के लिए स्वामीनारायण मंदिर बना। तब हमारी भाभी ने खुद सामने खड़े रहकर बनवाया। खुद के पैसों से नहीं, लोगों के पैसे लेकिन पूरी व्यवस्था उन्होंने खुद ने की।

प्रश्नकर्ता : कहाँ? भादरण में?

दादाश्री : भादरण में, स्त्रियों के लिए मंदिर। वह मंदिर तो था लेकिन फिर यह बनवाया। तो फिर भाभी कहती है, 'मंदिर बनाना है तो उसमें कुछ देंगे? आप कुछ करो, स्त्रियों के लिए मंदिर बनवाना है स्वामीनारायण का'। तब मैंने कहा, 'मैं तो तीन हज़ार रुपए दूँगा। उस से आपसे जो करना हो करना'। तब कहा, 'मैं खाना खिलाऊँगी'। तब मैंने कहा, 'तो खिलाना'।

उन्होंने जब भी कहा तब स्वामीनारायण मंदिर में जाकर उन्हें जो भी हज़ार, पंद्रह सौ, दो हज़ार खर्च करने होते थे, वे हम वहाँ जाकर खर्च कर आते थे। वे कहतीं कि, 'हमें खाना खिलाना है', तो हम वहाँ जाकर खाना खिलाते थे। मैंने कहा, 'दान करना और खाना खिलाना'।

हम देते हैं न, तो वे समझती हैं कि इन्हें समझ नहीं है इसलिए देते हैं वर्ना ये नहीं देते। वे ऐसा समझती हैं। अब यदि ऐसा हो, तो उसका क्या करें? मुझसे कहने लगीं, 'आप बहुत भोले हो'। मैंने कहा, 'हाँ, भोला हूँ तभी तो यह दशा हुई है न!' तब उन्होंने कहा, 'बहुत

भोले हो आप, लोग आपके सभी पैसे खा जाते हैं'। मैंने कहा, 'कौन खाता है? लोग खाते हैं क्या? हमारे कहने पर भी नहीं खाएँगे'।

वह तो मुझे भी ऐसा समझती थीं न कि इन्हें अंटी में डालकर घूमती हूँ। अभी भी ऐसा है। मेरा तेल निकाल देती हैं, हाँ!

प्रश्नकर्ता : अभी भी?

दादाश्री : अभी भी। एक दिन मैंने ज़रा डाँटा था। उसके बाद रूठ गई थीं। फिर एक साल तक कुछ भी नहीं ले गईं। जो हर बार ले जाती थीं न, वह सब नहीं ले गईं। तब कहलवाया कि 'आपको देंगे, आप ले जाओ'। तब फिर लेने आईं तब मुझसे कहने लगीं, 'आपने उस दिन ऐसा कहा था न, इसलिए नहीं आ रही थी'। मैंने कहा, 'वह तो, अगर आप कच्ची पड़ जाती हो तब मुझे कहना ही पड़ेगा न!' 'मैं कच्ची? मैं किस बात में कच्ची? आप कच्चे हो' कहने लगीं। मैंने कहा, 'मैं समझ गया, सब समझ गया'। लेकिन बहुत ही भारी हिसाब-किताब है सारा! तो अभी वापस रास्ते पर आ गया है और फिर वापस पंक्चर होगा।

प्रश्नकर्ता : हमारे जैसे तो उसमें बेवकूफ ही बन जाएँ।

दादाश्री : नहीं, आप जैसे नहीं, अच्छे-अच्छों को फँसा दें, ऐसी हैं। सिर्फ वही जानती थीं कि, 'मैं इन सभी को, पूरी दुनिया को बेवकूफ बना सकती हूँ'। इतनी अक्ल है, और सही भी है, उनमें बुद्धि है तो सही। जो पचास स्त्रियों को उपदेश देने बैठें, उन्हें क्या नहीं करना आएगा?

आप्त जैसा मानकर, छले गए जान-बूझकर

इस बार ज़रा एकता की उनसे। हीरा बा की मृत्यु हो गई थी न, तब फिर उन्हें भी बुलाया था। वे अपने आप ही आई थीं, व्यवहार संभालने के लिए, देवरानी की डेथ हो गई थी न इसलिए। फिर मैंने कहा, 'मेरा कौन था? अब तो सिर्फ आप अकेले ही रहे हो। हीरा बा थे, वे चले गए'। यानी मैंने उन्हें यह बात आप्त जैसा मानकर कही।

'आपको पैसों की ज़रूरत हो तो दूँगा। दस हज़ार जितना दूँ तो चलेगा?' उन्होंने कहा 'बहुत हो गया'। मैंने कहा, 'मुझे आपको दस हज़ार रुपए देने हैं, लेकिन दस हज़ार नकद नहीं दूँगा हाथ में। ब्याज मिलेगा आपको हर महीने सौ रुपए। आपको तो ब्याज ही चाहिए न?' तो कहा, 'हाँ'। मैंने कहा, 'इस भाई के यहाँ रख रहा हूँ। हर महीने सौ रुपए ब्याज देंगे'। तो फिर आकर उन्होंने सिस्टम ढूँढ निकाला। मुझसे कहा, 'मेरे पास ये चार हज़ार है, मैं खर्च कर दूँ दान में?' तब मैंने कहा, 'कर दो'। उनके भतीजे से मैंने कहा, 'ये दस हज़ार रख रहा हूँ, उसका तू ट्रस्टी बन जा। दो लोगों का ट्रस्ट बनाते हैं'। तब कहा, 'नहीं भाई, उनके काम में रहा तो मुझे गालियाँ खानी पड़ेंगी'। कोई भी व्यक्ति खड़ा नहीं रहता था। उन्हें सिर्फ उनके भाई ही बेचारे संभालते थे।

प्रश्नकर्ता : यानी आप जान-बूझकर छले जाते थे।

दादाश्री : पूरी ज़िंदगी जान-बूझकर छला गया। कुछ लेना भी नहीं और देना भी नहीं, फिर भी!

उनका दोष देखा ही नहीं, मेरी ही भूल

अब उनका दोष नहीं था, लेकिन मैं किस तरह निभा रहा होऊँगा? कभी उनका दोष ही नहीं देखा। मेरी ही भूल है यह। हिसाब है न यह सारा। अन्य कोई बैर होगा न पूर्व जन्म का, वह खत्म किया। गाँव में कोई भी उन्हें अच्छा नहीं कहता था, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कहता था, उनका भाई या उनका भतीजा, कोई भी नहीं।

तो फिर मैंने उनके लिए ब्याज पर रुपए रख दिए। उसके अलावा एक हज़ार यों ही उनके हाथ में दिए। उन्हें स्टेनलेस स्टील के डिब्बों की ज़रूरत थी। बाज़ार से खरीदने का कह रही थीं। तब मैंने कहा, 'यहाँ से दे देंगे। आप वहाँ पर हज़ार दे देना, आपको ग्यारह हज़ार का ब्याज मिलेगा। तो एक सौ दस रुपए महीने ब्याज उन्हें देते हैं'। उन्होंने कहा, 'भादरण बैंक में रखें तो?' तब मैंने कहा, 'नहीं, यहाँ इनके यहीं पर रखेंगे'।

अब ऐसा सब था लेकिन मैं तो समझ जाता था। वे ऐसा जो

कहती थीं वह समझता था। भले ही मुझे मूर्ख समझें, उससे ज़्यादा और क्या समझेंगी?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उनका एक नियम था कि लेना है तो दादा को छलकर लेना है। मैं छला नहीं जाता था लेकिन उनके सामने ऐसा दिखावा करता था कि 'मैं छला गया हूँ'। इसीलिए तो कवि ने लिखा है न, कि 'लोभी से ठगे जाकर वीतराग आगे बढ़ जाते हैं'। लोभी को लोभ करने देते हैं। मूल स्वभाव तो जाता नहीं न बेचारों का! लुच्चा हो तो लुच्चाई करने देते हैं। यानी कि जान-बूझकर सब करने देते हैं। क्योंकि हमें तो अपने गाँव जाना है। भले ही वे करें।

अगर बेवकूफ बनेंगे तो जाने देंगे हमें अपने गाँव

प्रश्नकर्ता : ठीक है, हमें अपने गाँव जाना है। मानी को मान देकर, लोभी से ठगकर।

दादाश्री : हाँ, इस तरह से जाने देते हैं न! 'हाँ, जाओ अभी, लेकिन आना फिर, जय स्वामीनारायण' कहते हैं, वर्ना रोकेंगे। 'आपके पास है और आप दे नहीं रहे हो'। लेकिन किस चीज़ के लिए? अगर पूछें कि 'किस चीज़ के?' तो कहते हैं, 'नहीं, किसी चीज़ के नहीं लेकिन आपको हमें देना चाहिए'। हं... इनके साथ कहाँ झगड़ा करें? उससे फिर फाइल खड़ी होगी। फाइल खड़ी होती है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, फाइल खड़ी होगी।

दादाश्री : और पैसे क्या सोते-सोते ले जा सकते हैं अपने साथ?

प्रश्नकर्ता : आपकी *चीकणी फाइल* है, दादा।

दादाश्री : नहीं है *चीकणी फाइल,* आपको *चीकणी* (गाढ़, अत्यंत राग-द्वेष) लगती है। आपको समझ में नहीं आता इसलिए *चीकणी फाइल* कह रहे हो। लेकिन मुझे *चीकणी* लगी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : उन्हें यों ज़्यादा समझ नहीं सकते हैं।

दादाश्री : मैं जानता हूँ कि उनका स्वभाव लोभी है। लोभ, लोभ, लोभ, निरंतर लोभ की जागृति। वे जब से मुझे मिली हैं, तब से एक सेकन्ड के लिए भी उनकी उस तरफ की जागृति बंद नहीं हुई। इनके साथ तो हमेशा परेशानी रहेगी। मैंने कहा, 'देते हैं फिर भी ये सुधरते नहीं, उनकी दृष्टि नहीं बदलती'। लोभी दृष्टि है न, इसलिए वह नहीं बदलती है। उनका लोभ कभी भी नहीं छूट पाया। इतना अधिक लोभ था! वे किस तरह से इस नोबल घर में आ गईं, वह भी आश्चर्य है! यह एक ही गुण मेल खाता था कि चरित्र बहुत हाइ क्लास था। इस वजह से निभा लिया लेकिन लोभ घुस गया था न! हीरा बा के कितने ही बर्तन वगैरह सब बेच दिए थे। उससे जो पैसे आए न, वे उन्होंने खुद ने रख लिए। लेकिन उसमें कोई हर्ज नहीं है, घी गिरा तो खिचड़ी में ही। लोग चोरी करके ले गए हैं क्या? लोग ले गए हैं क्या?

[8.4]

भाभी के उच्च प्राकृत गुण

उच्च चरित्र और शीलवानपना

प्रश्नकर्ता : चरित्र के मामले में भाभी में आपको टॉप क्लास क्या दिखाई दिया?

दादाश्री : हाँ। पूरे मुहल्ले में कोई भी उनका नाम नहीं ले सकता था। नाम लिया तो आ बनी। शेरनी जैसी स्त्री थीं! यदि किसी ने छेड़ा तो ऐसे आँखें निकालतीं कि वह काँप जाता था। क्योंकि शीलवान थीं! उसमें दो मत नहीं। कोई पुरुष दृष्टि नहीं बिगाड़ सकता था। यदि कोई उनकी तरफ दृष्टि बिगाड़े तो समझो मर गया। बल्कि मारती थीं। चाहे कहीं भी हों, चप्पल से मारती थीं। पूरा बाज़ार खड़ा हो फिर भी। उसके जोड़ तोड़ देती थीं, ऐसी थीं। वे राजपूतानी जैसी स्त्री थीं!

चरित्र में बहुत उच्च थीं। सती जैसी। ऐसा चरित्र किसी का भी नहीं देखा था। पूरे घर में उनका बहुत उच्च चरित्र देखा मैंने। भाभी का चरित्र एक नंबर का, हाइ क्लास चरित्र! उनका पहनावा आम स्त्रियों जैसा नहीं था। पूरे भादरण गाँव में सभी स्त्रियों के पैर के टखने दिखाई देते थे, इनके टखने कभी भी नहीं दिखाई दिए। जब भी भाभी साड़ी पहनती थीं न, तो उनकी साड़ी यहाँ तक होती थी। पैर के टखने एक धागे के बराबर भी नहीं दिखाई देते थे। कभी भी नहीं दिखाई दिए। जब चलती थीं, उस समय भी कभी दिखाई नहीं दिए। साड़ी भी धूल वाली नहीं हो जाती थी, नीचे धूल नहीं लगती थी। तू समझ गई?

प्रश्नकर्ता : समझ गई। कितनी होशियार होंगी? कैसी होशियार!

टखना भी दिखाई नहीं देता था और साड़ी पर धूल भी नहीं लगती थी

दादाश्री : हमारे भादरण के लोग मुझे वहाँ बड़ौदा में कहने आते थे। कभी आते थे तो मुझसे क्या कहते थे कि 'आपकी भाभी के बारे में तो कहना पडेगा!' तब मैंने पूछा, 'क्या?' तब कहा, 'आपकी भाभी जब बाहर निकलती हैं गाँव में, मंदिर-वंदिर जाने, तब उस समय उनके पैर का टखना तक किसी ने नहीं देखा'। तो वह रौब ही है न, एक तरह का! कितना कैल्कुलेशन है! वर्ना इतने-इतने पैर खुले दिखाई देते हैं! और यदि साड़ी घिसटती रहे तो धूल भरी हो जाती है! 'ये तो, जैसे क्षत्राणी ही चल रही हो न', ऐसा दिखाई देता था।

जब भादरण के लोग ऐसा कहते थे न, तब मुझे गर्व होता था। यही संस्कार हैं न! तब मेरे मन में न जाने क्या से क्या हो जाता था! मुझे गर्व होता था। मेरी भाभी का देखो, कितना अच्छा है! तो उस गर्व की वजह से मार खाई। तब ज्ञान नहीं हुआ था। अब तो कुछ भी नहीं होता। अब तो मुझे, ऐसा कुछ रहा ही नहीं न कि मेरी भाभी है!

भाभी का चरित्र उच्च इसलिए दादा को अहोभाव

मैं जानता था कि हमारे घर में पूरी पीढ़ी अलग ही तरह की थी। हीरा बा ने कभी शिकायत नहीं आने दी और इन्होंने (भाभी ने) भी कभी शिकायत नहीं आने दी। कोई शिकायत नहीं करता था और कोई शंका नहीं, ऐसी लाइफ थी पूरी। कोई ऐसा नहीं कह सकता था कि, 'आपके चरित्र में ऐसा है!' मेरे लिए तो यही सब स्वर्ण जैसा था।

प्रश्नकर्ता : बस। वही जायदाद।

दादाश्री : बस। वही मेरी जायदाद थी। मुझे वही आनंद रहता था। उसमें चरित्र की बहुत कीमत थी।

प्रश्नकर्ता : चरित्र की बहुत कीमत!

दादाश्री : भाभी चाहे अन्य प्रकार से मुझे कड़वे ज़हर जैसी लगती

थीं लेकिन इस बारे में राग भी था। लोग तो ऐसा ही समझते थे कि, 'इन दोनों का पूर्व जन्म का ज़बरदस्त बैर है!' फिर भी उनके प्रति भाभी के तौर पर कभी भी भाव नहीं बिगाड़ा। मुझे उनके प्रति अच्छा भाव क्यों रहता था? क्योंकि 'उनमें एक मुख्य गुण था, पराये पुरुष की तरफ दृष्टि नहीं की थी कभी भी'। चरित्र उच्च था तो वह बहुत अच्छा कहा जाएगा न! कितना बड़ा गुण कहा जाएगा!

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ा।

दादाश्री : हमारे परिवार में यह गुण है। पहले बा वैसी थीं, फिर हीरा बा भी वैसी थीं, और ये भाभी भी वैसी। पूरा परिवार कैसा? अद्‌भुत परिवार कहा जाएगा।

कलियुग में इसी एक 'सती' को देखा था हमने

अभी (1986 में) वे अस्सी साल की हो चुकी हैं। पचास साल से विधवा हैं। पचास साल विधवा की स्थिति में बिताए। पचास-पचास साल तक विकराल काल बिताया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पचास साल।

दादाश्री : तीस साल की उम्र में विधवा हो गई थीं, लेकिन चरित्र के बारे में कभी भी कोई शिकायत नहीं। एटिकेट वाली स्त्री थीं! अच्छे कपड़े-वपड़े पहनने की छूट थी फिर भी नहीं पहनती थीं। यों योगिनी की तरह। क्या आपको लगता है कि उनमें कोई योगिनी जैसे गुण हैं? योगिनी अर्थात् जिसने पराये पुरुष के सामने दृष्टि तक नहीं डाली। दृष्टि नहीं बदली कभी भी। इसी वजह से, वे चाहे कुछ भी कहें, मैं करने को तैयार हूँ क्योंकि हमारे गाँव में उनके चरित्र को लेकर कभी भी शिकायत नहीं आई। कोई उनके लिए कुछ भी नहीं कह सकता था, उन पर उँगली नहीं उठा सकता था इसलिए वे जो भी कहें, मैं उनके (खुद के) लिए वह करता हूँ। और यदि वे कहें कि, 'आप भोले हो,' तो मैं कहता हूँ, 'भोला हूँ'।

पवित्र लेडी (स्त्री), और दिखाई देता है न, प्योरिटी है! पहले से

ही मर्यादा धर्म ले लिया था न, मणि भाई की डेथ हुई तभी से। फिर कभी भी विचलित नहीं हुईं। पूरी ज़िंदगी संयम का पालन किया। ऐसे भयंकर कलियुग में, इस काल में कौन संयम का पालन कर सकता है? वह पुण्य ही कहा जाएगा न! इस काल में चरित्र! उन्होंने कभी भी पर पुरुष को नहीं देखा, न ही जाना। पूरी ज़िंदगी में कभी भी किसी पुरुष को नहीं छुआ। खराब विचार तक नहीं आया कभी भी। यह सब मुझे बहुत अच्छा लगा। मूलतः वे अहंकारी थीं, सुनती ही नहीं थीं न किसी की। ऐसे संयम का जब पालन करे, तब भगवान खुश होते हैं। क्या यों ही खुश हो जाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते।

दादाश्री : इसलिए महाराज (सहजानंद स्वामी) खुश हो गए होंगे। ऐसा सब हो तभी खुश होते हैं न!

प्रश्नकर्ता : दादा, मैं उनके पैर छूने गया था, तब 'ज़रा दूर रहना, दूर रहना' ऐसा कहा था।

दादाश्री : हाँ, उन्होंने किसी भी पुरुष को नहीं छुआ था, और यदि उन्हें आपका हाथ छू जाता न, तब उन्हें नहाने जाना पड़ता था।

प्रश्नकर्ता : ऐसा?

दादाश्री : ऐसा नियम लिया था।

हिन्दुस्तान में अभी भी कई ऐसी स्त्रियाँ होंगी लेकिन मैंने अगर देखा हो तो सिर्फ इनको अकेले को ही। मेरा अनुभव किया हुआ।

प्रश्नकर्ता : स्त्रियों में ऐसा जीवन बहुत कम देखने को मिलता है।

दादाश्री : अब इस कलियुग में होगा ही कहाँ से? सतयुग में भी शायद ही कोई, दो-पाँच सतियाँ होती हैं।

गर्व बहुत था उन पर, इसलिए वश में रहा

उनके बाकी गुण बहुत उत्तम थे। यह स्त्री, किसी भी पुरुष के

सामने नहीं देखती थीं, इसलिए मुझे उन पर बहुत गर्व था, ज़बरदस्त गर्व! गर्व तो रहेगा न! चाहे कितना भी कपट करें फिर भी गर्व रहता था। मेरे मन में तो कितना वो था! भले इतनी अधिक बुद्धि थी लेकिन इस तरफ सीधे रहे इसलिए उन्हें इतना सब आता भी है न! वर्ना आता क्या? मेरे लिए तो बहुत पूज्य हैं! वे डाँटे फिर भी मन में ऐसा रहता है कि ऐसी भाभी तो मिलेगी ही नहीं न! वर्ना सुनना पड़ता न हमें?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : पूरा गाँव कहता है कि 'आपकी भाभी ने कभी भी इज़्ज़त पर किसी भी तरह का कलंक या और किसी भी प्रकार की चरित्र के बारे में शिकायत नहीं आने दी'। वर्ना यदि किसी भी प्रकार से उनके चरित्र का खंडन होता तो सारी परेशानी तो मुझ पर ही आती न? इसलिए मेरे लिए तो इतना ही बहुत हो गया। 'आपको मुझे गालियाँ देनी हों तो दे देना'। हिसाब ही चुकाना है न! और क्या करना है?

हमारे मन में ऐसा होता है कि इतना उत्तम गुण है, इसलिए हम थोड़ी बहुत मार खा लेंगे लेकिन इनके साथ निभा लेंगे। इस उत्तम गुण को लेकर उनके वश में रहे हम कि 'ऐसे उत्तम गुण!' हमारे घर में इस तरह से था। चरित्र में बहुत ही हाई, मदर-वदर सभी, शुरू से ही। तो उन्होंने चरित्र संभाल लिया। अच्छा ही नहीं लगता था। पराए पुरुष का विचार ही नहीं। इसलिए फिर उसका लाभ तो होगा न! अभी भी अंदर उनके प्रति बहुत मान है, लेकिन वह मैं दिखाता नहीं हूँ, वर्ना चढ़ बैठेंगी वापस। चढ़ बैठेंगी या नहीं?

'देवर हमारे लक्ष्मण जी जैसे'

प्रश्नकर्ता : दादा, भाभी को आप पर गर्व था क्या?

दादाश्री : हाँ, मुझे भी बचपन में 'लक्ष्मण जी' कहती थीं। वे कहती थीं, 'मेरे देवर लक्ष्मण जी जैसे हैं। मेरे देवर जैसा देवर नहीं मिलेगा'। क्योंकि हम दोनों एक ही उम्र के थे। मैं उनकी एड़ी की तरफ ही देखता था, चहेरे की तरफ नहीं देखा। जैसे लक्ष्मण जी ने सीता जी

को रखा था, उसी तरह से मैंने इन्हें रखा था। वे खुद ऐसा कहती थीं कि, 'कहना पड़ेगा मेरे देवर के बारे में!'

प्रश्नकर्ता : बहुत कम परिवारों में ऐसा देखने को मिलता है। मिलेगा ही नहीं न, बहुत ही कम। इस कलियुग में तो मिलता ही नहीं है।

पावरफुल बुद्धि से समझाती थीं शास्त्र

दादाश्री : हमारी भाभी बहुत पावरफुल थीं। उनका ब्रेन बहुत ज़बरदस्त था इसलिए जब बातचीत करती थीं न, तो कितनी अच्छी! बुद्धि बढ़ गई थी न! किसी के साथ बातचीत करती थीं न, तो उसकी भूल ढूँढ निकालती थीं। बुद्धि इतनी अच्छी थी! ऐसी, वकील जैसी बुद्धि, जो पुरुषों की भी गलती पकड़ ले!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वहाँ क्रमिक में तो बुद्धि की ही ज़्यादा ज़रूरत है न?

दादाश्री : हाँ, उनकी बुद्धि ज़बरदस्त थी। यदि पचास-सौ स्त्रियाँ बैठी हों तो उन्हें उपदेश देने लगती थीं। वे बहुत अच्छा उपदेश देती थीं और सभी शास्त्र समझा सकती थीं क्योंकि शुरू से ही उन्हें शास्त्रों का बहुत कुछ आता था। पहले से ही दिमाग़ अच्छा चलता था। अभी भी, जहाँ हमारा नया घर बनाया है न, वहाँ पाँच-पचास स्त्रियाँ इकट्ठी करके खुद सत्संग करवाती हैं, सभी को समझाती हैं। उन्हें बहुत समझ है। वे शास्त्र के शास्त्र समझा देती हैं। तो ये सभी पचासों स्त्रियाँ उनके पीछे-पीछे घूमती रहती हैं।

सत्संग समझाना क्या कोई ऐसी-वैसी बात है? मुझसे कहती हैं, 'सब ने मेरे यहाँ इकट्ठे होकर पूरी रात भक्ति की'। मैंने कहा, 'अच्छा है। करो'।

प्रश्नकर्ता : रोज़ हमारे वहाँ से जाते हैं सब।

दादाश्री : हाँ, सभी जाते हैं। बल्कि अच्छा हो गया। यह तो

हमारा धन्य भाग्य कहा जाएगा न! मुझे आनंद होगा न! उनकी कुछ बातें लोगों को समझ में आएँ तो अच्छा है न! अच्छी स्त्री हैं, बहुत सत्संगी हैं! पूरी ज़िंदगी भक्ति की, 'महाराज, महाराज' कहती हैं।

उस धर्म ने ही उनका रक्षण किया

हमारी भाभी ने स्वामीनारायण धर्म को अच्छे से पकड़कर रखा है। विधवा स्त्री के लिए यह मार्ग सब से अच्छा है। क्योंकि तीस साल में विधवा हो गई थीं, लेकिन देखो न चरित्र बिल्कुल पवित्र। तभी तो मैं कहता हूँ न कि यह धर्म अच्छा है। धर्म ने ही उनकी रक्षा की।

प्रश्नकर्ता : वास्तव में धर्म ने ही उनकी रक्षा की, दादा।

दादाश्री : हाँ। और उनकी भावना थी न! बहुत मज़बूत। अब तीस साल की उम्र थी, इतने साल कैसे बिताए? धर्म में घुस गईं न, फिर इसके बाद, 'किसी भी स्त्री या पुरुष को नहीं छूना है', ऐसे सब नियम ले लिए थे तो वह बहुत अच्छा हुआ।

भाभी ने कहा, 'मुझे भी ज्ञान दो'

एक बार वहाँ (बड़ौदा में) दर्शन करने आई थीं, पच्चीस-तीस स्त्रियों को लेकर। वे सब उनकी असिस्टन्ट थीं, उनकी फॉलोअर्स थीं सभी। नीरू बहन बैठी थीं और भाभी उन सब को लेकर आईं। तब फिर उनके फॉलोअर्स ने क्या कहा? 'जैसे आप इनके लिए हो न, वैसे ही ये हमारे लिए हैं'। मैंने कहा, 'बहुत अच्छा है भाई'।

एक बार दसेक साल पहले हमारी भाभी आई थीं। मुझसे कहा कि 'मुझे आत्मज्ञान दो'। फिर मैंने कहा, 'नहीं, आपको ज्ञान नहीं दे सकता'। तब कहा, 'आप इन सब को ज्ञान देते हो तो मुझे क्यों नहीं देते?' तब मुझे ऐसा लगा कि यदि इन्हें ज्ञान दे दूँगा तो फिर कितने ही लोगों को बेचारों को कोई समझाने वाला नहीं मिलेगा। वे जब खुद पढ़ती थीं तो उनके पास पचास स्त्रियाँ बैठी रहती थीं। अब वे पचास सत्संगियों को सत्संग करवाती हैं। वह खंभा टूट जाएगा तो पचास लोग कहाँ बैठेंगे

बेचारे? यदि उनका खंभा ही गिर पड़े तो जो रोज़ सत्संग सुनते हैं, वे कहाँ जाएँगे? कौन उपदेश देने जाएगा?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

नहीं तोड़ सकते थे लोगों का आधार, उन्हें ज्ञान देकर

दादाश्री : इन्हें ठंडक हो जाती तो फिर वहाँ नहीं जातीं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, फिर नहीं जातीं।

दादाश्री : और अगर यह खंभा गिर जाएगा तो परेशानी हो जाएगी। हम कहाँ यह खंभा तोड़ें? इसलिए मैंने कहा, 'यह ज्ञान आपको देने जैसा नहीं है। ऐसा ज्ञान तो आपको फिर भी मिल जाएगा, आपका और मेरा पारिवारिक संबंध हुआ, वह कोई ऐसा-वैसा नहीं है। आप जो कर रही हैं वह ठीक है। आपके पास तो ज्ञान है ही न! आपको क्या मतलब है इससे?' ऐसा कहकर वापस भेज दिया। कितने सारे लोग थे इनके साथ और इन्हीं के आधार पर तो उन लोगों का सब चल रहा था।

प्रश्नकर्ता : सही बात है।

दादाश्री : मैंने कहा, 'आपका धर्म बहुत अच्छा है'। वे अपने आप ही नमस्कार करती रहती थीं। जिनका ऐसा है कि अपने आप ही हो जा रहा है तो हम उन्हें यहाँ इसमें नहीं डालते। यहाँ पर कहाँ रखें सब को? पाँच सौ लोगों का यहाँ पर खाना बनाने में परेशानी होती है तो फिर इतने सब का क्या होगा? हम भीड़ बढ़ाने नहीं आए हैं? हम तो, जिन्हें पूर्णतः मुक्त होना है, उनके लिए है यह सब।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अतः अपनी इच्छा ही नहीं है उन्हें इस तरफ लाने की।

अंत में भगवान समझकर करते थे आरती

प्रश्नकर्ता : अब आपकी भाभी यहाँ आकर आपके दर्शन करती हैं क्या?

दादाश्री : हाँ, पंद्रह-बीस साल से करती हैं सबकुछ, इस तरह बैठकर। इनके जैसा कोई कहे कि 'भगवान हैं' तो फिर पैर छूती हैं। वे तो पहले से ही पैर छूती थीं सभी के, हर रोज़। जब कभी भी मिलते तो नीचे बैठकर पैर छूती थीं, साड़ी फैलाकर। जब हमारा थोड़ा-बहुत ऋणानुबंध कम हुआ न, तब! लेकिन अभी भी है। इन्होंने कहा तो आरती उतारती हैं। वहाँ भादरण में घर पर जाता हूँ तब भी आरती उतारती हैं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : जब ये नीरू बहन समझाती हैं तब फिर आरती करती हैं। हम वहाँ गए थे न, तब उन्होंने कहा कि 'मुझे दादा की आरती उतारनी है'। तो सब के सामने उन्होंने आरती उतारी थी। उदयकर्म की कितनी उलझनें रहती हैं!

कर्म की उलझनें हुई नरम, फिर भी दादा रहे सावधान

प्रश्नकर्ता : लेकिन उतना तो नरम हुआ न? तो अब क्या बचा?

दादाश्री : लेकिन हम सावधान रहते हैं। फाइल है न! फाइल, फाइल! मेरे कहने से पहले ही वे पूरी बात समझ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी की बहुत ही विचक्षण!

दादाश्री : बहुत विचक्षण, ज़बरदस्त! इसलिए मुझे सिर्फ आधी बात ही कहनी पड़ती है। यह सारा हिसाब है फाइलों का, तो मैं जैसे-तैसे करके इसमें से बाहर निकला। मेरा हिसाब खत्म हो जाए तो बहुत अच्छा। इनके जैसे तो खत्म करवा देते हैं, बक-बक करके।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें खत्म करने जैसा है ही क्या?

दादाश्री : नहीं, कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपको जब फ्रेक्चर हुआ था, तब एक बार आपकी तबीयत पूछने आई थीं। मुझे याद है।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय बहुत ही *लागणी* (भावकुता वाला प्रेम) से आपकी तबीयत पूछ रही थीं।

दादाश्री : *लागणी* तो है लेकिन ज़्यादा तो वह है (बैर वाला)।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जहाँ *लागणी* होती है, वहाँ पर वैसा रहता ही है।

दादाश्री : राग और द्वेष दोनों ही रहते हैं न!

एक बार तो जब जयंती मनाई तब कहा, 'मुझे दूसरी मनानी है'। मैंने कहा, 'आप यही कहती हैं न, कि दादा आप बहुत जीएँ'।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो अच्छा हुआ कि आशीर्वाद मिला है, अब बढ़ेगी, बढ़ेगी अब! दिवाली बा के आशीर्वाद तो फलेंगे न! वे बड़ी हैं, पूज्य हैं। व्यवहार में तो पूज्य ही हैं न!

दिवाली बा करती थीं दादा की पुरानी बातें

प्रश्नकर्ता : बा, दादा की पुरानी बातें बताइए न।

दिवाली बा : मैं जब भादरण से अटलादरा जाती थी, तो वहाँ बीच में उतरकर हीरा बा से मिलने जाती थी। हीरा बा के जाने के बाद कम कर दिया मैंने। लेकिन अंबालाल का मेरे प्रति बहुत भाव था।

नीरू माँ : बहुत भाव।

दिवाली बा : वे (मणि भाई) धाम में गए न, तो मैं बहुत रोती थी। मेरे पैरों पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, 'मैं आपको बा की तरह रखूँगा'। तो उसी प्रकार से रखा है।

मुझे डाँटते भी थे। देवर हैं न! लेकिन मेरा प्रेम भी कम नहीं होता था। भाव से (हृदय से) कम नहीं होता था।

भाभी थीं न, इसलिए परेशान करते थे

प्रश्नकर्ता : भाभी थीं न इसलिए डाँटती थीं, परेशान भी करती थीं न?

दिवाली बा : हाँ, बहुत। मैं अटलादरा में मेरी सेवा भूल गई थी, शेल्फ (ताक) पर। वहाँ मेरा एक कमरा था, मेरे जैसी ही चार बुज़ुर्ग महिलाएँ। तो सभी की शेल्फ पर रखी थीं। तब फिर मैं बड़ौदा में घर पर आकर नहाई। फिर जब मेरे कपड़े लेने के लिए सामान निकाला तब मेरे ठाकुर जी की वह सेवा नहीं दिखाई दी। मैंने कहा, 'मेरी सेवा रह गई वहाँ शेल्फ पर और मैं शेल्फ पर से लेना ही भूल गई'। तब फिर वहाँ से मैं मोटर में आई थी इसलिए उपवास करना पड़ा और अंबालाल घर पर ही थे। अंतिम सालों में शरीर में कमज़ोरी की वजह से वे खुद भी काम पर नहीं जाते थे और शाम भी होने लगी। फिर पूजा के बिना तो मुझे उपवास करना पड़ता, यानी कि खाना नहीं खा सकती थी। मैं मोटर में आई थी इसलिए उस शाम को खाना नहीं खाना था मुझे। तो फिर अगले दिन पूजा किए बिना मैं खाना कैसे खाऊँगी? मैंने अपने मन में ऐसा सोचा।

एक व्यक्ति अटलादरा जा रहा था, वह नौकरी करता था वहाँ, बनिया था। ठेठ मामा की पोल में उसके वहाँ जाकर पूछा। मैंने कहा, 'भाई, आपके घर से कोई अटलादरा जाएगा?' तो कहा, 'नहीं'। उनका बेटा था वह बोला, 'मेरे पापा तो आ गए'। अब किसके साथ? फिर वापस आई और फिर लगा कि अंबालाल को बताए बिना नहीं चलेगा? मैंने कहा, 'भाई, मैं तो मेरी पूजा भूल गई हूँ अटलादरा और आज अभी तो मुझे कुछ नहीं खाना है, मोटर में आई न इसलिए। लेकिन अब कल अगर यदि मैं लेने जाऊँगी तो वापस उपवास करना पड़ेगा और आते हुए वापस'। तब फिर उन्होंने कहा, 'तो फिर उपवास कर लेना!' ऐसा कहा न तो फिर मैं तो अंदर कमरे में चली गई। हाँ, तो ठीक है। उसके बाद फिर चंद्रकांत आया गाड़ी लेकर। चंद्रकांत रोज़ शाम को पाँच बजे दादा के पास आता था। तब फिर वे वहाँ से उठकर और चबूतरे पर गए। कुछ खड़का तो उन्हें पता चला कि चंद्रकांत आया है तो उन्होंने चंद्रकांत से कहा, 'खड़ा रह, तू अंदर आ गाड़ी रखकर। जूते मत निकालना। अटलादरा जाना है। दिवाली बा अपनी पूजा भूल गई हैं'। तब फिर चंद्रकांत खड़ा रहा और फिर खुद कोट पहनकर गए। तो वहाँ शेल्फ पर

रखी थी सब की सेवा। तब मैंने कहा कि 'मेरी सेवा लाल कपड़े में है और ये सभी लोग जानते थे कि यह दिवाली बा की है'। फिर वे चंद्रकांत की गाड़ी लेकर गए और मेरी पूजा लेकर आए। मैंने जिस कमरे में बताया था उस अनुसार वहाँ से लेकर आ गए, तब मुझे शांति हुई। बहुत शांति, कितना था उन्हें!

तो 'तब फिर उपवास कर लेना' ऐसा कहा और जाने का तो उन्होंने पक्का कर ही लिया था लेकिन मुझे तो ऐसा कहा।

नीरू माँ : आपको परेशान करते थे, आप भाभी थीं न? आपका भी फिर ऐसा ही था न, बराबरी का हिसाब था न, देवर-भाभी का!

दिवाली बा : हाँ, फिर लेकर आए। उन्हें मेरे लिए कितना था! उनका वह सब तो मुझे अभी भी बहुत याद आता है। उनकी डाँट भी याद आती है, लेकिन फिर मुझे गुस्सा नहीं था। मुझे जिस प्रकार से कुदरती भाव होते हैं न, उस प्रकार से उनके बारे में भाव रहता है।

महाराज, मेरे अंबालाल को कुछ नहीं होगा

प्रश्नकर्ता : बा, आपको दादा के प्रति बहुत भाव है?

दिवाली बा : बहुत। सयाजीराव थे उस समय शुरुआत में बड़ौदा में जब जातीय झगड़े हुए थे और वे सब्ज़ी लेने गए थे मार्केट में और बहुत समय बीतने पर भी नहीं आए। हमारी जोगीदास विठ्ठल की पोल (मुहल्ले) के सामने तो बहुत लोग इकट्ठे हो गए थे। मैंने कहा, 'हमारे अंबालाल बाहर मार्केट में गए हैं'। तो मैं तो घबरा गई। तब फिर भगवान कृष्ण की एक मूर्ति रखी हुई थी। भगवान से कहा, 'महाराज, हमारे अंबालाल को आने-जाने में मार्केट-वार्केट में अगर उन्हें पता नहीं है और अगर वे किसी की लपेट में आ जाएँ तो मेरे अंबालाल को कुछ भी नहीं होना चाहिए!' मुझे ऐसा हो रहा था। फिर घर पर आ गए। वे किसी की भी चुंगल में नहीं फँसते थे। वे तो ऐसे थे कि कहीं भी छुप जाएँ! मुझे सब पता है न! ऐसे थे वे तो। उन्होंने वैसा ही भाव और प्रेम

अंत तक रखा। बहुत ही समझदार और कुछ भी नहीं बोलते थे, और बोलते थे न तब जैसे एक मुरमुरा रखने जितना!

उन्होंने भाभी से अपना धर्म छोड़ने का भी आग्रह नहीं किया

दिवाली बा : उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि आप स्वामीनारायण धर्म छोड़ दो या हम आत्मज्ञान की बातें करें। हम दोनों बातें भी करते थे लेकिन उस समय उनका इतना प्रचार नहीं था। यानी उनके मन में ऐसा था कि यहाँ पर नियम-धरम अच्छा है इसलिए ठीक है। मेरी कम उम्र थी। उनसे एक साल बड़ी थी। अत: मैं और वे दोनों ज्ञान की बातें करते थे। उनके भाई इन बातों में नहीं पड़ते थे और उनके सामने हम बातें भी नहीं करते थे। मैं डाँटती भी थी और फिर वे भी मुझे बहुत डाँटते थे लेकिन उसके बाद फिर कुछ भी नहीं। आंतरिक *लागणी* है न वह तो!

शुरू से ही भगवान में रुचि

दिवाली बा : हमारा चंद्रकांत, इन सब के बजाय इन पर ज़्यादा प्रेम था कि, दादा तो भगवान जैसे हैं! चंद्रकांत औरों के सामने बातें करते थे कि 'दादा, तो भगवान जैसे हैं'। इस संसार से अलग बातें। इस संसार की बाते नहीं थीं, आत्मा की अर्थात् ज्ञान की। यदि वह होता तो बाकी सब कहते हैं कि दादा इन्हें ज्ञान देने वाले थे लेकिन वह तो कम उम्र में ही एक दिन चला गया (देहांत हो गया)। पहले हमेशा शाम को पाँच बजे गाड़ी लेकर आता था, अलकापुरी से बड़ौदा।

प्रश्नकर्ता : क्या दादा शुरू से ही संसार में अलिप्त रहते थे?

दिवाली बा : शुरू से ही किसी भी प्रकार के काम में उनका चित्त ही नहीं रहता था। 'कुछ काम करना है' ऐसा रहता था फिर करते भी थे। फिर शाम को पाँच बजे आते थे। इसमें बिल्कुल भी ध्यान ही नहीं था, व्यापार में नहीं, और संसार के अन्य किसी व्यवहार में नहीं। शुरू से ऐसा ही था।

नीरू माँ : कहते हैं, शुरू से ही व्यापार में या व्यवहार में किसी चीज़ में ध्यान नहीं था। बस, वे तो भगवान में ही रहते थे।

दादाश्री : मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता था, रुचता नहीं था। मुझे तो भगवान के अलावा और कहीं भी रुचि नहीं थी!

नीरू माँ : लेकिन बड़े भाई डाँटते थे उन्हें, 'काम नहीं करता है' ऐसा करके।

दादाश्री : हाँ, डाँटते थे।

नीरू माँ : कहती हैं, 'फिर उनके भाई कुछ कहते तब मैं बहला देती कि सब्ज़ी लेने गए थे। जैसे-तैसे करके मैं बहला देती थी'।

दादाश्री : बड़े भाई यों तो राजसी इंसान थे लेकिन स्वभाव ज़रा तेज़ था।

दादा के ब्रह्मचर्य के बारे में...

नीरू माँ : दादा के ब्रह्मचर्य के बारे में बताइए न।

दिवाली बा : उनके ब्रह्मचर्य की बराबरी तो कोई भी नहीं कर सकता। ओहोहो... उनके मन में बिल्कुल भी गलत विचार नहीं था। ऐसा था उनका ब्रह्मचर्य!

नीरू माँ : शुरू से ही, बचपन से ही ऐसा था?

दिवाली बा : बचपन से ही।

उन दिनों आड़, पर्दें बहुत थे। दो घरों के बीच में हमारी तरफ एक दरवाज़ा था, बड़ी खिड़की जैसा। हमारे दो घर थे, मेरे सगे चाचा ससुर का और हमारा। मंगल भाई का और मूलजी भाई का। वे जो जेठ थे तो उनकी शादी गजेरा में हुई थी, मेरे ही कुटुंब में। लेकिन उनका स्वभाव बहुत ही जेलसी वाला था, ईर्ष्या वाला था। मेरी बा ने मुझे बहुत दिया था। उनकी सास सौतेली थी, यानी कि उनकी पत्नी की सौतेली माँ, तो उन्होंने बहुत ज़्यादा कपड़े वगैरह नहीं दिए थे इसलिए उन्हें इर्ष्या होती थीं। बा भैंस रखते थे तो एक बार बा तरसाली गई थीं। तब चरवाहे की स्त्रियाँ छाछ लेने आती थीं। उन दिनों हर घर में भैंसें थीं। सभी लोग

भैंस रखते थे भादरण में और घर-घर कोदरा के पौधे होते थे, यहाँ तक कि उनमें पैर छुप जाएँ। यह सब मैंने देखा है। कोदरी के पौधे भैसें खाती थी। चरवाहे गायें रखते थे, तो उनकी स्त्रियाँ इतने बड़े-बड़े मटके लेकर छाछ लेने आती थीं। वे एक बार बा तरसाली गई हुई थीं और मुझे छाछ बिलोनी पड़ी। मेरी उम्र कम थी लेकिन अंबालाल भी साथ-साथ काम करवाने लगते। ऐसा है न, मैं उन जेठ से घूंघट रखती थी। मेरे जीजा लगते थे फिर भी। हम ऊपर काम कर रहे थे तो जब मुझे नीचे जाना था तब वे चौखट पर बैठ जाते थे। फिर अंबालाल भाई को तो गुस्सा आया तो वे लकड़ी लेकर नीचे आए और कहा, 'यहाँ से उठते हो या नहीं? उठो, जाओ बाहर! यहाँ बीच में क्या करने बैठे हो? नहीं तो लकड़ी से मारूँगा'। अंबालाल चौदह-पंद्रह साल के थे। तो फिर वे भाग गए। मुझे संडास जाना होता, बाथरूम जाना होता तब भी उन्हें ईर्ष्या होती थी और वे बीच चौखट बैठ जाते थे। उन दिनों परदे का रिवाज था इसलिए मैं नहीं जा पाती थी। अगर कोई पुरुष बैठा हो तो घूंघट निकालना पड़ता था। और बा कहती थीं, 'तेरे जीजा जी लगते हैं न!' 'वह तो पागल है', बा ऐसा कहती थीं। उससे घूंघट मत निकाल। वह तो ऐसा है कि मार दे। अंबालाल उनके पीछे दौड़े तो अंबालाल के डर से वे भाग गए।

संसार का मोह नहीं था

प्रश्नकर्ता : आप दादा के बारे में बता रही थीं न कि दादा की शादी करवाने के बाद भी दादा को संसार का मोह नहीं था। हीरा बा दस साल तक पीहर में रही थीं।

दिवाली बा : मोह नहीं था। वे चौदह साल के थे तब जैसे लोग शादी करते थे उस तरह उनकी भी शादी हुई, लेकिन उन्हें ऐसा कुछ नहीं था। उन्हें खुद को ऐसा नहीं था कि यह मेरी स्त्री है, धर्मपत्नी है और मैं इसका पति हूँ। उन्हें तो मोह ही नहीं था, कपड़ों का भी मोह नहीं था और पत्नी का भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर हीरा बा कितने साल पीहर में रही थीं?

दिवाली बा : उन्हें तो फिर पाँच-छः साल बाद लेकर आए थे। शादी के वक्त उनके पिता जी ने पैसे कम दिए थे। मेरे ससुर ने दो हज़ार का दहेज तय किया था उस समय। कितने साल हो गए उस बात के तो! उस समय दूध दो आने किलो था, एक आना ही, दो आने भी नहीं, एक रुपए का दो सेर-ढाई सेर घी मिलता था, भैंस का। उनकी शादी के वक्त ऐसा सब था। मैं उनके भाई की दूसरी पत्नी थी। मेरे साथ उन्हें (अंबालाल को) पहले से ही बहुत जमता है, भाई-बहन की तरह रहे हैं।

दादा और उनकी भाभी के बीच का वार्तालाप

दादाश्री : मूलजी भाई संवत तिरासी (संवत 1983, ईसवी सन् 1927) में चले गए। मणि भाई 1940 में चले गए और बा, मेरी उम्र जब अड़तालीस साल की थी तब 1956 में चले गए। हीरा बा भी 1986 में चले गए।

प्रश्नकर्ता : दिवाली बा कहती हैं कि, 'अब, जब मैं जाऊँ, तब आप आना'।

दादाश्री : ऐसा तो कहीं होता होगा? वह तो आप सब को भेजकर फिर जाएँगी। मैंने कहा, 'आपको जाना हो तो मुझे भेजकर जाना... उसमें हर्ज क्या है? मैं तो जी ही रहा हूँ। मैं कभी मरूँगा ही नहीं न! हीरा बा भी नहीं मरे हैं'।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहती हैं, 'आत्मा कहाँ मरता है? आत्मा मरता ही नहीं है'।

दादाश्री : बस।

प्रश्नकर्ता : वे कहती हैं, 'मैं मर जाऊँ, तब आप भादरण आना'।

दादाश्री : आप पहले मरोगे? अरे! आप तो रहना न, शरीर अच्छा है आपका। क्या दुनिया में अच्छा नहीं लगता?

दिवाली बा : भगवान का आसरा है इसलिए अच्छा लगता है।

दादाश्री : वह बहुत बड़ा आसरा है!

दिवाली बा : इसलिए अच्छा लगता है।

दादाश्री : वह आसरा अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : कहते हैं कि अब बस में अकेले आने की हिम्मत नहीं होती लेकिन आखिर में हीरा बा को आकर देख गए थे।

दादाश्री : अब उनकी हिम्मत नहीं होती लेकिन वहाँ बच्चों से मैंने कहा था न कि जब भी आप आओ तब इन्हें लेकर आना।

प्रश्नकर्ता : वे तो कहती हैं कि 'जब दादा का एक्सिडेन्ट हुआ तब देखने आई थीं, तब उनके दर्शन किए थे। उसके बाद से बहुत नहीं आ पातीं'।

दादाश्री : उम्र हो गई है न! मुझसे भी एक साल बड़ी हैं।

मैं अपना पिछला अनुभव बताता हूँ कि यह सत्संग जैसा होना चाहिए वैसा क्यों नहीं होता था? क्योंकि भूतकाल की, ज्ञान होने से पहले की जो बातें निकलती थीं, वे आवरण लाती थीं। वह मुझे समझ में आया। तो जब से पूर्वकाल की बातें करना बंद कर दिया, तब से सत्संग सुंदर निकलता है। ज्ञान मिलने से पहले की बातों को पूर्वाश्रम कहते हैं, वह रिलेटिव आश्रम कहलाता है। वह सारा पोइज़न ही कहा जाएगा। तो अब रियल आश्रम आया। हमारा सत्संग तो कैसा है! रिलेटिव से कोई लेना-देना नहीं है, रियल में संपूर्णत: प्राप्त किया है। उनका, ज्ञानियों का हेतु क्या है? समग्र लोक के कल्याण के लिए नॉर्मल भाव, अन्य कोई भाव ही नहीं और निरंतर सत्संग का माहौल तो ये (पूर्वाश्रम की) बातें भगवान के वहाँ दुर्गंध देती है। ऐसी (पूर्वाश्रम की बातें) पहले के ज्ञानियों में थीं या नहीं, वह शंकास्पद है।

[9]

कुटुंब-चचेरे भाई-भतीजे

ज्ञानी भी खिलौना, ब्लड रिलेशन के प्रति नहीं है खिंचाव

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को जो भी परिजन मिलते हैं उनके साथ पहले का कितना ऋणानुबंध होता है? पूर्व का ऋणानुबंध कितना इफेक्ट करता है? और क्या ज्ञानी को उनके प्रति खिंचाव रहता है?

दादाश्री : वे भी खिलौना और ज्ञानी भी खिलौना। ज्ञानी को बहुत आकर्षण नहीं रहता, चुंबक और आलपिन जितना आकर्षण रहता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा!

दादाश्री : ब्लड रिलेशन है न!

ग्यारह पीढ़ि से हमारा एक ही गाँव अब बोलो, ब्लड रिलेशन है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : पक्की तरह से।

दादाश्री : हमारे यहाँ दोनों मुहल्ले हमारे ही कुटुंब वालों के थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो नागजी भाई (ग्यारहवीं पीढ़ी के परदादा) के सामने हम सब एक ही हैं।

दादाश्री : सही है।

तब एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि, 'मैं तो जुआ खेलता हूँ और ऐसा सब करता हूँ और रमी खेलता हूँ'। 'अरे, कोई बात नहीं, बैठ। तू सब खेलता है लेकिन जीवित है न! मुझे मिला है न, तेरा

काम हो जाएगा'। किसी परेशानी की वजह से ऐसा रास्ता अपना लिया बेचारे ने। तो क्या इसका मतलब यह है कि वह इंसान नहीं रहा? ये पशा भाई डॉक्टर बने और उनके चाचा का बेटा किसी दूसरे रास्ते पर चला गया तो क्या इसका मतलब ऐसा है कि वह इंसान नहीं रहा? तो क्या फैमिली में से निकल गया? क्या उसे हमें निकाल देना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो ऐसा है कि जब तक यह शरीर है तब तक सभी हैं।

दादाश्री : रिलेशन है न! ब्लड रिलेशन है। आपने कहा न, 'मैं भादरण के मुहल्ले का हूँ'। यानी बड़ी खड़की वाले मेरी चौदह पीढ़ियों के रिलेशन में हैं। आप दसवीं या ग्यारहवीं पीढ़ी में आते होंगे न? रिलेशन है न?

प्रश्नकर्ता : भादरण में दो *खड़कियाँ* (मुहल्ले) हैं, एक छोटी और एक बड़ी।

दादाश्री : ठीक है। बड़ी खड़की वाले मेरे चौदहवीं पीढ़ी के संबंधी हैं, तो आपके संबंध कुछ दो-तीन पीढ़ी कम होंगे, लेकिन हम सब एक ही हैं न? जुदाई है ही नहीं न? इस छठी पीढ़ी के हम चाचा बने। किसी की आठ पीढ़ियाँ है, किसी की सात पीढ़ियाँ है और वह भी सिर्फ यहाँ पर व्यवहार के लिए ही। यदि झगड़ा वगैरह हो जाए तब फिर तू कौन और मैं कौन? यहाँ तो बाप के साथ भी झगड़ा हो जाता है तब क्या होता है?

अहंकार की लड़ाई लेकिन कपट नहीं होने से एकता

प्रश्नकर्ता : लड़ाई भी बहुत होती है, दादा?

दादाश्री : वह तो, घड़ी भर में, जब वे खुश-खुश हों तब, ऐसा भी कहते हैं कि 'ये मेरे चाचा लगते हैं, मेरे फादर के चाचा हैं, और कुछ लोगों ने अपने *खड़की* (मुहल्ले) वाले को टोका कि यह अंबालाल

तो... तो फिर वापस मन में ऐसा होता है कि बहुत रोटर (नालायक) इंसान है यह। यानी कि रिलेशन में तो सब ऐसा ही है! हम भी ऐसा ही करते थे बचपन में।

सभी का ऐसा ही स्वभाव था। ये सब चाचा के बेटे एकदम तेज़ स्वभाव वाले, पाँच मिनट में झगड़ पड़ते और दस मिनट में वापस साथ में खाने बैठ जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : आज ऐसा कह रहे थे कि 'बाहर झगड़ा करते हैं लेकिन फिर घर आकर कुछ भी नहीं।

दादाश्री : उसी क्षण, तुरंत ही आइस्क्रीम खाने बैठ जाते हैं। सारा झगड़ा-वगड़ा, 'तुझे कौन पूछता है' ऐसा कहते हैं!

अंदर से साफ। थोड़ी देर बाद कुछ भी नहीं। लेकिन भारी लड़ाकू। कोई तो ऐसा समझे कि 'अब यह घर टूट गया। पच्चीस साल में भी एक नहीं हो पाएँगे ये लोग'। लेकिन जब वह वापस आता था तब उसके साथ बैठकर खाना खाते थे तो वह व्यक्ति भी सोच में पड़ जाता कि 'किस तरह के लोग हैं ये!' बहुत कम लोग ऐसे होते हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं उसके मुँह पर ही कह देता हूँ, वह भी मुझे मुँह पर कह देता है। पीछे से कुछ भी नहीं।

दादाश्री : हाँ! कपट नहीं। वर्ना मन टूट जाता है, इसमें मन नहीं टूटता।

प्रश्नकर्ता : कपट वाला हो तो मन टूट जाता है?

दादाश्री : टूट जाता है। यह तो साफ, प्योर। सिर्फ अहंकार ही बहुत भारी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो कपट वाला होता है वह झगड़ा नहीं करता। झगड़े को समेट लेता है।

दादाश्री : नहीं करता, लेकिन यदि हो जाए तो उसका क्या करे?

जान-बूझकर नहीं करता लेकिन हो जाता है, अगर सामने वाले को करना हो तो हो जाता है। हमें नहीं करना होता, लेकिन सामने वाले को करना होता है।

भतीजे बड़े लेकिन विनय बहुत रखते थे हमारा

ये तो, कुछ क्षण बाद कुछ भी नहीं। इनके (भतीजे के) फादर (कज़िन ब्रदर) से मैं बहुत लड़ता था। वे लोग यह सब देखते थे। बीस साल बड़े थे फिर भी ऐसे-ऐसे शब्द कह देता था।

प्रश्नकर्ता : बीस साल बड़े थे।

दादाश्री : सभी भतीजे बहुत लायक थे। ये तो एक अक्षर भी नहीं बोलते थे। ऐसा विनय कहाँ से लाएँ? एक-दो लोग तो मुझसे भी बड़े थे, रावजी भाई छोटे थे। 'दो भाई बोल रहे हों तो हमें बीच में नहीं बोलना चाहिए' ऐसा कहते थे और हमारे भाई भी कहते थे, 'ऐ! क्यों बोला? हम दोनों चाहे कुछ भी बोलें'। मेरे भाई जैसा भाई किसी को भी नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो मैंने देखा है दादा। उस दिन जब आप आए थे न, तब रावजी चाचा पास में बैठे हुए थे। फिर वल्लभ चाचा आए तो वे उठकर एक तरफ चले गए। रात को भी ऐसा किया कि जब वल्लभ चाचा आए, तब खुद उठकर उन्हें जगह कर दी।

दादाश्री : हाँ, भतीजे लगते हैं लेकिन मुझसे तीन साल बड़े हैं न!

प्रश्नकर्ता : आपके लिए तो जगह बना दी लेकिन वल्लभ चाचा के लिए भी बना दी।

दादाश्री : बना ही देंगे न, वल्लभ भाई बड़े हैं न! उनके फादर, जब कहीं शादी वगैरह होती थी न, तब उनके फादर के खाना खाने के बाद मेरी बारी आती तो हम पूछे बगैर नहीं बैठते थे। हमें वहीं बैठने जाना पड़ता था।

अगर बाहर वाला कोई कुछ कहे तो सहन नहीं होता था

अगर कोई (हमारे लिए) ज़रा सा भी टेढ़ा बोल दे न, तो हमारे भतीजे उससे लड़ने लग जाते थे, 'मेरे चाचा का नाम लिया? जानता है, मेरे चाचा कौन हैं?' अरे, यों तो मेरे साथ खदबद करते जाते हैं। एक ही खून था न! खून खौल उठता था।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा क्यों होता है? क्या खून का रिश्ता ऐसा करवाता है?

दादाश्री : खून का रिश्ता ऐसा ही होता है हमेशा।

प्रश्नकर्ता : दो भाई या दो बहन चाहे कितना भी एक-दूसरे को धिक्कारें लेकिन अगर कोई तीसरा कुछ कहे तो सहन नहीं होता।

दादाश्री : ब्लड रिलेशन में क्षण भर में एकदम राग हो जाता है लेकिन समानता नहीं रहती। बाहर समानता रहती है, एकदम राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं। ये तो घड़ी भर में कहते हैं कि, 'आपके बगैर मुझे अच्छा नहीं लगता'। और फिर घड़ी भर में कहते हैं, 'तुझे देखते ही मुझे चिढ़ मचती है'। ऐसे हैं ये राग-द्वेष। ब्लड रिलेशन का काम ही ऐसा है।

हम लड़ रहे हैं, उसमें आप बीच में पड़ने वाले कौन? अगर तीसरा कोई बोले तो उससे झगड़ा करने जाते। यह सब देखने जैसा है। अगर दो लोग अंदर-अंदर लड़ रहे हों और उन्हें हटाना हो न तो ऐसा तरीका अपनाता हूँ, तब उनका लड़ना बंद हो जाता है और वे तीसरे से लड़ने लग जाते। वहाँ उन दोनों के बीच की लड़ाई तो रुक गई। मैं गाड़ी दूसरी पटरी पर चढ़ा देता था।

यह गाड़ी इस पटरी पर चलाने के बजाय उस पटरी पर चली तो चली गाड़ी। हमने लोगों से कहा कि, 'मेरी गाड़ी को अब कोई दूसरी पटरी पर मत ले जाना'। मैं तो हमेशा जागृत हूँ इसलिए मैं पूछता हूँ कि 'पटरी बदलने आया है?'

चचेरे भाईयों में थी ज़बरदस्त स्पर्धा

प्रश्नकर्ता : चचेरे भाई थे तो क्या इसलिए ऐसा सब चलता ही रहता था?

दादाश्री : ये सब चचेरे भाई हैं। चचेरे भाई का मतलब क्या? कुटी हुई राई। रायते में डालना पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो जिसमें डालो, उसमें उनका स्वाद आ जाता है। नहीं देखा? आपके चचेरे भाई तो अच्छे होंगे, हमारे चचेरे भाईयों को तो अगर आपने देखा हो तो पता चल जाता। हाँ, हमारे पटेलों में चचेरे भाईयों में तो बहुत स्पर्धा रहती है, ज़बरदस्त। उनसे मैं बड़ा और मुझसे वे बड़े, ऐसी ही स्पर्धा...

हमारे एक चचेरे भाई मिल मालिक थे न, भरुच मिल वाले, तो उन्होंने कहा कि, 'दादा, आप तो भगवान बन गए और यह सब....' यानी कि वे पैसों के बारे में मुझसे स्पर्धा करने जाते थे। खून एक था न इसलिए जोश आ जाता था उन्हें, 'हम उनसे कम नहीं हैं'। इसलिए मुझसे कहा, 'अभी उसे एक लाख दिए है। और पाँच लाख दूसरे को देने हैं'। मैंने कहा, 'आप तो सेठ इंसान हो इसलिए आप दे सकते हो। मेरे पास लक्ष्मी आई ही नहीं इसलिए मैं नहीं दे सकता'। मैंने कहा, ''भाई, देखो! आप तो करोड़पति हो और मैं तो जैसे-तैसे करके, अपना यह कॉन्ट्रैक्ट का काम करके दिन गुज़ारता हूँ। हमारे पास करोड़ों नहीं हैं। मेरी आपसे कोई स्पर्धा नहीं है। अगर आप कहो कि 'आपके पास नहीं है' तो मैं कहूँगा, 'नहीं है'। और अगर आप कहोगे कि 'आपके पास है' तो मैं कहूँगा, 'है'। मुझे आपसे कोई तमग़ा (मेडल) नहीं लेना है, मुझे तो भगवान से तमग़ा लेना है। मेरे पास जो है वह आपके पास नहीं है और उसमें मैं कोई स्पर्धा नहीं करना चाहता। क्योंकि मैं तो पूरे जगत् का शिष्य बनकर घूम रहा हूँ। मैं किसी का गुरु बनने के लिए नहीं घूम रहा।'' यानी कि मैं तो सही बात कह देता हूँ। ऐसा रखता हूँ ताकि वे इस तरह मुझसे स्पर्धा नहीं करें लेकिन फिर भी स्पर्धा छोड़ते नहीं हैं न! ये मेरा नाम

देखते हैं न, न्यूज़ पेपर में आता है रोज़, दादा भगवान। तो हमारा ब्लड एक ही है न, तो उनसे सहन नहीं होता इसलिए आखिर तक स्पर्धा। इंसान स्पर्धा में से बाहर निकल जाए तो उसका बहुत काम हो जाए।

मुझसे स्पर्धा करो और आगे आओ

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, स्पर्धा डेवेलपमेन्ट की स्टेज तो है न?

दादाश्री : है। डेवेलपमेन्ट होता है। लेकिन डेवेलपमेन्ट कब होता है? जब स्पर्धा में सामने वाले की शक्तियों को दबाएँ नहीं और उसकी शक्तियाँ बढ़ रही हों तो बढ़ने दें। ये सभी स्पर्धा वाले तो क्या करते हैं? खुद आगे बढ़ने के लिए सामने वाले की शक्तियों को फ्रेक्चर कर देते हैं। लेकिन मैंने तो बचपन से ही एक नियम रखा था कि मैं अपने भतीजे, आसपास के सर्कल वालों से, सभी से कह देता था कि आपको जितनी ज़रूरत हो उतनी हेल्प करूँगा, व्यवहार में ही तो। तब यह ज्ञान नहीं था। व्यवहार में तो सभी को स्पर्धा रहती ही है न! सभी भतीजों से मैंने कह दिया था कि, 'आपको जो चाहे वह दूँगा लेकिन मेरे साथ स्पर्धा करो और मैं यहाँ तक भी देखने के लिए तैयार हूँ कि आप आगे आकर अपने सींग से मुझे मारो, लेकिन मज़बूत बनो। आपके सींग बढ़ जाएँ और उन सींगों से मुझे मारोगे तो भी मुझे हर्ज नहीं है लेकिन आप सींग वाले बनो। यानी कि ऐसे शक्तिशाली बनो। पीछे मत हटना'। मैंने ऐसी छूट दी थी सभी को। पीछे रहने के बजाय वे आगे बढ़ें तो अच्छा है। पीछे रहेगा तो हमें झंझट करनी पड़ेगी। अपने आप ही बढ़े तो अच्छा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : जबकि लोग तो पीछे धकेलने के तरीके खोजते रहते हैं। मैंने क्या कहा था कि आई विल हेल्प यू। मैंने पूरी ज़िंदगी ऐसा ही रखा।

सामने वाले की जिस शक्ति की प्रशंसा करते हैं, वह खुद को प्राप्त होती है

प्रश्नकर्ता : मुझ में भी ऐसा कहने की शक्ति आएगी?

दादाश्री : हाँ-हाँ। ऐसा देखोगे तो आएगी ही न। ये सब मुझसे कहते हैं कि 'दादा, ऐसी शक्ति हम में कब आएगी?' मैंने कहा कि जितने भी शक्तिशाली लोग हैं, अगर हम उनकी प्रशंसा करेंगे कि 'ओहो! कितनी अच्छी शक्ति है!' तो वह प्राप्त हो जाएगी, बस। दुनिया का यही नियम है। शक्ति उसे पछाड़ने से प्राप्त नहीं होगी। ऐसा नहीं होगा कि उसे पछाड़ने से आप आगे आ पाओगे। उसकी प्रशंसा करोगे, उसे आगे बढ़ने दोगे तो आप भी आगे बढ़ोगे। स्पर्धा ऐसी होनी चाहिए कि उसकी प्रशंसा करके आप आगे बढ़ो। अगर उसकी निंदा करके, उसे डिप्रेशन में डालकर, उसे उल्टे रास्ते पर डाल दें तो उसे स्पर्धा नहीं कहेंगे। स्पर्धा यानी कि 'हेल्प'। 'तू अपनी तरह से चल, तुझे जो भी हेल्प चाहिए, मैं वह दूँगा। अब तू भी स्पर्धा में आ जा'।

हमने तो बचपन से ही इस तरह से हेल्प करना तय किया था लेकिन इन सब बुज़ुर्गों को मैंने देखा है। ज़रा सा भी कोई आगे बढ़ने लगे कि मार-ठोककर, धक्का मारकर उसे पछाड़ देते हैं और अगर कोई पीछे रह जाए तो उसे आगे ले आते हैं, और उसे कहते हैं कि, 'मेरे पीछे रहना'। यह सब गलत ही है न! डेवेलपमेन्ट की कितनी कमी है यह! मुझे बहुत चिढ़ मचती है कि ये कैसे लोग हैं? अगर मुझे सींग मारोगे तो मुझे ऐसा लगेगा कि यह समझदार है, लेकिन आप मुझसे आगे बढ़ो।

बिना तौले-बिना नापे वापस कर देता हूँ

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि कुटुंब में अंदर ही अंदर कुछ देर में झगड़े हो जाते हैं तो उस समय ज्ञान से पहले आप क्या करते थे?

दादाश्री : एक कुएँ में हमारे बुज़ुर्गों का हिस्सा था तो वे आमने-सामने गालियाँ देते थे, वे मैंने कुछ सुन लीं। फिर वे लोग कोर्ट में गए तो सब ऐसा ही था, झगड़े ही झगड़े और फिर एक भी हो जाते थे। एक ही मुहल्ले के थे न, तो वापस एक हो जाते लेकिन लड़ते भी थे। जब लड़ते थे तो बड़ा-बड़ा, छोटा नहीं। नोबिलिटी से! कमी नहीं रखते थे।

प्रश्नकर्ता : बिना तौले, बिना नापे।

दादाश्री : हाँ, बिना तौले और बिना नापे। हमारा एक भतीजा था। वह जब भी आता था न, तब वह कुछ न कुछ बोलते हुए ही आता था। इसलिए जब उसके जाने का समय होता था तब मैं कहता कि, 'आप अपनी पोटली ले जाओ। वहाँ रखी है!' तब वह कहता था, 'पोटली में तो कुछ भी नहीं है, वह तो सिर्फ थैली ही है'। मैंने कहा, 'लेकिन अंदर सामान था न!' वह जो उसका बिना तौले-बिना नापे दिया होता था न, तो मैं वापस उसमें रख देता था, मैं उसे कहाँ संभालकर रखूँ? मैं उसका चाचा लगता था, लेकिन वह मुझे बिना तौले दे देता था।

अब क्या हो सकता है? चाचा बने हैं तो ऐसा बोलता ही न! यदि कोई बाहर वाला ऐसा बोले तो मारते या फिर उससे झगड़ा करते या किसी भी तरह उसका निपटारा करते लेकिन इसमें तो अपने से कुछ नहीं हो सकता था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, स्वीकार नहीं करेंगे तो वापस उसी को मिलेगा न? यदि सामने वाला स्वीकार नहीं करेगा तो किसके पास जाएगा? देने वाले के पास ही चला जाएगा न?

दादाश्री : वह अलग बात है, वह ज्ञान की बात हो गई। उन दिनों ज्ञान की बात नहीं थी न! यह तो तब की बात है जिन दिनों मेरी उम्र पच्चीस साल थी। लेकिन इतना समझ गया था कि चाहे कुछ भी हो लेकिन जिनकी दुकान में जो माल है, लोग वही देंगे। वे बेचारे जो भी देते हैं, उसे रख देते थे फिर और (उनके) वापस जाते समय कहते थे कि, 'ले जा तेरा'।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है, वापस दे देने की बात।

दादाश्री : बेकार ही, यह बिना तौल वाला। आपको कोई देकर गया है बिना तौले?

प्रश्नकर्ता : नहीं, अभी तक तो नहीं दिया।

दादाश्री : तो ठीक है। बाकी, यह दुनिया तो बिना तौले दे जाती है।

दादा के सख़्त शब्द उतारें नशा

प्रश्नकर्ता : दादा, आप भी उन लोगों से लड़ते होंगे न?

दादाश्री : एक छत्तीस साल का बी.कॉम तक पढ़ा हुआ बड़ा ऑफिसर था, हमारे भतीजे का बेटा, तो मैं उसका दादा होता था। उस ज़माने में तो अगर कोई बी.कॉम तक पढ़ा हो तो बहुत बड़ा ऑफिसर माना जाता था। वह आकर मुझसे कहने लगा कि, 'दादाजी, मेरी मदर का देहांत हो गया है फिर भी मुझे अभी कहना पड़ रहा है कि वे बहुत पक्षपाती थीं'। यह ज्ञान होने के दो साल पहले की बात है। तब ज्ञान नहीं हुआ था और मुझे किसी भी बात का जवाब देने की प्रेक्टिस थी इसलिए फिर मैंने उसे कहा, 'तेरी माँ ने पक्षपात किया है वह बात तेरी दृष्टि से सही है भाई, लेकिन तेरी माता जी ने तेरे लिए क्या किया है, वह अब मैं बताता हूँ। तेरी माता जी ने नौ महीने तुझे पेट में रखा था और फिर अठारह साल तक पिल्ले की तरह तुम्हें अपने पीछे-पीछे घुमाया, तो आज क्या ऐसा है कि तेरी माँ खराब है और तेरी वाइफ अच्छी? अरे, वचन की तुलना करना नहीं आता तुझे? क्या पत्नी की बात ही सही है? गुरु (पत्नी) ने जैसा सिखाया वैसा सीख रहा है तू! नौ महीने तुझे पेट में रखने वाला कौन था, बता? इतने बड़े ऑफिसर को! और नौ महीने आराम किया उसका तूने किराया-विराया भी नहीं दिया उन्हें। उसके बाद कभी नहीं बोला। अरे, ऐसा कहीं बोलना चाहिए? ऐसा कैसा? माँ तो माँ ही कहलाएगी न!' लेकिन यह देखो न! कहता है, 'मेरी माँ ने पक्षपात किया,' ऐसा कभी कहना चाहिए? यदि किया हो फिर भी नहीं कहना चाहिए। मदर तो मदर है। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : उसके बाद उसने दोबारा कभी नहीं कहा। मेरे ये सख़्त शब्द सुने न, तो उसकी दृष्टि बदल गई। फिर चार-पाँच बार मुझसे कहा, 'मेरी माँ ऐसी नहीं है'। वह तो पत्नी का नशा चढ़ गया था। पत्नी का नशा चढ़ जाए, तब फिर तो क्या हो सकता है? और पत्नी के नशे में

वचन की तुलना करने बैठ गया! लेकिन नशा उतार दिया एकदम से, मार-ठोककर। जब मैंने उससे ऐसा कहा, तब मेरी वाइफ वहीं पर खड़ी थीं तो मेरी वाइफ ने कहा, 'ऐसा नहीं कहना चाहिए'। मैंने कहा, 'तो फिर क्या कहना चाहिए? उसका रोग नहीं निकाला तो फिर मैं दादा कैसा? दादा बना हूँ'। और शब्द भी कैसे बोले! ऐसे शब्द किसी ने कहे होंगे कि 'नौ महीने तेरी माँ ने तुझे पेट में रखा था, मैं जानता हूँ'। ऐसा मुँह पर कहा, लेकिन उसका रोग निकल गया। नशा उतर ही जाएगा न! हमारे ये सख्त शब्द नशा उतारने के लिए हैं। इस सख्ती में और कुछ भी नहीं था। यह नशा उतारने की दवाई है! यह तो निरा नशा, नशा, नशा!

प्रश्नकर्ता : चुपड़ने की पी ली है न?

दादाश्री : चुपड़ने की पी गए, क्या हो सकता है फिर?

प्रश्नकर्ता : इसलिए दादा, पत्नी का कहा सुनना ही नहीं चाहिए न?

दादाश्री : यह तो तुझे समझना चाहिए या नहीं? जब पत्नी आए तब वापस बदल नहीं जाएगा न? ऐसा! सचमुच पक्का है तू! गुरु (पत्नी) का भी सुनना है। ऐसा नहीं है कि गुरु का सुनना ही नहीं है, लेकिन अगर (किसी बात में) मुकर जाने को कहे तो वहाँ पर नहीं।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए दो कान दिए हैं न, दादा। एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकालने के लिए।

दादाश्री : हाँ, पक्का बनिया भाई! कह रहा है, दो कान इसीलिए दिए हैं। आप समझे न?

अपने महात्मा व्यवहार में भी दुःखी न हों, ऐसे सारे रास्ते बताते हैं। अपने खुद के माँ-बाप चाहे कैसे भी हों फिर भी स्त्री (पत्नी) का मानें ही क्यों? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है, सही बात है।

दादाश्री : तो अब माँ-बाप की सेवा करना ठीक से। बार-बार यह लाभ नहीं मिलेगा।

सिर दुःख जाए ऐसे शब्द बोल देते थे ज्ञान से पहले

हमें पहले उल्टा बोलने की बहुत आदत थी, उल्टा-सीधा बोलने की आदत। उल्टा यानी कि सिर दुःख जाए, वैसा उल्टा। हेडेक हो जाए, ऐसे शब्द थे हमारे। कैसे?

प्रश्नकर्ता : हेडेक।

दादाश्री : हाँ, तो हमारे चचेरे भाई हम से बीस साल बड़े थे, बीस नहीं, पच्चीस साल। यदि आज होते तो 95 साल के होते, एक दिन वे आए, पोटली लेकर। तब मैं बा के साथ बैठा था।

यह तो हमारी हेडेक की बात बता रहा हूँ, हमारी कैसी दशा थी! सुनना है सभी को?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसा? हाँ, सभी सहमत हों तभी, वर्ना यह कोई बताने जैसी बात नहीं है।

तब मैंने बा से कहा, 'आपके भतीजे आए हैं'। इस तरह से कहा ताकि वे भाई सुन लें, उन्हें गुस्सा दिलवाने के लिए। मैं समझ गया कि वे किसलिए आए हैं! रमण की शादी थी, और बारात धर्मज जाने वाली थी। इन्हें वहाँ पर नहीं जाना था इसलिए यहाँ आ गए। उन्होंने मुंबई में काम है ऐसा बहाना बनाया। उन्होंने कहा, 'मुझे वहाँ मुंबई जाकर सब ठीक करना है न, इसलिए मुंबई जाना है'। वे बहाना बनाकर घर से निकले तो मैं समझ गया कि इन्होंने बहाना बनाया है। मैं जानता था कि इन दोनों के बीच परेशानी हुई होगी इस बार। इसलिए मैंने बा से कहा, 'ये आपके भतीजे आए हैं!' उन्होंने कहा, 'अरे, बा ने मुझे देख लिया है, तो तू ऐसा क्यों कह रहा है? बीच में अक्ल क्यों लड़ा रहा है'। तब मैंने कहा, 'मैं समझ गया हूँ, आप क्यों आए हैं'। तब उन्होंने कहा, 'बता

क्या है? तू क्या समझ गया?' मैंने कहा, 'आप कहीं पर जाने के लिए आए हो?' तब कहा, 'मेरा इंजन बिगड़ गया है इसलिए मुझे मुंबई जाना ही पड़ेगा न?' बा के सामने मैंने कहा, 'मैं कहाँ मना कर रहा हूँ? लेकिन इस बुढ़ापे पर धूल गिरेगी'। उम्र से बुज़ुर्ग, वृद्ध इंसान, कुटुंब में माननीय, इतनी उम्र थी फिर भी ऐसा कहा। बा भी परेशान हो गईं कि 'यह क्या कह रहा है, अंबालाल!' तब उन्होंने मुझसे कहा, 'ले फिर, रहने दी यह पोटली। अभी वापस वहाँ बारात में जाऊँगा'। लेकिन बाद में गए थे वहाँ पर।

ऐसे थे हमारे सब भाई! नहीं, लेकिन कितने सख्त शब्द कहे थे! वह सब काम का नहीं है न! ऐसा होने के बाद मतभेद बढ़ जाता है न! और फिर मतभेद का इलाज करने जाए, तब फज़ीता हो जाता है। वह भी आश्चर्य है लेकिन, वे कहते हैं, 'यह पोटली रहने दी। ले, कल सुबह मैं वहाँ पर जाऊँगा। क्या अब तुझे कोई आपत्ति है?' मैंने कहा, 'नहीं, तब तो कोई आपत्ति नहीं है'। वे वहाँ पर गए। यों हम डाँटते भी थे।

हमारे चचेरे भाईयों के यहाँ शादी ब्याह होते थे, तब वे क्या करते थे? खाना खाते समय उनका पीढ़ा मेरे साथ रखते थे। रावजी भाई सेठ ने सभी से कह दिया था कि, 'मेरे भाई का पीढ़ा मेरे साथ रहेगा'। अंत तक मर्यादा का बहुत ध्यान रखा। छोटा था न, मैं सब का छोटा भाई लगता था। मेरे सात-आठ चचेरे भाई थे। भाभियाँ भी बहुत देखी थीं, उन सब ने भी छोटा देवर, प्यारा-प्यारा करके बहुत लाड़ से पाला था मुझे। इस तरह बड़ा किया था इसलिए मिज़ाज भर गया था, उसका पावर था अंदर, पावर! तो हेडेक हो जाए ऐसी भाषा थी! कैसी? लेकिन देखो अब भाषा सुधर गई है न?

भगवान (ज्ञान) के हाज़िर होने के बाद यह भाषा सुधर गई है। बाकी सब प्रकार से बहुत समझदार थे। पहले भगवान नहीं बने थे (ज्ञान नहीं था) तब भी समझदार थे लेकिन भाषा ऐसी थी कि हेडेक हो जाए। सिर दु:ख जाए ऐसी भाषा थी।

वेल्डिंग करने वाला हमेशा मार ही खाता है

प्रश्नकर्ता : दादा, वह तो आपने अच्छा ही किया था न! उन लोगों के झगड़े न बढ़ें इसलिए आपने वेल्डिंग कर दी।

दादाश्री : हाँ, लेकिन 'वेल्डिंग' करने से मार पड़ती है, और अगर 'वेल्डिंग' नहीं करें तो 'आइए चाचा, आइए चाचा' करेंगे। लेकिन मारकर सभी ने वैराग्य बढ़ाया न! फिर कुल मिलाकर हमें क्या मिला? वैराग्य मिला, नहीं तो वैराग्य तो आता ही नहीं है न! इस दुनिया पर वैराग्य कैसे आएगा? क्या आपको थोड़ा-बहुत वैराग्य आता है? इस दुनिया में 'वेल्डिंग' करने में तो हमेशा मार ही खानी पड़ेगी और उसके बाद वैराग्य आएगा कि 'इन दोनों के सुख के लिए 'वेल्डिंग' की, फिर भी हमें मार ही पड़ी!' यों हमने बेहिसाब मार खाई है!

भतीजे ने संयोगवश कुछ ऐसा कहा होगा

प्रश्नकर्ता : परिवार में सामने वाले के लिए अच्छा करने गए फिर भी मार पड़ी। ऐसे समय में आप क्या समझ हाज़िर रखते थे?

दादाश्री : हमारे भतीजे चिमन भाई पर कर्ज़ा हो गया था। तो उनका घर नीलाम हो रहा था, तो लोग उसके लिए इकट्ठे हुए। तब मुझे ऐसा लगा कि इनके बच्चे क्या करेंगे? बेघर हो जाएँगे। तो नीलामी में वह घर मैंने रख लिया। अगले ही दिन एक व्यक्ति अहमदाबाद में चिमन भाई के वहाँ गया। मूलत: तो भादरण में चिमन भाई की इज़्ज़त खत्म हो ही चुकी थी तो फिर वह इज़्ज़त खत्म करने अहमदाबाद गया। पाँच-सात लोग बैठे हुए थे और चिमन भाई से कहा, 'अरे! चिमन भाई, भादरण वाला तेरा घर नीलाम हो गया है और तेरे चाचा अंबालाल ने खरीदा है'। तब चिमन भाई ने तुरंत ही कहा कि, 'उसमें उन्होंने नया क्या किया? मुझे अंबालाल चाचा से आठ-दस हज़ार लेने हैं'। तो वह व्यक्ति वापस हमारे घर आया और जब बा बैठे थे तब उन्होंने यह बात शुरू की। मैं सावधान हो गया और समझ गया कि यह वापस मेरे घर में झगड़ा करवाएगा।

तब मैंने दूसरी कुछ बातें करना शुरू कर दिया। मैंने उसकी बात को टालने का प्रयत्न किया। फिर भी उसने कहा कि, 'भाई। मैं अहमदाबाद गया था और अचानक चिमन भाई मिल गए। वे तो ऐसा कह रहे थे कि अंबालाल भाई के पास मेरे ही आठ-दस हज़ार रुपए उधार पड़े हुए हैं'। मैं तुरंत ही समझ गया कि 'चिमन भाई ने किसी संयोगवश ऐसा कहा होगा, वर्ना चिमन भाई ऐसा कहें ही नहीं'। तब मैंने उसे कहा कि 'होगा, हिसाब में जो होगा वह ठीक है। वह तो बहीखाते में उनका जो लेना निकलता होगा, वह तो होगा ही न!' इस तरह के झंझट पैदा करने वाले लोग होते हैं!

ज़रूरत लायक पैसे लिए, इसलिए वह चोर नहीं

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले भी आपकी ऐसी समझ थी। यह तो ज़बरदस्त नोबिलीटी कही जाएगी! परिवार की ऐसी अन्य बातें हों तो बताइए न, दादा।

दादाश्री : हमारे मामा का एक बेटा था। उसके पास जब खर्च करने को पैसे नहीं होते थे तो मेरी जेब में से निकाल लेता था। मैं देखता था कि पचास रुपए में से तीस ही बचे हैं, बीस कहाँ गए होंगे? लेकिन अगर लेने वाला चोर होता तो सभी ले जाता, अत: यह मेरे भाई का ही काम है। मैं शुरू से, अंदर ही अंदर, इसे जानता था कि इसके पास पैसों की कमी है और इसी ने लिए होंगे। उसने कई बार ऐसा किया फिर भी मैंने उसे कभी कुछ भी नहीं कहा। मामा का बेटा था, क्या उसकी इज़्ज़त बिगाड़नी चाहिए?

उसे हमारी जेब में हाथ डालने का अधिकार है। और कौन डाल सकता है? तो वह क्या करता था? कई दिनों से पैसे ले जा रहा था। हीरा बा को भी नहीं बताया। हीरा बा भी गुस्सा हो जातीं। यानी कि अगले दिन जब जेब देखने पर दस का नोट कम होता था, तब मैं समझ जाता था कि ये भाई ले गए।

खानदानी इंसान को परेशान करना गलत है

तब ये नीरू बहन मुझसे कहती हैं कि, 'फिर आप उनसे कुछ भी

नहीं कहते थे?' मैंने कहा, 'क्या कहना?' तब उन्होंने कहा, 'क्या चोरी करना अच्छी बात है?' मैंने कहा, 'वह चोरी नहीं करता था। खानदानी इंसान का बेटा चोरी नहीं करता'।

वह चोरी नहीं करता था। लोग उसे 'चोर' कह सकते हैं, लेकिन मैं 'चोर' नहीं कहूँगा। खानदानी इंसान का बेटा, चोरी कैसे कर सकता है? तब उन्होंने मुझसे पूछा, 'तो फिर वह क्या करता था?' मैंने कहा, 'माँगने की खानदानियत के बजाय लेने की खानदानियत अच्छी है'। वह माँग नहीं सकता था, हाथ नहीं फैला सकता था, खानदानी पुरुष था इसलिए...

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाथ नहीं फैला सकते। माँगने की खानदानी नहीं पुसाती!

दादाश्री : तो इसलिए मुझे भी अच्छा लगता था। 'तू ले रहा है, वह ठीक है' ऐसा कहता था। 'तेरी खानदानियत ऐसी नहीं है कि तू माँगे। स्वाभाविक रूप से मैं समझता हूँ कि माँगना और मरना समान है। 'भाई मुझे दस रुपए दीजिए' इस तरह माँग नहीं सकता था इसलिए निकाल दिए। भाई का लेने में गुनाह नहीं है, मामा का बेटा लगता है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : चोर किसे कहते हैं? दस नहीं लेता, साठ रुपए पूरे ही ले लेता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, चोर उसे कहते हैं कि जो पूरा ले जाए।

दादाश्री : तीन सौ पड़े थे, फिर भी उसने पाँच ही लिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ज़रूरत लायक ही लिए।

दादाश्री : मैं समझ भी जाता था कि यह ले गया। और फिर वह मेरे सामने देखता था कि ''अभी कहेंगे, मुझे डाँटेंगे कि 'अरे, तूने आज हाथ डाला था न!'' मैंने कहा, 'नहीं भाई, मैं नहीं कहूँगा'। और फिर

उस बेचारे खानदानी इंसान को परेशान करना भी बुरा दिखेगा न! खानदानी व्यक्ति से एक्सेप्ट करवाना तो गुनाह है।

उससे उनकी भी इज़्ज़त रही और मेरी भी

अत: मैं तो ऐसा कह ही नहीं सकता था न कि 'तू इस तरह से पैसे मत निकालना'। उससे उसकी भी इज़्ज़त रही और मेरी भी। ऐसा माँगने वाला नहीं था वह कि हम से माँगता। ये सब तो ऐसे हैं कि जो कभी हाथ ना फैलाएँ।

मैंने किसी को साधारण तौर पर यह बात बताई, तो उन्होंने मुझसे कहा कि, 'उसे कह देना चाहिए था। डाँटना चाहिए था उसे। चोरी करना सीख रहा है'। मेरे मामा का बेटा चोर है? कैसे इंसान हो? 'लेकिन वह तो चुपचाप निकाल लेता है न!' तब मैंने कहा, 'तो क्या मुझसे भीख माँगेगा कि भाई, मुझे बीस रुपए दो'। यह तो क्षत्रियपुत्र है। कैसा है? वह हाथ नहीं फैलाएगा, इसलिए मैंने भी चलने दिया। और किसी जगह से नहीं लेगा, लेकिन क्या मेरे यहाँ पर हक़ नहीं है उसे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उन भाई ने कहा था न कि, 'लूँ नहीं तो और क्या करूँ?'

दादाश्री : और कौन देता? भाई नहीं देता, कोई भी नहीं देता!

प्रश्नकर्ता : और किसी से माँगता भी नहीं।

दादाश्री : नहीं माँगता, हाथ नहीं फैलाता था। मैं क्यों उससे ऐसा कहूँ कि 'तू क्यों निकाल लेता है?' और उसे चोर साबित करूँ? ऐसे खानदानी माँ-बाप का बेटा जिनकी चौखट पर लोग कन्या देने को तैयार हैं! चौखट को कन्या देते हैं, इंसान को नहीं। क्या मुझे उसे चोर सिद्ध करना था? आपको कैसा लगता है? अगर ज़रूरत है तो निकाल ले। बस, और कुछ ज़्यादा नहीं न! यह तो उनका एक लिखने लायक इतिहास है।

वह चोर नहीं है, उसे माँगना नहीं आता

यदि कोई कहे कि 'आपके मामा का बेटा चोरी क्यों करता है?'

तब मैं कहूँगा, 'खानदानी है इसलिए। नालायक होता तो चोरी नहीं करता। अगर माँगना आता तो'।

प्रश्नकर्ता : अगर माँगना आता तो चोरी नहीं करता।

दादाश्री : हाँ, चोरी नहीं करता। माँगना नहीं आता है इसलिए इस तरह से लेता है। ऐसे लोग हैं या नहीं जिन्हें माँगना नहीं आता? नाक वाले? मैंने कहा, 'हमारे ननिहाल वाले खानदानी घर से हैं'।

प्रश्नकर्ता : उसने कहा कि 'मुझे लेने का अधिकार था इसलिए ले रहा था'।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। लेकिन अधिकार भी कैसा? क्योंकि माँगना नहीं आता। माँगना और मरना दोनों एक समान लगता है। अधिकार तो था न! अधिकार भी इस तरह से नहीं होना चाहिए। पूछे बगैर लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए, लेकिन वह भी चलता रहता था। जैसे-जैसे धोखा खाया न, वैसे-वैसे मज़ा आता गया।

क्षत्रिय प्रजा सगे भाई से भी नहीं माँग सकती, हाथ नहीं फैला सकती। अत: इस दृष्टि से मैं इस बात को लेट-गो करता रहा। और फिर उसने मुझे बताया कि, 'महीने-दो महीने में जब ज़रूरत पड़ती है तब आपकी जेब में से कुछ पैसे ले लेता हूँ'। मैंने कहा, 'मैं जानता हूँ'। उसमें हर्ज नहीं है, क्योंकि उसका हक़ है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : आज के क्षत्रियों को तो माँगना भी आता है! मैं अगर आपके यहाँ रकम रखूँ, तो फिर मुझे तो ज़िंदगी भर वापस माँगना नहीं आएगा। तब मुझे अंदर क्या लगेगा? अभी इसके पास नहीं हैं और अगर हम माँगेंगे तो शायद उसे दु:ख होगा। ऐसे सब विचार भी आ जाते हैं। अत: अंदर ऐसा सब होता है इसलिए किसी से माँगता नहीं हूँ, सामने वाले को दु:ख न हो इसलिए। वे लोग कहते हैं, 'अपने ही हैं न!' मैंने कहा, 'भाई, अपने ही हैं लेकिन उसे दु:ख होगा न! अगर अभी उसके पास नहीं होंगे तो?'

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : तो इस ज्ञान के बाद थोड़ा-बहुत सीखा, फिर भी कुछ खास नहीं आता। और अब यह सब सीखकर कहाँ जाना है? मोक्ष में जाना है हमें तो। अब तो वह *आड़ाई* भी नहीं रखनी है और अड़ियलपन भी नहीं रखना है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

खानदानी इंसान को चोर कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : यदि उसे कुछ कहते तो मामा के बेटे से संबंध टूट जाता और वह भी कितने रुपयों के लिए? दो सौ, पाँच सौ रुपयों के लिए। अगर उनकी बेटी आए तो दस हज़ार रुपए खर्च करने पड़ सकते हैं। अभी तो गाड़ी जैसे चल रही है वैसे ही चलने दो न। टूट जाएगा या नहीं टूट जाएगा? ऐसा नहीं कह सकते कि 'चोर हो। हरामखोर, मेरी जेब में से चोरी करके ले गया'। कोई बाहर वाला ले जाए, तब भी नहीं कह सकते। मैं कई लोगों से पूछता हूँ, 'यह जो चोरी करते हैं उसे क्या कहते हो?' तो कहते हैं, 'ज़रूरतमंद होगा इसलिए ले गया'। बाहर भी इतने नरम दिल लोग होते हैं। जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है, वे भी कहते हैं कि 'उसे ज़रूरत होगी इसलिए ले गया होगा'। ऐसे लोग होते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : होते हैं।

दादाश्री : बाकी, मैं ऐसा नहीं मानता कि खानदानी लोगों के बच्चे चोर होते हैं। मैं इसे स्वीकार नहीं करता। खानदानी यदि चोर बन जाए तो वह खानदानियत कैसे कहलाएगी?

अत: कल हमारे मामा के बेटे आए थे वे नीरू बहन से कुछ कह रहे थे कि 'मैं दादाजी की जेब से... क्या करता था?'

प्रश्नकर्ता : वे कहते थे, 'मुझे सिनेमा जाना हो तो चुपचाप पैसे निकाल लेता था उनकी जेब से'।

दादाश्री : हाँ। हर दूसरे-तीसरे दिन ऐसा ही। जब कभी दस का नोट कम हो जाता था तब मैं समझ जाता था कि और कोई नहीं लेता है सिर्फ यह भाई ही ले जाता है। अंदर यदि अस्सी पड़े होते थे, तो उनमें से दस या बीस, जितनी ज़रूरत होती थी उतने लेकर बाकी के साठ रहने देता था। तब मैं समझ जाता था कि साठ बचे हैं इसलिए अपने शंकर भाई होने चाहिए, और कोई नहीं हो सकता। मुझे तो बहुत याद रहा करता था। मुझे तो ध्यान रहता ही था कि मेरी जेब में क्या है इसलिए स्पष्ट नहीं करता था।

ये दादा तो भगवान जैसे हैं

फिर एक दिन जब सब इकट्ठे हुए तब उन्होंने कहा, 'मैं तो कभी-कभी, जब मुझे ज़रूरत होती थी तब पैसे भी निकाल लेता था'। वापस ऐसा खुलकर बता भी दिया।

प्रश्नकर्ता : और फिर उन्होंने कहा कि, 'मैं तो यही समझता था कि दादा को पता नहीं चलता'।

दादाश्री : हाँ, 'दादा को सब पता चल जाता था'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर जब उन्हें यह पता चला कि दादा को तो पता चल जाता है लेकिन कुछ कहते नहीं हैं, तब उन्हें लगा कि ये दादा तो 'भगवान' जैसे हैं।

दादाश्री : उन्होंने मुझसे कहा कि, 'भाई, क्या आपको मालूम है कि मैं आपकी जेब से पैसे निकाल लेता हूँ?' तब मैंने कहा, 'भाई, सब जानता हूँ। तुझे जितने चाहिए उतने निकाल लेना'।

तो वह पैसे निकाल लेता था लेकिन हम उस पर चिढ़े नहीं, उसे कुछ भी नहीं कहा, उसे टोका भी नहीं। जैसे कि उसे लाइसेन्स दे दिया हो न, ऐसा रखा। क्या किया?

प्रश्नकर्ता : पता ही नहीं चलने दिया कि आपको मालूम है। इससे तो दादा उसका हृदय परिवर्तन हो जाए।

दादाश्री : परिवर्तन हो जाने की वजह से ही कह रहा था न कल कि 'मैंने तो बहुत दिनों तक दादा की जेब से पैसे निकाले हैं लेकिन उन्होंने मुझे कभी कुछ नहीं कहा'। तो हाँ, परिवर्तन हो जाता है।

इतना करना आ जाएगा तो काम निकल जाएगा

फिर हीरा बा ने सभी चाबियाँ ले ली थीं मुझसे, कहने लगीं आपको सब छल जाते हैं। हमारे भागीदार ने भी चाबियाँ ले लीं। सभी ने चाबियाँ ले लीं।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह सब बात सही है, लेकिन सभी ने आपसे चाबियाँ ले लीं लेकिन उन सभी की चाबियाँ आपने ले लीं। हमारे ताले खोल दिए आपने।

दादाश्री : वे जागृत हैं न! व्यवहार संभालने का भय है न उन लोगों को। भय है, इसलिए व्यवहार नहीं संभाल सकते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, भय है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है।

दादाश्री : हाँ, यदि व्यवहार संभालने की शक्ति होती, तो उन्हें व्यवहार संभालना आता, तो वे और किसी जगह पर धोखा नहीं खाते। वे लोग भी धोखा खाते हैं इसलिए यह सिर्फ भय ही है व्यवहार संभालने का। क्या करोगे आप?

ऐसा है न, यह जो दुनिया चल रही है, वह भ्रांति से चल रही है। सब उल्टे रास्ते पर हैं। यदि आपको सन्मार्ग पर जाना हो और सनातन सुख चाहिए तो यह मार्ग है। लोग जिस रास्ते पर चलते हैं उस रास्ते पर नहीं, उससे कुछ उल्टा चलो। यह बात तो मुझे बचपन से ही समझ में आ गई थी। लेकिन यदि इतना करना आ जाए तो काम निकल जाए, वर्ना फिर भी वह ले तो जाएँगे ही न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : नहीं ले जाएँगे क्या? और क्या हमारे पास उससे ज़्यादा रुपए हैं? और बहुत हुआ तो हमारा बैंक में जमा नहीं हुआ, इतनी ही परेशानी है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर भी हीरा बा तो रहते हैं न अच्छी तरह से। इतना ही है कि मेरे पास नहीं बचा, लेकिन फिर मुझे चाहिए भी क्या? किसलिए चाहिए मुझे? मुझे पैसा किसलिए चाहिए? यह सब बोझ जैसा ही है।

प्रश्नकर्ता : आपको तो ये सब (महात्मा) चाहिए।

दादाश्री : हाँ। बस-बस, बहुत हो गया। जब मैं आप सब को देखता हूँ, तो मुझे खूब आनंद होता है! अभी शंकर भाई को देखता हूँ तब भी आनंद होता है। उनके लिए कभी भी चिढ़ नहीं मची। बचपन में शायद कभी चिढ़ मची होगी, फिर उसके बाद नहीं। सुधारने का प्रयत्न किया लेकिन फिर समझ गए कि, 'इसमें कुछ होने वाला नहीं है'। और हमारे दूसरे मामा, जो इनके चाचा लगते हैं वे कह रहे थे कि, 'यह पत्थर है, आप लोग क्यों इसे सुधारने की कोशिश कर रहे हो? आपका टांकना भी बेकार जाएगा'। मैंने कहा, 'मामा, मेरा टांकना बेकार जाएगा। इसमें आपका क्या जा रहा है? मामा के बेटे के तौर पर क्या यह मेरा फर्ज़ नहीं है?'

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अब सारे फर्ज़ खत्म हो गए। अब तो सब में समान भाव हो गया है, उन दिनों तो फर्ज़ था या नहीं? आप क्या कहते हो? व्यवहार था न ऐसा? लेकिन यह उदाहरण बहुत ही परेशानी वाला है। नहीं?

प्रश्नकर्ता : दादा, इतनी जागृति और ऐसा विचार आना तो बहुत बड़ी बात है।

माँगने से पहले पैसे देकर सामने वाले की इज़्ज़त बचाई

दादाश्री : हमने किसी को भी माँगने नहीं दिया। ऐसा समय ही नहीं आया कि जिन्हें मुझसे कुछ लेने की ज़रूरत हो और उनमें से किसी को भी माँगना पड़े, मैं शुरू से ही उनसे कह देता हूँ कि 'मेरे पास इतने पैसे ज़्यादा है। अगर ज़रूरत हो तो ले जाना'। तो तुरंत ही सामने वाला

तो तैयार ही बैठा होता था। क्या वहाँ तक आप उसकी इज़्ज़त उतारोगे कि वह माँगने लगे? यदि देने ही हैं तो उसे माँगने मत देना। वर्ना, 'नहीं देने हैं,' ऐसा कह दो। सही है या गलत? लेकिन लोग क्या कहते हैं कि, 'वह माँगेगा तो हम दे देंगे, वर्ना हम नहीं देंगे'। अरे भाई, माँगने से तो उसकी सात पीढ़ियों की इज़्ज़त जाएगी, नाक कट जाएगी! ये तो क्षत्रिय हैं, इसलिए चाहे भिखारी जैसे हों फिर भी...

प्रश्नकर्ता : माँगता ही नहीं है कोई।

दादाश्री : और हिंद के आर्य लोग हैं, आर्य आचार-विचार वाले हैं। भिखारी जैसे हों फिर भी हाथ नहीं फैलाते।

उसका सगा भाई आक्षेप लगाता था, फिर भी हम प्रेम देते थे

उसके बाद एक दिन मामा के बेटे ने कहा, ''मेरे एक परिचित आने वाले थे। उन्हें मिलने जाना था तो कल मेरे बड़े भाई की नई धोती पहन ली थी। तब मेरे बड़े भाई ने कहा, 'चोरी करके ले गया, चोरी करके ले गया', ये ऐसा कर रहे हैं।'' उसके बाद उनके बड़े भाई से कहा, 'अरे, पहनने के लिए धोती ले गया उसे चोरी कहते हो? अरे, कैसे लोग हो?' तब मैंने उसे कहा, 'मेरी धोती ले जाना। अगर तेरे पास नहीं हो तो मेरी धोती ले जाना। यहाँ मेरे अलमारी में से ले जाना। अगर सगे भाई का मन ऐसा हो तो उसका क्या करें?'

प्रश्नकर्ता (शंकर भाई) **:** अरे, एक दिन मुझसे कह रहे थे न, कि 'तू ऐसा कह देना कि मैं रावजी भाई का भाई नहीं हूँ'।

दादाश्री : उनकी इज़्ज़त बचाने के लिए ऐसा भी कह देते थे। ये ज़रा श्यामवर्णी दिखाई देते हैं, और उनके भाई गोरी गाय जैसे दिखाई देते हैं। तो फिर मैं उन्हें डाँटता था। मैंने कहा, ''कैसे इंसान हो? बड़े-बड़े ऑफिसर मेरे यहाँ आते हैं, फिर भी मैं कह देता हूँ कि ये मेरे मामा के बेटे हैं और आपको शर्म आती है? सगे भाई हो फिर भी शर्माते हो? ऐसा कह देना चाहिए कि, 'यह मेरा सगा भाई है'। श्यामवर्णी है तो क्या गुनाह कर लिया?'' वह चाय लेकर आता है तब भी मैं कहता हूँ, रिश्ते

का परिचय देता हूँ कि 'ये मेरे मामा के बेटे हैं'। 'तुझे मेरी जो कीमत लगानी हो वह लगाना।' मैं तो सही बात बता देता हूँ।

प्रश्नकर्ता (शंकर भाई) **:** दादा, पैसे नहीं हैं न हमारे पास, इसलिए। वे पैसे वाले धनवान इंसान हैं और हम गरीब हैं, इसलिए।

दादाश्री : लेकिन दादा तो हैं न आपके पास?

प्रश्नकर्ता (शंकर भाई) **:** वे तो हैं ही!

दादाश्री : आपको कहना चाहिए कि 'मेरे पास दादा हैं। मैं ज़िंदगी भर उनका उपकार नहीं भूल सकता'।

प्रश्नकर्ता (शंकर भाई) **:** लेकिन हम दिल से धनवान थे और वे दिल से गरीब।

दादाश्री : उन्होंने कहा, 'यह काम का नहीं है'। मैंने कहा, 'आप सुंदर हैं, इसलिए आप काम के हैं और यह काम का नहीं है'। और उन्होंने ऐसा कहा, 'यह तो पत्थर पैदा हुआ है'। मैंने कहा, 'नहीं है पत्थर'। अभी तुम्हारी बारह महीने की आमदनी क्या है?

प्रश्नकर्ता : लगभग चालीस हज़ार तो खेती की आमदनी है।

हमारी देखने की दृष्टि ही अलग है न

दादाश्री : (शंकर भाई तरसाली वाले) यहाँ रहते हैं और हुक्का भर देते हैं आराम से। तो जब बाकी सब लोग उन्हें डाँटते हैं तब मैं उनका रक्षण करता हूँ। मैं कहता हूँ, 'उसका नाम भी मत लेना, सब हो जाएगा'। क्या उनका यह हुक्का भरना बेकार जाएगा? हाँ, लेकिन जिसे कुछ नहीं आता, उसका क्या करें? उन्हें ऐसा सब करना नहीं आता, सर्विस करनी नहीं आती। मैं बताता हूँ कि उनकी शादी कैसे हुई? अब उनकी उम्र पैसठ साल की हो गई है तो इसलिए अगर अब वे बताएँगे तो बुरा दिखेगा। बुरा दिखेगा न शंकर भाई?

प्रश्नकर्ता (शंकर भाई) : नहीं दिखेगा। बिल्कुल बुरा नहीं दिखेगा, दादा।

दादाश्री : नहीं दिखेगा बुरा? जब उनकी शादी हुई थी न, तब घर के सभी चाचाओं ने क्या कहा? 'आप इसे ले जाकर क्या करोगे?' तब उन लोगों ने कहा, 'हम बेटी उन्हें नहीं दे रहे हैं, इस चौखट को दे रहे हैं'। अभी चारों बेटे आराम से कमा रहे हैं, सभी ने कमाया इसलिए उन्हें कमाने की ज़रूरत ही नहीं रही न! और छः बेटियाँ हैं उनकी। लोग कहते हैं, 'इतनी बेटियों की शादी कैसे करोगे?' मैंने कहा, 'अरे भाई, उनके पीछे मत पड़ना। उनके पीछे पड़कर क्या मिलेगा?'

प्रश्नकर्ता : वे कह रहे थे कि ''मैंने कुछ भी नहीं कमाया। मैंने तो कुछ भी नहीं किया ज़िंदगी में और मेरी छः बेटियाँ हैं। सब चिंता करते हैं लेकिन दादा कहते हैं कि 'तुझे पता भी नहीं चलेगा और तेरी बेटियों की शादी हो जाएगी।'' फिर उन्होंने कहा कि, 'मेरा सब इसी तरह हो रहा है'।

दादाश्री : ऐसा ही होगा न! वर्ना पाटीदार की बिरादरी में छः बेटियाँ हों तो ज़हर पी लेना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ज़हर पी लेना पड़ता है।

लेकिन यह तो दादा हैं। इसे नापने का तराज़ू ही अलग है न?

दादाश्री : उनका माल बहुत उच्च प्रकार का है लेकिन उन्हें वह सबकुछ करना नहीं आया और हड्डियाँ झुकी नहीं। ज़रा सी महेनत करनी पड़े तो, वह अच्छा नहीं लगता था। आप किसी को चाय पिलाने का कहो, तो जितनी आप कहो उतनी पिला देंगे लोगों को। जब सभी यहाँ से तरसाली यात्रा के लिए जाते हैं न तो उन्हें बुला लाते हैं। 'चलो हमारे यहाँ, यह दादा का ननिहाल है,' तो बुलाकर चाय पानी पिलाते थे लोगों को। सारे दूध का उपयोग उसी में कर देते थे। इतना तो आता है न! जिसे यह आता है, उसे वह सब नहीं आएगा तो चलेगा।

दादा को सौंपा तो सब रास्ते पर आ गया

वे बाहर का काम नहीं करते थे और मौज-मज़े करते थे बस,

वही काम था। न तो खेत में जाते थे, न ही बाहर का काम करते थे। मैं नौकरियाँ दिलवाया करता था और वे लोग मेरे नाम से तनख्वाह देते रहते थे। वह तो घूमता रहता था, और कोई काम नहीं करता था। इसलिए फिर मैंने बंद कर दिया। मैंने कहा, 'वे बेचारे मेरे नाम से कब तक तनख्वाह देंगे?'

तो पूरी ज़िंदगी उसने नौकरी नहीं की, हमारे उस मामा के बेटे ने। उसे कुछ भी नहीं आता था न! बस! मौज-मज़े और पकौड़ियाँ खाना। एक भाई बड़ा कॉन्ट्रैक्टर था लेकिन वह उसे काम सौंपे तब न? राम तेरी माया। देने-करने का कुछ भी नहीं। सीखा ही नहीं था न! मैंने कहा, 'ज़रा इस भाई का तो देख! और फिर यह छः बेटियों का बाप है। फिर दहेज भी देना है और कमाता भी नहीं है, यों ही...' फिर उसके भाई से कहा, 'भाई, उसे कुछ रुपए देना'। तब उसके भाई ने मुझसे क्या कहा? 'आप कह रहे हैं तो दे दूँगा वर्ना मैं नहीं दे सकता। मेरे हाथ से नहीं छूट पाते'। मैंने कहा, 'लेकिन मैं तेरे भाई के सामने कहूँ और तू दे, तो यह कैसा नियम है? मैं तुझे सलाह देता हूँ, मेरी आज्ञा है ऐसा मानकर। मेरे आज्ञा देने पर तू पचास हज़ार दे देता है, और अगर मैं सलाह नहीं दूँ तो... लेकिन वह भाई मेरा है या तेरा?'

तो एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि, 'भाई, मेरी बेटी की शादी है, दस हज़ार रुपए देंगे?' मैंने कहा, 'ले जाना'। उनकी बेटी हीरा बा के लिए खाना बना देती थी। इस प्रकार दस-पंद्रह हज़ार रुपए और दूसरा, हमारे यहाँ उनके बेटे के नाम पर बिज़नेस किया था इन्कम टैक्स बचाने के लिए, उसके एवज में पाँच हज़ार रुपए और। ऐसा करके बीस हज़ार रुपए दिए थे। उसका सत्तर हज़ार का खर्च हुआ। उसी में पूरा हो गया। अब वह क्या कहता है? 'भाई, अब बारह महीने में मेरे पास एक लाख रुपए आते हैं तो मुझे अब आपके पैसे दे देने हैं।' मैंने कहा, 'रहने दे न, अब छोड़'। अब, वह एक आना भी नहीं कमाता था। वह अपने बेटे को, जो मैट्रिक पास था, मेरे यहाँ ले आया। और वह बन गया बड़ा कॉन्ट्रैक्टर, बहुत ज़बरदस्त बुद्धि थी। उसने सब से पहले

हमारा मकान बनाया। अभी बारह महीने में लाख रुपए कमाता है। ऐसा होता है! उस भाई की छः-छः बेटियाँ। कैसे शादी करवाए? लेकिन लोगों को कोई न कोई मिल आता है न! और फिर लोगों से क्या कहते हैं? कि मेरे भाई 'भगवान' हैं। शुरू से ही, आज से नहीं। मुझे ज्ञान नहीं हुआ था तब भी वे कहते थे, 'भाई, मैंने आपको सौंप दिया है तो मेरा सबकुछ ठीक हो जाएगा। भाई, आप जो भी करोगे वह सही है। मुझे तो कुछ भी नहीं आता है'। उसने सब सौंप दिया इसलिए सब लाइन पर आ गया। लोग भी कहते हैं, 'आपको सौंपा तो उसका काम हो गया और जिन्होंने नहीं सौंपा था, वे सभी भाई रह गए'। ऐसा है यह तो!

जो पकड़ा जाता है वह नहीं, जो नहीं पकड़ा जाता वह चोर है

यदि आपका भतीजा ऐसा होता कि जिसने पहले कभी भी किसी की जेब से पैसे नहीं लिए लेकिन अब एक दिन वह व्यक्ति जेब से दो सौ रुपए निकालकर ले गया और अपने घर में कोई व्यक्ति उसे देख ले और फिर घर का मानकर उससे पूछे कि 'तूने दो सौ रुपए लिए है?' तब वह कहता है, 'नहीं, मैंने नहीं लिए'। तो हम समझ जाएँगे कि 'यह लड़का ऐसा नहीं है कि कभी पैसे ले ले'। यानी कि संयोगवश। किसी संयोग में फँस गया लगता है। अत: हमें उसे 'चोर' नहीं कहना चाहिए, जबकि इस हिंदुस्तान के सभी लोग उसे 'चोर' कहते हैं। जो संयोगवश पकड़ा गया उसे 'चोर' कहते हैं। अरे पागल! ऐसे कैसे इंसान हो? जो नहीं पकड़े गए, वही चोर हैं। सचमुच के चोर तो पकड़ में ही नहीं आते। ये संयोगवश वाले (चोर) पकड़े जाते हैं बेचारे। सचमुच का चोर तो आँख में धूल डालकर चला जाता है। अत: संयोगवश बने चोर को हम चोर नहीं कहते हैं। संयोगवश किसी व्यक्ति ने अगर चोरी की तो उसके चरित्र में कोई बदलाव नहीं हो सकता। क्योंकि हम सिर्फ इतना ही देखते हैं कि संयोगवश और परमानेन्ट, उन दोनों में से यह व्यक्ति किस जगह पर है।

लोग तो, संयोगवश (चोर) एक दिन चोरी करते हुए पकड़ा जाए तो उसे हमेशा के लिए चोर कह देते हैं, ये तो। अब उस पर आरोप लगाने से कितने गुनाह लगते हैं? कौन-कौन सी कलमें लगती हैं? इंडियन लोग संयोगवश चोरी करने वाले को हमेशा के लिए चोर बना देते हैं, जैसे कि उसके मेकर (बनाने वाला) हों।

संयोगवश चोर, वह चोर नहीं है, दादा की अनोखी दृष्टि

अगर आप चार बार चोरी करो तब भी मैं आपको चोर नहीं कहूँगा, क्योंकि संयोगवश चोरी कर रहे हो। आप चोर नहीं हो जबकि वे चोर तो अलग ही हैं। संयोगवश नहीं, वह तो उनका व्यापार है। हमारे यहाँ तो जो संयोगवश पकड़ा जाए, उसके लिए लोग कहते हैं, 'जाने दो उसका नाम मत लो'। अरे, ऐसा नहीं कहते भाई। तू मारा जाएगा। संयोगवश राजा भीख माँगने लगता है या नहीं? अरे! संयोगवश तो मैं भी भीख माँग सकता हूँ। तीन दिनों तक खाना नहीं मिले तो अंदर आग लगती है, तब 'कहेगा लाओ' माँगेंगे या नहीं? तो यह मनुष्य संयोगों के गुलाम हैं। तीर्थंकर भी संयोगों के गुलाम थे, यह बता देता हूँ। फिर भी एक ओर खुद स्वतंत्र थे। फिर भी, जब तक देह है तब तक गुलामी तो है न! अतः यह गुलामी है एक प्रकार की। अंदर भट्ठी जल रही हो तो क्या हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा साफ-साफ कौन कहेगा, दादा?

दादाश्री : संयोगवश तो राजा भी चोर बन सकता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादाजी।

प्रेजुडिस रहना, वह एक बहुत बड़ा गुनाह है

दादाश्री : जब (राजा को) तीन दिनों तक खाना नहीं मिले और अगर कहीं पर भीखारी के घर की रोटियाँ रखी हों, तब भी चुपचाप ले लेगा या नहीं? चुपचाप लेना आता है क्या राजा को? जब भूख लगी हो तब सबकुछ आ जाता है। मेरी दृष्टि में पूरी दुनिया ही संयोगवश चोर है। लेकिन संयोगवश चोर को चोर मत कहो, वर्ना भयंकर दोष लगेगा।

आपको समझ में आ रहा है? संयोगवश ऐसा हो जाता है या नहीं? जो संयोगवश होता है उस पर प्रेजुडिस (पूर्वग्रह) रखना, बहुत बड़ा गुनाह है। मैं तो प्रेजुडिस रखता ही नहीं था। प्रेजुडिस क्यों रखना है? इस प्रेजुडिस के कारण ही तो यह संसार है।

किसी संयोगवश कोई हमारे किसी बुजुर्ग से कहे, 'चाचा, मुझे दो सौ रुपए दीजिए न, मुझे बहुत तकलीफ है'। अब यदि चाचा अहंकारी हों तो मना नहीं कर सकते उसे और यहाँ घर पर बेटे के सामने उनकी कुछ चलती नहीं है। तब वे क्या करेंगे? बेटे की जेब में से निकाल लेंगे। अब क्या वे चोर हैं? क्या हैं? संयोगों के अधीन हैं।

यदि संयोगों के अधीन कोई व्यक्ति कुछ करे तो उसे हम गुनाह नहीं मानते। जो हमेशा के लिए चोर हो उसका हम गुनाह मानते हैं। उसके लिए तो हमारा सर्टिफिकेट है ही, लेकिन वह चोर का सर्टिफिकेट नहीं। उसके प्रति हमें अभाव नहीं रहता। आपको क्या लगता है, यह नियम काम में आएगा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

हम एक ही तरह के अभिप्राय वाले, हम नहीं बदलते हैं सर्टिफिकेट

दादाश्री : हमारे नियम आपके नियमों से अलग हैं। हम एक अभिप्राय वाले हैं। एक ही प्रकार का अभिप्राय, अभिप्राय नहीं बदलते हैं। अतः हम क्या करते हैं? मान लो कोट उतारकर घर में रखा है और उसमें दो सौ रुपए पड़े हैं। मेरा ऐसा अभिप्राय है कि यह व्यक्ति कभी भी पैसे नहीं लेगा, चोरी नहीं करेगा। अब उस व्यक्ति को किसी ने जेब में हाथ डालते हुए देख लिया और मैंने नहीं देखा। फिर मुझे तो वापस बाहर जाना पड़ा। बाहर जब पैसों की ज़रूरत पड़ी तब जेब से पैसे नहीं निकले। बाहर जाकर वापस आने पर मैंने घर पर पूछा, 'किसी ने इसमें से पैसे लिए हैं?' तब उन्होंने कहा कि, 'नहीं, हमने नहीं लिए हैं। क्या है?' तब मैं कहुँगा, 'नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ नहीं। मैंने अंटी

में डाल दिए थे, वे मुझे मिल गए'। फिर अगर कोई कहे कि, 'वह भाई आपकी जेब में हाथ डाल रहे थे। क्या इसमें से कुछ कम हुआ है?' मैंने कहा, 'नहीं, जो मेरी अंटी में थे और वे मुझे मिल गए'। लेकिन मुझे यह पता चल गया कि किसने हाथ डाला था। अब उन भाई के लिए तो मैं ऐसा मानता हूँ कि वे चोरी कर ही नहीं सकते। मेरा उनके प्रति ऐसा अभिप्राय था। अब एक बार अभिप्राय बनाया तो बस, उसे फिर बदलना नहीं है।

अरे! हमने खुद चोर को देखा हो, कोई शंका नहीं रहे, और हमने दूर से देख लिया हो, फिर भी हम उसे चोर नहीं कहते। यदि मैं उन्हें चोर कहूँ तो पहले मैंने ही कहा था न कि, 'यह चोर नहीं हो सकता'। फिर मेरा ही सर्टिफिकेट बदलने का समय आया? तो क्या मैं एक कॉलेज के सर्टिफिकेट से भी गया-बीता हूँ? लो! तो इसका प्रमाण क्या है? तो कहा, 'हमारा नियम'।

मैं मॉरल खरीद लेता था

फिर यदि अगले दिन जब वे आए तो उन्हें पता नहीं चले उस प्रकार से कोट ज़रा अलग रख देंगे, बस उतना ही और कोट में ज़्यादा पैसे नहीं रखेंगे। कोट में जितना कुछ निकालते हैं, उतना रख देना और वह भी इस तरह से कि उसे पता न चले। उसे अपमान महसूस न हो, उस प्रकार से! लेकिन उसके प्रति हम ऐसा मन नहीं रखते या उनके प्रति फिर प्रेजुडिस नहीं रहता कि 'ले गया तो अब नहीं रखना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : उसे दूसरी बार पैसे लेने का चान्स नहीं देंगे?

दादाश्री : नहीं देंगे और फिर भी अगर उसे ऐसा चान्स मिल जाए तो हम ऐसा प्रेजुडिस नहीं रखेंगे कि वह ले गया।

मैं मॉरल खरीद लेता था। वह चोरी करता था फिर भी उसे वापस बुलाता था लेकिन सावधान रहता था। मैं कोट निकालकर वापस उस जगह पर नहीं रखता था और उससे ऐसा नहीं कहता था कि तू

चोर है। मुझे सब प्रमाण मिल जाते, सबकुछ मिल जाता फिर भी नहीं कहता था क्योंकि मैं इंसान को चोर नहीं कहता हूँ, मैं चोर को चोर कहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : चोर को, इंसान को नहीं!

दादाश्री : नहीं। आप जिस तरह से कहते हो वैसा नहीं। मैं ऐसी दृष्टि से कहता हूँ कि जिसका स्वभाव हमेशा चोरी करने का है, उसे मैं चोर कहता हूँ सभी लोगों को मैं चोर नहीं कहता और जो संयोगवश चोरी करता है, उसे मैं चोर नहीं कहता। मेरी बात समझ में आ जाए तो बहुत कीमती है। दुनिया के लोग किसे पकड़ते हैं? दुनिया के लोग किसे चोर कहते हैं? जो पकड़ा जाता है, उसे। अरे, उसने ज़िंदगी में कभी भी ऐसा नहीं किया, आज पकड़ा गया तो क्या हमेशा के लिए उसकी इज़्ज़त खराब कर दोगे? मैं ऐसा सब नहीं करता। यों तो संयोगवश राजा भी भीख माँग सकता है। वह राजा अपना राजसीपन नहीं छोड़ देता। अतः हमारा यह वाक्य बहुत बड़ा है। समझने जैसा है यह वाक्य! पूरी दुनिया इसी में फँसी है, 'आज पकड़ा गया, मैंने खुद देखा'। अरे भाई! उसका पहले का चरित्र तो देख! हज़ारों रुपए दो तब भी न ले, ऐसा इंसान लेकिन उसका चोरी करने का समय आ गया तो उसके चरित्र को धूल में मिला दोगे? एक तो आप अपने आपको बिगाड़ रहे हो! और हमेशा के लिए उसे भी बिगाड़ रहे हो। उस पर आरोप लगाओगे, तो उसे बहुत आघात लग जाएगा।

अगर हमारा यह वाक्य समझ में आ जाए तो बहुत कीमती है। संयोगवश चोर को चोर कहते हैं हम। रावण ने और कुछ नहीं किया था, संयोगवश सिर्फ कुदृष्टि डाली। उसने एक बार ही ऐसा सोचा कि मुझे इसे पकड़कर लाना है। तो उस पर दुनिया ने इतना सब कर दिया! जो सब से बड़ा साइन्टिस्ट है, वैज्ञानिक है, उसे भगवान ने भी 'भगवान' कहा है। वे प्रतिनारायण कहलाते हैं, और इस देश के लोग उनकी निंदा करते हैं। इस देश का क्या भला होगा फिर? उसके पुतले जलाते हैं! धन्य है इस दुनिया को!

जान छुड़वाने के लिए लोगों ने भतीजे को चढ़ाया

प्रश्नकर्ता : कुटुंब के किसी बहुत ही विचित्र प्रकृति वाले व्यक्ति से आपने किस प्रकार से व्यवहार किया?

दादाश्री : हमारे एक भतीजे थे, वे क्या करते थे? जब गुस्सा आता था न तो पड़ोसी की भैंस के खूँटे की रस्सी काट देते थे। उससे वह भैंस चली जाती थी। तब सभी पड़ोसी मन में चिढ़ते रहते थे और उन लोगों के कुछ कहने से पहले ही वह इतनी-इतनी गालियाँ देने लगता था। इसलिए फिर लोग उसे कुछ नहीं कहते थे। लोगों ने एक तरकीब ढूँढ निकाली कि आपके चाचा तो कॉन्ट्रैक्ट का इतना बड़ा काम करते हैं और आप घर पर बैठे हो? आप तो उनके भतीजे हो, आपको तो साफ-साफ कह देना चाहिए कि 'नौकरी-वौकरी नहीं करूँगा, आपको इसमें हिस्सा देना पड़ेगा'। तब उन्होंने कहा, 'मुझे वह काम नहीं आता है न! मैं क्या करूँगा वहाँ पर? कॉन्ट्रैक्ट का काम नहीं आता है न!' लोगों ने समझाया था कि तुझे इतना ही कहना है कि 'मुझे इसमें पार्टनर रखो'। उसे किसी ने ऐसा सिखा दिया तो उसके दिमाग़ में यह बात फिट हो गई। फिर यहाँ आकर वह बा की उपस्थिति में ही बैठ गया। उसने ऐसा नहीं कहा कि 'मैं आया हूँ'। उसने कहा, 'हम आए हैं, हम यहीं पर खाना खाएँगे, दो-पाँच सालों तक, जब तक यहाँ रहेंगे, तब तक। हम बाद में दे देंगे'। ऐसा कहा। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : बाद में दे देंगे।

दादाश्री : इस तरह जैसे कि भोजनालय में पैसे नहीं देने हों? ऐसा भी कहा, सब कहा। तब फिर बा ने मुझसे कहा, 'अरे, यह लड़का ऐसा कह रहा है!' मैंने कहा, 'भले ही कहे, वह तो कहेगा'। हमें छान लेना है, अपने पास छलनी रखनी है! गेहूँ-गेहूँ रह जाएँगे, कंकर नीचे गिर जाएँगे। उसके बाद मुझसे कहा, 'मैं बाहर से आया हूँ। चाचा, मैं आया हूँ'। मैंने कहा, 'बहुत अच्छा हुआ। मेरे घर भतीजा आया तो मुझे बहुत आनंद हुआ'। मुझे सब मालूम था। फिर मुझसे कहा, 'कॉन्ट्रैक्ट में

मेरा हिस्सा रखना पड़ेगा'। तो तुरंत ही, क्या हुआ है और यह इंसान ऐसा कैसे कह रहा है, मुझे पूरा इतिहास दिखाई दिया। यह इंसान ऐसा कह रहा है कि कॉन्ट्रैक्ट में हिस्सा देना पड़ेगा! मैंने कहा, 'हाँ भाई'। मैं समझ गया कि यह ऐसा नहीं कह सकता। उसे खुद को ऐसे स्वार्थ वगैरह की समझ नहीं है। उसे खुद को ऐसे स्वार्थ की इच्छा नहीं है क्योंकि यह ऐसा कर ही नहीं सकता। लोगों ने, किसी ने इसे पट्टी पढ़ा दी है। मैं जानता हूँ किसी ने ऐसी अंटी (गांठ) डाल दी है, इस अंटी को निकालना मुश्किल हो जाएगा।

प्रकृति को पहचानकर बोधकला से लिया काम

प्रश्नकर्ता : वह तो मुझे भी कहा था, 'यह सिर्फ आपका नहीं है, मेरा हिस्सा है'।

दादाश्री : हाँ, आपको तो वे ऐसा ही कह रहे थे कि 'मेरी ही मालिकी है, मैं ही इसका मालिक हूँ'।

यह बात सुनने जैसी है। तब बा को एकदम धक्का लगा कि, 'हाय हाय, यह भागीदारी की बात कर रहा है'। और यह भाई तो ऐसा कह रहा है कि, 'तुझे हिस्सा दूँगा'। मैंने कहा, 'तू तो भतीजा लगता है, तुझे तो सब से पहले हिस्सा देना पड़ेगा। वर्ना और किसे हिस्सा दूँगा?' तब उसने कहा, 'तो चाचा, हम साथ में खाना खाने बैठें?' तब मैंने कहा, 'बैठ, चल'।

फिर जब उसने तीन रोटियाँ खा लीं तब मैंने कहा, 'एक-दो रोटियाँ और खा ले। फिर हमें काम पर जाना है और फिर वहाँ जाकर क्या करना है? तुझे कुछ लोग दिए जाएँगे और उन लोगों की तुझे देख-रेख करनी है, उन्हें पैसे देने हैं। जो भी खर्चा हो उसका तुझे हिसाब रखना है। हमारे पास दो काम हैं एक वाघोड़िया के सामने हैं, वह स्टेशन से चार मील की दूरी पर है और दूसरा साढ़े पाँच मील की दूरी पर है। तुझे कौन सा ठीक लगेगा? चार मील वाला या साढ़े पाँच मील वाला?' उसने कहा, 'मैं चलकर नहीं जा सकूँगा'। तब मैंने कहा, 'भाई, कॉन्ट्रैक्ट के काम में तो चलकर जाना पड़ता है'। तब उसने कहा, 'नहीं, वह

मुझसे नहीं होगा। मुझे आपका काम नहीं करना है। मुझे हिस्सा भी नहीं चाहिए'। उसी से मना करवाया।

मैंने इस तरह सेट कर दिया। मैं समझ गया था कि अगर ऐसा कहूँगा न, तो वह मना कर देगा। अपने आप ही मना कर देगा। मैं उसकी प्रकृति पहचानता था कि यह काँटे वाली प्रकृति है या यह बगैर काँटे की? तो अपने आप ही मना करने लगा और अगर मैंने ही मना कर दिया होता न कि 'भागीदार-वागीदार नहीं रखेंगे' तो पूरे दिन कलह होती। हम तो ऐसा सब जानते हैं न कि पेच किस तरफ से खोलने हैं। तो ऐसा हुआ था। मैंने सोचा, 'हम इसके साथ कहाँ झंझट करें?'

भतीजा था इसलिए मन में ऐसा भाव था कि कहीं सेट कर दूँ

मैंने मन में तय तो किया था कि इसे किसी लाइन में लगा दूँ। इसलिए फिर मन में ऐसा था कि एक-दो हज़ार रुपए खर्च करके उसे कोई छोटी सी दुकान लगवा दूँ। मन में ऐसा भाव था क्योंकि भतीजे के साथ चाहे कुछ भी हुआ हो फिर भी वह तो खुद के पेट में दु:खने जैसा ही कहा जाएगा। कहाँ पट्टी बाँधें, अगर भतीजा ऐसा कहे तो? तब फिर मैंने कहा, 'यहाँ दुकान लगवा दें'। तब उसने पूछा, 'किस चीज़ की दुकान?' मैंने कहा, 'अनाज-किराना वगैरह की'। तब उसने कहा, 'तराजू लेकर बैठना पड़ेगा?' मैंने कहा, 'और क्या लेकर बैठोगे?' तब उसने कहा, 'नहीं, तराजू-वराजू मुझे नहीं जमेगा'। लो अब, दूसरी बात के लिए भी मना किया, कितनी *तुमाखी* (हेकड़ी, घमंड) थी उसमें?

तब फिर मैंने पूछा, 'नौकरी करेगा?' तो उसने कहा, 'हाँ! नौकरी करूँगा'। फिर मैंने सूरसागर पर एक पेट्रोल पंप वाला था, वह अपना परिचित था तो मैंने पेट्रोल पंप वाले से कहा, 'भाई, इसे रख लो। यह लोगों के लिए पेट्रोल भर देगा और लिख देगा'। फिर मैंने उसे कहा, 'मैंने पेट्रोल पंप पर तेरी नौकरी तय की है'। तब उसने कहा, ''नहीं, वहाँ तो शिव चाचा के बेटे पेट्रोल लेने आते हैं, तो वे कहेंगे, 'अरे,

पेट्रोल दे'। शिव चाचा के बेटों की ही बात है, दूसरों की नहीं। तो क्या मैं पेट्रोल दूँगा?'' तब मैंने कहा, 'तो उस बात को भी छोड़ो, बंद रखो'। इसे शिव चाचा कहाँ से याद आ गए! देखो न इसे, अपना और सिर्फ अपना ही याद आता है, बाहर का कोई भी याद नहीं आता। दिमाग़ की कैसी *तुमाखी*!

इसलिए फिर मैंने कहा, 'भाई, तो अब तू क्या करेगा? तू तो एक भी बात नहीं मानता है। अरे, एक शब्द तो मान मेरा'। तब उसने कहा, 'नहीं, ऐसी नौकरी-वौकरी नहीं चाहिए। हमें तो नौकरी ऐसी करनी है कि कोई ऐसा नहीं कहे कि तू ऐसे कर'। तब मैंने कहा, 'भाई, अगर ऐसा नहीं हो पाएगा तो तू क्या करेगा?' तब उसने कहा, 'हम अपने घर चले जाएँगे वापस'। उसने कहा, 'लेकिन दो महीने हम यहाँ रहकर ढूँढेंगे, उसके बाद जाएँगे'। तब मैंने कहा, 'दो के बजाय छः महीने रह न!' तो महीने-डेढ़ महीने रहा था।

उल्टा बोले फिर भी देखते थे पॉज़िटिव

रोज़ बा के साथ बैठकर कहता था, 'बा, चिंता मत करना, मैं कमाऊँगा न, तो सब दे दूँगा'। फिर मैंने एक दिन उसकी जेब में देखा तो बेचारे की जेब में बारह-चौदह आने थे। एक दिन मुझे बुखार था और वह जेठा भाई के वहाँ गया होगा, वहाँ जेठा भाई की पत्नी ने पूछा कि, 'चाचा की तबीयत कैसी है?' तब उसने कहा, 'उन्हें बुखार आया है, तो उससे मुझे क्या लेना-देना? बुखार तो आता रहता है!' तब फिर जेठा भाई की पत्नी को गुस्सा आ गया, उन्होंने यहाँ आकर बा को बताया, तब बा ने कहा कि, 'यह ऐसा कह रहा है'। तब मैंने बा से कहा, 'भले ही कहे। अब आप क्या करोगी? कोई और उपाय है? इसलिए इसका ऐसा उपाय करो ताकि हमें झंझट न हो'।

हमने कैसे अहिंसक उपाय किए! कोई भी झंझट नहीं। दो-तीन दिन बाद उसने कहा, 'मुझे घर जाना है'। तो वह कपड़े वगैरह लेकर जाने लगा, मुझे तो पता भी नहीं चला। उसके बाद फिर शंकर भाई आए, तब उन्होंने कहा कि, 'विठ्ठल भाई तो गए'। मैंने कहा, 'अरे, उनके पास

बारह-चौदह आने ही थे। कैसे जाएँगे भादरण?' तब शायद पाँच या दस का नोट होगा, तो मैंने कहा, 'ले, यह नोट उसे देकर आ'।

तब फिर वहाँ जल्दी से शंकर भाई को दौड़ाया और फिर वहाँ पर उसे पैसे दिए, तो उसने कहा, 'चाचा गरीब इंसान हैं। गरीब इंसान के पैसे मुझे क्यो दे रहे हो?' तो उसने नहीं लिए। तब फिर हमारे रणछोड़ भाई ने एक दिन कहा, 'इस विठ्ठल भाई को देखो न...' मैंने कहा, 'ऐसा क्यों कर रहे हो? वह अच्छा भतीजा है। जो भतीजा देने पर भी नहीं लेता, ऐसा कोई इस दुनिया में ढूँढ लाओ'। हम उसे देने जाएँ तो वह कहता है, 'आप गरीब हो, मुझे आपका नहीं चाहिए'। तो ऐसा भतीजा कहाँ से लाएँगे हम? देने पर लोग ले लेते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : ले लेते हैं।

दादाश्री : जेब में नहीं हों फिर भी देने पर भी नहीं लेते। तो रणछोड़ भाई बहुत खुश हो गए। मुझसे कहा, 'मुझे यह कला अच्छी लगी। आपने अच्छी कला ढूँढ निकाली'। तब मैंने कहा, 'क्या हो सकता है। क्या इस तरह से साथ रहते? अगर कोई कला नहीं ढूँढे तो फिर क्या करें?'

अहंकार भग्न लेकिन उसके गुण देखे

अब हमारा वह भतीजा इतने भग्न अहंकार वाला है कि पूरी ज़िंदगी पागलों की तरह ही रहा है! अब कौन से जन्म में वह अहंकार भग्न हुआ होगा और कौन से जन्म में उसका वेदन करेगा, वह तो भगवान जाने। ऐसे तो बहुत तरह के अहंकार भग्न लोग देखे हैं मैंने। भग्न अहंकार, भग्न प्रेम ऐसे बहुत तरह के भग्न! अहंकार भग्न व्यक्ति का कैसा होता है, कि अगर उसके पास पचास ही रुपए हों और आप कहो कि 'क्या आपसे बात हो सकती है? मुझे अभी ज़रा पैसों की परेशानी है'। तो वह किसी से पच्चीस-पाचस रुपए उधार लेकर आपको दे देगा, 'लो बड़े भाई', ऐसा करके।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दे देगा।

दादाश्री : उससे मिठास लगी न! शरीर में उसकी मिठास लगी इसलिए उसके एवज में उसकी वैल्यू चुका देते हैं। अहंकार भग्न व्यक्ति ऐसा होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे तो कई अहंकार भग्न होते हैं। सब जगह ऐसे ही, तरह-तरह के होते हैं।

दादाश्री : अगर उन्हें बताएँगे तो कितना दु:ख होगा! उन्हें मत बताना। लेकिन वे खुद कैसे इंसान थे... एक बार हम उनके घर गए थे, तब वे सब्ज़ी लेकर आए थे। खुद एक मील दूर गए और सब्ज़ी लेकर आए। उसके बाद फिर घर आकर पैसे गिने तब कहने लगे कि, 'सब्ज़ी वाली का एक आना ज़्यादा आ गया है। चाचा आप बैठिए, मैं उसे देकर आता हूँ'। हमें बैठाए रखा और वह वापस उसे देने गया। मैंने कहा, 'बैठ न, अब बाद में दे देना, कल दे देना'। तब उसने कहा, 'नहीं, उस बेचारी को अभी गिनते समय दु:ख होगा'। अब इन्हें पागल भी कैसे कह सकते हैं?

लेकिन देखो, सब्ज़ी वाली को एक आना वापस क्यों दे आते हैं। वह हिसाब भी देखने जैसा है न! तो वह वापस जाकर उसे पैसे दे आया बेचारा। क्या तू देकर आएगा? नहीं जाएगा देने। मैं भी नहीं दूँगा न। यह क्या झंझट? कल दे आएँगे भाई। अगर देने ही हैं तो कल दे देंगे, परसों दे देंगे, जब मिलेगी तब दे देंगे। वह तो कहता है, 'अभी ही जाकर...' तो मुझे बैठाए रखा और चला गया। अब उसके भी कुछ सिद्धांत तो हैं न, ध्येय तो है या नहीं? ध्येय रहित जीवन कैसे हो सकता है? वर्ना फिर यहाँ मुझसे मिलते ही कैसे?

दादा ने ध्यान रखकर शादी करवाई भतीजे की बेटी की

फिर जब उनकी बेटी शादी लायक हुई, तब उस मनु ने काफी कमाया हुआ था तो मैंने मनु से कहा, 'तू ज़्यादा दे'। चिमन भाई के पास ज़्यादा नहीं है, बच्चे भी बहुत नहीं भेजते। चिमन भाई से कहा, 'तू भी देना'। बेटी की शादी का समय आ गया। वह कम पढ़ी-लिखी थी। तब मैंने कहा, 'इसके लिए कुछ करो'। तब मनु ने कहा, 'मैं सात हज़ार

रुपए दूँगा'। चिमन ने कहा, 'मैं तीन हज़ार दूँगा'। तब मैंने कहा कि, 'हमें ऐसा करना है कि इतने में काम हो जाए'।

फिर मैं और मनु वहाँ मुंबई से निकले और सूरत पहुँचे। वहाँ धर्मज का एक लड़का था। सुविधाएँ कुछ ज़्यादा नहीं थीं उसके पास लेकिन यों था अच्छा। वह भादरण का भतीजा था। फिर उसके ननिहाल वालों ने तो कहा कि, 'हमें करनी ही है'। तब मैंने उसके ननिहाल में साफ-साफ बता दिया कि 'इसका बाप दिमाग़ से ज़रा क्रेक है और लड़की कम पढ़ी-लिखी है। शादी अच्छी करेंगे, उसकी चिंता मत करना। अन्य कोई शर्त-वर्त नहीं चलेगी'। तो भादरण वाले ने कहा, 'फिर से ऐसा नहीं मिलेगा'। तब तुरंत ही धर्मज वालों ने 'हाँ' कह दिया। मनु भाई उन दिनों इतने सुंदर और आकर्षक दिखाई देते थे। यों फर्स्ट क्लास कपड़े पहने हुए थे, राजा जैसे दिखाई दे रहे थे। वह लड़का तो मुझे और मनु भाई, दोनों को देखकर ही खुश हो गया। उसने ऐसा कहा, 'मुझे अगर शादी करनी है तो यहीं पर करनी है। चाहे कैसी भी लड़की हो, चाहे पागल हो फिर भी इन्हीं के यहाँ शादी करनी है'।

तो यों ही तय कर लाए फिर बारात आई और उसने शादी की। अब लड़की को कपड़े कौन देता इन दोनों में से? किसी ने भी नहीं दिए इसलिए फिर मैंने कपड़े देने का कह दिया कि, 'तेरे बारह महीने के कपड़े हमारी तरफ से'। तो पंद्रह सौ रुपए अलग रख दिए। उसका सौ-सवा सौ रुपये ब्याज आता था। उसके बाद उस लड़की को पाँच साल तक ब्याज दिया। फिर उस लड़की ने कहा, 'मुझे वहाँ सोसाइटी में मकान बनवाना है, आप नकद दे दीजिए'। उसके बाद (वे पैसे) मैंने उसे दे दिए।

अब उसकी बेटी की शादी के समय उसके दो भाईयों ने मुझसे कहा, 'इस भाई को आप संभाल लेना'। क्या कहा? क्योंकि, उसकी खुद की बेटी थी, उसके दो भाई खुद के खर्च से उसकी शादी करवा रहे थे तब यह क्या कहता है, 'उन्हें शादी करवानी हो तो करवाए, लेकिन मैं शादी में नहीं आऊँगा'। तब फिर मैंने इन लोगों को सिखाया कि एक

अच्छी अँगूठी बनवाओ। फिर उससे कहा, 'आप अँगूठी पहनकर कन्यादान करने बैठना'। तो अच्छी अँगूठी पहनाई, उसके बाद वे आए।

प्रश्नकर्ता : अँगूठी खींच लाई उन्हें।

दादाश्री : अच्छी अँगूठी थी न, तो यों देखते जा रहे थे! लेकिन थे भोले, और कुछ भी नहीं था बेचारे को! वैसे भाई भी मिल जाते हैं न! देखो न, उन्हें संभालने वाले कैसे-कैसे मिल गए! पुण्यशाली थे न! तो लोगों ने उसकी शादी करवा दी, दोनों ने मिलकर और ऊपर से यह भाई गालियाँ दे रहा था, 'आपसे किसने कहा शादी करवाने का? बड़े आए शादी करवाने वाले! देखो तो सही! इनके चेहरे तो देखो!' ऐसा कह रहे थे। क्या लोगों को बता सकते थे यह सब फज़ीता?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : हाँ, लोगों को ऐसा सब नहीं बता सकते। हमें सिर्फ देखते ही रहना पड़ता है। हिसाब होगा तभी ऐसे लोग मिलेंगे न, वर्ना ऐसा भतीजा कैसे मिलता?

निकाल देना तो सभी को आता है, उसके बजाय निकाल करो

दादाश्री : हमारे चंद्रकांत के फादर तो बहुत चिढ़ गए क्योंकि वह उनके चाचा का बेटा लगता था, मेरा भतीजा लगता था। कहा 'अरे! इसे निकाल दो आप तो'। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : निकाल दो।

दादाश्री : निकाल देना तो हर किसी को आता है। हमें नया क्या करना आया, वह ढूँढ निकालो न! निकालना किसे नहीं आता?

प्रश्नकर्ता : सभी को आता है।

दादाश्री : हम किसी को निकालते नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : आपकी खोज असल है।

दादाश्री : दुनिया में सभी तरह के खेल होते हैं। मुझे तरह-तरह के लोग मिले हैं!

प्रश्नकर्ता : उसमें भी इस तरह से *निकाल* (निपटारा) लाना वह तो बहुत बड़ी बात है।

दादाश्री : वहाँ आफ्रीका जाकर भी, जो कोई भी उनकी दुकान पर आता है तो वे उनसे कहते हैं कि, 'ये सब मेरे नौकर हैं, मैं ही सेठ हूँ। यह रणछोड़ भाई नौकर हैं, रावजी भाई नौकर हैं, सभी मेरे नौकर हैं'। ऐसा कहते थे। एक पैसा भी नहीं कमाया, और पूरी ज़िंदगी ऐसे का ऐसा ही रहा।

फिर एक दिन मुझे रणछोड़ भाई ने कहा कि, 'इसके साथ कोई संबंध रखने जैसा नहीं है। इसे कहीं भी खड़ा रहने देने जैसा नहीं है'। मैंने कहा, 'ऐसे परेशान होने से क्या होगा? उसे हमारे नज़दीक जन्म किसने दिया? निकाल देंगे तो फिर से आएगा किसी जन्म में, उसके बजाय *निकाल* ही कर दो न, उसके साथ'। तो मुझसे कहा, 'उसके साथ कैसे रह सकते हैं?' मैंने कहा, 'सब से अच्छा इंसान है यह। मुझे तो गाली दे जाता है कि मेरे चाचा बेअक्ल हैं, ऐसे हैं, वैसे हैं, लोभी हैं लेकिन भाई, हमें उस तरफ का भय नहीं है कि वह हज़ार रुपए माँगने आएगा। पाँच रुपए भी नहीं माँगेगा ज़िंदगी में। वह क्या कोई कम फायदा है? यह सब से बड़ा फायदा है!' तो कहते हैं, 'हाँ, वह बात सही है, नहीं माँगेगा'। 'और अगर किसी और को आप पार्टनर बनाओ तो चाहे वह बहुत अच्छा हो, बहुत ही काबिल हो, बहुत ही विनयी हो लेकिन पाँच हज़ार लेने आए न, तो उसे फेल कर देना और इसे पास कर देना' ऐसा कहा।

'अगर हो सके तो आप इसे रुपए देकर देखो? यह कहता है या नहीं कि आप गरीब इंसान हो। जो रुपए नहीं लेता पहले उनका अनुभव करना चाहिए, चाहे वह कितनी भी गालियाँ दे फिर भी। जबकि मीठा बोलने वाले तो पाँच हज़ार लेने ही आए होते हैं। जबकि इनको स्वार्थ नहीं आता। स्वार्थ-व्वार्थ की झंझट ही नहीं न! उनके आने पर अगर

'पधारो' कहें न, वे खुश हो जाते। बाकी, मर जाएँ तब भी माँगना नहीं। पानी नहीं हो फिर भी माँगना नहीं है, तो क्या वह कुछ कम बात है? हमें निर्भय बना दिया', रणछोड़ भाई को समझाया, तब फिर रणछोड़ भाई ने कहा, 'मुझे भी आपकी यह बात पसंद आई। उसमें भी गुण तो हैं न!'

मैं पैसे देता था कि जिसे ठगा है उसे वापस देकर आओ

प्रश्नकर्ता : 'टकराव टालिए' वह सूत्र आपने सब से पहले अपने भतीजे को दिया था, वह बात बताइए।

दादाश्री : हुआ ऐसा कि 1951 में कोसबाड़ एग्रिकल्चर कॉलेज बन रहा था, उसका कॉन्ट्रैक्ट लिया था। कोसबाड़ करके एक एग्रिकल्चर फार्म था, वहाँ खेतीबाड़ी का कॉलेज बन रहा था।

नीरू माँ : वह जो सूरत के पास कोसमाड़ा है, वह?

दादाश्री : नहीं, कोसमाड़ा नहीं, कोसबाड़। उस समय 1951 में कांति भाई को यह आज्ञा दी थी कि, 'टकराव टालना'। तो अभी भी वे उसका पालन कर रहे हैं।

नीरू माँ : तब तो आपको भी ज्ञान नहीं हुआ था।

दादाश्री : लेकिन ऐसा व्यवहारिक ज्ञान था सारा। व्यवहारिक ज्ञान तो बहुत था। व्यवस्थित तो मुझे उन दिनों समझ में आ गया था। इस आत्मा के ज्ञान के अलावा बाकी का अनंत जन्मों का अनुभव ज्ञान साथ में आया है।

लेकिन यह वाक्य कैसे निकला कि, 'किसी के साथ टकराव में मत आना!' वह पूरी बात बताता हूँ। हमारा एक भतीजा था। भतीजा यानी कि हमारे चाचा के बेटे का बेटा। वह बिगड़ गया था। ज़रा तेज़ स्वभाव वाला और उल्टे रास्ते चला गया था। तो उसके फादर मेरे यहाँ आए, वे अपने बेटे को लेकर आए थे। मैंने उनसे कहा, 'आपके बेटे को बाहर खड़ा रखो और आप यहाँ आओ'। तब बेटे को

बाहर खड़ा रखकर वे अंदर आए। मुझसे पूछा, 'बेटे को अंदर बैठा दूँ, धूप में खड़ा है?' मैंने कहा, 'नहीं भाई, मेहरबानी करके मेरे यहाँ मत बैठाना। इस लड़के को मेरे यहाँ नहीं बैठा सकते'। वह चोरी नहीं करता लेकिन धूर्तता तो करता ही है। 'मैं अंबालाल चाचा का भतीजा हूँ। मैं आपके लिए मिट्टी का तेल ला दूँगा, वह ला दूँगा'। कंट्रोल के समय में तो लोगों को अगर मिट्टी का तेल मिल जाए तो बहुत मज़ा आ जाता था न? तो वह रुपए लेकर भाग गया, उसने लोगों के रुपए वगैरह वापस नहीं किए। उसकी शिकायत आई, इसलिए मैं उसे घुसने नहीं देता था, 'मेरे घर में नहीं, यहाँ पर नहीं घुसने दूँगा'।

फिर मैंने कहा, 'पूरी फैमिली में सिर्फ आपके यहाँ पर ऐसा बेटा जन्मा!' अंदर आपकी चोर दानत होगी, माँ-बाप की दानत चोर होगी तभी ऐसा बेटा पैदा हुआ। ऐसा क्यों पैदा हुआ? मैं तो ऐसा सख्त बोलता था। उस समय ज्ञान नहीं था इसलिए व्यवहार में मैंने क्या कहा? कि 'इस घर को अपवित्र मत करना'। तब वह लड़का बाहर से कहने लगा कि 'दादाजी, मुझे माफ कर दीजिए'। तब मैंने कहा, ''मैं माफ कब करूँगा कि जब तू अपना सिर मुँडवा देगा और फिर गाँव में सभी से कहेगा कि, 'ठगकर मैंने जिस-जिस के पैसे लिए हैं, मैं उन सब के पैसे लौटा दूँगा', और तू सब को वापस देकर आना।''

चोरी करके नहीं लाया था लेकिन ऐसा सब भी गलत ही कहलाएगा न? लोग बेचारे विश्वास से देते हैं और लोग यह सब इस नाम से देते हैं कि, 'अंबालाल का भतीजा है'। तो सिर के बाल मुँडवाने की शर्त रखी और घर बैठे तनख्वाह, इसके अलावा कुछ भी नहीं करना होगा। मैं जो पैसे दूँ, वे सारे पैसे भादरण में माँगने वालों को देकर आना, जिन-जिन को छला हो, उन्हें। लेकिन उसने छः महीने ऐसा करने के बाद फिर नहीं किया। क्या मैंने उसे गलत रास्ता बताया था?

प्रश्नकर्ता : अच्छा था, दादा।

दादाश्री : पैसे देता था, तो घर बैठे सभी को दे आता था और

सब के हस्ताक्षर लेकर मुझे देता था। तब फिर मैं उसे फिर से आगे की सर्विस देता था, बिज़नेस का काम मैं उसे सौंप देता था। लड़का होशियार था लेकिन नहीं किया। वह वापस यहाँ से भाग गया।

मेरे पैसों से सुधर जाए तो भी बहुत हो गया

तो वह सब जगह से धक्के खाकर वापस यहाँ आया। मैं और मेरे भागीदार कांति भाई सो गए थे। उस समय वह यहाँ आकर बाहर खड़ा रहा और कहने लगा, 'दादाजी, मैं आया हूँ'। मैंने धीरज रखा। मैंने कहा, 'यह सब क्या है?' फिर वह बताने लगा कि, 'मुझे कहीं पर कोई भी नहीं रखता, मुझे आप ही संभालो और अब अगर कोई भूल हो तो मुझे समुद्र में फेंक देना'। तब फिर मेरी आँखें थोड़ी ठंडी हुई। यदि वह ऐसा एफिडेविट दे रहा है तो उससे ज़्यादा तो हमें कुछ नहीं चाहिए। इसलिए फिर मैंने अपने यहाँ नौकरी पर रखा, उसे सुधारने के लिए। हमारे भागीदार से कह दिया कि दस हज़ार का नुकसान हो जाए या कुछ टेढ़ा-मेढ़ा करे तब भी लेट गो करना है। अगर कोई व्यक्ति मेरे पैसों से सुधर रहा है तो मेरे लिए बहुत हो गया।

उसके बाद उस व्यक्ति की जितनी-जितनी बुरी आदतें थीं न, तो मैंने उसके सामने एक शर्त रखी। मैंने भागीदार से कहा, 'इस काम की पूँजी उसके हाथ में दे दो। उसके हाथ में पूँजी देकर कहना कि 'तुझे कच्चा लिखना है और सभी को पैसे वगैरह देने हैं और सब को मुझसे पूछकर देने हैं। उसमें तुझे तेरा खर्च भी लिख देना है'।

फिर मैंने कहा, 'जा, वसई में हमारा यह काम चल रहा है, तो तू वहाँ पर जा'। तो मैंने उसे हिसाब लिखने के लिए किताब दी। तब फिर वह सारे कामकाज करता था लेकिन उस ज़माने में रोज़ आठ-दस रुपए उड़ा देता था, 1942 में। तब फिर मैंने उससे क्या कहा कि, 'भाई, ऐसा हमारे यहाँ नहीं चलेगा। तू जो भी करता है वह यहाँ पर लिख देना तो मैं चला लूँगा, लेकिन तू इस तरह इधर-उधर पैसों का गड़बड़-घोटाला कर देता है। यों तो तू इसमें कुछ भी गलत नहीं लिख रहा है और इस तरह गड़बड़ कर रहा है। अब

लिखना। तू अगर सिगरेट पीए तो भी लिखना, दारू पीए तो भी लिखना'। मैंने उसे छूट दी थी कि 'मैं तुझे डाँटूँगा नहीं लेकिन तुझे सुधारूँगा'। फिर भी क्या वह लिख लेता? उसके बाद धीरे-धीरे मैंने पता लगाया। मैंने कहा, 'इसका क्या है?' हमारे भागीदार से मैंने कहा, 'चाहे कितने भी पैसे खर्च हों लेकिन इस लड़के को सुधारो। वह अपने खुद के अनंत जन्म बिगाड़ देगा और शक्ति तो है, इधर मोड़ेंगे तो सीधा चलेगा'। उसके बाद हमारे भागीदार ने तय किया कि, 'चाहे बारह महीनों में पाँच हज़ार बिगड़ें तो बिगड़ें लेकिन हमें इसे सुधारना है'।

ढूँढ निकाला कि यह तो मेरे पैसों का सदुपयोग करता है

फिर पता लगाया। तब उसका क्या हिसाब मिला? हर एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि, 'आपका भतीजा बहुत अच्छा इंसान है। बहुत ही नोबल माइन्ड वाला है'। मैंने पूछा, 'ऐसा? हमारा भतीजा नोबल है? आपको ऐसा कैसे लगा?' तो कहा, ''हमें देखते ही वह कहता है 'आइए, आइए, आइए, चाय पीजिए' कहता है, और ऐसा है कि स्टेशन की होटल में बीस लोगों को चाय पिला देता है।'' मैंने कहा, 'वह तो समझदार है'। तब मुझे यह बात पकड़ में आई। मैं ढूँढ रहा था कि 'पैसे किसमें जाते हैं? कहाँ खर्च करता है?' तो मुझे यह अच्छा लगा। अच्छा है, लोगों को चाय पिलाता है। मेरे पैसों का सदुपयोग करता है। फिर पता लगाने पर मुझे ऐसा लगा कि यह अभी तक खुद पर खर्च नहीं कर रहा था। 'ओहोहो! आपने तो मुझे कई बार नाश्ता करवाया है'। तो लोग उसकी 'वाह, वाह' करते थे। यह सब वह लोगों के लिए करता था। वह तो ढूँढने पर पता चल गया। अन्य कोई गलत रास्ता नहीं था कि ब्रान्डी या ऐसा कुछ। किसी तरह की बुरी आदत नहीं थी इसलिए फिर मैंने लेट गो किया। मैंने कहा, 'अब चाहे उल्टा-सीधा लिखे तब भी मुझे हर्ज नहीं है'। क्योंकि अगर मैं उसे यह कहता कि, 'तू यह अच्छा कर रहा है' तो उसे एन्करिजमेन्ट मिलता और वह पूरे गाँव को चाय नाश्ता करवाता। उससे अपना काम धंधा रुक जाता। मुझे तो जो जानना था वह ढूँढ निकाला।

वह ऐसा आदमी था कि एक बार मेरी मदर को भादरण जाना था। वह बड़ौदा स्टेशन पर आया। मुझसे पूछा, 'बा को कहाँ बैठाएँगे?' मैंने कहा, 'भाई, बा को गाड़ी में बैठाना है'। तब उसने कहा, 'नहीं, मैंने स्टेशन मास्टर जी से कह रखा है। हमारे दादा की बा आ रही हैं'। 'अरे, स्टेशन मास्टर जी से हमें क्या लेना-देना?' और मुझे तो बोझ, बोदरेशन लगता है। हमें ऐसी जान-पहचान क्यों चाहिए? हमें न तो बेटे की शादी करनी है और न ही बेटी की, तो फिर हमें स्टेशन मास्टर जी से क्या काम है? हमें टिकट लेकर यहाँ बैठना है। उसे ऐसा रौब दिखाना था कि 'मेरे दादा!' इसलिए जाकर स्टेशन मास्टर जी से कहा, 'पता है कौन आए हैं? ज्ञानी हैं और ऐसा सब है'। वह मास्टर तो बेचारा काँप गया। उस बेचारे ने वहाँ पर रूम खोलकर दे दिया। जहाँ बैठाते हैं, वह!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वेटिंग रूम।

दादाश्री : वेटिंग रूम। तो बा को वहाँ पर बैठाया। फिर मैंने कहा, 'भाई, बा से चला नहीं जाता और गाड़ी चल पड़ेगी तो फिर परेशानी हो जाएगी। तू बा को वहाँ पर ले जा और वहाँ कुर्सी पर बैठा दे'। 'दादाजी, बा को आराम से बैठने दो'। उसने ऐसा कहा और गाड़ी चल पड़ी। मैंने कहा, 'अरे मुए, यह क्या किया? अब बा कैसे दौड़ेंगी?' उसने कहा, 'कोई परेशानी नहीं दादाजी। आप बा को बैठे रहने दो'। उसने गई हुई गाड़ी को वापस बुलवाया और बा को बैठाने के बाद गाड़ी चली। यानी वह जो पैसे खर्च करता था न, उसके पीछे यह बल था।

यों पैसे पानी की तरह बहाता था और रेल्वे के पैसे नहीं भरता था

फिर वापस उसने क्या किया? कॉन्ट्रैक्ट का काम था हमारा। कॉन्ट्रैक्ट का काम था तो माल तो ले जाना पड़ता था न? तो हर बार स्टेशन पर से हमारा माल ले आता था। मुंबई से माल लेकर आता था रेल्वे में, तो वज़न करवाना चाहिए न? वज़न करवाकर। बहुत वज़नदार

माल होता था सारा। दो-चार मन (एक मन अर्थात् 20 किलोग्राम), पाँच मन वज़न होता था तो उसका वज़न करके इस प्रकार से उसे लाना चाहिए। हमने कहा कि, 'तेरा जितना खर्च हो उतना, उसका लगेज (किराया) भरना'। लेकिन लगेज भरे बगैर मार-ठोककर माल ले आता था। टिकट कलेक्टर से झगड़ा करता था और बवाल मचा देता था। स्टेशन मास्टर जी से झगड़ा और जहाँ देखो वहाँ झगड़ा, झगड़ा और झगड़ा! रेल्वे में भी मारामारी करता था। यों तो पैसे पानी की तरह बहाता था लेकिन नियमानुसार रेल्वे के जो पैसे भरने होते थे, वह नहीं भरता था और ऊपर से झगड़ा करता था। इसलिए फिर मेरे पास शिकायतें आती थीं कि, 'आपके भतीजे को निकाल दो, यह आपकी इज़्ज़त बिगाड़ रहा है'।

'टकराव टालना' सूत्र प्रकाश में आया इस प्रकार से

तब मैंने कहा कि, 'भाई, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है कि तू मेरी इज़्ज़त बिगाड़ रहा है? यदि तुझे आबरू बिगाड़नी है, तो तू चला जा'। तब फिर उसने मुझसे कहा कि, 'दादा, मुझे कोई धर्म दीजिए, मुझे इन सब बातों में सूझ नहीं पड़ती। आप रोज़ पुस्तकें पढ़ते हैं। मुझे ऐसा कुछ दिखाइए कि मेरे आत्मा का कल्याण हो!' तब मैंने उससे कहा कि, 'तुझे सिखाकर क्या करना है? तू तो सभी के साथ टकराता है'। सरकार में दस रुपए भरने पड़ें, उतना सामान लाता है फिर भी पैसे भरे बगैर लाता है और यों लोगों को बीस-बीस रुपए का चाय-नाश्ता करवा देता है! तो उससे वे लोग खुश हो जाते हैं। दस बचते नहीं हैं, बल्कि दस रुपए ज़्यादा खर्च हो जाते हैं, ऐसा नोबल आदमी है।

मैंने कहा, 'अरे, तुझे क्या करना है? तेरा कल्याण हो चुका है! और कितने ही लोगों को मारकर आता है, क्या वह कम है?' तब उसने कहा, 'मेरे आत्मा का भी कुछ होना चाहिए न! मुझ पर कुछ कृपा कीजिए'। तब मैंने कहा, 'देख, मैं तुझे एक पुड़िया देता हूँ, पालन करेगा?' उसने कहा, 'मर जाऊँगा लेकिन उस पुड़िया को छोड़ूँगा नहीं'। मैंने कहा, 'बस! किसी के साथ टकराव में मत आना, इतनी

सी पुड़िया'। फिर पुड़िया लेकर उसने पढ़ी, फिर वह चला गया। फिर दूसरे दिन मुझसे कहता है, 'टकराव में नहीं आना, लेकिन उसका अर्थ क्या है?' तब मैंने कहा, 'हाँ, बैठ अब'। मैंने कहा, 'अब यहाँ से तू बाहर निकलेगा और सामने साँप आ जाए तो क्या तू उससे टकरा जाएगा?' 'नहीं, मैं तो घूमकर जाऊँगा'। मैंने कहा, 'क्यों?' तो कहता है, 'काट खाएगा'। मैंने कहा, 'अच्छा! और अगर सामने बाघ आ जाए तो?' 'नहीं। भाग जाऊँगा'। मैंने कहा, 'भैंसा आ जाए तो?' तब कहा, 'नहीं। घूमकर जाऊँगा'। मैंने कहा, 'अगर सामने पत्थर हो तो? तो क्या तू ऐसा कहेगा कि पत्थर तू यहाँ पर क्यों खड़ा है? तू हट यहाँ से'। तब उसने कहा, 'नहीं,। कूदकर चला जाऊँगा। उसे हटा सकते हैं क्या?' ऐसे करते-करते पहले उसे स्थूल टकराव टालने की बात समझाई। स्थूल, जो आँखों से दिखाई दे, मन का काम नहीं। मन की इसमें ज़रूरत ही नहीं है। जो आँखों से दिखाई दे, पहले वैसा टकराव टालना सिखाया।

नियम से सूत्र का पालन किया, और बन गया सक्षम

फिर सूक्ष्म टकराव टालना सिखाया। किसी के साथ मतभेद हो जाए और हमें लगे कि वह हमेशा के लिए टूट जाएगा तो इससे पहले कहना कि, 'नहीं-नहीं। यह तो मुझसे गलती हो गई'। ऐसा करके सुलह कर लेना। मुझे कहता है, 'यह तो आ गया मुझे'। वह सब तो उसे आता था। यह तो उसकी मूल लाइन थी। अत: ऐसा करते-करते टकराव टालना है, उस नियम से वह टिका हुआ है। अभी तक टिका हुआ है। एक ही लाइन, बस।

अब जैसे यह हमारा भतीजा लगता है उसी तरह हमारे दूसरे भतीजे भरुच टेक्सटाइल मिल के मालिक, इन चंद्रकांत भाई के चाचा थे। उन्होंने भी इस भतीजे को वापस नौकरी पर रखा था। मुझसे पूछा कि, 'यह आपके यहाँ पर था तो क्यों निकल गया?' मैंने कहा, 'समझदार हो गया है। अब आप रखना'। तो उन्होंने अच्छी तनख्वाह पर रखा। उस लड़के ने तो बहुत ही अच्छी तरह से उनका काम करके

दिखाया क्योंकि बहुत केपेबल (क्षमता वाला) हो गया था, पूरा तंत्र चला दे, ऐसा।

जब भी मैं जाता था तो मालिकों ने कह रखा था कि, 'चाचा आएँ तो उनका सब इस तरह रखना'। जब मैं जाता था, तो प्रवेशद्वार में से घुसते ही पहरेदार और बाकी सब ऐसे-ऐसे करते रहते थे। यों लंबा कोट पहनकर जाता था और फिर कहलाता था उनका चाचा! 'अरे! सेठ के चाचा आए, वहाँ पर रौब पड़ता था हमारा।

एक बार हमें भरुच के बाज़ार में जाना था। उसने रास्ते में घोड़ा गाड़ी वाले से कहा कि, 'एय... चल'। तो पूरे भरुच में कोई भी घोड़ा गाड़ी वाला हो या कोई भी हो लेकिन अगर वह उससे कहे कि इधर आओ, तो वह आ जाता था। और कोई चारा ही नहीं होता था उसके पास! उसने यदि अपनी बीवी को बैठाया होता तो उसे भी उतार देना पड़ता था। इतना रौबिला इंसान था! मुझे घोड़ा गाड़ी में लेकर मिठाई वाले के वहाँ ले गया। हर एक मिठाई वाला बाहर निकलकर जय-जय कर रहा था। 'अरे! सेठ जी के चाचा आए हैं, सेठ जी के चाचा आए हैं!' उसने सब जगह बता दिया था। अब मिठाई वाले को क्या लाभ मिल रहा होगा? जब-जब भी मिल में ज़रूरत पड़ती थी, तब ऑर्डर देते थे तो मिठाई वाले खुश हो जाते थे कि 'मेरा काम हो गया'। कमिशन-वमिशन नहीं खाता था। वे अगर सिर्फ 'बाप जी-बाप जी' करें तो भी बहुत था। मेरे चाचा को 'बाप जी' कहा न! और उसे भी आदर से बुलाते थे। बस यही, 'मान खाऊँ, मान खाऊँ'।

उसके बाद रावजी भाई सेठ ने मुझसे कहा, ''इसे कैसा तैयार किया है आपने! आपने कहा था न, कि 'आप मतभेद नहीं डाल सकोगे!' तो मैंने मतभेद डालने के प्रयत्न किए। मैं मिल मालिक होकर इसके साथ मतभेद डालने के प्रयत्न करता हूँ। मैं इधर से मतभेद डालूँ तो वह उस ओर घूम जाता है और इधर से डालूँ तो उस ओर घूम जाता है। मतभेद नहीं होने देता।'' मैंने कहा, ''नहीं होने देगा'। अब वह मतभेद

नहीं होने देगा। कहीं ज़रा सी ज़्यादा झंझट हुई कि वहाँ से खिसक जाएगा, और फिर कैसे खिसकता है? यों ही नहीं, आपके मन को तोड़कर नहीं। आप पर हाथ-वाथ फेरकर कहेगा, 'देखिए, कल सुबह चाय-नाश्ता है, आपको आना है।'' आश्चर्य ही है न!

मैंने उससे कहा, 'तू अगर टकराव नहीं करेगा तो मोक्ष में जाएगा'। 1951 में उससे कहा था तो आज तक किसी के साथ टकराव में नहीं आया है। यदि मेरे इस एक ही वाक्य का पालन करेगा न कि 'किसी से टकराना मत', तो वह मोक्ष में जाएगा। क्या कहा?

'टकराव टालना', जल्दी मोक्ष में जाने का साधन

प्रश्नकर्ता : किसी से टकराना मत।

दादाश्री : 'टकराव टालना' इतने ही शब्द, इतना ही कहा था।

प्रश्नकर्ता : दो ही शब्द, टकराव टालना।

दादाश्री : ठेठ मोक्ष में जाने तक की गारन्टी है मेरी। पहले स्थूल अर्थ समझ में आएगा, फिर सूक्ष्म समझ में आएगा, फिर सूक्ष्मतर समझ में आएगा, उसके बाद सूक्ष्मतम। सूक्ष्मतम कौन सा? तब उसने कहा, 'चंदू के साथ तन्मयता, ऐसा टकराव नहीं होने देना है'। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : तन्मयाकार नहीं होने देना है।

दादाश्री : यों खुद है तो आत्मा, तो फिर चंदू से आपका टकराव ही हुआ न? यह उसका सूक्ष्मतम अर्थ है। अत: इन एक-एक वाक्यों में पूरे शास्त्र समाए हुए हैं। ये सारे जल्दी से मोक्ष में जाने के साधन दिए हैं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। सही तरीके से पकड़ लें तो...

दादाश्री : तो काम हो जाएगा।

भतीजे का रोग निकालने के लिए मिला सुनहरा सूत्र

वह तो भतीजे का रोग निकालते हुए मिला न मुझे। और कोई

भी रोग नहीं, सिर्फ यही रोग। तब मैंने कहा, 'यह रोग (औरों को खिलाने-पिलाने का) तो मुझे पसंद है। ऐसा रोगी हो और अगर उससे कुछ नहीं हो पा रहा हो तो फिर मैं इतना तो कहूँगा कि, 'कुछ नहीं तो लोगों को चाय पिलाकर खुश करना'। लेकिन उसमें तो मेरा मनपसंद रोग था। मैंने कहा, 'भले ही खर्च करे'। उसका मान पुसाता था। बस, ऐसा कहा कि, 'तुझे चाय-नाश्ता करवा देना है'। नाश्ता-वाश्ता करवाता था। अभी तो ज़रा आमदनी ठंडी पड़ गई है। फिर भी मर्द इंसान है! चाहे कैसा भी काम हो, प्रधानमंत्री के पास जाना हो तो जा आए, ऐसा था लेकिन आज पाँच सालों से ऐसी शक्ति नहीं है। बाकी, ऐसा था कि प्रधानमंत्री के भी दस्तखत ले आए। सबकुछ करना आता है। करेक्ट तरीके से। अंदर से साफ। दूसरी कोई दानत ही नहीं थी। सिर्फ यही।

ऊपर से कहता था, 'दादा, आपका भतीजा हूँ न! बाकी बहुत खराब गुण नहीं है। आपका एहसान है, आप कितने बड़े मन वाले हैं!' फिर वह लड़का साफ हो गया, फिर प्योर हो गया। फिर तो हाई लेवल का हो गया। मिल के सेठ के लिए तो उसकी कीमत बहुत बढ़ गई, लेकिन यों सुधर गया।

अत: अगर इस तरह का एक वाक्य भी समझ ले न, तो बहुत हो गया।

किस तरह नेगेटिव गुण को पॉज़िटिव में बदले?

अब अगर एक लड़का चोर है, तो उसमें उसके माँ-बाप को और घर वालों को कितना ही हाय हाय, बाप रे बाप होता रहता है। अरे, अगर लड़का चोर है तो यह हाय हाय, बाप रे बाप क्यों कर रहे हो? 'अरे भाई, ऐसा तो होता है। तूने इसका क्या उपाय ढूँढा है? उसे फेंक देना है?' तब कहते हैं, 'नहीं, फेंक तो कैसे सकते हैं?' 'तो भाई, तू उपाय बता मुझे'। तब उसने कहा, 'नहीं, इसका कोई उपाय नहीं है'। तभी हमें कहना है कि, 'यह लड़का तो बहुत ही अच्छा है'। उसे चोरी करना तो आता है न! कुछ तो आया न इसे?

प्रश्नकर्ता : चोरी करना भी आया न!

दादाश्री : हाँ... इसलिए शांति रख न, भाई। यह समझदार हो जाएगा, फर्स्ट क्लास सयाना हो जाएगा। उसकी जेब नहीं कटेगी। दूसरों की जेब कटेगी लेकिन उसकी जेब नहीं कटी होगी। वह क्या किसी को जेब काटने देगा? जबकि तेरी जेब तो सब से पहले कट जाएगी।

हमारे जो भाई है, उन्होंने बी.एस.सी.., बी.फार्म. किया है। एक बार टिकट गिर गई होगी या जो कुछ भी हुआ हो, सांता क्रूज़ के स्टेशन पर टिकट वाले ने उन्हें खड़ा रखा। तब उनका छोटा भाई आया। आकर उन्होंने कहा, 'आप जाओ, जाओ आप'। 'एय, क्या है?' इस तरह रास्ता निकाल देंगे वह तो। पढ़े लिखे हैं न! लेकिन ऐसे सब स्कूलों में पढ़े हैं!

पढ़ेगा नहीं तो व्यवहारिक सूझ तो खिलेगी, इसलिए डोन्ट डिसमिस एनीबडी

यों स्कूल में पढ़े हुए थे वे लोग। ये बी.ई., इंजीनियर बने हैं और वे बी.एस.सी., बी.फार्म हुए लेकिन ऐसे स्कूल में कोई नहीं पढ़ा। यह भाई तो ऐसे सब स्कूलों में पढ़े हैं! बिज़नेस में से निकाल दिया था। उस भाई ने पंद्रह साल में हमारे साथ बिज़नेस में लाख से सवा लाख रुपए अपने आप पर ही खर्च कर दिए थे! किसमें? घर खर्च में नहीं, बिज़नेस में खुद के पॉकेट इक्स्पेन्स! (जेब खर्ची)

प्रश्नकर्ता : पॉकेट इक्स्पेन्स!

दादाश्री : हाँ। तो उनके फादर ने कहा, 'यह लड़का कैसे पुसाएगा?' तब मैंने कहा, 'तो इसे समुद्र में डाल दो और यदि वह ठीक लगता है तो उसे रहने दो'। तब उन्होंने कहा, 'समुद्र में कैसे डाल सकते हैं?' तब मैंने कहा, 'तो फिर क्या करें? मुझे इसका उपाय बताइए?' तब उन्होंने कहा, 'इसका कोई उपाय नहीं है लेकिन क्या इसका कुछ सुधरेगा नहीं?' मैंने कहा, 'समय आने पर वह सुधर जाएगा, यों ही नहीं सुधरेगा। वह सभी स्कूलों की पढ़ाई कर लेगा। फिर वह बेवकूफ नहीं

बनेगा'। वह सब स्कूलों से पढ़कर आया है न! सवा लाख रुपए खर्च किए हैं, वे क्या बेकार जाएँगे?

अभी एक्सपर्ट हो चुका है, फर्स्ट क्लास! चाहे किसी को भी छुड़वा सकता है। अभी यदि किसी ने दादा को पकड़ लिया हो तो छुड़वा सकता है। किसी को भी पूरी तरह से छुड़वा सकता है, चाहे कहीं भी हो फिर भी। उसे यह सब आता है। अत: यह पैसे खर्च करना बेकार नहीं जाता! क्या ऐसे-वैसे किसी स्कूल में पढ़ा है यह इंसान? भले ही पैसे बहुत खर्च हुए लेकिन कुछ तो पढ़ा है इस इंसान ने! यों ही कहीं खर्च होता होगा? इसलिए डरने जैसा नहीं है। वह ऐसा लड़का नहीं है! अब उसे वापस ऐसे किसी कॉलेज में पढ़ने नहीं भेजना है। वह जहाँ है वहाँ रहे, हमें यह समझकर सुखी होना है कि यह नए कॉलेज में पढ़ रहा है! वह कभी हमारे काम आएगा। नहीं? उसके सारे भाई स्कूलों में पढ़े थे। वे सभी भाई इससे परेशान हो जाते थे। मैंने कहा, 'नहीं, यह बहुत अच्छा इंसान है। यह है तो काम चलेगा'। तब पूछा, 'लेकिन यह सब?' तो मैंने कहा, 'नहीं, वह सब बंद हो जाएगा और जो उसके काम का है, वही गुण बचेगा'। अभी वह सब बंद हो गया है और वह ऐसा है कि किसी के काम आए। कहते हैं कि, 'उनके जैसा कोई भी नहीं है!' अब अगर उन दिनों उसे डिसमिस कर दिया होता, तो क्या होता? अत: 'डोन्ट डिसमिस एनीबडी'। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : डोन्ट डिसमिस एनीबडी।

दादाश्री : हाँ। बड़ा, बहुत विशाल मन रखना है।

दादा के भतीजे का अनुभव उनके ही मुख से

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : आपने मुझे जो मंत्र दिया...

दादाश्री : हाँ, वह तो मुझे याद है।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : अभी भी उस मंत्र को पकड़कर रखा है लेकिन कई बार मुझे ऐसा हो भी जाता है। फिर तुरंत आपके शब्द

याद आते हैं कि 'दादा ने मुझे क्या कहा था?' इसलिए फिर हाथ वापस खिंच जाता है। वर्ना हाथ तो उठ ही जाता है!

उसे जो शब्द कहा था कि 'टकराव में नहीं आना,' तो टकराव नहीं। बस।

दादाश्री : लेकिन मन में किसी के लिए खराब विचार नहीं आते हैं न?

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : नहीं, नहीं। खराब हों तो कह भी देता हूँ, हाँ। मुझे खराब विचार आ गया तो उसके मुँह पर कह देता हूँ कि, 'तू ऐसा है'।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) महात्मा से : (शुरुआत में) जब मैं दादा के यहाँ जाता था न तब दादा मामा की पोल में रहते थे। तब मेरी उम्र सत्रह साल की थी, आज (1986 में) मेरी उम्र बासठ साल की है।

दादाश्री : आप सब एक में से थे या ज़ीरो में से?

प्रश्नकर्ता (2) : पूरी तरह से ज़ीरो ही।

दादाश्री : ऐसा? अब एक हो गया आपका?

प्रश्नकर्ता (2) : हो गया।

दादाश्री : बहुत काम हो गया फिर तो।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : मैं तो बहुत शरारती था, चाचा।

दादाश्री : हाँ, लेकिन मेरे सामने बहुत सीधा रहता है।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : वह तो ठीक है, लेकिन तब ऐसे काँपता था। क्यों? क्योंकि मेरे फादर कहते थे न कि, 'आप ले जाओ इसे'। अभी भी मुझे याद है न कि काशी बा ने कहा था कि, 'आप इसे ले जाओ, मुझे इसका चेहरा भी नहीं देखना है'। इतना तक कह दिया था आपको।

दादाश्री : हाँ, ऐसा कहा था न।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : तब आपने कहा था कि, 'भाई को मैं ले जा रहा हूँ'।

तब आपने मुझे सीधा वसई कोर्ट में, जहाँ काम चल रहा था वहाँ रख दिया। फिर मुझे कोसबाड़ के काम पर रखा। ठीक है?

दादाश्री : हाँ...

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : यदि आपने नहीं रखा होता तो कब का खत्म ही हो चुका होता।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : अगर आपने नहीं रखा होता तो फिर मेरी ज़िंदगी कैसे सफल होती?

हाँ, लेकिन आपने रखा, उसके बाद सभी को लाइन पर लगा दिया।

दादाश्री : अच्छा है। हमारा तो यही काम-धंधा है न!

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : आपने सब को जीवनदान दिया। ठीक है न?

दादाश्री : निमित्त हूँ।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : सीधे लोगों को तो सभी रखते हैं, लेकिन जो टेढ़ों को रखे वह मर्द।

दादाश्री : ये सब टेढ़े ही हैं!

प्रश्नकर्ता (2) : पूरी तरह से टेढ़े थे, दादा।

दादाश्री : आप भी टेढ़े...

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : मैं तो बहुत ही था।

प्रश्नकर्ता (2) : हम अंदर से बहुत टेढ़े।

दादाश्री : आप ज़्यादा टेढ़े थे...

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : मैं तो ज़्यादा... अत्यंत।

दादाश्री : आप तो सौ प्रतिशत।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : सौ प्रतिशत।

दादाश्री : अभी तो, यह पाँच पुलिस वालों को यहाँ पर पकड़कर ले आए। इन्स्पेक्टरों को भी पकड़कर ले आए।

प्रश्नकर्ता (2) : वे अभी बता रहे थे न कि, 'मैं यहाँ आता था न, तो अहमदाबादी पोल के लड़कों को मारते-मारते आता था'।

दादाश्री : हाँ, तो यही देखना है! ये यही दिखा रहे हैं।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : आपने यदि मेरे लिए यह नहीं किया होता तो क्या मैं अभी यहाँ तक पहुँच पाता? नहीं पहुँच पाता। आपने ही मुझे ज़ीरो में से अव्वल बनाया है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा कोई कहता नहीं है न। कहकर नहीं बताता। ये खुद तो उपकार भूलते ही नहीं हैं न। इसी को मानवता कहते हैं, देवपना कहते हैं। ये इंसान नहीं कहलाएँगे, देवता कहलाएँगे।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) - महात्माओं से : इन दादा भगवान ने मुझे इंसान बनाया। दादा भगवान का एक ही आशीर्वाद काफी है। अगर आपको एक ही आशीर्वाद दे, लेकिन उस आशीर्वाद को पकड़कर रखो तो, अमल में लाओ तो पूरी ज़िंदगी सफल हो जाएगी।

बाकी, मेरा तो बहुत चलता था बात-बात में। आपमें से, कोई कुछ भी बात करे तो मेरी स्प्रिंग उछल जाती थी। किसी में अगर थोड़ा-बहुत क्रोध हो तो उसे कंट्रोल किया जा सकता है, लेकिन जिसे सौ प्रतिशत क्रोध आता हो, उसे कंट्रोल करना तो बहुत मुश्किल है। उस पर मेरा सौ प्रतिशत कंट्रोल हो गया, ये उसे ज़ीरो पर ले आए। आज इनकी वजह से मैं सुखी हूँ, बस। बाकी, समझो न, अगर ऐसा कहें तो भी चलेगा कि 'इन्होंने मुझे जानवर में से इंसान बनाया'।

अत्यंत गुस्सा, यों चलते-चलते भी मुझे गुस्सा आ जाता था। यों अहमदाबाद की पोल में घूमने आया और अगर लोग मेरी हॉकी पकड़ लें तो मुझे गुस्सा आ जाता था, समझ गए? सभी परेशान हो गए थे। इन दादा ने रखा...

दादाश्री : ऐसा है न, मैं जानता था कि यह असली हीरा है। लेकिन इसमें खराबी आ गई है, लेकिन अगर इसे तराशेंगे तो ठीक हो सकता है, जबकि लोग तो निकाल देते हैं। मैंने इसे तराशा। उसके बाद एकदम ऑल राइट। यह असली हीरा है न! है असली माल, इसलिए। क्योंकि पहले ही दिन इसने मुझसे कहा था कि, 'दादा आप रखिए, वर्ना फिर मुझे दरिया में फेंक देना'।

प्रश्नकर्ता (कांति भाई) : और मेरे मदर-फादर ने तो कहा था कि, 'हमारे घर पर तो लाना ही मत'।

दादाश्री : मैंने कहा था, 'समुद्र में नहीं फेंक सकते'। लेकिन अच्छा है, यह तो ठीक हो गया।

अच्छे-खराब के सर्टिफिकेट में भी समभाव से निकाल

प्रश्नकर्ता : दादा, ज्ञान होने के बाद परिवार के लोगों के साथ का व्यवहार कैसा था?

दादाश्री : हमारा एक भतीजा है, वह भरुच टेक्सटाइल मिल का सेठ था। उसने कहा, 'चाचा, जैसे आप पहले थे, उससे तो अभी बिगड़ गए है। चाचा कितने अच्छे इंसान थे और यह धर्म के चक्कर में पड़ने से बिगड़ गए'। तब मैंने उसे क्या कहा? 'तू बड़ा आदमी है इसलिए तुझे इसमें कुछ समझ नहीं आएगा। मैं पहले से ऐसा ही था लेकिन तुझे पता नहीं चला। मैं तो जानता हूँ न कि मैं कैसा था! यह तो बहुत ही विषम इंसान है तेरा चाचा तो!' उसने कहा, 'लेकिन पहले ऐसे नहीं थे न?' मैंने कहा, 'नहीं, शुरू से ऐसा ही था लेकिन आपको पता नहीं था। मैं इसके साथ ही साथ रहता हूँ न!' तब उसने कहा, 'ऐसे क्या कह रहे हैं?' मैंने कहा, 'इसे शुरू से ही जानता हूँ। पहचानता हूँ तेरे चाचा को',

ताकि फिर मुझे डिप्रेस नहीं कर सके न! तो फिर क्या हम उसे नहीं पहचानते थे? पूरी तरह से पहचानते थे।

इस तरह से कहकर निबेड़ा ला देते हैं लेकिन ऐसा नहीं कहते कि 'हम ऐसे नहीं है'। शुरू से ऐसा है कह देते हैं ताकि वह समझे कि ये पहले ऐसे नहीं थे, फिर भी ऐसा कह रहे हैं! और उसका कोई अर्थ ही नहीं है। वह बात को उड़ा ही देगा। वह ऐसा मानता है कि मुझ में कुछ गलत है। 'तो भाई, तुझमें सही क्या है? यों ही गप्प, बिना समझे बोल रहा है!' 'आप ज़रा ऐसे हो गए हैं, आप ऐसे हो गए हैं। आप अब कुटुंब के प्रति प्रेम भाव नहीं रखते, शादियों में नहीं आते'। तो फिर मैं शादी वगैरह में जाकर आता हूँ। 'हाँ, चाचा आए थे। चाचा बहुत अच्छे इंसान हैं!' तो भाई, तू वही का वही है, तेरे बजाय तो इस स्कूल के सर्टिफिकेट अच्छे! ज़िंदगी भर पास (उत्तीर्ण) है ऐसा ही दिखाते हैं। मैट्रिक पास लिखते हैं या नहीं लिखते? और आप तो घड़ी भर में अच्छे और घड़ी भर में बुरे! तो यह जगत् तो इसी तरह चलता रहेगा लेकिन हम समभाव से *निकाल* कर देते हैं, बहुत अच्छी तरह।

चचेरे भाईयों का गुण, वे टेढ़ा बोलते हैं

वह तो एक जगह हमारे गाँव में हमें सत्संग के लिए बुलाया था, तो वहाँ सत्संग कर रहे थे तब हमारे एक चचेरे भाई टेढ़ा-मेढ़ा बोलने लगे। उन्होंने बैठे-बैठे बोलना शुरू किया कि 'ये बहुत बड़ी रकम दबाकर बैठे हैं, खूब दबाकर बैठे हैं इसलिए सत्संग हो रहा है आराम से'। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : खूब दबाकर बैठे हैं।

दादाश्री : मैं समझ गया कि यह इंसान चचेरेपन के गुण की वजह से ऐसा कह रहा है। उससे सहन नहीं हो पा रहा है। मैंने कहा, 'भाई, आपको क्या पता मैं क्या दबाकर बैठा हूँ? आपको क्या पता कि मेरे बैंक में क्या है?' तब उसने कहा, 'अरे, दबाए बगैर तो ऐसा कह ही नहीं सकते न, सत्संग होगा ही कैसे?' मैंने कहा, 'बैंक में जाकर पता

लगा आओ'। लाख रुपए आने से पहले कोई न कोई बम (खर्च) आ जाता है और फिर खर्च हो जाते हैं। यानी जमा तो होते ही नहीं है कभी भी और कमी पड़ी नहीं। बाकी कुछ भी दबाया करा नहीं है। अगर हमारे पास पैसा आएगा, तब दबाएँगे न? वैसी रकम आती ही नहीं है तो दबाएँगे कैसे? और हमें वैसा कुछ चाहिए भी नहीं। हमें तो न कमी पड़ती है, न ज़्यादा आता है।

देखकर शुद्धात्मा, लट्टू के लिए नहीं रखा अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा सुनते हैं तब लगता है कि दादा ने सारे, कितनी तरह के एडजस्टमेन्ट लिए होंगे!

दादाश्री : हाँ, जो किस्मत में लिखा है, उससे तो छूट ही नहीं सकते न! हमारे गाँव के थे, चचेरे भाई थे इसलिए हमें भी सीधे रहना पड़ता था उनके सामने। अगर कभी बुरा लग जाए न, तो वापस सही करना पड़ता था। हाथ वगैरह फेरना पड़ता था।

लेकिन यह सब ड्रामेटिक था। कैसा? अगर ड्रामे में अभिनय नहीं किया जाए न, तो मालिक दंड देगा। ये जो रिश्तेदार होते हैं न, वे तो मुझसे ऐसा कहते हैं कि, 'आप तो अब सत्संग करने लगे हो। आपको तो अब दुनिया की कुछ पड़ी ही नहीं है'। मैंने कहा, 'अरे, नहीं! आपके बिना मुझे अच्छा ही नहीं लगता'। जब ऐसा कहते हैं तो फिर वे वापस खुश हो जाते हैं! लो, वापस भूल जाते हैं! वे भी भूल जाते और हम तो भूलकर ही बैठे हैं न! फिर हम नाटक करते हैं। 'आपकी तो बात ही अलग है, आप तो ब्लड रिलेशन वाले हो'। ऐसा सब नाटक करते हैं वापस। देखो! अपने आप ही भादरण जाकर आए हैं न हम? चचेरे भाईओं से भी दूरी नहीं रखी। गाँव में से एक-दो लोग नहीं आए थे, जो बहुत ही विरोधी होंगे, वे। बल्कि उन दो लोगों ने क्या किया? बल्कि उन्हें जहाँ पर भी लोग दिखाई देते थे तो वहाँ कह आते कि 'दादा भगवान आए हैं, हं'। तो एक व्यक्ति ने कहा भी सही कि, 'वह तो बल्कि आपका प्रोपगेन्डा (प्रचार) कर देंगे'। हाँ, वे तो जगह-जगह पर कहकर आए! 'वहाँ मत जाना, दर्शन करने'। ऐसा

है यह जगत् तो! अगर वह मिले तो हमें उसके प्रति अभिप्राय नहीं रहेगा। अगर वह मिल जाए तो उसे पता भी नहीं चलेगा कि मुझे उसकी इस बात की खबर है! क्योंकि उसके लिए क्या अभिप्राय रखना? जब वह खुद ही लट्टू है तो। शुद्धात्मा और लट्टू दो ही हैं, इसके अलावा है ही क्या?

उसके पिता जी दर्शन कर गए थे बेचारे और वह तो वहाँ पूरे गाँव में टेढ़ा ही बोलता रहा। (सत्संग कार्यक्रम में) जब हमारे बिगुल बजे न, तो उसे अच्छा नहीं लगा। पहले उसी को सुनाई देता था, क्योंकि वह इंतज़ार करके ही बैठा रहता था न!

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार से नटु भाई ने आवाज़ लगवाई, वह उन्होंने भी सुनी थी, दादा।

दादाश्री : आवाज़ लगाई, वह भी ढूँढ निकाला था। नटु ने लगवाई थी यह। उसी को इन सब की पड़ी रहती है।

प्रश्नकर्ता : शरीर और कान वहीं पर लगे रहते हैं।

दादाश्री : ऐसा है यह जगत् तो!

फिर भी मिलने पर उसे ऐसा नहीं लगेगा कि वह हम से अलग है क्योंकि हमें जुदाई है ही नहीं। वह बेचारा लट्टू है, लट्टू के लिए क्या अभिप्राय? उसके हाथ में सत्ता नहीं है, संडास जाने की भी सत्ता नहीं है। वह जो कुछ भी कर रहा है, वह सब मेरा ही हिसाब दिखा रहा है। सही है न, उसमें उस बेचारे के पास कोई सत्ता ही नहीं है न! वह शुद्धात्मा ही है, उसके शुद्धात्मा को हमारे नमस्कार हैं।

नाटकीय रिश्ता रखा सब के साथ

अपने जो परिवारजन हैं न, वे अपने कज़िन्स लगते हैं। उनसे अपना क्या बदलेगा? कुछ हो पाएगा? मैं किसी का चचेरा भाई, आप भी किसी के चचेरे भाई, वे सब तो इस शरीर को लेकर कुटुंब वाले हैं, चचेरे भाई-बहन हैं, आत्मा को तो कुछ भी लेना-देना नहीं है न! कर्म

की झंझट है, टकराव है, जो भी कर्म किए हैं इस वजह से सारे ऋणानुबंध हैं, हिसाब चुकाने हैं।

अत: धीरे-धीरे हम तो व्यवहार में से बाहर निकल गए। मुझे यह अच्छा भी नहीं लगता। मामा के बेटों से, सभी से कह दिया था कि 'आप जितना रिश्ता रखोगे, मैं उतना नहीं रखूँगा'।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : 'मैं व्यवहार से रखूँगा, वह भी नाटकीय रखूँगा और आप सच्चे दिल से रखोगे,' सभी रिश्तेदारों को ऐसा बता दिया। क्योंकि हमारे नाटकीय सगाई (प्रेम) को आप ऐसा मानने लगते हो कि, 'दादा को मेरे प्रति बहुत प्रेमभाव है'।

प्रश्नकर्ता : नाटकीय प्रेम में भी भाव तो प्रदर्शित किया जा सकता है न?

दादाश्री : बल्कि और भी ज़्यादा भाव दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बल्कि ज़्यादा दिखाई देता है।

दादाश्री : इसलिए झगड़ा नहीं होता कभी भी जबकि सचमुच की रिश्तेदारी में आसक्ति रहती है इसलिए झगड़ा हुए बगैर रहता ही नहीं। इसमें आसक्ति नहीं है बिल्कुल भी।

लीजिए अपनी पुस्तकें और ज्ञान वापस, तब भी हम वीतराग

प्रश्नकर्ता : आपके कुटुंब में से किसी ने ज्ञान लिया हो, तो उनका अनुभव कैसा रहा?

दादाश्री : वह भाई कह रहा था न कि 'दादा, अब आप निकाल देंगे फिर भी हम कहाँ जाएँ? अब हमें तो यहीं पर आना पड़ेगा। क्योंकि आप हमें उस रास्ते पर ले गए हैं, तो अब हम अकेले वापस कैसे लौटें?'

प्रश्नकर्ता : उन्होंने वापस जाने का रास्ता चुन लिया है क्या?

दादाश्री : और आनंद सहित है इसलिए फिर इच्छा ही नहीं

होगी न! फिर भी, एक व्यक्ति जिसे मैंने अपनी पुस्तकें दी थीं, वे वह वापस दे गया।

प्रश्नकर्ता : पुस्तकें वापस दे गए?

दादाश्री : हमारा एक भतीजा था न, तो मैंने उसे यह ज्ञान दिया। बहुत कठोर था और क्रोधी था। मैंने ज्ञान दिया, उन दिनों उसने क्या कहा? ''आज रात को बड़ा नाग आया मेरे सामने। आकर एकदम फन फैलाने लगा। तब मैंने कहा, 'मैं शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ', तो वह चला गया।'' तब मैंने कहा, 'जो कुछ भी था, वह सब अब बाहर निकल गया'। उसके बाद उसे पुस्तकें दी, सबकुछ दिया। फिर साल-दो साल तक उसने यह सब किया, दर्शन किया, यह सब किया। फिर किसी ने उसे बताया कि 'यह सब तो जैन धर्म है'। उसे कोई गुरु मिल गए, तो उसे मन में ऐसा हुआ कि, 'यह जैन धर्म अपने घर में?' पत्नी से पूछा कि, 'यह जैन धर्म है?' तब उसने कहा कि, 'अपना वैष्णव धर्म है और वह भी फिर बालकृष्ण वाला धर्म है'।

फिर उसने मुझसे कहा, 'लीजिए ये आपकी पुस्तकें वापस और यह आपका धर्म और आपका ज्ञान भी आपको वापस'। उसके बाद मेरे मन में ऐसा आया कि, 'भाई, उसका उपकार मानो'। मैंने कहा, 'उसका अच्छा हो। यह भला आदमी है, वर्ना रास्ते में या गटर में डाल देता। उसके बजाय यहाँ आकर सारी पुस्तकें उसने वापस लौटा दीं। वर्ना अगर वह यों ही फेंक देता तो कौन मना करता?' तो 'यह ज्ञान भी आपको वापस दिया' कहा। क्या कहा? ऐसा है यह जगत् तो!

प्रश्नकर्ता : अब ऐसा कोई नहीं कहता, दादा। अब कोई भी ऐसा नहीं कहता होगा।

दादाश्री : अब तो ऐसा नहीं कहते, लेकिन पहले ऐसा कह गया था। सभी भतीजे-वतीजे यहाँ आ जाते हैं लेकिन हम किसी से कुछ नहीं कहते। वे तो हिसाब वाले हैं, तो *चीकणा* (अत्यंत गाढ़) किसके साथ होता है? जिसके साथ ज़्यादा रहते हैं वहीं पर *चीकणा* होता है न, या दूर वालों के साथ? दूर वालों से तो 'जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण',

जाली से 'जय श्री कृष्ण' करें, तब भी चलता है। जबकि यहाँ तो अगर हम 'जय श्री कृष्ण' कहें न, तो कहेंगे, 'हं, रात को तो ऐसा कर रहे थे और अभी वापस ऐसा कर रहे हैं?' वह वापस रात की फाइल खोलता है। मुए ढँक दे न, अब। जैसे-तैसे करके ढँक-ढँककर निकाल न यहाँ से, लेकिन छोड़ता नहीं है।

दादा की सही पहचान नहीं हुई

प्रश्नकर्ता : उनके बेटे तो अमरीका में दादा के एकदम परम भक्त बन गए थे न?

दादाश्री : हाँ, देखो न कि ये सभी बच्चे कैसे दादामय हो गए!

देखो न, वर्ना ब्लड रिलेशन वालों को तो यह प्राप्त ही नहीं होता। दूसरे शहरों में रहने से इन ब्लड रिलेशन वालों का व्यवहार भी कितना सुधर गया है!

प्रश्नकर्ता : अभी कहते हैं कि, 'मैं दादा को मानता हूँ', लेकिन यदि पंद्रह साल पहले पूछा होता तो कहता 'नहीं मानता'।

मुंबई के वे महात्मा उन्हें अमरीका में मिले होंगे न, उनके पास बैठे हुए थे न, तो उन लोगों ने कहा कि 'ये दादा भगवान तो हमारे चाचा ससुर लगते हैं'। फिर उन्होंने समझाया कि, 'ये आपके चाचा ससुर हैं, इसलिए आप दादा को पहचान नहीं पाए। लोग इनसे बहुत लाभ (प्राप्त कर) ले रहे हैं'।

दादाश्री : ऐसा!

प्रश्नकर्ता : दादा! हम भी आ पड़े हैं। अब हम आपको नहीं छोड़ेंगे।

दादाश्री : नहीं अब आप कैसे छोड़ोगे? महा पुण्यशाली हो।

प्रश्नकर्ता : अब ये चरण हम नहीं छोड़ेंगे, दादा।

दादाश्री : ये बच्चे बहुत पुण्यशाली हैं कि इन्हें दादा का लाभ

मिल रहा है। घर बैठे अपने यहाँ दादा कहाँ से आएँगे? घर बैठे, किसी को बुलाने भी नहीं जाना पड़ता। यह पुण्य है न, एक तरह का। पुण्य है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, है।

दादाश्री : हक़, हक़ है अपना।

इस जन्म में तो रास आ गया। नहीं? आपको लगता है ऐसा? अनंत जन्मों का सार आ गया।

सामने कोई प्रतिस्पंदन नहीं होने से सुधर गया भतीजा

यानी जिन्होंने हमारा विरोध किया न, भतीजे वगैरह, वे सब अब सुधर गए हैं क्योंकि उसके सामने हमारे प्रतिस्पंदन नहीं पहुँचे न!

प्रश्नकर्ता : दादा, यह ज़रा ज़्यादा समझाइए न!

दादाश्री : हम उसे शुद्ध ही देखते हैं। उसका दोष ही नहीं है, ऐसा देखते हैं। दोष हमारा ही है, ऐसा दिखाई देता है। हमारी ऐसी दृष्टि रहती है इसलिए उस तक ऐसे प्रतिस्पंदन पहुँचते हैं। अत: उसे सुधरे बिना कोई चारा ही नहीं है। जब ज्ञान नहीं था तब हम से मिले, उसमें आधे सुधर गए और कोई बिगड़ भी गया। लोग कहते थे न कि, 'आप लोगों को लुटेरे बना रहे हैं'।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान से पहले। क्योंकि तब अंदर एक गुण था। सहन कर लेना और दया का गुण था अंदर। कोई भी अगर दु:ख दे, कोई त्रास दे तो अंदर ही अंदर सहन कर लेते थे। रिश्तेदार हो या मित्र हो। बस, इतना गुण था। यानी कि कोई पाँच-दस हज़ार रुपए ले गया तो उसके प्रति द्वेष नहीं होता था। तब फिर लोग मुझसे क्या कहते थे कि आपने उसे सीधा नहीं किया, उसे कोई दंड नहीं दिया तो अब वह लुटेरा बन बैठा है। दंड दिया होता तो ऐसा करने से रुक जाता। तब मैंने उन्हें समझाया कि 'आपसे भूल हो रही है। मैं दंड नहीं दे

सकता'। तो पूछते हैं, 'क्यों नहीं दे सकते?' मैंने कहा, 'अगर कोई भला और दयालु इंसान हो और वह किसी को एक लगाए तो वह कैसी लगाएगा?'

प्रश्नकर्ता : हल्की।

दादाश्री : हल्के से मारेगा। तब उन्होंने कहा, 'इसलिए ये लुटेरे बन गए हैं। आपने इसके लिए इन्हें कुछ कहा नहीं!' मैंने कहा, 'वे यदि लुटेरे बन जाएँगे तो उन्हें खुद को ही नुकसान है। मेरे जैसा मिलने पर उनका खुद का काम ही ज़ोरदार चलेगा, तब फिर उन्हें कोई न कोई उनसे भी बड़ा मिल आएगा। जो उनके घूटने तोड़ देगा। तब तो वह रुकेगा ही न? रुके बगैर रहेगा ही नहीं न!'

[10]
प्रकट हुए गुण बचपन से
[10.1]
शुरू से ही असामान्य व्यक्तित्व
असामान्य बनने का विचार

प्रश्नकर्ता : आपको, जब इस ज्ञान का उदय हुआ उससे पहले पूर्वाश्रम में आपका व्यक्तित्व, आपके विचार और समझ कैसी थी, वह जानना है।

दादाश्री : मुझे तेरहवें साल में असामान्य बनने का विचार आया था। सामान्य अर्थात् सब्ज़ी-भाजी। असामान्य अर्थात् सामान्य लोगों को जो तकलीफें आती हैं, वैसी तकलीफें असामान्य लोगों को नहीं आतीं। सामान्य मनुष्य किसी की हेल्प नहीं कर सकता और असामान्य मनुष्य हेल्प के लिए ही होता है, इसलिए उसे जगत् एक्सेप्ट (स्वीकार) करता है।

प्रश्नकर्ता : असामान्य मनुष्य की डेफिनेशन (परिभाषा) क्या है ?

दादाश्री : असामान्य अर्थात् जो जगत् के सभी लोगों के लिए हेल्प फुल हो। हर एक जीव के लिए हेल्प फुल हो। कोई भी जीव उन्हें छुए तो उसे भी हेल्प हो जाए।

प्रश्नकर्ता : यों तो हर एक व्यक्ति किसी को किसी भी प्रकार से हेल्प करता ही है न?

दादाश्री : वह खुद नहीं करता है, प्रकृति करवाती है। जब खुद स्वतंत्र हो जाता है, तब असामान्य बनता है।

सामान्य इंसान लाचारी का अनुभव करता है। यदि उसे तीन दिन तक भूखा रखा जाए न, तो लाचारी का अनुभव करता है। अत: असामान्य बनना है। फिर खुद के सुख का अंत ही नहीं रहेगा। यह तो खुद ही रुक गया है। अभी तो किसी बड़े इंसान को देखता है तो लघुताग्रंथि उत्पन्न हो जाती है और उससे प्रभावित हो जाता है। अरे! जब वही सामान्य मनुष्य है, तो उससे क्या प्रभावित होना?

नहीं माफिक आया कपट, सरलता थी पहले से ही

प्रश्नकर्ता : शुरुआत से आपका स्वभाव कैसा था?

दादाश्री : बचपन से ही मेरा दिल झूठ-कपट, लुच्चाई, चोरी, लोभ वगैरह के लिए मानता ही नहीं था। मुझ में तो बचपन से ही मन-वचन-काया की एकता थी। जो मन में रहता था, वही वाणी में और वर्तन में आ ही जाता था।

फिर भी एक-दो बार कपट हो गया था, लेकिन उससे अंदर बिगड़ा न! याद किया कि क्या खाया था जो ऐसा हो गया! उसके बाद समझ गया कि यह कपट हमारी प्रकृति को माफिक नहीं आता है तो छोड़ दिया लेकिन मन बचाव कर रहा था, तब पता लगाया कि यह कौन है? तब पता चला कि बुद्धि मन को सपोर्ट कर रही है और अहंकार बुद्धि को सपोर्ट कर रहा है।

मुझ में बचपन से ही सरलता, निर्लेपता, निष्कपटता थी और चरित्र अच्छा था और कुछ चीज़ें खराब भी थीं। अहंकार बहुत ज़बरदस्त था। 'अंबालाल भाई' इन छ: अक्षरों के बजाय कोई 'अंबालाल' कहकर बुलाए तो भारी अहंकार खड़ा हो जाता था। दुश्मनों को, पूरे देश को जलाकर रख दूँ, इतना पावर था। वह पावर कैसा था कि यदि ज्ञान नहीं हुआ होता तो नर्क में ले जाता। भगवान का भी सहन नहीं हो सकता था, लेकिन हम में सरलता बहुत ही थी। माँ जी के दिए हुए संस्कार बहुत अच्छे थे। हम में सभी तरह के रोग भरे हुए थे। ज्ञान के बाद हम निरोगी हो गए।

किसी के लिए भी दखल रूप नहीं होना

प्रश्नकर्ता : तो दादा, आप शुरू से ही सरल थे यानी कि किसी को दखल रूपी नहीं हुए?

दादाश्री : किसी के भी लिए दखल (रुकावट) रूप बनेंगे तो सब से पहले दखल खुद को ही आती है। अर्थात् इतने सरल हो जाओ कि किसी को ज़रा सी भी दखल न हो, तो आपको भी दखल नहीं होगी। मैंने शुरू से इसी तरह की प्रेक्टिस रखी है। मैंने तो बचपन से यही तरीका रखा है क्योंकि दखल करने के बाद हम खुद दखल रूपी हो जाएँगे।

कपट व ममता थे ही नहीं

प्रश्नकर्ता : दादा, बचपन से ही आपमें कपट नहीं था, तो कपट और कुटिलता एक ही हैं या अलग-अलग हैं?

दादाश्री : इसमें ऐसा है कि कपट और कठोरता, ये दोनों अगर साथ में हों, तो उसे कुटिलता कहते हैं। अब ये सारे दूसरे पक्ष वाले जो मानते हैं न, उनसे अगर आप अपनी करने जाओगे तो वे यह बात नहीं मानेंगे, क्योंकि वे सरल नहीं हैं न! यदि सरल होता तो जहाँ जाता, वहीं पर सरल। अपने यहाँ पर आए और अगर वह सरल है तो बात को एक्सेप्ट करेगा, किसी और की बात होगी फिर भी। किसी और की बात सही हो तो उसे एक्सेप्ट कर ले, ऐसा सरल होना चाहिए। बचपन से यह हमारा मुख्य गुण था, सरलता। कपट का रास्ता ही नहीं था बिल्कुल भी। कम, बहुत ही कम। ममता की *अटकण* (जो बंधन रूप हो जाए) भी नहीं थी, बहुत ही कम। संसार में बड़े बनने की इच्छा थी! पहले थी लेकिन वह सब तो मिट्टी समान निकला। इसमें (धर्म में) इच्छा नहीं थी, पूजे जाने की कामना नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : इसमें पूजे जाने की कामना नहीं थी?

दादाश्री : नहीं, ज़रा सी भी नहीं। भीख ही नहीं थी न, उस तरह की।

[10.2]

ममता नहीं

वहाँ पर खाता ज़रूर था लेकिन घर पर नहीं ले जाता था

मुझे बचपन से ही एक ऐसी आदत थी कि किसी भी चीज़ की पोटली बनाकर नहीं लाता था। मैं बचपन से ही दोस्तों के साथ खेतों में जाता था। तरह-तरह के खेल खेलता था। हम सब पाँच-छः दोस्त, बनिए-पाटीदार सभी, हमारा पूरा सर्कल घूमने जाता था बाग में और खेत में। वहाँ पर मोगरी बोई हुई होती थी, किसी के खेत में मूली बोई हुई होती थी, किसी के खेत में आलू बोए हुए होते थे, सौंफ होती थी। फिर हम सब तो, अगर मोगरी होती थी तो मोगरी खाते थे और तरह-तरह की मूली और शक्करकंद वगैरह बहुत खाए हैं। फिर बाकी सब बाँधकर लाते थे इतना-इतना, सब्ज़ी की चोरी करके लाते थे। मुझे बचपन से एक आदत बहुत अच्छी थी, उनके खेत में चाहे कहीं भी ले जाएँ, तो मैं जाता ज़रूर था सब के साथ, लेकिन मैं घर पर कभी भी बाँधकर नहीं लाता था। कभी भी घर पर कुछ नहीं लाया।

वहाँ पर जितनी मोगरी खाई उतनी, उनके खेत में भुट्टे होते थे तो एकाध खा ज़रूर लेता था। वहीं पर खा लेता था, लेकिन मैं उठाकर घर पर नहीं लाता था। हमारे दोस्त कहते थे कि, 'पूड़ा तो ले लो'। मैं कहता था कि, 'नहीं, मैं तो कभी एक बैंगन भी न लूँ। मैं न छूऊँ कभी भी'। फिर जो मूल मालिक होता था न, वह थोड़ा-बहुत बाँधकर घर पर दे जाता था।

ममता नहीं थी इसलिए जगत् दिखाई देता था जूठन समान

हमारे कुछ ध्येय बहुत उत्तम थे। *पोंक* (ताज़े अनाज के हरे दाने) खाने गए थे बाजरे का। अपने यहाँ दूसरा और कौन सा *पोंक* होता है?

प्रश्नकर्ता : ज्वार का।

दादाश्री : तो ज्वार के *पोंक* को कूटकर, घी डालकर और उसका वह बनाते थे। *पोंकियु* या ऐसा कुछ कहते हैं न उसे?

प्रश्नकर्ता : *पोंकियो*।

दादाश्री : तो इतना बंधवाते थे, तो सभी दोस्त लेकर आते थे। वे सब लालची लोग थे! मैं तो जितना वहाँ पर खाता था, बस उतना ही। लोग तो फिर घर पर भी ले जाते थे। उन खेतों में से इतनी-इतनी सब्ज़ी पैक करवाते थे कि 'लो, ले जाओ'। मुझसे कहते थे कि, 'हमारे खेत में काजू के बहुत पेड़ है, तो काजू लेने चलो'। तो सभी मित्र एक-एक पाव की थैलियाँ बाँधकर लाते थे। मैं ज़रा सा भी नहीं लाता था। मैं वहाँ जितना खा लेता था, बस उतना ही। इस संसार की जूठन को मैं कहाँ छूऊँ? फिर भले वह काजू हो या सोना, इस तरह जूठन बाँधकर नहीं लाता था। हममें नाम मात्र को भी ममता नहीं थी।

शुरू से ही अपरिग्रही, लालच या लोभ नहीं

मैं बचपन से ही लालची नहीं था। इतना सा भी लालच नहीं, कभी भी नहीं। आप दें, यहीं से साथ में दें तब भी हमारे काम का नहीं। मैं कौन! मैं ऐसा सब नहीं ले सकता? *पोंक* खाने को बुलाते हैं तो *पोंक* खाकर चले जाना है लेकिन परिग्रह नहीं। अंदर से अच्छा ही नहीं लगता था। कोई भी चीज़ घर पर नहीं लाते थे। बिल्कुल भी लोभ नहीं था, जन्म से ही लोभ नहीं। भले ही अहंकार था। यानी कि हम कभी भी पोटली नहीं बाँधते थे। पुण्य इतना था कि आज तक पोटली नहीं बाँधी। ये सारे पहले के संस्कार थे। शुरू से ही ममता वाला स्वभाव नहीं था। आप अगर कोई चीज़ दो तो मैं यहीं पर दूसरों को देकर घर चला जाता हूँ। घर पर कभी भी नहीं ले जाता।

बा ने भी एक बार मुझसे कहा था कि, 'भाई, ज़रा चखने लायक मोगरी भी नहीं लाया?' मैंने कहा, 'नहीं, वापस वह झंझट कहाँ करें? हम वहाँ पर खाने जाते हैं, लेने नहीं जाते'। क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : खाने जाते हैं, लेने नहीं।

दादाश्री : तो संग्रह करने की आदत ही नहीं थी न! वह झंझट ही नहीं थी न! लोभ नामक गुण शुरू से ही नहीं था, बिल्कुल भी! बहुत ही उच्च प्राकृतिक गुण देखने को मिलते थे। ममता तो दिखाई ही नहीं देती थी। आप साथ में चाहे कितना भी दो लेकिन कह देते थे, 'नहीं भाई, मैं यह बाँधकर साथ में नहीं ले जाऊँगा, यहाँ पर खा लूँगा ज़रा सा'।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका इतना शुद्ध था इसलिए रिलेटिव में यह सारी परसत्ता छूट गई। रिलेटिव में जो इतनी स्पष्टता रहती थी आपको, तो वह इन्हीं गुणों के कारण?

दादाश्री : अंदर गुण तो हैं न, उन्हीं के आधार पर।

प्रश्नकर्ता : लालच नहीं था इसलिए साफ-साफ दिखाई देता था।

[10.3]

ओब्लाइजिंग नेचर

ठगे जाते थे, फिर भी औरों का काम करता था

यह तो मैं अपने बचपन के जो गुण थे उनके बारे में मैं बताता हूँ। ओब्लाइजिंग नेचर। हाँ, मुझे ओब्लाइज करना बहुत अच्छा लगता था। मैं नौ साल का था तब घर से मुझे सब्ज़ी लेने भेजते थे कि, 'जा, सब्ज़ी लेकर आ'। तो मैं मार्केट में सब्ज़ी लेने जाता था, जो कि चार फलाँग दूर था। हमारा मकान मुहल्ले में सब से आखिरी था तो घर से सब्ज़ी लेने निकलते वक्त रास्ते में पड़ोसियों से पूछता-पूछता जाता था कि, 'मैं सब्ज़ी लेने जा रहा हूँ, तो आपके लिए सब्ज़ी लानी है कोई? आपके लिए लानी हो तो मैं ले आऊँ'। ऐसा सब से पूछता था।

तो मुझे ऐसा होता था कि अगर सिर्फ अपना लेकर आऊँ तो टाइम बेकार जाएगा। इसके बजाय आसपास वालों से सब से पूछकर उनके लिए भी सब्ज़ी वगैरह ले आता था। पैसे-वैसे तो अपने पास होते थे तो दे देते थे, वर्ना वे देते थे। सभी का हिसाब रखता था। उसमें से बिल्कुल भी पैसा नहीं लेता था। बल्कि पैसा डालता था, ताकि मुझ पर आरोप न लगे। उनके मन में शंका न हो इसलिए मैं नुकसान उठाता था। यों मैं भला इंसान था न, इसलिए नुकसान उठाता था। नुकसान उठाता था यानी कि घर के पैसे डालकर काम कर देता था।

मैंने पूरी ज़िंदगी औरों के लिए ही बिताई है। मेरे खुद के लिए कभी भी नहीं बिताई। मुझे घर से एक काम करने को कहा जाता कि पोस्टकार्ड डालकर आ जा, तो सभी आसपास वालों से पूछ लेता था कि 'भाई, मैं पोस्ट ऑफिस जा रहा हूँ, आपको कोई चिट्ठी डालनी है?'

किसी को कैसे खुश करूँ, उसी में आनंद

जो कुछ भी काम हो, या कुछ भी लाना हो तो ले आता था। क्योंकि एक ही फेरे में जितने काम हो सकें, उतना किसी और का फेरा बचेगा न! मेरे एक फेरे में उनके लिए भी फेरा लग जाता था। एक ही फेरे में चार फेरे के काम हो जाते थे। उसके लिए पूछते-पूछते जाएँ तो क्या हर्ज है? कोई कहता कि, 'मुझे तुझ पर विश्वास नहीं है'। तब कहते थे, 'भाई, आपके पैर छूते हैं'। लेकिन जिसे विश्वास था उसका तो ले जाते थे। यानी शुरू से ही ओब्लाइजिंग नेचर!

अंदर मुझे इसमें आनंद आता था। मुझे यह अच्छा लगता था कि कैसे किसी को खुश करूँ, ओब्लाइज करूँ। ओब्लाइजिंग नेचर बिगिन्स एट होम (परोपकार की शुरुआत घर से करनी चाहिए।) सिर्फ बाहर ओब्लाइज करने का अर्थ ही नहीं है। हमें घर से ही शुरुआत करनी चाहिए। पड़ोस में किसी को ओब्लाइज नहीं करते और बाहर ओब्लाइज करते हैं। मेरा क्या जाता था इसमें? वे सब खुश हो जाते थे कि, 'यह लड़का कितना समझदार है!'

लेते हुए भी नुकसान उठाया और डाले खुद के पैसे

प्रश्नकर्ता : यानी कि दूसरों के आनंद में ही आपका आनंद था?

दादाश्री : जब मैं तेरह से अठारह साल का था तब भादरण गाँव से बड़ौदा जाता था किताब वगैरह लेने, तब हमारे बड़े भाई यहीं पर रहते थे।

मैं छोटा था, फिर भी जब बड़ौदा आता था तब आसपास वाले कहते थे कि, 'हमारे लिए गंजी लेकर आना, हमारे लिए यह लाना, हमारे लिए दो चड्डियाँ लेकर आना'। कोई कहता था, 'हमारे लिए बंडी लेकर आना, हमारे लिए इतना ले आना'। कोई कहता, 'मेरे लिए टोपी ले आना, इस नंबर की'। मित्रता थी इसलिए कहते थे न सभी? तो मैं (उनकी ज़रूरत पूछता भी था) ले भी जाता था, और फिर लाता भी था।

तो एक बार हमारे भादरण गाँव वालों ने बंडी मँगवाई थी, तो बड़ौदा से बंडी ली थी। मैं तो पंद्रह आने में लाया था। मैं बंडी खरीदने में एक आना ज़्यादा देकर ठगा गया। उसके बाद एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि, 'यहाँ उस दुकान पर चौदह आने में मिलती है'। अब उससे वापस तो नहीं माँग सकता था इसलिए फिर ऐसा कहा कि 'चौदह आने लूँगा'। वर्ना फिर उसके मन में ऐसा होता कि, 'एक आना हमने रख लिया'। हम तो भोले इंसान, तो नुकसान उठा लेते थे और वह व्यक्ति ऐसा समझता था कि हमने इसे एक आना ज़्यादा दे दिया। तो उन दिनों भी मैं अपना एक आना डाल देता था।

दुकान वालों को दु:ख न हो इसलिए भाव-ताव नहीं करते थे

फिर मेरा स्वभाव कैसा था कि जिस ठेले के सामने खड़े रहकर पूछा तो उसी से लेता था। एक बार पूछने पर वह जो भी भाव बताता, उतने में ही मैं ले आता था। अगर वह खटपटिया होता तो कोई हर्ज नहीं था, हमें खटपट नहीं आती। 'तू ऐसा कर, दो आने कम कर,' ऐसा मुझे नहीं आता था। जितना आता था उतना ही करते न! तो वह सारी किच-किच करना मुझे अच्छा नहीं लगता था। शुरू से ऐसा ही था। यह सब अच्छा नहीं लगता था। फिर कम-ज़्यादा हो तो निभा लेता था। मेरा स्वभाव कैसा था कि उसे दु:ख न हो इसलिए उसी के वहाँ से ले लेता था। मैं अपना स्वभाव जानता था।

लोग औरों से भी मँगवाते थे, वे सात जगह पर पूछ-पूछकर, सभी का अपमान करके लाते थे। अत: मैं समझ जाता था कि ये लोग मेरे मुकाबले दो आने कम में लाते हैं और मेरे पास मँगवाया है तो मेरे दो आने ज़्यादा खर्च होंगे। जो कुछ भी ले जाता था उसमें से बारह आने के गंजी और फ्रॉक ले आता और उसके लिए दो आने कम लेता था। मैं सोचता था, 'अगर हम ठेले वाले से ठगे गए तो हम पर आरोप लगेगा। दूसरी किसी जगह पर दस आने का मिल रहा हो, और हमने दो आने ज़्यादा दे दिए लेकिन मँगवाने वाले को वहम होगा कि, 'यह दो आने

खा गया होगा।' उसके बजाय तो हम दो आने कम लेंगे'। ऐसा नहीं रखना है कि अंदर उसे शंका हो। यानी पहले से ही दो आने कम लेता था।

प्रश्नकर्ता : जितने का आपने खरीदा हो उससे कम?

दादाश्री : हाँ, बारह आने दिए हों तो उसे ऐसा कहते थे कि 'दस आने दिए हैं'। यानी कि मैं हर एक चीज़ में दो-तीन आने कम ही लेता था। मँगवाने वाले को सस्ता बताता था, ताकि वह कहे कि, 'सस्ता लाया!' कई बार तो दो आने उसके और एक आना अपने पास से देकर भी चीज़ खरीद लेता था। ऐसे करके मँगवाने वाले को कीमत तीन आने कम बताता था।

कमिशन का आरोप न लगे इसलिए अपने पैसे भरता था

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले भी ऐसा रहना, वह एक अलौकिक चीज़ है न!

दादाश्री : बचपन से ही ऐसा किया है। ताकि कोई ऐसा न कह दे कि मेरे पैसों में से कमिशन ले गया! मैं तो दस आने में लाता था और यह बारह आने दे आया, इसने दो आने ले लिए। ये लोग मुझ पर कमिशन का आरोप लगाएँगे, ऐसा सोचकर तीन आने कम बताता था। तीन आने कम कर देता था, दो आने नहीं। हाँ, वर्ना वे ऐसा समझते कि इसने कमिशन ले लिया। ले! अरे, कमिशन लेना मैंने सीखा ही नहीं कभी।

फिर मेरे साथ वाले लोग कहते थे कि, 'कैसे इंसान हो, ऐसा कहीं होता है? आपने दिए हैं बारह आने, तो बारह आने लेने में क्या हर्ज था?' मैंने कहा, 'नहीं भाई, क्योंकि अगर किसी और जगह पर मैं ठगा गया होऊँ तो?' हम तो भले इंसान हैं! मन में ऐसा समझता था कि मैं तो भोला हूँ, शायद उस दुकानदार ने एक-दो आने ज़्यादा ले लिए हों तो। एक तो मुझे लेना नहीं आता, तो इसका क्या अर्थ है?

अपनी तारीफ पसंद थी और हेतु यह था कि 'उसे दु:ख न हो'

इनकी बराबरी कैसी की जाए, इस दुनिया की? और शायद अगर दो आने डाल भी दिए तो क्या नुकसान हुआ? वे तारीफ तो करेंगे न, 'ये तो बहुत कम भाव में ले आए, बहुत अच्छा लाए'।

प्रश्नकर्ता : उनकी तारीफ से हमें क्या मिला?

दादाश्री : वह तो, जब वे तारीफ करते थे तब पता चलता था। तारीफ सुनते समय वह जो चाय (मान) मिलती थी न, उस चाय की कीमत इस चाय से ज़्यादा थी। मुझे वह तारीफ बहुत अच्छी लगती थी, इसलिए मैं पैसे डालता था।

मेरा हेतु तो यही था कि उसे दु:ख न हो। लेकिन किसी भी तरह खुद के पैसे डालकर दे देता था। ऐसी छोटी-छोटी आदतें थीं सारी। इन बातों की ज़रूरत ही नहीं है न! लेकिन यह भी हेल्पिंग है। ये सारे कदम मेरे लिए हेल्पिंग हो गए।

तो अपने पैसे डालकर दे देते थे तो कोई क्लेम नहीं रहा न! नो क्लेम!

आठ आने के लिए शंका करके प्रेम तोड़ दें, ऐसे लोग

पहले से ही ऐसे सावधानी रखता था, क्योंकि अगर कोई आरोप लगा देता तो वह मुझे अच्छा नहीं लगता। अगर उसके मन में शंका हो जाती तो वह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तो, दो आने की चाय पीने के बजाय वे दो आने इसमें डाल देता था। ऐसा करता था ताकि उसके मन में शंका न हो। बेकार ही शंका हो जाती उन बेचारों को!

शंका हुई तो प्रेम टूट जाएगा न! अगर शंका हो तो प्रेम कहाँ रहा? मूल रूप से तो बेहिसाब शंकाएँ हैं और फिर उनमें मैं एक और जोड़ दूँ। कितनी शंकाएँ होती हैं इंसान को?

प्रश्नकर्ता : बहुत सी।

दादाश्री : निरी शंका में ही है। शंका में से बाहर ही नहीं निकलते लोग। कई बार तो अगर मैंने ज़्यादा पैसे नहीं दिए हों और वह चीज़ एक रुपए की मिलती हो, और मँगवाने वाला भी जानता था, तो मुझसे भादरण से मँगवाया कि, 'बड़ौदा जा रहे हो तो इतना ले आना'। तो उसमें मैं एक आना अपने घर से डालता था और कह देता था कि वह चीज़ मैं पंद्रह आने में लाया हूँ, ताकि उसके मन में शंका न हो। वर्ना शायद सोचे कि 'मेरे पैसे तो नहीं बिगाड़े न! 'उसमें से चाय-नाश्ता तो नहीं किया न?' उसे शंका न हो कि मेरे पैसों में से चाय-नाश्ता कर लिया। सिर्फ एक ही आना, ज़्यादा नहीं। हमें थोड़े ही पचास आने डालने थे? इस तरह खुद का एक आना डालकर वह चीज़ ले जाता था।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप इतना एडजस्टमेन्ट क्यों लेते थे?

दादाश्री : इन जीवों का तो कोई ठिकाना नहीं है! आठ आने के लिए शंका कर लें, बारह साल का परिचय हो, फिर भी! कैसे हैं?

प्रश्नकर्ता : बारह साल का परिचय हो, फिर भी आठ आने के लिए शंका करते हैं।

दादाश्री : वे आठ आने के लिए शंका करें, उसके बजाय हम पहले ही साफ रहें न।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम बिल दे सकते हैं न उसे।

दादाश्री : नहीं-नहीं, उन दिनों बिल कौन रखता था? हम तो ठेले पर से माल लेते थे, बिल कौन रखता था उन दिनों? और वे एक-एक आने का हिसाब गिनते हैं। एक आने के फायदे के लिए बड़ौदा से मँगवाते थे। अब मेरे जैसा स्वभाव वाला, मैं तो ठगा जाता था! इसलिए चार-छः आने, आठ आने कम लेकर चीज़ें देता था। तब वे कहते थे, 'यह तो बहुत सस्ती मिली'। मैंने कहा, 'हाँ, बहुत सस्ती मिली'।

दो रुपए के लिए नहीं बनता हमारा मन भिखारी

जब थान लेने जाता तब भी मुझसे तो हर एक दुकानदार दो-दो

रुपए ज़्यादा ले लेता था। 'अंबालाल भाई आए, अंबालाल भाई आए' कहते थे और मैं ज़्यादा दे भी देता था। मैं कहता था कि, 'इसकी दानत ही दो रुपए ज़्यादा लेने की है, और ऊपर से यह व्यक्ति अगर पैसे लेकर खुश हो रहा है तो क्या हर्ज है? उसका मन भिखारी है, मेरा मन तो दो रुपए के लिए भिखारी नहीं बना न'। ऐसा स्वभाव था उनका तो, बदला नहीं। ऐसा स्वभाव हो गया था। मुझे वैसा सब करना नहीं आता था।

वेस्ट का किया बेस्ट उपयोग, लोगों के लिए

प्रश्नकर्ता : दादा, और किस प्रकार से आप लोगों को मदद करते थे?

दादाश्री : हमारे भादरण के मकान के सामने हमारा बाड़ा था। जैसे आपके यहाँ पर कम्पाउन्ड है न, वैसा हमारे यहाँ उससे लगभग आधा, उतना बड़ा कम्पाउन्ड था। उसका कोई उपयोग नहीं करता था इसलिए फिर मैं उसमें सब्ज़ी-भाजी उगाता था, छोटा सा था फिर भी।

लोग उस जगह पर क्या करते थे? उस जगह का उपयोग नहीं होता था, इसलिए गाँव में तो लोग भैंस का गोबर और खाद वगैरह सब वहाँ पर डाल देते थे। तब फिर मैंने कहा कि, 'मुझे इस जगह का उपयोग करना है'। इसलिए उन लोगों ने वहाँ से सब उठा लिया और फिर मैं वहाँ लौकी वगैरह उगाने लगा। ऐसा सब मुझे अच्छा लगता था। बस, स्कूल में ही कुछ (करना) नहीं आता था।

एक बीज में से कितनी ही बेलें उग निकलती थीं! मेरा हाथ ऐसा था कि बहुत बड़ी-बड़ी लौकियाँ उगती थीं। तो इतनी बड़ी-बड़ी लौकियाँ उगने लगीं। हर एक पत्ते पर लौकी उगती थी और भुट्टे तो इतने बड़े-बड़े उगते थे। पहले खाद-पानी बहुत प्रचुर मात्रा में थे और सभी संयोग मिल जाने पर अच्छे उगते थे। उसके बाद मैं तोड़कर सभी लोगों को दे भी आता था। इस तरह से देता था कि उनके काम आए। लोगों को मुफ्त की चीज़ अच्छी लगती है न!

[10.4]

जहाँ मार खाते थे वहाँ तुरंत छोड़ देते थे

रूठे थे बचपन में एक बार

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि अहंकार बहुत भारी था, तो अगर कभी आपकी मनमानी नहीं होती थी तो रूठ जाते थे क्या?

दादाश्री : शुरू से ही हममें *आड़ाई* कम थी। रूठने की आदत ही नहीं थी, बचपन से ही कम थी। मेरे घर के संस्कार ही ऐसे थे इसलिए सरलता थी लेकिन बचपन में एक-दो बार रूठकर देखा था, पाँच-सात साल की उम्र में।

तब हमारे रिश्तेदारों के बच्चे आए थे। तब बा ने कुछ दिया था, मुझे वह कम लगा। खाने की कोई अच्छी चीज़ होगी, तो मुझे कम मिली मेरे हिसाब से। तब फिर मैंने कहा, 'मुझे नहीं खाना है'। तब रूठ गया था। अगर कोई मुझे कोई चीज़ देने का कहता, और मुझे वह कम लगती तो मैं रूठ जाता था। वह जो चीज़ थी, वह तो वहीं पर रही, और वे बच्चे तो खाकर चले गए। मेरी चीज़ वहीं पर रह गई। फिर उसे भी कोई खा गया। रात को मैं ढूँढने गया तो मिली नहीं। मैंने कहा, 'वह कहाँ है?' तब कहा, 'वह तो खत्म हो गई भाई'। तब मैंने कहा, 'हाय! रूठने से तो हमें ही नुकसान हुआ'। दो रोटी खानी होती थी और नखरे इतने, थोड़ा सा खाना होता था और नखरे बहुत। ऐसा नुकसान का धंधा नहीं चलेगा, हमें नहीं पुसाएगा। इसलिए फिर जो भी देते थे, मैं वह ले लेता था।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद से दादा, जो भी मिलता था वह ले लेते थे? जो भी देते थे वह ले लेते थे आप?

दादाश्री : अगर ठीक लगे तो ले लेते थे और नहीं लगे तो रहने देते थे। रूठना-करना नहीं। मैंने यह हिसाब निकाल लिया था कि इसमें पूरा नुकसान ही है, यह व्यापार ही नुकसान का है इसलिए मुझे फिर कभी नहीं रूठना है।

भाभी को दूध ज़्यादा दिया, तब वापस रूठ गए थे

फिर भी उसके बाद मैं एक बार और रूठ गया था, दस एक साल की उम्र में।

प्रश्नकर्ता : दिवाली बा के साथ दूध को लेकर ऐसा हुआ था न! बा के साथ दूध की झंझट हुई थी न कि मुझे एक पाव, और उन्हें भी एक पाव, एक समान नहीं होना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, तो भाभी ग्यारह साल की थीं और मैं दस साल का था। फिर जब वे आईं तो मुझे परेशानी हो गई। मेरे हिस्से के दूध में से मुझे कम मिलने लगा, उसके हिस्से होने लगे न! उन दिनों तो एक पैसे में आधा सेर दूध आता था, दो पैसों में रतल, तो एक पैसे का मैं पीता था और एक पैसे का वे। भाभी को और मुझे, दोनों को एक जितना ही दूध मिलता था, आधा सेर।

एक बार हम शाम को खाना खाने बैठे तब मेरी बा ने भाभी को ज़्यादा दूध दिया और मुझे कम। उसके बाद मुझे अंदर से बा पर द्वेष हुआ कि 'बा, आप ऐसा करती हो?' तब मैंने तो झगड़ा किया। मैंने बा से कहा, 'मुझे क्यों कम दे रही हो? मुझे ऐसा नहीं चलेगा। मैं तो अपने लिए दूध अलग से लाऊँगा'। अत: दूसरी जगह से भैंस का दूध ले आता था। मोल लाता था। उनके लिए कोई दूसरा दूध वाला दे जाता था और मैं अपना खुद ले आता था। मैं अपने लिए आधी सेर की लोटी जितना ले आता था। फिर भी मेरी बा हैं न, वे हमारी भाभी को मुझसे ज़्यादा देती थीं। उनकी कटोरी में देखता था तो उसमें ज़्यादा होता था, उससे मुझे अंदर बहुत जलन होती थी।

फिर मैंने कहा, 'अब मैं अपने लिए ज़्यादा दूध लाऊँगा'। तब

बा ने कहा, 'ऐसा क्यों कर रहा है? (दोनों को) समान मात्रा में ही दूध पीना चाहिए'। तब मैंने कहा, 'बा, ऐसा क्यों? मैं आपका बेटा हूँ और यह बहू। बहू तो कल दूसरी भी ला सकते हैं लेकिन दूसरा बेटा कहाँ से आएगा? ऐसा क्यों करती हो? बहू तो अगर मर जाएगी तो दूसरी ले आएँगे'। मेरी ऐसी मान्यता थी, हमारे क्षत्रिय लोगों की। 'क्या मुझे वापस ला सकते हो?' ऐसा कहता था। ये तो बहू बनकर आई हैं और आप दोनों को समान मात्रा में देते हो लेकिन मुझे थोड़ा ज़्यादा मिलना चाहिए।

उसकी माँ यहाँ पर नहीं है, इसलिए उसे खुश रखना पड़ेगा

बा से मैं क्या कहता था? 'बा, आप मुझे और भाभी को एक समान मानते हो? भाभी को आधा सेर दूध, तो मुझे भी आधा सेर दूध देते हो? उन्हें कम दो'। मुझे अपना आधा सेर रहने देना था, मुझे ज़्यादा नहीं चाहिए था लेकिन भाभी का कम करो, डेढ़ पाव या एक पाव करो।

तब मुझसे कहा, 'मैं, तेरी माँ तो यहीं पर हूँ जबकि उसकी माँ तो यहाँ पर नहीं है इसलिए उसे माँ के बिना सूना लगता है। माँ के बिना वह यहाँ रह रही है न, इसलिए उसे खुश रखना पड़ेगा। पराए घर की लड़की अपने यहाँ आई है तो उसे और ज़्यादा संभालना पड़ेगा। वर्ना उसे बुरा लगेगा बेचारी को, उसे दु:ख होगा इसलिए एक समान ही देना पड़ेगा'।

अपने घर पर ही मैंने सास को देखा है। सास का व्यवहार कैसा होता है वह मैंने अपने घर में ही देखा। मैंने देखा कि सास ऐसी होनी चाहिए, जो बेटे से ज़्यादा बहू को माने!

रूठा हुआ इंसान ढूँढता है रिस्पॉन्स

यह बात समझने जैसी है लेकिन देखो न, बचपन में समझ नहीं पाया। बा मुझे समझाते रहते थे, पैबंद लगाते रहते थे फिर भी मुझे समझ में नहीं आता था। तब मैंने *आड़ाई* की, रूठा, मैंने दूध नहीं पीया। मैंने कहा, 'नहीं पीना है मुझे'।

फिर उन्होंने कोई भी रिस्पॉन्स नहीं दिया ठीक से, जैसा होना चाहिए वैसा कोई रिस्पॉन्स नहीं मिला। रूठा हुआ इंसान रिस्पॉन्स ढूँढता है लेकिन कभी-कभी उसे कोई पूछने वाला नहीं भी मिलता। उसके बाद किसी ने पूछा नहीं और शाम हो गई।

हाँ, मैं रूठ गया था इसलिए मुझे नहीं बुलाया। तब मैंने कहा, 'अब तो कोई मनाने भी नहीं आ रहा। फिर मैं अपने आप ही जाकर बैठ गया'। मैंने कहा, 'मुझे तो दूध और रोटी खानी है, भूख लगी है'। तब उन्होंने दे दिया। वे तो तैयार ही थीं न! जो रूठता है उसका चला जाता है। उनके पास तो सब तैयार ही था, बल्कि जितनी देर रूठे रहते हैं उतनी देर तक नहीं मिलता फिर वापस मिल जाता है। उन्होंने एक बार रिस्पॉन्स नहीं दिया तो मैंने ले लिया।

हिसाब में पता चला, है मात्र नुकसान

उसके बाद मैंने उस दिन क्या-क्या खोया उसका हिसाब लगाया। उस दिन सुबह का दूध तो चला गया और हम रह गए। बल्कि दोपहर का भी गया। बल्कि जो दोपहर का लाभ था वह भी खोया और शाम को जहाँ थे वापस वहीं के वहीं। माने, तब तक में तो बल्कि नुकसान हो गया। वह मैंने ढूँढ निकाला। तब फिर जब भी रूठता था तब खाने की वह चीज़ तो चली जाती थी लेकिन फिर उसका असर भी चला जाता था। उसके बाद मैं जाँच करता था कि, 'मुझे क्या मिला?' तो कुछ भी नहीं मिला होता था।

प्रश्नकर्ता : नुकसान हुआ।

दादाश्री : नुकसान हुआ बल्कि।

प्रश्नकर्ता : क्या नुकसान हुआ आपको?

दादाश्री : नुकसान तो हमें ही हुआ न! 'दूध का तिरस्कार करके चला गया', ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : तिरस्कार करके चला गया।

दादाश्री : फिर मेरी भाभी से कहा, 'ले, अब क्या करेंगे? तू पी जा'। तो बल्कि उसे ज़्यादा पिला दिया। मुझे भाभी का और मेरा एक समान दूध नहीं चाहिए था, मुझे खुद को ज़्यादा चाहिए था, और बल्कि उसे ज़्यादा पिला दिया। ऐसा पागलपन नहीं होना चाहिए। उस दिन तो मेरा दूध गया। मैंने सोचा, 'अगले दिन सुबह डबल मिलेगा लेकिन उतना ही मिला। यह क्या हुआ?' तो नुकसान हुआ। इसलिए अब मुझे फिर से ऐसा काम ही नहीं करना है जिसमें नुकसान हो। रूठना ही नहीं है न! दूध पीने के बाद रूठना है। अत: बचपन से ही मैं समझ गया कि रूठना अर्थात् नुकसान का धंधा। इसलिए अब नुकसान का धंधा बंद कर दिया, आड़ा नहीं होना है।

लगा कि नुकसान है तो रूठना हुआ बंद

प्रश्नकर्ता : रूठना *आड़ाई* कहलाती है?

दादाश्री : और क्या, *आड़ाई* ही कहलाएगी न! हम हठ करें कि 'मेरा दूध इतना कम क्यों?' अरे, छोड़ न! पी ले न! अगली बार दे देंगे। यानी कि एक बार आड़ा हुआ, तो उसके बाद नुकसान हुआ। अत: मैंने सोचा कि 'अब फिर से *आड़ाई* नहीं करनी है'। वर्ना सब कहेंगे कि, 'रहने दो इसे!' उसके बाद ऐसा ही होगा न! इसलिए फिर तभी से रूठना बंद कर दिया। अब किसी भी बात को लेकर रूठना नहीं है। उसके बाद कभी रूठे ही नहीं किसी से। अगर ठीक नहीं लगे तब भी नहीं रूठते थे। फिर से बुलाते कि चलो खाना खाने, तो मैं तुरंत चला जाता।

फिर से पछतावा न करना पड़े, ऐसा सिस्टम

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि रूठे इसलिए हमारा दूध गया, तो वह किस उम्र में?

दादाश्री : वह था नौ-दस साल की उम्र में।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, नौ-दस साल की उम्र में तो हमने भी कई बार इस तरह दूध खोया था। हम भी भूखे रहे थे, इसलिए ऐसा तो

लगता था कि यह नुकसान हुआ, लेकिन फिर भी हमने रूठना जारी रखा और आपने कैसे बंद कर दिया?

दादाश्री : मैंने ऐसा सिस्टम रखा था कि अगर एक बार भी पछतावा करना पड़ा तो, फिर दोबारा न करना पड़े। जिस बात का पछतावा किया, उसके लिए फिर से पछतावा करना पड़े, ऐसा नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यहाँ तो व्यवहार में रिपीटेड्ली करते ही रहते हैं।

दादाश्री : लेकिन अब क्या हो सकता है? मुझे ऐसा सब अच्छा नहीं लगता था कि बिना समझे कदम बढ़ाएँ और फिर पछताएँ। बार-बार पछतावा करना भी कोई तरीका है क्या? रूठने के बाबजूद भी मैंने खुद ने नाप लिया कि नुकसान किसे हुआ? वह मुझे पता चल गया। अत: ऐसा दबाव डालने का सिस्टम ही छोड़ दो, *त्रागा* (अपनी मनमानी करवाने के लिए किया जाने वाला नाटक) करने का। रूठना यानी *त्रागा* करना।

रूठे हुए इंसान के लिए नहीं खड़ी रहती दुनिया

प्रश्नकर्ता : इस नुकसान को तो तुरंत पहचान लिया, यह तो बनिया बुद्धि हुई न?

दादाश्री : यह ऐसा कुछ नहीं है। बनिया बुद्धि अर्थात् विचारशील बुद्धि, समझदार बुद्धि कहलाती है। नुकसान को पहचानने पर फिर दोबारा नुकसान नहीं उठाएँगे न! तो जो वास्तव में बुद्धिशाली है वह किसी से नहीं रूठता।

रूठने से नुकसान होता है। आप एक दिन रूठकर रात को उठा-पटक करके अगर नहीं खाओगे तो फिर सब क्या करेंगे? क्या सब जागते रहेंगे? समय होने पर सभी सो जाएँगे। तब फिर नुकसान तो आपका ही होगा न। रूठने से तो तुझे जो आनंद आ रहा होगा न, वह भी चला जाएगा।

फिर क्या रूठने वाले और मनाने वाले? फिर मनाएगा भी कौन भला? ये तो, जब खाने का समय होता है तब कहते हैं, 'चाचा, चलो

खाना खाने, खाना खाने चलिए न! वहाँ पर खाना तैयार है और सब इंतज़ार कर रहे हैं'। तब अगर वे कहें कि, 'नहीं, अभी खाना खाने नहीं आऊँगा। जाओ'। तब वे लोग एक-दो बार विनती करेंगे, और फिर? फिर यदि टेबल पर खाना लग जाए तो शुरू ही कर देंगे न!

दुनिया तो चलती ही रहेगी। दुनिया ज़रा देर के लिए भी ठहरती है क्या? अगर आप रूठ जाओ तो क्या गाड़ी रूठे हुए को मनाने आएगी? बात को समझने की ज़रूरत है। साहब, क्या बारात वाले खड़े रहेंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कोई भी खड़ा नहीं रहता।

दादाश्री : अगर लड़के की शादी करवाने जा रहे हो, और आप रूठ जाओ, तो क्या वे आपके लिए दो दिन तक बैठे रहेंगे? नहीं! ऐसी है यह दुनिया!

कुल मिलाकर यह व्यापार है नुकसान का

बचपन में एक-दो बार रूठकर देखा, लेकिन उससे नुकसान ही हुआ। तभी से मैंने रूठना छोड़ दिया।

मैंने यह सार निकालकर देख लिया कि रूठने में बिल्कुल नुकसान है, यह व्यापार ही बिल्कुल गलत है। इसलिए फिर ऐसा तय ही कर लिया की कभी भी नहीं रूठना है। कोई हमें चाहे कुछ भी करे लेकिन रूठना नहीं है क्योंकि यह बहुत ही नुकसानदायक चीज़ है। बहुत ही बड़ा नुकसान है यह तो।

अब तो, यदि आप मुझे गालियाँ दो फिर भी मैं आपको विनय से बुलाऊँगा। आप गालियाँ दो और मैं विनय से बुलाऊँगा, हम दोनों का धर्म ऐसा है क्योंकि मैं जानता हूँ कि आपमें तो कमज़ोरी है ही और यदि मुझ में भी कमज़ोरी होगी तो फिर हम कहाँ के ज्ञानी? गालियों के सामने यदि मैं भी गालियाँ दूँ और रूठ जाऊँ तो ज्ञानी कैसा? रूठना नहीं चाहिए, एक्सेप्ट करना चाहिए।

[10.5]

जाना, जगत् है पोलम्पोल

देखा रोने-धोने का नाटक

प्रश्नकर्ता : आप दुनिया को बहुत ही ऑब्ज़र्व (निरीक्षण) करते थे, तो क्या ऑब्ज़र्व करते थे?

दादाश्री : मैं जब छोटा था दस-बारह साल का, तब हमारे कुटुंब में एक भाई की मृत्यु हो गई तब वहाँ पर मेरे चाचा के बेटे वगैरह भी ओढ़कर बैठे हुए थे और ये लोग तो चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। उनके सब भाई भी चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे, तो वे किस तरह से चिल्ला रहे थे। सिर पर यहाँ तक ओढ़ा हुआ था। घूँघट डाला हुआ था। यहाँ तक खींचा हुआ ताकि चेहरा न दिखाई दे, आँखें न दिखाई दें। अंदर क्या कर रहे हैं, वे चिल्लाकर रो रहे हैं या रेडियो बजा रहे हैं, हमें पता ही न चले। अरे! इस तरह एक भाई चिल्लाकर रो रहे थे, 'ओ मेरे भाई रे' करके शोर मचा रहे थे, तो कौन जाने क्या इलेक्ट्रिसिटी, तो मेरी आँखों से पानी निकलने लगा। यों ही आगे कपड़े से ढके बिना। ऐसी आवाज़ निकाली। इस तरह बोला कि विषादरस उत्पन्न हो जाए। मेरी आँखों में पानी आ गया। तब फिर मुझे ऐसा लगा कि 'अभी मैं इतना रोया तो ये कितना रो रहे होंगे?'

फिर वे भाई जो चिल्लाकर रो रहे थे, उन्होंने चेहरा खोला तो कुछ भी नहीं था अंदर! मैंने कहा, 'ये कितना दगा दे रहे हैं!' दगा पकड़ा! मैंने एक बुज़ुर्ग चाचा से पूछा कि, 'आपको रोना नहीं आया?' तो उन्होंने कहा, 'अरे उसके लिए तो चिल्लाना पड़ता है! लोगों को कैसे पता चलेगा कि हमारे यहाँ कोई मर गया है? इसलिए चिल्लाकर रोना

पड़ता है!' तो ये लोग इस तरह से चिल्लाकर रोएँ, ऐसे हैं! सभी तरह के लोग हैं! उनकी आवाज़ पर से हमें लगता है कि ये बहुत ही रो रहे हैं! और सामने चेहरा कपड़े से ढक लेते हैं, ये तो बहुत ही पक्के लोग हैं! वे आवाज़ अच्छी निकालते हैं, ऐसा नाटक करते हैं।

भोले दिल वाले, इसलिए पहले तो मान लिया सच

पहले तो बहुत ही रोना-धोना और बेहिसाब तूफान करते थे। उन दिनों छाती पीटने का बहुत रिवाज था। अगर कोई मर जाए न, तो पच्चीस-पच्चीस स्त्रियाँ आकर छाती पीटती रहती थीं और वे उछल-उछलकर कूदती थीं तो वे धबाक, धबाक, धबाक, धबाक, धबाक। उनकी आवाज़ पर से हमें ऐसा लगता था कि ये स्त्रियाँ खुद अपनी छाती तोड़ देंगी। हम तो भोले दिल के इंसान, हमें ऐसा लगा कि ऐसा करके ये स्त्रियाँ मर जाएँगी बेचारी। इससे मुझे तो बहुत ही दुःख होने लगा। मैंने कहा, 'इतना दुःख! इन लोगों को कितना दुःख हो रहा होगा!' ये इस तरह छाती ढककर पीटती थीं, ऐसे-ऐसे, ऐसे आवाज़ करके। मुझे लगा कि इससे तो छाती टूट जाएगी! और वह आवाज़ बहुत ज़ोर की, ज़ोर की आवाज़ सुनाई देती थी न! अपने विचार कैसे और यह सब कैसा है? इसलिए फिर मैं तो जाँच करने गया। मैंने तो फिर अंदर जो एक-दो अच्छे लोग थे न, उनसे कहा कि 'आप ऐसा सब क्यों कर रहे हो? इनमें से क्या कोई भी वापस आ जाएगा?' बच्चा था फिर भी मन में ऐसा हुआ, तो उन सब को भी होता होगा न? उनके पति मर जाएँ तो नहीं होगा?

लौकिक व्यवहार में ढूँढ निकाली नाटकीय बनावट

मैं छोटा था न, तब मैं बहुत ही भावुक था। मैं तो, जैसा दिखाई देता था उसी को सच मान लेता था क्योंकि मुझे बुद्धि की कोई बहुत नहीं पड़ी थी। मुझे हार्ट की बहुत पड़ी थी, यानी कि हार्टिली स्वभाव था तो जब ऐसा देखता था तो अंदर कुछ का कुछ हो जाता था। फिर छाती पीटने के बाद में मैंने अंदर जाकर धीरे से एक पंडिताइन से पूछा कि 'आप यों छाती क्यों तोड़ रही हो? इससे तो छाती में रोग हो जाएँगे!

दर्द होगा इससे तो!' तब पंडिताइन ने कहा, 'तुझे समझ में नहीं आएगा'। मैंने पूछा, 'क्या है? छाती नहीं पीट रहे?' तब उन्होंने कहा, 'जिनके घर वाले मर जाते हैं, सिर्फ वही पीटती हैं छाती। बाकी सब तो इस तरह हाथ लगाते हैं, ऐसे। उसे अंदर नहीं लगती, छाती में नहीं लगती लेकिन आवाज़ ज़ोर की आती है'। फिर मैंने कहा, 'आप सब को कैसे रोना आता है? किसका वह बेटा, कौन मर गया और आपको रोना कैसे आता है?' तब कहते हैं कि, 'हर कोई अपने-अपने घर का याद करके रोते हैं'। उनके घर बेटा मर गया हो तो उसे याद करके रोते हैं, किसी का पति मर गया हो तो उन्हें याद करके रोती है, इनके लिए कोई नहीं रोता, तब मुझे स्पष्ट हुआ। मैंने कहा, 'ओहोहो! तब तो ये लोग पक्के हैं! मैं तो अभी कच्चा हूँ। यह सारा नाटक तो अलग ही तरह का है'। इसलिए फिर मैंने इससे किनारा कर लिया। यह सब खोखला है, पोल है। मैं सच्चे दिल से रोता था। लेकिन सामने वाले को रोता हुआ देखते हैं तो स्वाभाविक रूप से हमें भी रोना आ जाता था। यह जगत् तो पूरा खोखला है! यह सब तो कला है! फिर मैंने कहा, 'यह सच नहीं है?' तब कहा, 'नहीं, इसे लौकिक कहते हैं, लौकिक'। मैंने जान लिया, तो अब आपकी यह व्यापारी दुकान कही जाएगी। किस तरह की कंपनी है यह?

इन्डियन पज़ल, उसका हल फॉरेन वालों के पास नहीं है

छोटा भले ही था लेकिन जानने की जिज्ञासा बहुत थी, इसलिए उसके बाद ऐसी दगाबाज़ियाँ ढूँढने के लिए वहाँ जाकर देखकर आया था, तो वे ऐसा करते थे। तो मैंने ऐसा जाना कि ये तो खोखले मूसल की आवाज़ है। यह मूसल ठोस नहीं है, खोखला मूसल है। यह तो वही बात हुई कि क्या खोखला मूसल कूटने के काम आता है? मैंने तो सभी जगह देख लिया। खोखली आवाज़ ही है न... ज़्यादा आवाज़ तो हाथ की ही थी और हाथ छाती पर धीमे से लगता था इसलिए फिर मैंने कह दिया, 'भाई ऐसा दिखावा चलता होगा क्या?' फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'क्या आप नहीं जानते थे कि ऐसा दिखावा होता है?' बहुत ही पक्के लोग थे, नीचे तक साड़ी से घूँघट निकालकर इतनी अच्छी आवाज़ करते थे, इस तरह दिखावा करते! लेकिन देखकर धीरे-धीरे यह सब सीख

गया। तभी से समझ गया कि इस संसार में सोच-समझकर उतरने जैसा है। इसकी सीढ़ियाँ उतरने लायक नहीं हैं, यह जोखिम भरा है। यह जोखिम वाला जगत् है न?

ये तो इन्डियन हैं, कच्ची माया नहीं हैं! फॉरेन वाले तो इस पज़ल में घिर ही जाएँगे कि यह इन्डियन पज़ल किस तरह की है? छाती पीटते हैं, लेकिन छाती में चोट नहीं लगने देते। हमारे देश की पज़ल तो देखिए! यह इन्डियन पज़ल ऐसी है कि उसे और कोई सॉल्व नहीं कर सकता। वहाँ (फॉरेन) की पज़ल हम सॉल्व कर सकते हैं, लेकिन वे हमारी पज़ल सॉल्व नहीं कर सकते।

लौकिक तरीके से सही है लेकिन उसका दुरुपयोग हो गया है

प्रश्नकर्ता : दादा, हम ऐसा दिखावा क्यों करते हैं?

दादाश्री : जब इंसान मर जाता है तब रोते क्यों हैं? तो कहते हैं कि 'उसके प्रति जो मोह था वह पिघल गया'। अब तो ऐसा कहते हैं कि 'भाई, रोने दो, रोने दो...! रोने दो वर्ना उसके अंदर गुबार भर जाएगा'। इसलिए सब लोग मिलकर रुलाते हैं लेकिन अब उसका दुरुपयोग हो गया है तो अब रुलाते ही रहते हैं। जबकि कुछ समय के लिए ही रुलाना होता है। उससे फिर इन लोगों में रोना-धोना चलने लगा। अब क्या किया जाए? छाती तो पीटनी ही है लेकिन भाई छाती क्यों पीटते हो?

यह लौकिक है। यदि इसके बारे में किसी से पूछें कि 'क्यों जाना है?' तो कहते हैं, 'लौकिक करने जाना है।' लौकिक अर्थात् दिखावा। वह तो सचमुच रोता है लेकिन हमें तो झूठ-मूठ रोना पड़ता है न? नहीं रोना पड़ता? लोग जब यहाँ आते हैं तब सचमुच भी रोता है, झूठ-मूठ भी रोता है लेकिन जब सभी बैठे हों तब उसे लौकिक कहते हैं। फिर भी लौकिक रूप से यह सही भी है, करेक्ट बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट और अलौकिक अर्थात् रियल सही है।

पोल बाहर नहीं आती है इसलिए लौकिक चलता रहता है

अलौकिक की तो बात ही अलग है न! और लौकिक में तो आगे कपड़ा खींचकर और मुँह में पान दबाया होता है तो उसे चबाते रहते हैं। यदि पोल दिख जाए तो सब लोग समझ जाएँगे। लोगों को तो इस पोल का पता नहीं चलता है न। यह जगत् चलता ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : समझता तो हर कोई है कि, 'यह मैं नाटक कर रहा हूँ'।

दादाश्री : नहीं, सभी ऐसा नहीं समझते।

प्रश्नकर्ता : क्या करने वाला नहीं समझता कि वह गुनाह कर रहा है?

दादाश्री : नहीं, यदि समझते तो अपने घर आकर भी 'ऐसा' ही करते, लेकिन जब खुद के घर होता है तो छाती तोड़ डालते हैं, पगले। अत: समझते नहीं हैं। लौकिक अर्थात् लौकिक। लौकिक कब नहीं करते? जब खुद शरीर छोड़ते हैं तब लौकिक नहीं करते। जब खुद का शरीर छोड़ते हैं तब रोना नहीं, कुछ करना नहीं, कुछ भी नहीं। उस समय करते हैं? जब पराए का शरीर छूटता है तब करते हैं और खुद का शरीर हो तो कुछ नहीं। जब खुद का शरीर जाता है तब क्या कोई रोता है?

प्रश्नकर्ता : फिर तो उसे रोने को रहता ही नहीं।

दादाश्री : अरे! रोने वाला ही चला गया न, अब कौन रोने वाला रहा?

पूरी दुनिया लौकिक है, इसलिए अलौकिक की ओर जाओ

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, मैंने ऐसा देखा है जिनका नज़दीकी रिश्तेदार होता है, वे छाती पर चोट लगा लेते हैं और वहाँ पर उनका खून काला-काला हो जाता है।

दादाश्री : यह तो जब बिल्कुल ही खास संबंधी होते हैं तब,

लेकिन और सब तो रोते हैं, सचमुच में रोते हैं, वे अपने खास संबंधी को याद करके रोते हैं। फिर से याद कर-करके रोते हैं, यह भी एक आश्चर्य है न! भूतकाल को वर्तमानकाल में ले आते हैं न! हमें ऐसा प्रयोग करके दिखाते हैं!

अरे, हम यह सब नहीं जानते और जब समझने लगते हैं, तब हमें शब्दों से पता चलता है कि यह तो लौकिक है। लौकिक अर्थात् क्या? ऊपर-ऊपर का दिखावा। कैसा? सुपरफ्लुअस। यह तो समाज के अंदर से ही बिगड़ गया है। क्या हो गया है? समाज का ढाँचा नहीं बचा है और समाज में बिगाड़ आ गया है, दोनों ओर का कैसे चलेगा? या तो कोई ढाँचा होना चाहिए, वर्ना ऐसे बिगड़े समाज को फेंक देना चाहिए, ऐसा समाज नहीं चाहिए। जो मकान जीर्ण हो जाता है, उसे गिरा ही देना चाहिए।

यह दुनिया ही पूरी लौकिक है, हमें अलौकिक की ओर चलना है। यदि इसमें फँस गए तो मारे गए समझो। अनंत जन्मों से ऐसे चक्करों में हैं! तो बचपन से ही मुझे यह सब उल्टा लगता था।

मरने वाले के लिए नहीं लेकिन खुद के स्वार्थ के लिए रोते हैं

अरे! कितनी ही बार तो, जिनका पति मर जाता है वह स्त्री क्यों रोती है? तो वह अपने मन में यह सोचकर रोती है कि 'इस मुए ने मुझसे शादी की और कुछ छोड़कर भी नहीं गया। अब मुझे अकेली को भटकना पड़ेगा'। वह अपने दु:ख के लिए रोती है, वह जो मर गया है उसके लिए नहीं रोती। अपने-अपने दु:ख से रोते हैं, मरने वाले के लिए नहीं रोते।

सभी जगह ये सारे रिश्ते स्वार्थ के हैं। इंसान के मरने के बाद स्वार्थ के लिए रोते हैं और अगर कोई कहे कि 'मैं प्रेम से रो रहा हूँ,' तो उसका प्रेम का स्वार्थ है। प्रेम तो उसे कहते हैं कि चाहे जीए या मरे, फिर भी प्रेम रहे। अर्थात् ये सब लोग स्वार्थ के लिए रोते हैं। वे

उसके जाने के बाद रोते हैं। वर्ना यदि सचमुच में रोना आ रहा हो न, तो पहले ही रोना आ जाता कि, 'अब मेरा क्या होगा?'

धोखा खाकर दुनिया की पोल पकड़ता गया

मैंने पहले धोखा खाया, भोला-भाला इंसान था! धोखा खाया फिर मार खा-खाकर समझ गया था। इस तरह धोखा खाते-खाते जगत् की पोल (गड़बड़ियाँ) पकड़ता गया तो उसे 'पोल' कहा है, वर्ना पोल को 'पोल नहीं' कहा है। यह सब नाटक ही है सिर्फ। क्या अंदर पोलम्पोल नहीं है?

इस दुनिया की सारी पोल देखकर आया हूँ मैं, क्योंकि मैं सच्चा पुरुष था। मुझे ऐसा लौकिक ठीक नहीं लगता था। ऐसा लौकिक ठीक लगता होगा? रोना मतलब रोना ही आना चाहिए लेकिन फिर मैंने देखा यह खोखला जगत् है। यह क्या कोई सच्चा व्यापार है? आपको कैसा लगता है? तो फिर यह नुकसान भी नहीं है। यह तो लौकिक है। हमें ऐसा लौकिक करना होता है। लौकिक अर्थात् लोग अपने साथ जैसा व्यवहार करें, वैसा ही हमें भी करना है। क्या आपको यह लौकिक अच्छा लगता है।

इसे लौकिक कहते हैं न? उसमें अगर कोई कमज़ोर पड़ जाए तो मारा ही जाएगा, लेकिन लौकिक में तो अगले दिन उसे सिखाने वाला कोई गुरु मिल ही जाता है कि 'क्या ऐसे करते हैं? देख! ऐसे करना चाहिए'। तो फिर वह व्यक्ति फिर से वह भूल नहीं करता। इस तरह छाती पर मारते ज़रूर हैं, हमें ऐसा दिखाई देता है लेकिन उसे लगती नहीं है! लौकिक अर्थात् व्यवहार। सब रो रहे हैं तो हमें भी रोना है, लेकिन रोए बगैर रोना है, वास्तव में नहीं रोना है। इस लौकिक में तो सब समझ में आता है, लेकिन इसमें समझ में नहीं आता। इसमें सचमुच रोता है!

प्रश्नकर्ता : दादा, दसवें साल से लेकर अस्सी साल तक आप कितनी बार रोए?

दादाश्री : रोते तो हैं, कुछ स्टेज पर वापस रोते भी हैं और फिर

बंद होता गया। वह तो, जब बा की मृत्यु हुई थी तब उस तरह से रोया था, क्योंकि अगर मैं नहीं रोता तो अंदर घुटन होती और दु:खी हो जाता इसलिए जान-बूझकर रोया था। अंदर जो मेरेपन के परमाणु भरे हुए थे न, वे परमाणु आज लेफ्ट (छूट) हो जाते हैं। यानी उनका पानी बन जाता है और वह पानी अंदर से बाहर निकल जाता है। वर्ना छाती में गुबार भरा रहता कि 'मेरा-मेरा। मेरी बा-मेरी बा'।

जाते हैं जमाई की मैयत में लेकिन स्वाद नहीं छोड़ते

प्रश्नकर्ता : ऐसा अन्य कोई अनुभव बताइए न, दादा, जब जगत् की ऐसी पोल देखी हो।

दादाश्री : मैं बाईस-तेईस साल का था, तब यहाँ बड़ौदा के पास विश्वामित्री स्टेशन था, छोटा सा फ्लेग स्टेशन था, छोटी गाड़ियों का, वहाँ पर गया था। एक परिचित आने वाले थे। मैं स्टेशन पर उनसे मिलने गया था। फिर स्टेशन पर बैठे-बैठे जब समय हुआ साढ़े ग्यारह-बारह बजे, तो जिनके जमाई की मृत्यु हो गई थी न, वे भाई भादरण जा रहे थे। मेरे मन में तो ऐसा था कि इनके जमाई की मृत्यु हो गई है इसलिए इन्हें बहुत दु:ख हो रहा होगा, तो हमें उनसे नहीं मिलना है। अगर हम उनसे मिलेंगे तो उन्हें दु:ख होगा, इसलिए हमें नहीं मिलना है। मैं अपने मन में इस तरह से घबरा रहा था और फिर तो वे ही मुझसे मिलने आए। तो इस तरह कपड़ा बाँधकर बैठे हुए थे, उनके जमाई की मृत्यु हो गई थी इसलिए। वर्ना पगड़ी पहनते, तो जब मैं मिला तो एक हाथ में *ढेबरा* (बाजरे का एक व्यंजन) और एक हाथ में ज़रा अचार था और मिर्ची खा रहे थे। 'अरे इस बूढ़े का जमाई मर गया है, फिर भी मिर्ची तो नहीं छोड़ रहा। वह आराम से *ढेबरू* चबा रहा है!' 'पूजा लाल की मैयत में जा रहा हूँ' उसने कहा। पूजा लाल उनके जमाई लगते थे और ये ससुर क्या कह रहे हैं? एक हाथ में *ढेबरू* और ऊपर से अचार खाते जा रहे थे और मुझसे कह रहे थे कि 'पूजा लाल की मैयत में जा रहा हूँ'। तब मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने फोटो देखा। मुझसे कहते हैं, 'पूजा लाल मर गए'। मैंने कहा, 'ऐसी मज़ाक उड़ाई! *ढेबरू* और अचार हाथ में!'

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जो कहते हैं न, तब ऐसा लगता है कि जैसे पिक्चर देख रहे हों!

दादाश्री : इस तरह पिक्चर दिखाई दे, तो उसमें तो बहुत मज़ा आता है। सभी को ऐसा नहीं होता। लेकिन वह इस तरह से अचार की फाँक खींच रहा था और *ढेबरू* खाता जा रहा था और फिर चबाता जा रहा था। तब मैं छोटा था। तब मेरे मन में ऐसा हुआ कि, 'ये उनके ससुर होकर ऐसा कर रहे हैं! ऊपर से ऐसे-ऐसे करके अचार खा रहे हैं! अरे, भाई छोड़ न अचार, आज के दिन तो सीधा रह!' लेकिन नहीं रहते ये लोग! मैयत में जा रहे हो फिर भी अचार क्यों खा रहे हो? दो *ढेबरे* खाकर पानी पी लो न! तो कहता है, 'नहीं, अचार तो खाना होगा। दो *ढेबरे* खाकर पानी पीएँगे तो नहीं चलेगा'। मैंने कहा, 'अरे! आपकी मैयत तो वैसी ही है!' वास्तव में मज़ाक किया है। नहीं?

प्रश्नकर्ता : मीठी मज़ाक है या क्रुअल (निर्दयी) मज़ाक है?

दादाश्री : इसलिए मैंने 'पज़ल' कहा, पज़ल! अगर मज़ाक समझ में आ जाए तब तो लोग चिढ़ ही जाएँगे न! 'मेरी मज़ाक उड़ाई?' व्यवहार में सब खाते-पीते हैं और ऊपर से स्वांग करते हैं। इस स्वांग की वजह से भ्रांति नहीं जाती। स्वांग नहीं होना चाहिए, साफ-साफ होना चाहिए।

फिर मैंने हमारी बा से बात की। उन्होंने कहा कि 'खाएँगे तो सही न, बेचारे! कहाँ जाएँगे बेचारे?' मेरे मन में था कि लोग दिल के सच्चे होंगे। अब ऐसा हो तब *ढेबरे* या जो ऐसे कुछ रोटी-वोटी खा लेंगे तो नहीं चलेगा क्या उन्हें? मैं तो समझ गया कि यह पूरा जगत् खोखला है। रखो न इसे एक तरफ! यह तो, हम से ही भूल हो रही है। इसलिए ऐसे लोगों से सावधान रहकर चलो।

उनके बहनोई की चिंता में मैं तो जाग रहा था और वे खर्राटे ले रहे थे

मेरे दूसरे एक और परिचित व्यक्ति थे, मैं जब यहाँ से उनके गाँव

गया तब मैं उनके यहाँ रुका था। उन्होंने मुझसे कहा कि ''मेरे बहनोई की तबियत अभी बहुत बिगड़ गई है, वे सीरियस हैं। मुझे तो पूरे दिन चैन नहीं पड़ा। परसों ही वहाँ उनसे मिलकर वापस आया। कम उम्र में, 'बहुत ही सिक (बीमार) हैं' उनके यहाँ ऐसा तार आया है।'' तब मुझे ऐसा समझ में आया कि इनकी बहन की उम्र पैंतीस-छत्तीस साल है और पति अड़तीस साल का है तो उसे कितना दु:ख हो रहा होगा? तो यों चिंता कर रहा होगा। उनकी बात सुनकर मुझे भी चिंता होने लगी। उस समय मुझे 'ज्ञान' नहीं हुआ था इसलिए मैं भी खूब सुर में सुर मिला रहा था कि 'भाई हाँ! बहुत बुरा हुआ है यह सब। अब आपको वहाँ देखने जाना पड़ेगा'।

तार आया था इसलिए वैसी बातचीत चल रही थी, तब ग्यारह बजे हम यों पलंग पर लेटकर बातें कर रहे थे, वे भी पलंग पर और मैं भी पलंग पर। फिर मैं तो अंदर इमोशनल होने लगा इसलिए फिर नींद ही नहीं आई। ऐसी बातें कर रहे थे इसलिए फिर हमारे मन में ऐसा ही होगा न! फिर मैं भी जागा। मैं भी ज़रा सोच में था, साढ़े ग्यारह हो गए और वे तो खर्राटे लेने लगे! यों तो बहनोई की चिंता कर रहा था और अभी गहरी नींद सो रहा है! ऐसा है यह जगत्! तब मुझे लगा कि 'यह आदमी किस तरह का है!' हे भगवान! यह दुनिया ऐसी है? इसके बहनोई की चिंता में मुझे पूरी रात नींद नहीं आई! देख दुनिया! उनके बहनोई के लिए मैं जाग रहा हूँ, मैं परेशान हो रहा हूँ जबकि ये तो खर्राटे ले रहे हैं! इसी को कहते हैं दुनिया। खर्राटे नहीं लेने वाला भी मूर्ख कहा जाएगा और खर्राटे लेने वाला भी मूर्ख कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दोनों ही।

दुनिया का निरीक्षण करके अंत में सार निकाला हमने

दादाश्री : सोना तो पड़ेगा ही न? बहनोई बीमार हों या कुछ भी हो, लेकिन सोना तो पड़ेगा न? हमें तो वह जागृति सता रही थी, जिसकी जागृति कम होती है, वह सो जाता है। फिर मैंने अपने आप से कहा, 'मैं कहाँ बेवकूफ बना!' जिसका बहनोई बीमार था वह सो गया और

मैंने उसकी बात सुनी तो मुझ पर असर हो गया! हम ही मूर्ख हैं! तभी से मैं इस दुनिया को पहचानने लगा। और कुछ नहीं, उसका दोष नहीं निकाला। सिर्फ नोट करता था कि दुनिया क्या है!

प्रश्नकर्ता : दादा, साइन्टिस्टों के जो ओब्ज़र्वेशन होते हैं न, उसी तरह आपके भी सभी ओब्ज़र्वेशन सोचे-समझे हुए थे। सभी ओब्ज़र्वेशन करके और सभी को नोट किया जाता है, वह साइन्स का नियम है। आपने ज़्यादा से ज़्यादा नोट करके ज़्यादा से ज़्यादा सार निकाला, ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई देता है!

दादाश्री : इस प्रकार यह सब नोट किया। फिर हमने हिसाब भी लगाया कि न्याय करने जाएँगे तो क्या होगा? तो कहते हैं, 'अरे! लेकिन अगर वे नहीं सोएँगे तो क्या है? आपने भूल की'। समय होने पर उसका वह साला तो सो ही जाएगा न, तो हमें भी सो जाना है। यह दुनिया तो बल्कि मेरी ही भूल निकालेगी। देख लो न! हमने इस दुनिया को हर प्रकार से देखा है! और बहुत ही बड़े-बड़े पुरुषों को देखा है। दोनों देखा है मैंने, ऐसा नहीं है कि नहीं देखा है। फिर समझ गया कि यह जगत् पोलम्पोल है।

टेम्परेरी पर चिढ़ शुरू से ही

मुझे तो बचपन से ही हर एक चीज़ पर चिढ़ थी। किस चीज़ पर? टेम्परेरी पर।

प्रश्नकर्ता : टेम्परेरी चीज़ों पर चिढ़ थी।

दादाश्री : टेम्परेरी पर चिढ़। अब कौन सी चीज़ टेम्परेरी नहीं है? टेम्परेरी ही है न, यह सब। ये जो डिग्रियाँ हैं, वे सिर पर नहीं लगी हुई हैं, वे टेम्परेरी ही हैं न?

दुनिया को पहचाना, पाप का संग्रहस्थान

प्रश्नकर्ता : आपने दुनिया के बारे में और क्या सार निकाला?

दादाश्री : मुझे बारह-तेरह साल की उम्र में ऐसा लगा कि यह

जगत् तो पाप का ही संग्रहस्थान है। जहाँ पैर रखो, वहाँ पाप का संग्रहस्थान, तो मैंने बचपन से ही तय कर लिया था कि इस पाप के संग्रहस्थान में घूमने के बजाय दोपहर को दो घंटे सो जाऊँ, और वह भी वापस धर्म की पुस्तकें पढ़कर सो जाऊँ।

प्रति क्षण दिखाई देता है विकराल इसीलिए नहीं होता मोह

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके उदाहरण बहुत ही सटीक होते हैं, तो वे उदाहरण कहाँ से आते हैं?

दादाश्री : हमें बचपन से ही मोह नहीं था जानने की बहुत इच्छा थी, इसलिए हमें उदाहरण मिल आए।

प्रश्नकर्ता : आपको बचपन से ही मोह क्यों नहीं होता था?

दादाश्री : हमें इसका यह स्वरूप बचपन से ही दिखाई देता था, विकराल। हर क्षण भय वाला, प्रति क्षण दु:खदायी, प्रति क्षण परेशानी भरा दिखाई देता था इसलिए मूर्च्छा ही नहीं होती थी किसी भी जगह पर। किसी भी जगह पर टेस्ट ही नहीं आता था।

और दूसरा, मुझे समझ में आ गया कि ये सारी कुदरती चीज़ें लोन पर हैं, तो कभी न कभी रीपे (चुकादा करना) करनी ही पड़ेंगी। दुनिया की चीज़ें मुफ्त में तो नहीं मिलतीं। वे तो, जो पे (दी) की हैं, वही मिल रही हैं इसलिए एक भी पैसा नहीं बिगाड़ना चाहिए, वर्ना रीपे करना (चुकादा करना) पड़ेगा। मुझे बाईसवें साल में अंदर से जवाब मिला कि 'तुझे जो लेना हो वह ले ले, लेकिन उसके लिए रीपे करना होगा'।

[10.6]

विविध प्रकार के भय के सामने...

मृत्यु का भय, तो ऐसा होता था कि यह तो चाहिए ही नहीं हमें

प्रश्नकर्ता : दादाजी, बचपन में आपको डर लगता था?

दादाश्री : बचपन में तो सभी डरते हैं, मैं भी डरता था।

मैं तो जब छोटा था तब मुझे मृत्यु का भय लगता था। जन्म हुआ है तो मरेंगे तो सही। मैं काँप जाता था। बचपन से ही ऐसा लगता था कि यह सब हमें नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किसी की मृत्यु देखी थी?

दादाश्री : मैंने बहुत कम उम्र में मृत्यु देखी थी। एक बार शादी में बंदूकची से बंदूक चलाने में गलती हो गई और वह मर गया। वहाँ पर बेहिसाब खून था! हम तो उस समय बारह साल के थे, तो घबरा गए तो अभी तक वह घबराहट रहती थी, ज्ञान होने से पहले तक। क्योंकि ऐसा सब देखा ही नहीं था न!

बचपन में लगता था साँप और बिच्छू का डर

प्रश्नकर्ता : और किस चीज़ का डर लगता था, दादा?

दादाश्री : साँप से डर लगता था और भूत से डर लगता था। लोगों को तरह-तरह के वहम होते हैं न!

उन दिनों ज़मीन पर बहुत से साँप, और बेहिसाब बिच्छू, बारह

महीने में लोगों को छ: सौ साँप तो दिखाई ही दे जाते थे। चोर और लुटेरों से भी डर लगता था।

प्रश्नकर्ता : ओहो!

दादाश्री : और अभी तो बारह महीने में ऐसे कितने साँप दिखाई देते हैं?

प्रश्नकर्ता : मैंने तो अभी देखा ही नहीं है, पहले देखे होंगे लेकिन बहुत नहीं। पर दादा, उसका कारण यह है कि आपको जंगलों में बहुत रहना पड़ता था। रत्नागिरी के पास के जंगल में लकड़ी लेने जाना होता था इसलिए फिर वहाँ पर तो साँप दिखेंगे ही न, उनका वास ही वहाँ पर है न!

दादाश्री : हमारे घर पर भी बहुत देखे थे। जितने हमने जंगल में देखे उससे ज़्यादा तो घर में देखे। उन दिनों गाँवों में घर आँगन में बहुत साँप रहते थे क्योंकि यों भी लोगों के दो-चार ढहे हुए घर तो थे, कोई बाड़ा होता था, तो वहाँ छुपे रहते थे। लोग लकड़ियाँ रखते थे, *करांठो* (जलाने की लकड़ियाँ) रखे रखते थे और इतने बड़े-बड़े नाग! फिर खेत में भी घूमने जाते थे न, आम खाने जाते थे, कहीं और जाते थे, तो बाहर साँप दिखाई देते थे।

प्रश्नकर्ता : बरसात में बहुत निकलते थे। ज़मीन में पानी भर जाता था इसलिए साँप बाहर निकल आते थे।

दादाश्री : हाँ, इसलिए निकलते थे और शहरों में तो रोज़ दो तीन बिच्छू दिखाई देते थे। ऊपर से गिरते भी थे, हम सो रहे होते थे तब आँख पर गिर पड़ते थे।

प्रश्नकर्ता : अब ऐसा नहीं है, अब तो लोगों की संख्या बढ़ गई है।

दादाश्री : हं, ऐसा नहीं है, उन दिनों ये गटर नहीं थे। उन दिनों तो खुली संडास थीं और गटर भी सब खुले थे जबकि अभी तो पानी अंदर ही भरा रहता है न कमोड में तो अंदर आने जाने का रास्ता बंद

रहता है, इसलिए गटर में से बाहर नहीं आ सकते। जबकि पहले तो सीधे आ जाते थे।

कल्पना की वजह से भाभी के भूत का भ्रम

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि भूत का भय लगता था, तो भूत को देखा था।

दादाश्री : मैं तेरह साल का था तब मुझे बुखार आया था और दरवाज़े बंद करके बंद कमरे में बैठा हुआ था। सामने बहुत बड़ी अलमारी थी, और उसमें दरवाज़े नहीं थे। अंदर खाने बने हुए थे। तीन-चार खानों वाली अलमारी थी लेकिन दरवाज़ा नहीं था उसमें। एक बार आँख खुली तो सामने कुछ धुंधला सा दिखाई दिया, और वहाँ मेरी (पहली) भाभी दिखाई दीं। मुझे तो मणि भाई की पहली पत्नी दिखाई देने लगीं। मणि भाई ने पहले शादी की थी न, तो वे सूरज भाभी दिखाई देने लगीं और मैंने उनका बेटा भी देखा, बेटा और भाभी दोनों दिखाई दिए। मैंने कहा, 'ये कहाँ से आ गए वापस?' और वह भी बेटे को लेकर चढ़ते-उतरते हुए दिखाई दिए। फिर वे उन अलमारी के खानों में पहली मंजिल पर चढ़े, फिर वापस बेटा दिखाई दिया, फिर दूसरी मंजिल पर चढ़े, तो बेटा दिखाई दिया। मैंने कहा, 'ये भूत हैं या क्या हैं?' लोग कहते थे कि वे मरने के बाद भूत बन गई हैं। तो मुझे बुखार के चक्कर में ऐसा दिखाई दिया था। उससे मुझ में डर बैठ गया। ऐसी प्रतिष्ठा की थी इसलिए वह दिखाई दिया। भूत बन गए, वह ज्ञान हाज़िर हो गया और लोगों ने स्थापन की थी कि भूत है इसलिए दिखाई दिया। फिर तो मैं परेशान हो गया और भयभीत हो गया। फिर तो एकदम से आँखें मींचकर दरवाज़ा खोल दिया। फिर भूत का दिखना बंद हो गया। ये सभी कल्पना के भूत थे! हम जैसी कल्पना करते हैं न, वैसा ही दिखाई देता है। जिस बारे में सोचते हैं, वैसा ही दिखाई देता है। इससे समझना यह है कि हम जैसी प्रतिष्ठा करते हैं वह वैसा ही फल देती है।

लोगों ने कहा था इसलिए दिखाई दिया महुडे में भूत

मैं बिज़नेस करता था, तब वहाँ पर हमारा कॉन्ट्रैक्ट का काम चल

रहा था। यहाँ जरोद में विश्वामित्री ब्रिज बनाया था। 1932 में वह ब्रिज बनाने का कॉन्ट्रैक्ट लिया था। तब चौबीस साल की उम्र में ब्रिज पर (लो लेवल) काम के लिए जा रहा था। वहाँ काम की साईट पर मकान ले रखा था, वहाँ पर रहने के लिए ले रखा था। साईट पर रहते हैं तो वहाँ जाता था साइकल से। एक दिन साइकल लेकर गाँव में गया था। वहाँ गाँव में जाकर फिर वापस लौटते हुए देर हो गई। रात को साढ़े ग्यारह बजे अँधेरे में जा रहा था साइकल पर। धूल-मिट्टी वाला रास्ता और घोर अँधेरा हो गया था। देर हो गई थी, तो स्पीडिली साइकल चलाई।

लोगों ने मुझे बताया था कि इस जगह पर ऐसा है। मुझे लोगों की बताई बातें याद आ गईं। यह जो महुडा है न, उस पर भूत रहते हैं। ऐसी बात सुनी थी कि वहाँ रास्ते में महुडा का भूत है। जब महुडा आने लगा, तो मुझे भूत दिखाई देने लगा। तब मुझे मन में वहम हो गया, यह भूत आया है या क्या है?

वहाँ देखा तो बड़ी-बड़ी लपटें दिखाई दीं और बुझ जाती थीं। लपटें उठती थीं और बुझ जाती थीं। भूत की लपटें देखीं। दो सौ फुट दूर से मुझे तो लपटें दिखाई दीं। फिर तो ज़ोर से साइकल चलाई। नज़दीक जाने पर लपटें बड़ी होती गईं। लोगों ने मुझे जो बताया था, वह सच लगने लगा। फिर मैंने सोचा अब तो आ ही फँसे हैं तो साहस करो!

शूरवीरता वाला स्वभाव, तो भय का सामना किया

तब फिर मैं तो मूल रूप से शूरवीर रंग वाला था न! तो भय के सामने हथियार ढूँढ निकाला। अंदर घबराहट से ऐसा-ऐसा हो रहा था कि 'साला, ये हैं क्या?' अत: एक तरफ डर तो लगा लेकिन दूसरी तरफ हमला करने की आदत। यह ज्ञान नहीं हुआ था, तो एक बुरी आदत थी कि जहाँ-जहाँ पर तकलीफ होती थी, जहाँ डर लगता था, वहाँ सामने जाता था। ऐसी आदत थी। पीछे नहीं लौटता था। तो उस आदत ने ज़ोर मारा। वह भूत है तो भूत, उसका सामना करना है। जो होना होगा वह होगा, भागना नहीं है। मैंने क्या तय किया?

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार भूत से भागना नहीं है।

दादाश्री : भागना नहीं है, हमें सामना करना है। जो होना होगा वह होगा। जब पड़ रही है तो पड़ने दो पूरी तरह से। अगर उसके गिरने से सिर में छेद होना है तो उसके बजाय हम ही न लगा दें? जो होना हो सो हो, हमें उस पर पड़ना है। अब वापस नहीं लौटना है। वापस लौटेंगे तो हमें पकड़ लेगा। भागने से चिपक पड़ता है। लोग क्या कहते हैं, 'भूत से भागे इसलिए वह आपसे चिपक पड़ा'। लेकिन हमें तो ऐसी बुरी आदत थी ही नहीं, भागने की आदत ही नहीं थी। वर्ना अगर कोई दूसरा होता तो वहाँ से रास्ता बदल देता। भूत क्या वहाँ से भाग जाता? क्या कहते हो साहब?

प्रश्नकर्ता : कोई और होता तो पसीना छूट जाता।

आत्म श्रद्धा थी कि 'मुझे कुछ नहीं होगा'

दादाश्री : यही एक बड़ी आदत थी, भय का सामना करने की आदत। कोई भी लुटेरा आए तो मुझे उसका सामना करने की आदत हो गई थी, भागने की आदत नहीं थी। अंदर ऐसी आत्म श्रद्धा थी कि, 'मुझे कुछ नहीं होगा'। पूर्व जन्म का ऐसा कुछ होगा!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वर्ना ऐसी श्रद्धा नहीं हो सकती।

पचास लोग हों फिर भी बिल्कुल भी नहीं घबराऊँ। तलवारें और बंदूक लेकर आ जाएँ तब भी नहीं डरूँ। डर तो मैंने देखा ही नहीं।

इसलिए ऐसा हुआ कि लाओ अब, उसका सामना करते हैं। उस भूत पर, भूत पर ही जाकर हमला करूँ। फेंक दूँ साइकल उस पर। अत: मैंने साइकल की स्पीड बढ़ाई, खूब स्पीड बढ़ाई, फिर तो मैंने जाकर साइकल गिरा दी तो साइकल ज़ोर से जहाँ लपटें उठ रहीं थी वहीं पर गिरा दी।

वे लपटें भूत की नहीं थीं, वे सुलगती हुई बीड़ी की थीं

प्रश्नकर्ता : लेकिन भूत था तो सही?

दादाश्री : कोई भूत नहीं था, भूत का भय भी नहीं था लेकिन आदत ऐसी थी! ऊपर गिरकर उसे पीस दिया! और वे चिंगारीयाँ बीड़ी जलाने वाले एक इंसान की ही थीं। जो आदमी बीड़ी जला रहा था, मैं उस पर गिर पड़ा। मैं टकरा गया, मुझे लगी और वह बेचारा आदमी भी एकदम गिर पड़ा, दब गया बल्कि।

मैं समझ गया कि यह कोई इंसान है! वह इंसान था, और कोई नहीं था। वह शोर मचाने लगा। 'भाई साहब, मुझे कहाँ मार डाला? मुझे किसने मार डाला?' 'मैंने कहा, अरे, तुझे कौन मारेगा? मैं हूँ', और ऊपर से मैंने उसे डाँटा। मैंने कहा, 'नालायक, रास्ते में आ रहा है? अभी कहाँ से आया?' ऐसा करके ज़रा उसे डाँटा तो उसने कहा, 'सेठ आप? सेठ आप हैं' मैंने कहा, 'हाँ'। मुझसे कहा, 'आप अभी कहाँ से आ रहे हैं?'

कहने लगा, 'मुझे तो लग गई है'। मैंने कहा, 'चल पट्टी-वट्टी बंधवा दें अब। चुपचाप आ जा वहाँ पर। चल-चल, ज़रा वहाँ तक चल'। तो मैं उसे महुआ के पेड़ तक ले गया। फिर मैंने कहा, 'जा अब, ले बीड़ियाँ देता हूँ'। उसे कुछ बीड़ियाँ दीं। पाँच-एक रुपए दिए होंगे, उस बेचारे का क्या गुनाह?

सुने हुए ज्ञान के आधार पर वहम

वहीं से ढूँढ निकाला कि यह सब किसी प्रकार की कल्पनाएँ हैं। हमें कोई जैसा बताता है, वैसा ही दिखाई देने लगता है। लगा, 'यह हँसा, यह ऊँचा हुआ', वास्तव में कुछ था नहीं। रात को ग्यारह बजे लेकिन वह वहम क्यों हुआ? तो शायद वहाँ पर हवा होगी, अँधेरा होगा, तो हवा में कोई दियासलाई जला रहा होगा बेचारा, बीड़ी जलाने के लिए। बहुत हवा थी इसलिए बीड़ी जलाने की कोशिश कर रहा था, दियासलाई जलाता था और बुझ जाती थी। तो दो-तीन दियासलाई एक

साथ जलाईं। हवा की वजह से वह दियासलाई जलाता जा रहा था, और उसी की लपटें दिख रहीं थीं।

उस दियासलाई की लपट इतनी छोटी सी होगी लेकिन मुझे तो इतना (बड़ा) दिखाई दिया। क्योंकि जैसा देखते हैं (कल्पना करते हैं) वैसा ही दिखाई देता है। बात क्या थी कि लोगों से ऐसा ज्ञान मिला था कि उस महुआ के पेड़ में भूत है, तो वहीं से वहम हो गया था। वास्तव में और कुछ नहीं था।

मैंने दो-तीन जगह पर ऐसे भूत देखे हैं लेकिन सब ऐसा ही था। सिर्फ कल्पना, वास्तव में कुछ भी नहीं था। दो-तीन बार ऐसे उदाहरण देखे, लोगों ने कहा कि इस जगह पर भूत रहते हैं, तो कल्पना से वे भूत देखे, भूत होते हैं। ऐसा नहीं है कि नहीं हैं लेकिन मुझे नहीं मिले।

बबूल का ठूँठ लगा भूत जैसा

एक बार पालेज-बारेजा के सामने हमारा नाले का एक छोटा सा काम चल रहा था, तो एक बार रात को मैं अँधेरे में जा रहा था। कॉन्ट्रैक्ट का बिज़नेस था इसलिए देर हो जाती थी, फिर अँधेरे में जाना पड़ता था। वहाँ अँधेरा हो गया था इसलिए भूत दिखाई दिया, चलता-फिरता दिखाई दिया।

अब कुछ था नहीं। बबूल का ठूँठ खड़ा था और उस पर पत्ते-वत्ते कुछ भी नहीं थे, इसलिए इंसान जैसा दिखाई दिया इससे मुझे ऐसा लगा कि, 'लोग जो कहते हैं वह बात सही है कि इस जगह पर रहता है'। तब वहाँ पर भी ऐसा किया था। मैंने कहा, 'चलो अब, उसे छूकर ही जाना है हमें'।

यह जो सामना करने की आदत थी न पहले से, इसलिए मैं तो उस भूत की तरफ ही चला रौब से... मूल रूप से तो क्षत्रिय थे न! वहाँ जाकर जब मैंने उसे छूआ तब ठूँठ निकला! बबूल का ठूँठ देखा।

क्षत्रिय स्वभाव इसीलिए मूल रूप से निडरता का गुण

पच्चीस-तीस साल की उम्र में भूत की खोज करने निकला। हमारा काम कॉन्ट्रैक्ट का था इसलिए रात को निकलते थे, तो जहाँ भूत बताते

थे, वहीं से होकर जाते थे। मूल रूप से तो डर नहीं था इसलिए ऐसा अधिक सेट होता था।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : मूल रूप से निडरता। मुख्य गुण निडरता थी। किसी का डर नहीं, लुटेरे हों फिर भी।

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी जो निडरता का गुण है वह कौन सा है, पौद्‌गलिक गुण है या आत्मा का गुण?

दादाश्री : वह तो *पुद्‌गल* का ही गुण है। आत्मा में तो ऐसा गुण होता ही नहीं है न! मूल रूप से क्षत्रिय स्वभाव, नहीं झुकने की आदत।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : लेकिन जब समय आता है तब झुकने पर मज़बूर कर देता है! दो दिन अगर भूखा रखा जाए न, तो पूरा ही झुकने लगता है। इन सब जंगली जानवरों को किस तरह वश में करते हैं? भूखा रखकर वश में करते हैं। ऐसे परमाणु भरे हुए होते हैं न, लेकिन मूल रूप से क्षत्रिय।

प्रश्नकर्ता : मूल रूप से, परमाणुओं की वजह से ऐसा आकर्षण रहता है।

दादाश्री : वैसे परमाणु भरे हुए थे। बात सुनते ही, कोई ललकारे तो उसमें शूरवीरता आ जाती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसमें शूरवीरता आ जाती है जबकि डरपोक घर में घुस जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, ऐसा है।

वे हैं कल्पना के भूत

प्रश्नकर्ता : आपमें ऐसा डर नहीं है, इसलिए दूसरों के डर निकालते हैं!

दादाश्री : अगर सही है तभी निकलेगा न, नहीं तो कैसे निकलेगा? जिसने डर देखा ही नहीं है और वे सारे डर गलत ही हैं, ऐसा प्रमाणित हो गया था मेरे सामने। इन भूतों की बातें भी। भूत हैं ज़रूर, नहीं हैं ऐसा नहीं है लेकिन भूत ऐसा नहीं होता। ये जो कल्पना के भूत हैं, वे मार डालते हैं। अन्य और कुछ भी नहीं मारता। सचमुच के भूत तो हमें परेशान ही कर देते हैं, तेल निकाल दें और वे इस तरह प्रत्यक्ष आँखों से दिखाई देते हैं। वे भूत तो दिन दहाड़े दिखाई देते हैं। कोई जानवर का रूप लेकर आता है, कोई मनुष्य का रूप लेकर आता है, बड़े दैत्य का रूप लेकर आता है!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और डरा देते हैं। लेकिन मैंने तो ये ऐसे भूत देखे थे। वे गलत थे। ये सब मेरे खुद के देखे हुए भूत थे। फिर डिसाइड किया कि ये सभी बातें गलत हैं।

जिस अनुसार हमारी कल्पना होती है। उसी अनुसार दिखाई देता है। कल्पना है न?

प्रश्नकर्ता : कल्पना है। हाँ, इसलिए भाषा का प्रयोग भी ऐसा ही हुआ कि इसने बहुत भूत खड़े किए हैं।

दादाश्री : हाँ, बस! वे कल्पना के भूत।

[10.7]

यमराज के भय के सामने शोध

यमराज की उल्टी मान्यता सिर्फ हिन्दुस्तान में

मैं जब छोटा था, उन दिनों गाँव में क्या चलता था कि ऊपर यमराज है। जब इंसान की मृत्यु का समय आता है तब यमराज लेने आते हैं, सभी जीवों को।

ये लोग क्या मानते थे? पूरी दुनिया नहीं, सिर्फ हिन्दुस्तान में ही कि जब इंसान बीमार होता है न, तो यमराज उसका जीव (प्राण) लेने आते हैं। यमराज नाम का जो जंतु है वह सब को खा जाता है।

अब पूरे हिन्दुस्तान में यह मान्यता थी। इस मान्यता ने बहुत भयंकर रोग घुसा दिया था। जबकि पूरी दुनिया में यमराज के बगैर चल ही रहा है न, अपने हिन्दुस्तान में ही यमराज! हिन्दुस्तान के अलावा बाकी सब लोगों का यमराज के बिना चल रहा है और इन्हें यमराज के बगैर नहीं चलता। अब अन्य किसी देश में यह बात ही नहीं है न कि यमराज मारते हुए लेने आते हैं! सिर्फ यही एक देश ऐसा है। यहाँ पर यमराज आते हैं!

दस साल की उम्र में विचार आते थे इस उल्टी मान्यता के सामने

मैंने कहा, 'यमराज को बाहर के लोग मानते हैं या नहीं मानते?' दस-बारह साल की उम्र में मुझे ये सारे विचार आते थे।

अब पूरे हिन्दुस्तान में सभी लोगों में यमराज का भूत डाल दिया था। बंगाल में, मद्रास में, केरल में, एक-एक स्टेट में घर-घर में लोग

जानते हैं। यमराज को हर कोई पहचानता है, उसका परिचय ही नहीं देना पड़ता। अपने हिन्दुस्तान के कौन से कोने में यह ज्ञान नहीं फैला हुआ होगा?

प्रश्नकर्ता : सभी जगह है।

दादाश्री : हर एक कोने में, नेपाल, भूटान वगैरह, सभी जगह पर है, एवरीव्हेर। कौन सा अज्ञान फैला हुआ है? यमराज जीव (प्राण) लेने आते हैं। यमराज का काम क्या है? वह क्या करने आते हैं?

प्रश्नकर्ता : हमें ऊपर पहुँचाने के लिए।

दादाश्री : और लोग यहाँ तक सिखा देते हैं कि जब इंसान मर जाता है तो यमराज यहाँ से उसके प्राण ले जाते हैं और हमने जो कुछ भी पाप कर्म या गलत कर्म किए होते हैं, तो वे रास्ते में मारते हैं। मारते-मारते और बहुत दु:ख देते-देते ले जाते हैं, भगवान के पास। लोग यमराज के बारे में ऐसा ज्ञान पेश करते थे। यानी कि यह तो मरने से पहले ही भय घुस जाता था। अरे मुए, लेकिन शरीर ही नहीं रहा तो वह मारेगा किसे?

कुत्ता रोए इसका मतलब यमराज आए, तो उससे घबरा जाते थे बच्चे

फिर लोगों ने क्या कहा कि 'यमराज के आने का पता कैसे चलता है? उसका नियम कैसे पता चलता है? तब लोगों ने बताया कि 'अगर आपके मामा बीमार हैं और कुत्ता रोए, तब तो यमराज आ ही गए समझो!' तो बोलो घबरा ही जाएँगे न! अरे भाई, कुत्ते रो रहे हैं, उसमें यमराज क्यों आएँगे? अब बच्चे तो बेचारे सही ही मान लेते हैं न, माँ-बाप कहते हैं तो। खुद के माँ-बाप विश्वासपात्र कहलाते हैं। माँ-बाप व गुरु जैसा कहें वैसा ही। तो इस तरह बच्चे सच मान लेते थे और इसलिए उन्हें रात को डर लगता था। फिर अगर कुत्ता रोता था तो उनके मन में ऐसा ही होता था कि 'यमराज आए हैं, वे मुझे भी ले जाएँगे!'

इसलिए बचपन से ही सभी बच्चे डरते थे। छोटे बच्चे को यमराज

से भय लगता था। हर इंसान को भय रहता था यमराज का। बचपन से ही घबराहट-घबराहट, घबराहट-घबराहट होती रहती थी। यमराज के बारे में बताया और फिर उसके फोटो भी छपवाए।

डरावने फोटो बनाए यमराज के

पहले के ज़माने में यमराज के बड़े-बड़े फोटो बाहर निकालकर रखते थे। उसके बड़े-बड़े दाँत और चेहरा भी बनाया, डर लगता था!

अब लोग भी फोटो लटकाए बगैर रहते नहीं हैं न! कलियुग है तो नहीं करेंगे क्या? यमराज के फोटो बनाए लोगों ने। वे फोटो देखे हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, देखे हैं मैंने। फोटो तो कैसे भी हो सकते हैं लेकिन वह असल तो नहीं हैं न!

दादाश्री : अब उनके फोटो हमने बचपन में देखे थे। ये हिन्दुस्तान देश और उसमें ऐसा सिखाते हैं तो बेचारे लोग डर-डरकर मर जाते हैं। लोगों को घबराहट हो जाती है बेचारों को।

तब फिर मैंने सोचा कि हिन्दुस्तान की प्रजा इतनी कमज़ोरी कहाँ से हो गई? तेरह साल की उम्र में मुझे इतना भय लगता था, तो सभी लोगों को कितना भय लगता होगा? कितने ही बच्चे और लोग घबरा जाते होंगे बेचारे! मैं भी इसे सच मानता था। मन में डर लगता था इसलिए फिर मैं शोध करता था। जिसे घबराहट ही नहीं हो वह शोध कैसे करेगा?

सभी को हेल्प हो इसलिए रात की ली सेवा

जब मैं तेरह साल का था तब मुझ पर क्या बीती, वह बताता हूँ।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बताइए।

दादाश्री : उस समय हमारे पड़ोस के मुहल्ले में एक पड़ोसी थे। वे चाचा हमारे परिचित थे, तो उनके साथ मैं उठता-बैठता था। चाचा

वृद्ध थे और वे बहुत बीमार थे। वे भी अंतिम स्थिति में थे और शरीर छूटने की तैयारियाँ थी, तो उनकी तबियत बहुत ही खराब हो गई थी।

इसलिए बारी-बारी से रात को वहाँ सब सो जाते थे, उन्हें दवाई वगैरह देने के लिए। आसपास वाले सभी लोग जागते थे, रात को उनके पास बैठते थे सभी, और रात को वहाँ सो जाते थे। इस तरह ज़रा हेल्प करते थे। उनकी सेवा में मैं बैठा रहता था। दूसरे बड़ी उम्र वाले लोग सेवा करते थे लेकिन मैं जितना हो सके उतनी सेवा करता था। पैर दबाता था, पैरों पर हाथ फेरता रहता था। वहाँ पर सभी लोग देखने आते थे। मैं वहाँ बैठता था।

एक बार रविवार के दिन किसी एक घर में से लोग वहाँ नहीं आ सके थे। सब लोग यों ही थके हुए बैठे थे। तब मैंने सब से कहा कि 'भाई आज रविवार है और मेरी छुट्टी है। मैं चाचा के साथ बैठूँगा। आज आप सब यहाँ पर मत सोईएगा, मैं सो जाऊँगा चाचा के पास। आप सब घर जाकर सो जाओ, रात को मैं इन्हें दवाई दे दूँगा। मैं चाचा की सेवा में रहूँगा'। तब उन्होंने पूछा, 'तू पूरी रात सो पाएगा?' मैंने कहा, 'हाँ। रात को अगर नींद आएगी तो फिर सो भी जाऊँगा लेकिन मैं थोड़ी देर, बारह-एक बजे तक बैठूँगा ताकि चाचा को ठीक लगे'। तब सब ने कहा, 'ठीक है'।

कुत्ते को रोते देखकर हुआ भ्रम, 'यमराज आए'

तब सब लोग सोने चले गए और मैं वहीं रह गया। उसके बाद चाचा को दवाई दी और मैं बैठा रहा। चाचा ज़रा आराम करने लगे। तब दस, साढ़े दस बजे होंगे तो चाचा की तो आँखें मिंच गईं। चाचा तो सो गए आराम से दवाई पीकर और मैं तो जाग रहा था। अब जवान लड़का कितनी देर तक जाग सकता था? इसलिए ग्यारह बजे मुझे नींद आने लगी, तब भी मैं तो रात के बारह बजे तक बैठा रहा।

फिर मैंने सोने का प्रयत्न किया। सोने की तैयारी कर रहा था तभी किसी जगह एक कुत्ता रोया, बहुत दूर। कुत्ता खूब रोया। तो मैंने वह सुना।

उस बारे में नहीं सुना होता तो कोई परेशानी नहीं होती लेकिन मैंने सुना था तो मेरे मन में ऐसा लगा कि 'यमराज आए होंगे! यह तो कुत्ता रोया!'

सुने हुए व श्रद्धा वाले ज्ञान से परेशानी

तब मैंने ज्ञान सुना हुआ था। लोगों ने मुझे ज्ञान बताया था। मुझसे क्या कहा था? जब कुत्ता रोता है तब समझना कि यहाँ पर यमराज आए हैं। अरे! कुत्ता रोएगा नहीं क्या बेचारा?

लोग कहते हैं, 'जब कुत्ता ओ-ओ करके रोता है न, तब समझना कि यमराज आसपास ही घूम रहे हैं। कुत्ते को पता चलता है। कुत्ते को दिखाई देता है!'

अत: मुझे यह ज्ञान मिला था। क्या ज्ञान मिला था कि जब यमराज लेने आते हैं, तब उसके लक्षण क्या होते हैं जिनसे पता चले कि ये आ गए हैं? तो कहते हैं, 'कुत्ता रोए तो पक्का समझना कि तब यमराज लेने आए हैं'। ज्ञान तो लोग देते ही हैं। अरे, आपने अगर यह ज्ञान नहीं दिया होता तो क्या नुकसान था? ऐसा ज्ञान नहीं दिया होता तो क्या लोगों को कोई परेशानी थी?

प्रश्नकर्ता : थोड़ा डर रखने के लिए।

दादाश्री : तो मैंने वह ज्ञान सुना तब फिर उस घड़ी मन में कुछ होता है या नहीं? अत: वह ज्ञान हाज़िर हो गया। अब सुना हुआ ज्ञान तो परेशान करता है। यदि नहीं जाना होता तो कोई परेशानी नहीं थी। क्या जाना?

प्रश्नकर्ता : कुत्ता रोता है, तब यमराज आते हैं।

दादाश्री : यह ज्ञान नहीं जाना होता तो मुझे दु:ख ही नहीं होता लेकिन मैं यह तो ज्ञान जानकर आया था, ऐसे अक्ल वालों से। ये अक्ल के बोरे हैं न, इनसे मैंने ज्ञान जाना। सुना हुआ ज्ञान तो असर डाले बिना रहता ही नहीं है न।

मैंने ज्ञान सुना, उसमें कोई हर्ज नहीं था, लेकिन सुने हुए ज्ञान पर

श्रद्धा बैठ गई मुझे। यदि श्रद्धा नहीं बैठी होती तो कोई परेशानी नहीं थी। श्रद्धा नहीं बैठती तो कोई असर नहीं होता। अत: मुझे जब याद आया कि ये सब कह रहे थे कि जब कुत्ता रोता है तब यमराज आते हैं। कुत्ता रोया, यह ज्ञान उससे मिलता-जुलता है!

चाचा को तो ले जाएँगे लेकिन मुझे क्या करेंगे उसका डर था

फिर मुझे वहम हो गया कि आज वास्तव में यहाँ कहीं पर यमराज आ गए हैं। अभी तो ये मरे नहीं हैं बीमार ही हुए हैं तो उन्हें लेने आएँगे या जो स्वस्थ है उसे? बीमार की सेवा में बैठा था और उस तरफ कुत्ता रोया। मैंने कहा, 'अरे, आ गया यह तो'। चाचा तो सो गए हैं बेचारे, लेकिन यह इंसान चाचा को ले जाएगा। आज सुबह ही ऐसा लगा था मुझे। क्या लगा? इसलिए अंदर यह दखल होने लगी कि, 'इन चाचा को सुबह तक ले जाएँगे। यहाँ तक आए हैं तो इन चाचा को लिए बगैर जाएँगे नहीं'। ये सुबह चले जाएँगे'।और वे चाचा हमारे रिश्तेदार थे, इसलिए मुझे चिंता होने लगी। बोलो! क्या-क्या नहीं हुआ होगा मुझे?

प्रश्नकर्ता : सभी हुआ होगा न!

दादाश्री : फिर मुझे मन में ऐसा लगा कि 'यमराज चाचा को लेने आएँ तो हमें क्या करेंगे? हम उस क्षण क्या करेंगे?' अत: मुझे वैसी घबराहट हो गई। डर घुस गया कि हमें भी एक लगाता हुआ जाएगा। अब मैं तो कम उम्र वाला बच्चा था, तेरह साल का, तो फिर डर लगता न, यमराज का? अरे! बड़े-बड़े दाँत दिखाता है, तो वह अगर हमें ज़रा सी एक चपत लगा देगा तो हमारी क्या दशा होगी?

भय के ज्ञान के सामने दूसरा ज्ञान सेट किया जाए तभी भय जाता है

अब भय निकले किस तरह से? जब तक इस ज्ञान के सामने दूसरा कोई ज्ञान नहीं आए तब तक यह भय नहीं निकल सकता। जिस ज्ञान से भय हुआ जब तक उसका विरोधी ज्ञान न हो तब तक भय नहीं

निकलता। अब चाचा को छोड़कर मैं जा भी नहीं सकता था! अन्य कोई था भी नहीं। चाचा को मुझे सौंपकर सब सो गए थे इसलिए सचमुच परेशानी में पड़ गया! यह परेशानी आ गई वापस!

प्रश्नकर्ता : आप मुसीबत में फँस गए।

दादाश्री : तब मेरी हालत तो खराब ही हो जाती न? और फिर मुझे नींद नहीं आई। भय घुसने पर नींद न जाने कहाँ उड़ जाती है! छोटा बच्चा था इसलिए घबरा गया, फिर नींद आ सकती थी क्या? तो नींद भी नहीं आई मुझे रात भर। तब तो कम उम्र थी फिर भी नींद नहीं आई मुझे, नींद-वींद सब उड़ गई।

मैंने यमराज की राह देखी, 'हाँ अभी लेने आएँगे, अभी लेने आएँगे, अभी लेने आएँगे, अभी लेने आएँगे'। मैं ज़रा ज़्यादा जागृत था न, उसी वजह से परेशानी थी! *ढब्बरे* जैसे लोग होते हैं न, वे तो उबासी लेकर सो जाते हैं। मुझे तो पूरी रात नींद नहीं आई। सेन्सिटिव इंसान! क्या हो सकता था अब? तो सुबह पाँच बज गए फिर भी नींद नहीं आई।

सुबह चाचा सही सलामत थे, फिर वह बात लगी खोखली

तो मुझे पूरी रात परेशानी रही और चाचा गहरी नींद सो रहे थे, 'जिनके लिए मैं चिंता कर रहा हूँ, वे सो गए और मैं जागा'। फिर थककर सुबह कुछ देर बाद सो गया और फिर एकदम झटके से उठा, तब चाचा थे, वहीं के वहीं थे, वैसे के वैसे ही थे। चाचा भी थे और मैं भी था। चाचा वही के वही और मैं भी वही का वही।

सुबह तक यमराज नहीं आए और कोई यमराज चाचा को नहीं ले गया। कोई बाप भी नहीं ले गया। सुबह तो चाचा जागे, उठे। वे बैठ गए आराम से! मैंने कहा, 'हाय हाय! यह सब तो गलत है। सब खोखला लग रहा है। मुझे उस यमराज पर भी गुस्सा आ गया।

शुरू की जाँच, यमराज की बात सही है या गलत!

फिर जब सुबह हुई तो सब आने लगे। छः बजे सब आए तब

मैंने कहा, 'यमराज आकर चले गए। यमराज आए थे लेकिन चाचा को लेकर नहीं गए इसलिए मुझे यह यमराज की बात गलत लगती है। यदि वे यहाँ तक आए तो वापस क्यों चले गए? हमने किसी ने उन्हें मना नहीं किया था, तो उन्हें किससे डर लगा?' तो मन में वहम हो गया कि ये लोग गलत बात करते हैं! यमराज कैसे हो सकते हैं? यहाँ तक आकर वे वापस नहीं जा सकते, इसलिए यह बात गलत है।

किसी ने यह मिथ्या बात डाल दी है! यह तो भाई मिथ्या ही लगती है! लोग अंधाधुंध बोलते हैं, क्या है? इसलिए फिर मैंने तो जाँच करना शुरू किया, तेरह साल की उम्र में इस बात के पीछे पड़ गया कि यमराज नाम का कोई जीव सचमुच में है या यह गलत है? उसकी पत्नी, उसके कोई बच्चे-वच्चे होंगे या वह शादी किए बगैर कुँवारा ही होगा? लाओ न, पता तो लगाने दो कि यह बात सही है या गलत। यमराज वास्तव में फेक्ट (सही) है या ज़बरदस्ती लोगों द्वारा घुसाई हुई बात है?

दुनिया की नहीं सुने, ऐसा पागल अहंकार

तब मैंने सोचा कि, 'अब मैं यमराज को ढूँढ ही निकालूँगा। अब इसका नीचे से लेकर ऊपर तक का सब ढूँढ निकालो। इसे पकड़ो, इस पोल को खोल दो'। फिर बहुत जाँच की। मूल रूप से इस तरफ का स्वभाव बहुत सख्त था। हम तो मूल रूप से क्षत्रिय थे न फिर, क्षत्रिय के यहाँ जन्म हुआ था न। जो-जो बात गलत हो, उसके पीछे पड़ने की आदत पड़ गई थी। मेरा अहंकार तो पागल था, कैसा था?

प्रश्नकर्ता : पागल अहंकार।

दादाश्री :हाँ, दुनिया की सुनता ही नहीं था। हमने दुनिया की नहीं सुनी। जो दुनिया की सुने वह समझदार अहंकार कहलाता है। दुनिया की सुने, जो दुनिया के साथ हिल-मिलकर चले, वह समझदार अहंकार कहलाता है जबकि मेरा अहंकार तो पागल था।

सामना करूँगा लेकिन लोगों को दुःख नहीं रहना चाहिए

ऐसे गलत भय नहीं थे, इसलिए फिर सामना किया। सभी शास्त्र छान

मारे। यह यमराज कौन है? उसे जो करना हो करे लेकिन मैं उसका सामना करूँगा। लोगों को यह दु:ख नहीं रहना चाहिए। कितना डर है बेचारों को!

मैं जब मुश्किल में फँस जाऊँ न, तब मैं इस संसार के विभाजन को तोड़-फोड़ दूँ, तो तेरह साल की उम्र में मुश्किल में पड़ गया था।

मैं पंडितों से पूछ आया। कि 'यमराज नाम का यह जीव कहाँ से आया बाप जी?' तब उन्होंने कहा, 'आप नहीं समझोगे, बोलना मत'। मैंने कहा, 'नहीं, मुझे उसका विरोध करना है, जो होना हो, वह हो। मैं तो भगवान को भी डाँट दूँ, ऐसा इंसान हूँ'। मेरा स्वभाव क्रांतिकारी है, लोगों का सामना करने का! लेकिन बात का निबेड़ा ला देता हूँ। तो उन ब्राह्मणों से पूछा तो उन्होंने कहा, कि 'ऐसा नहीं बोलना चाहिए, वर्ना यमराज तुझे घेर लेंगे'। मैंने कहा, 'आपको घेर लेंगे'।

तब चली ज़बरदस्त विचार श्रृंखला

मैंने कहा, 'यदि यमराज हैं तो उनकी तनख्वाह कौन देता है? तनख्वाह तो देनी पड़ेगी न। उनके काम के एवज़ में? नहीं देनी पड़ेगी? उन्हें पेमेन्ट कौन करता होगा? उनकी तनख्वाह कितनी होगी?' तो कहा, 'वह मैं नहीं जनता। कहीं वे तनख्वाह लेते होंगे?' तो बिना तनख्वाह के कोई काम नहीं करता, यमराज हो या यमराज का बाप, फिर भी। तनख्वाह के बिना तो कोई महेनत नहीं करता। कौन करेगा महेनत?

फिर मैं इतनी सोच में पड़ गया कि 'इतना बड़ा यमराज! इतने सारे लोग मर जाते हैं, उन्हें उठाकर ले जाते हैं तो उनकी तनख्वाह कौन चुकाता होगा? और तनख्वाह डॉलर में देते होंगे या रुपए में? उनकी तनख्वाह का पेमेन्ट कहाँ से होता है? कौन से बैंक का चेक होता है? कौन से बैंक में चेक भुनाते हैं?' मुझे सारे विचार सूझने लगे।

फिर मुझे सोच में डाल दिया कि 'यह मुआ जीव लेने वाला नौकर है या सेठ? यदि यमराज है तो उसका *ऊपरी* (बॉस) कौन है? उसका कोई हेड होगा न? यह हेड ऑफिस कौन चलाता है? वह ऑफिस किसका है?' आपने कभी ऐसा सोचा है?

सोचते-सोचते मुझे ऐसा लगा कि 'भगवान का कोई ऑफिस होना चाहिए लेकिन वह ऑफिस कहाँ बनाया है भगवान ने? हेड ऑफिस कहाँ पर है? यदि यमराज जैसा एक नौकर इतना काम करता है तो उनका ऑफिस कितना बड़ा होगा? तो भगवान कितने बड़े होंगे? उनकी कमाई कहाँ से होती होगी? उनका रेवेन्यु (आय) कहाँ से आता होगा? भगवान का रेवेन्यू होगा तभी उन्हें तनख्वाह देते हैं न! अगर कोई इन्कम होगी तभी तनख्वाह देते हैं न! भगवान यह रेवेन्यू कैसे कलेक्ट करते होंगे? इसके पीछे क्या होगा यह सब?'

फिर ऐसे करते-करते पूरी बात आगे चली, 'तो भगवान क्या करते होंगे? भगवान की शादी हो गई होगी या कुँवारे हैं? विधुर हैं? इन सब को पत्नी मिल गई फिर क्या भगवान को पत्नी नहीं मिली? अगर मिली है तो भगवान की सास कौन हैं? ससुर कौन हैं?' यह सब मुझे विस्तार पूर्वक बताओ। ऐसी सब जाँच की। तब कोई भी जवाब नहीं दे सका। एक संत पुरुष थे, वे भी जवाब नहीं दे सके।

इन सभी बातों पर तो मुझे बहुत ही विचार आते थे। एक विचार पर से बहुत से विचार, विचार, विचार आते थे इसलिए फिर मैं कन्फ्यूज़ हो जाता था। मैं समझता था कि यह सब उलझन है, सब गलत है, यह सब मिथ्या है।

फिर उनके बारे में बहुत सोचते-सोचते अंत तक विचार उलझे हुए ही रहे। इस तरह उम्र बढ़ती गई, और इस तरह सोचते-सोचते ऐसा लगा कि यमराज नाम का कोई जीव था ही नहीं। बहुत ही मंथन करने लगे इसलिए अंदर उस तरफ की श्रद्धा खत्म हो गई, यमराज नाम की। यानी कि उसी दिन मुझ में ऐसे विचार जागे थे।

किया ज़ाहिर, 'यमराज नाम का कोई जीव है ही नहीं'

अंत में पच्चीस साल की उम्र में मैंने ढूँढ निकाला कि यमराज नाम का जीव है ही नहीं। जाँच किया तब यह सब गप्प निकली। तो खोज करने के बाद ही इसे छोड़ा। यमराज नाम का कोई देव है ही नहीं, यह सब बोगस ही है, बात ही गलत है बिल्कुल। सौ प्रतिशत गलत बात है, एक प्रतिशत भी सही नहीं है।

यमराज के लिए मैंने इतनी खोज की, जाँच करके अब सभी को बता दिया कि यमराज नाम का कोई जीव है ही नहीं। ये लोग तो बिना समझे अंधाधुंध बोलते हैं कि, 'यमराज ऐसा करते हैं और फलाना करते हैं'।

किसी ने यमराज नाम का गलत भूत डाल दिया है। कोई यमराज लेने आता लेकिन यमराज जैसा कोई है ही नहीं। यमराज का कोई अस्तित्व ही नहीं है, ऐसा कोई जन्मा ही नहीं है। यह तो सिर्फ तूफान ही है। आपको उल्टे रास्ते पर ले गए है। अंदर सब गलत फैलाया हुआ है, और अगर है तो हमें अभी ही ले जाए। इसलिए फिर मैंने पुस्तक में साफ-साफ लिखा है कि 'यमराज नाम का जीव नहीं है, इस बात की गारन्टी देता हूँ'।

यमराज के गलत भय से मार दिया हिन्दुस्तान को

लोगों को भयभीत करके मार दिया। लोग कुछ कम नहीं हैं, ये अपने पुरखे! पूरे हिन्दुस्तान में गलत वहम डाल दिए थे और बिना बात का भय! भय से त्रस्त हो गया है पूरा हिन्दुस्तान! मुस्लिम नहीं डरते, क्रिश्चियन नहीं डरते, सिर्फ इन लोगों में ही घुस गया है भूत।

अरे घनचक्कर! क्यों लोगों में भय का साम्राज्य फैला रहे हो! गप्प लगाई है हिन्दुस्तान के लोगों ने। ऐसी सब बातों में लोगों का विश्वास मत करना। भाई! यह गलत डर है, निकाल देना।

मैंने लोगों से कहा कि 'अरे! शांति से खाओ-पीओ, मज़े करो। जाओ, जोखिम अपने सिर पर लेता हूँ। जैसे ईश्वर की बातों में खोज की है, यह सब भी मैं खुद देखकर बता रहा हूँ। मैं यह त्रिकाल सत्य बात बता रहा हूँ। मेरे पीछे इस बात को कोई काटने वाला नहीं मिलेगा, मैं ऐसी बात बता रहा हूँ कि यमराज नाम का कोई जीव था ही नहीं'।

नि-यमराज, बन गया यमराज

उसके बाद फिर लोग कहते हैं, 'लेकिन ऐसा बिल्कुल गलत तो

कैसे कह सकते हैं? यों गप्प तो नहीं हो सकती न? इसके मूल में कुछ तो होगा ही न?' यमराज के स्थान पर कौन है?

प्रश्नकर्ता : कर्म का फल हो सकता है।

दादाश्री : हाँ। वही कहलाता है कर्मफल लेकिन उसका कंट्रोलर तो होना चाहिए न यहाँ? लोग क्या कहते हैं? 'अगर यमराज नहीं है तो उसके बजाय कोई तो होगा न? तभी ले जाता है न! इंसान मर जाता है तब, यमराज तो होना चाहिए न? यमराज के बिना तो कैसे चलेगा? यदि यमराज नहीं हैं तो वास्तव में क्या है?' फिर लोग खुलासा तो माँगेंगे न? लेकिन वास्तव में क्या है? वह नियमराज है। क्या है?

प्रश्नकर्ता : नियमराज।

दादाश्री : मुख्य बात आपको बता देता हूँ। यह नियमराज था उसका इन लोगों ने 'नि' निकालकर यमराज कर दिया। वास्तव में नियमराज है। अब उसके बजाय यमराज कहते हैं। तो बोलो, लोग बेचारे उलझ ही जाएँगे न!

यमराज और नियमराज में फर्क है या नहीं? क्या यमराज और नियमराज में फर्क नहीं है?

प्रश्नकर्ता : बहुत फर्क है।

नियमराज से नहीं लगेगा भय

दादाश्री : जगत् को नियम ही चलाता है, और कोई चलाने वाला नहीं है। कोई नियम है। इस नियम के अधीन ही यह संसार है। यमराज के अधीन नहीं है। यमराज के अधीन नहीं है। यह नियमराज के अधीन है। किसके अधीन है?

प्रश्नकर्ता : नियमराज।

दादाश्री : नियमराज अर्थात् एक तरह का व्यवस्थित, यह सब नियम से ही चल रहा है। अब इसमें क्या कोई इस तरह शिकायत करेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अब आप बताओ, क्या नियमराज कोई भयभीत होने जैसी चीज़ है? ज़रा सा भी डरने जैसा है इसमें कुछ? अब नियमराज से डर लगेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं लगेगा।

दादाश्री : इंसान नियम से मरता है। नियमराज ले जाते हैं, उसमें क्या भयभीत होने जैसी कोई चीज़ है? नियम से जन्म लिया है और नियम से मरते हैं और व्यवस्थित के ताबे में हैं। अब क्या नियमराज को तनख्वाह देनी पड़ेगी? नियम से सुबह होती है, नियम से रात पड़ती है। नियमराज आपको समझ में आया? नियम ही ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : अब इसका हिसाब कौन रखता है?

दादाश्री : कुदरत का हिसाब ऐसा है कि इसका हिसाब नियम ही रखता है। नियमराज अर्थात् कुदरत के नियम के अनुसार ही चलता है उसमें, बीच में भगवान की कोई ज़रूरत नहीं है। आप व्यवस्थित को जानते हो न? व्यवस्थित ही करता है न यह सब? अब इसमें कहीं मरने का रहा? अतः वहाँ रास्ते में कोई कष्ट-वष्ट नहीं देता। कोई है ही नहीं, कोई बाप भी नहीं है वहाँ पर। यमराज क्या वहाँ मारते-मारते ले जाते हैं?

मैंने कहा, 'कोई भयभीत मत होना। कोई लेने नहीं आएगा, नियमराज है। यह आपको अच्छा लगेगा?' तब कहा, 'यह तो बहुत अच्छा है। तब तो भय नहीं लगेगा, नियमराज है इसीलिए'। लोग समझते हैं कि यह नियमराज है, अब हर्ज नहीं है।

नियमराज को पहचाने आप? यदि नियमराज कहेंगे तो कितनी घबराहट होगी? नियमराज कहने से स्पष्ट समझ में आ जाएगा। उन सब की घबराहट खत्म हो जाएगी। हम यह सारा कचरा निकाल देते हैं।

इस नियमराज की जगह पर यमराज शब्द रखकर लोगों का तेल

निकाल दिया! तो भाई, ऐसे क्यों मार दिया? लोगों से कह दो न, कि अंत में तो नियमराज हैं, यमराज शब्द क्यों डाल दिया? अब पहले से नियमराज कहा होता तो क्या कोई परेशानी थी?

हेतु पाप करने से रोकने का

प्रश्नकर्ता : नहीं, तो इस तरह यमराज का गलत भय क्यों घुसाया होगा पहले के लोगों ने?

दादाश्री : यमराज का भय क्यों दिखाते थे लोग? तो क्या पहले यमराज कहने वाले लोग पागल थे? पागल नहीं थे। नियमराज के बजाय यमराज क्यों रखा उन लोगों ने? दुःखी करने के लिए नहीं, मूल हेतु खराब नहीं था ये। जो लोग चोरी-लुच्चापन करने से नहीं डरते थे, वे जब पाप करते थे तब लोग क्या कहते थे? ये ब्राह्मण क्या करते थे? 'जब तू मरेगा न, तो यमराज आएँगे और तुझे यों मारते-मारते वहाँ ले जाएँगे'। उसके मन में भय डाल दो, ताकि वह गलत कर्म कम बाँधे। यानी कि दबाव डालने के लिए लोगों से यह कहा था।

प्रश्नकर्ता : मर्यादा में रखने के लिए।

दादाश्री : वे ऐसा समझते हैं कि, 'यह पब्लिक जो भी गलत काम करती है न, तो अगर हम यमराज का नाम डाल देंगे तो वे गलत काम करने से रुक जाएँगे'। हाँ, अतः वह कुछ समय तक चला। कुछ लाभ रहा लेकिन बाद में उससे नुकसान हो गया। कभी भी गलत चीज़ से लाभ नहीं लेना चाहिए। ये सारे रूपक उल्टे पड़े। अब यदि उन रूपकों को नहीं समझेंगे तो इंसान का क्या होगा?

पाप कम नहीं हुए और यमराज रह गए

ऐसा करने से लोगों के पाप कम नहीं हुए और यमराज रह गए। उल्टा डाला तो गलत काम तो चलते रहे और यह भी चलता रहा। गलत काम तो जारी रहे और यह भी जारी रहा। यदि पाप कम हुए होते तो मैं समझता कि यह दिया हुआ रूपक काम में आया। पाप बढ़े और

यमराज रह गए। भय भी चलता रहा और यह भी चलता रहा। गलत ज्ञान कब तक हेल्प करेगा? हेल्प नहीं करेगा। इस तरह से गलत दिखाने का अर्थ ही नहीं है, उसकी बजाय जैसा है वैसा बता दो न! और सिखाओ कि ऐसी जवाबदेही किस चीज़ से आती है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसके पीछे आशय तो शुभ है न? गलत काम से डरें, ऐसा आशय है यानी कि शुभ आशय है न?

दादाश्री : शुभ आशय ऐसा नहीं होता। शुभ आशय ऐसा होता है कि जो पाँच-दस प्रतिशत ही नुकसान करे, जबकि यहाँ पिच्यानवे प्रतिशत नुकसान कर रहा है! इसे तो पकड़कर बुलाना चाहिए। किसने खड़ा किया यह तूफान?

प्रश्नकर्ता : उसका उद्भव स्थान मिलना मुश्किल है।

दादाश्री : अरे ऐसा तूफान खड़ा करने वाला नहीं मिलेगा लेकिन यमराज तो है न? क्या यमराज भाग गया है?

पूरी दुनिया के भूत निकालने आया हूँ

यह समझ में आ रहा है न? बिना बात के इतने सारे भूत डाल दिए हैं! यह गलत डाल दिया है आपने।

प्रश्नकर्ता : गलत ही है।

दादाश्री : इसलिए फिर मैंने यमराज को डिसमिस करवाया। मैंने इस गलत त्रास से सब को निकाल दिया, इस विज्ञान द्वारा। मैं पूरी दुनिया के भूत निकालने आया हूँ। मैंने वे निकालने शुरू कर दिए हैं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : इससे, वे जो पुराने गद्दी वाले हैं न, उन्हें बहुत विरोध रहता है कि, 'ये दादा हमारी गद्दी खत्म कर रहे हैं, सारी आमदनी'। क्योंकि लोगों के विचार बदल जाएँगे न, लोग स्वतंत्र हो जाएँगे न! जब तक लोग उलझे रहेंगे न, तब तक इन लोगों को पैसे मिलते रहेंगे। यदि उलझन नहीं रहेगी तो फिर कौन जाएगा वहाँ?

एक-एक शब्द अपूर्व, इसीलिए छुटकारा होता है

प्रश्नकर्ता : ठीक है, एक नया विचार मिला।

दादाश्री : हमारा एक-एक शब्द नया, अपूर्व होता है। ऐसा, जो पहले कभी सुना न हो, पढ़ा न हो, जाना न हो और तभी छुटकारा होता है, निबेड़ा आता है। वर्ना इस उलझन का कब अंत आए? जहाँ पर लोग ऐसा ही कहते हैं कि, 'अरे कुत्ता रोया, यमराज आए!' यह कभी मेल खाएगा क्या? कौन से नियम से ऐसा बोलते हैं कि अगर कुत्ता रोया तो यमराज आए हैं? तो मैं इन सभी बातों की स्पष्टता करने आया हूँ। अब यह सब डिमोलिश करो।

यह नियमराज ठीक से समझ में आ गया है आपको? यह सब नियमराज की वजह से हैं, भगवान ने इसे नहीं बनाया है। गॉड इज़ इन एवरी क्रीचर (भगवान हर एक जीव में हैं) भगवान को, वे जैसे हैं वैसे जानो। गॉड इज़ नॉट क्रिएटर ऑफ दिस वर्ल्ड एट ऑल (भगवान इस दुनिया के रचयिता नहीं हैं), ओनली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स (मात्र वैज्ञानिक संयोगिक प्रमाण) हैं! मैं यह देखकर बता रहा हूँ, किसी शास्त्र की बात नहीं कर रहा हूँ। देखी हुई बात अच्छी है या शास्त्र की बात अच्छी?

प्रश्नकर्ता : देखी हुई।

दादाश्री : हं... शास्त्र में तो न जाने कितने परिवर्तन हो गए हैं उसका क्या पता चले?

[10.8]

भगवान के बारे में मौलिक समझ

सच्चे दिल वाला था इसलिए भगवान को भी डाँटता था

संसार तो बंधन ही है, मुझे तो कम उम्र से ही यह बंधन लगने लगा था। मुझे तो तेरह साल की उम्र में भी यह बंधन लगता था। दु:ख नहीं था फिर भी बंधन लगता रहता था।

प्रश्नकर्ता : किस परिबल के आधार पर यह आपको बंधन लगता था?

दादाश्री : अगर आपको मेरी लाइफ जाननी है तो कुछ बात करूँ कि जब मैं छोटा था तभी से मुझे इस दुनिया की परतंत्रता अच्छी नहीं लगती थी, किसी भी व्यक्ति की। मुझे *ऊपरी* पसंद ही नहीं था। वह बहुत बड़ा दु:ख था! मैं किसी भी *ऊपरी* को चुनने के लिए तैयार नहीं था। मनुष्यों के ऊपर कोई *ऊपरी* होना ही नहीं चाहिए। यदि अपने ऊपर *ऊपरी* (बॉस) हो तो कितनी परवशता रहती है।

जब से तेरह साल का था तभी से मेरा भगवान के साथ झगड़ा था। मैं बचपन से ही भगवान को डाँटता था क्योंकि भगवान की तरफ मैं सच्चे दिल वाला था और कुछ भी नहीं, कपट-वपट नहीं।

साधु संतों की सेवा करना बहुत अच्छा लगता था

प्रश्नकर्ता : आपने तेरहवें साल में किस तरह से ढूँढा कि मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है?

दादाश्री : हाँ, मैं जब तेरह साल का था तब हमारे गाँव में, भादरण

में भगवा कपड़े वाले एक-दो साधु आते थे। हिन्दुस्तानी थे, उत्तर प्रदेश, पंजाब तरफ के। उनमें एक वेदांती पुरुष थे। लोग उन्हें ज्ञानी जी महाराज कहते थे। वे अंधे थे और बहुत वृद्ध थे। यों बहुत आनंदी और अच्छे थे, हृदय के भोले इंसान थे।

लड़कों ने बताया कि, 'अंधे महाराज हैं और बहुत अच्छे हैं,' इसलिए मेरी इच्छा हुई कि 'लाओ, मैं जा आता हूँ'। तो जब भी स्कूल से समय मिलता था तो फिर मैं वहाँ, संत पुरुष का आश्रम जैसा था, वहाँ दर्शन करने जाता था।

हमारा जन्म तो वैष्णव कुल में हुआ था इसलिए भगवा वस्त्र धारी सन्यासी के दर्शन करने जाते थे। जैन या ऐसा कुछ नहीं था मन में, जो हो सो। मुझे लगा कि महाराज बहुत साफ हैं, नि:स्पृही हैं। तो सब लड़के उनके पैर दबाते थे तो मैं भी पैर दबाने लगा, सभी को देखकर, हेतु समझे बगैर। फिर बाप जी तो बोल उठे, 'बच्चे, तेरा नाम क्या है?' मैंने कहा, 'अंबालाल'। तब उन्होंने कहा, 'अच्छा'।

फिर मैं रोज़ महाराज की सेवा करने, पैर की चम्पी करने, पैर दबाने के लिए रोज़ जाता था। स्कूल से छूटकर चुपचाप घंटे-आधे घंटे। उन्हें ज़रा मसाज (मालिश) कर देता था। मुझे वह अच्छा लगता था।

मैं पैर दबाने क्यों जाता था? तब कहा, 'अंधे होने के बावजूद भी, जब भी मैं जाता था और कहता था कि 'बाप जी, जय राम जी' तब वे ऐसा पूछते थे, 'कौन? अंबालाल!' वे शब्दों पर से पहचान जाते थे इसलिए मुझे बहुत आश्चर्य होता था कि 'ये महाराज अच्छे हैं'।

फिर महाराज से कहता था कि 'मैं थोड़ी खीर बनाकर लाऊँगा, आप खाना'। तो वे कहते थे, 'खाएँगे'। बा से कहता था तो वे बना देती थीं। मैं थोड़ी खीर और पूड़ियाँ बनाकर दे आता था, ऐसा कुछ दे आता था। कभी लड्डू बनाए हों तो दे आता था। कभी-कभी, रोज़ नहीं। इसलिए वे बहुत खुश हो गए।

'भगवान मोक्ष ले जाएँगे' सुनकर हुआ मनोमंथन

फिर एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'बच्चा, भगवान तुमको मोक्ष में ले जाएगा। तू मेरे पैर दबाता है, सेवा करता है, भगवान तुझे मोक्ष में ले जाएँगे'। महाराज का यह वाक्य मुझे ठीक नहीं लगा। तब वह मुझे बहुत खटका, मेरे दिमाग़ में। तुरंत अंदर दिमाग़ फटने लगा कि 'भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँगे? ऐसा फिर कौन है वह भला?' मैंने कहा, 'साहब, आपकी सेवा करने के फलस्वरूप मुझे भगवान मोक्ष ले जाएँगे, तो यह बात न करें तो मुझे अच्छा लगेगा। यह बात मुझे रास नहीं आई। मुझे पसंद नहीं है। बाप जी, अब फिर से ऐसा मत कहना, नहीं तो फिर नहीं आऊँगा'।

'मुझे आपकी सेवा करने दो, आप मेरे भगवान हो। मुझे मोक्ष में ले जाने वाले भगवान नहीं चाहिए। मुझे बीच में ऐसे भगवान की ज़रूरत नहीं है, मुझे आपकी ही ज़रूरत है। यदि भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँगे तो मुझे इस तरह के मोक्ष में नहीं जाना है। ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। वह मुझे नहीं पुसाएगा। आपको ले जाना हो तो मैं तैयार हूँ', ऐसा कहा तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

उनके मन में ऐसा था कि 'यह बच्चा है, इसलिए समझता नहीं है!' उन्होंने मुझसे कहा, 'तुझे धीरे-धीरे समझ में आ जाएगा'। जब गुजराती में ऐसा कहा, तब मैंने कहा, 'अच्छा। ठीक है साहब,' लेकिन मुझे तो बड़े-बड़े विचार आए कि, 'यदि भगवान मोक्ष में ले जाएँगे तो उनका उपकार नहीं भूल पाएँगे!' आपने ज़रा इतनी सी ही चाय पिलाई हो तो उपकार नहीं भूलते, तो जो मोक्ष में ले जाएँगे तो उनका उपकार तो भूल ही नहीं पाएँगे उनका कितना उपकार मानना पड़ेगा।

जहाँ भगवान ऊपरी हों, ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए

भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँगे तो मैं उनका उपकार कब चुकाऊँगा? तब भगवान तो मेरे *ऊपरी* ही रहे न! तब तो उनके ओब्लाइजिंग (उपकार) के तले ही रहे। भगवान हमें ले जाएँगे तो जो ले जाएगा उसका हमें उपकार तो मानना पड़ेगा न? मैंने कहा, 'मुझे ऐसा

मोक्ष नहीं चाहिए। मुझे तो ऐसा मोक्ष चाहिए जिसमें कोई *ऊपरी* न हो। मुझे ऑब्लिगेशन नहीं चाहिए। वे मुझे अपने मोक्ष में ले जाएँगे तो मुझ पर उनका उपकार रहेगा, उससे तो बोझ रहेगा। जिन भगवान ने इस जगत् को क्रिएट किया है और जिन्होंने इस जगत् में हमें बनाया उनका उपकार क्या कभी भूल सकते हैं? इसलिए उससे अपना मोक्ष नहीं होगा और अगर भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँगे तो फिर वे हमारे *ऊपरी* तो रहे ही न। जहाँ *ऊपरी* है वह मोक्ष कहलाएगा ही नहीं न! मुझे *ऊपरी* चाहिए ही नहीं। 'मैं ऐसा स्वीकार ही नहीं करता हूँ कि भगवान *ऊपरी* हैं। आप ही मेरे *ऊपरी* हो प्रत्यक्ष हो क्योंकि प्रत्यक्ष उपकारी हो'। ऐसा कहा। फिर महाराज चौंके कि 'यह क्या कह रहा है, यह क्या कह रहा है? ऐसा मत कहो, मत कहो'।

भगवान आपकी कल्पना जैसे हैं ही नहीं

फिर बाप जी घबरा गए न! तो कहने लगे, 'यह तू क्या कह रहा है, ऐसा नहीं कहना चाहिए। भगवान की निंदा क्यों कर रहा है? मैंने तो तुझे ऐसा कहा कि भगवान तुझे मोक्ष में ले जाएगा'। तब मैंने कहा, 'नहीं, मैं तो कहूँगा। मैं निंदा नहीं कर रहा हूँ। जैसी आपकी कल्पना है, भगवान वैसे हैं ही नहीं। भगवान को तो मैं ढूँढ रहा हूँ। महाराज, मुझे भी यह समझ में नहीं आ रहा है। भगवान यदि मुझे मोक्ष में ले जाएँ, तो ऐसे मुझे नहीं जाना है। मैं अपनी तरह से जाऊँगा'।

कोई है क्या मुझे मोक्ष में ले जाने वाला? इज़ देयर एनीबडी? यदि है तो वह आपका *ऊपरी* रहेगा। आई डोन्ट वान्ट बॉस। तू *ऊपरी*, मुझे ले जाने वाला तू कौन है भला? बेकार ही, तू कहाँ से आया? यदि भगवान हमारे *ऊपरी* हैं तो फिर उसे मोक्ष कहेंगे ही कैसे? मुझे *ऊपरी* वाला मोक्ष नहीं चाहिए। मैं इस वर्ल्ड में अन्डरहैन्ड रहना ही नहीं चाहता। जो होना हो वह हो, लेकिन अन्डरहैन्ड नहीं रहना चाहता। आपकी सेवा करूँगा लेकिन अन्डरहैन्ड नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो सेवा करता है वह अन्डरहैन्ड कहलाएगा या नहीं?

दादाश्री : 'नहीं-नहीं। मैं नहीं रहूँगा अन्डरहैन्ड। आपकी दृष्टि में अगर मैं अन्डरहैन्ड लगूँगा तो मैं उठ जाऊँगा। आपकी दृष्टि बदलेगी, तो मैं उठकर चला जाऊँगा। सेवा सब प्रकार की करूँगा'। तब महाराज समझ गए कि यह लड़का पक्का है!

बैठाने के बाद उठा दें तो वह मोक्ष किस काम का?

'भगवान हमें मोक्ष में ले जाएँगे,' तो तुरंत ही विचार आता है, उनके बोलते ही मुझे फिल्म की तरह सब दिखाई देता था। वे ले जाएँगे तो वहाँ पर मुझे कहाँ पर बैठाएँगे? मान लो मुझे मोक्ष में ले गए, तब भी किसी एक जगह पर बैठाएँगे कि 'यहाँ बैठ'। जो *ऊपरी* होगा वह तो कहेगा न, 'यहाँ बैठ इस सोफासेट पर'। वह अच्छी जगह हो, फर्स्ट क्लास जगह हो और वहाँ पर बैठे हुए हों, तब अगर उनका कोई खास नया परिचित आ जाए, अन्य कोई रिश्तेदार, साले का बेटा आ जाए तो हम से कहेंगे 'उठ यहाँ से' और साले के बेटे को बैठा देंगे। अरे! छोड़ तेरा मोक्ष, जो हमें उठा दे वह मोक्ष किस काम का? जहाँ पर कोई ऐसा कहने वाला है कि 'उठ,' वहाँ जाने की क्या ज़रूरत?

बैठने के बाद में उठाने का समय आए, तब तो तेरा ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। तू अपने घर पर ही रख। तू अकेला वहाँ पर सो जा। वहाँ पर कोई, 'उठ,' कहने वाला नहीं होना चाहिए। मोक्ष का मतलब जहाँ से कोई उठाए नहीं, कोई *ऊपरी* नहीं। उसके लिए जन्म नहीं लिया है। उसके बजाय तो मेरे फादर-मदर जो कि प्रत्यक्ष उपकारी हैं, वही मेरे लिए सही हैं। तू कहाँ प्रत्यक्ष उपकारी है?

उसके बजाय तो यह संसार अच्छा। मोक्ष में ले जाने वाला कौन होता है? जब तक मोक्ष का मार्ग है तब तक गुरु की ज़रूरत है, ज्ञानियों की ज़रूरत है। लेकिन मोक्ष में ले जाने के लिए भगवान जैसी कोई चीज़ नहीं है। भगवान (*ऊपरी*) हों तो इस दुनिया में जीने का अर्थ ही क्या है? मेरे माता-पिता ही मेरे भगवान हैं क्योंकि मैं देख सकता हूँ कि उन्होंने मुझे जीवन दिया है। आप ऐसा भगवान दीजिए। ऐसा भगवान नहीं चाहिए जो मुझे इधर-उधर भटकाए।

रिलेटिव में उपकारी चलेगा लेकिन रियल में तो नहीं

घर के लोग, माता-पिता *ऊपरी*। ये रिलेटिव *ऊपरी* हैं लेकिन रियल *ऊपरी* तो कोई भी नहीं चाहिए। भगवान *ऊपरी* होंगे तो वह नहीं चलेगा। यहाँ पर जो *ऊपरी* हैं, उनकी भी कितनी झंझट है! पिता हैं तो भी परेशानी है। जन्म लिया है इसलिए उस परेशानी को तो छोड़ नहीं सकते लेकिन दूसरे तो बिना जन्म दिए, बिना बात के चढ़ बैठते हैं। वर्ल्ड में यदि माँ-बाप *ऊपरी* हैं तो उसमें कोई हर्ज नहीं है, बाकी मैं और किसी का *ऊपरीपन* स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था।

ये माँ-बाप उपकारी हैं, इसलिए अगर वे हमें डाँटेंगे तो चला लेंगे। हाँ, डाँटना पड़े तो घर वाले डाँटें, उसमें हर्ज नहीं है क्योंकि वे लोग तो हमारे लिए महेनत करते हैं इसलिए उपकारी हैं। छोटे से बड़ा किया, वह सब जानते हैं न हम। लेकिन यदि कोई ऐसा जिसने हमारा लालन-पालन नहीं किया और वह हमें डाँटे तो वह भला कौन? भगवान ने नहीं पाला पोसा, ऐसा खुले तौर पर दिखाई देता है। वे यदि हमें डाँटें तो उससे क्या लेना-देना? यह तो मैंने खुद देखा है कि माँ-बाप ने बड़ा किया है। यह खुले तौर पर दिखाई देता है इसलिए उनका उपकार नहीं भूल सकते। उन्हें तो हम प्रत्यक्ष उपकारी देखते हैं व जानते हैं। उनका उपकारीपन है, उपकारी का *ऊपरीपन* है। जबकि भगवान का तो, वह तो हमेशा के लिए *ऊपरीपन* सूचित करता है। हमेशा के लिए *ऊपरी* नहीं चाहिए।

ढूँढ निकाला कि मेरा और आपका कोई ऊपरी है ही नहीं

मैं ज़िंदगी में कभी इस तरह से नहीं जीया कि कोई मेरा *ऊपरी* है। मुझे *ऊपरी* पुसाता ही नहीं, नो बडी (कोई नहीं)। मैं इस दुनिया में *ऊपरी* बनाने के लिए नहीं आया हूँ। *ऊपरी* पुसाए ही कैसे? हमें तो रात को नींद भी नहीं आएगी। रास ही नहीं आएगा न! इसलिए *ऊपरी* नहीं चाहिए। *ऊपरी* को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ। तो कहते हैं, कि जब तक *ऊपरी* को स्वीकार नहीं करेगा तब तक शादी करने को नहीं मिलेगी। मैंने कहा, 'शादी नहीं करूँगा। क्या *ऊपरीपना* स्वीकार

करने के लिए शादी करूँ ऐसा? *ऊपरीपना* स्वीकार नहीं किया और ढूँढ निकाला कि मेरा तो कोई *ऊपरी* नहीं है लेकिन आपका भी कोई *ऊपरी* नहीं है। मैं *ऊपरी* रहित हुआ और आपको भी *ऊपरी* रहित कर देता हूँ।

मुझे अपने ऊपर कोई चाहिए ही नहीं। हमारे ऊपर फादर-मदर, और अगर कोई गुरु हों तो वे, बाकी कोई *ऊपरी* नहीं। बिना बात के अपने ऊपर कोई चाहिए ही नहीं। सिर पर कोई हो तो फिर इसे जीवन कैसे कहेंगे? तो क्या लाचारी भरा जीवन जीना है? भगवान रूठ गया है और भगवान ऐसा... इसलिए शुरू से ही तय किया था कि *ऊपरी* नहीं चाहिए। यदि *ऊपरी* है तो उसका चेहरा देखते ही हमें चिढ़ मचेगी। भगवान का *ऊपरी* होना कैसे पुसाएगा, ऐसी परवशता? और फिर कहाँ वापस उन्हें पोलिश करते रहें, मस्का मारते रहें?

नहीं पुसाएँगे वे भगवान जो डाँटे

भगवान क्या दे देगा कि वह बिना बात मुझे डाँटे? और अगर डाँटे तो वह भगवान भी मेरे काम का नहीं। मैं भगवान से ऐसा कह दूँगा कि 'मेरे साथ सीधे रहना क्योंकि मैं साफ हूँ बिल्कुल प्योर हूँ। छुप-छुपकर पैंतरे नहीं रचे हैं'।

वह तो, कल डाँट भी सकता है हमें, उसके बजाय अपना घर क्या बुरा था? अपने घर के लोग अगर *ऊपरी* हों तो अच्छा है। मेरे बीबी-बच्चे सब अच्छे हैं। वे कुछ देर के लिए झगड़ते हैं बस इतना ही न? गालियाँ देंगे तो चलेगा, थोड़ा क्लेश कर लेंगे, लेकिन पकौड़ियाँ तो खिलाएँगे या नहीं?

भगवान ऊपरी और मोक्ष, ये दोनों विरोधाभासी हैं

प्रश्नकर्ता : खुश होंगे तो खिलाएँगे।

दादाश्री : वह चाहे कुछ भी हो लेकिन खिलाएँगे तो सही न! दो गालियाँ देगी लेकिन पकौड़े तो खिलाएगी न, तो वह मोक्ष अच्छा है लेकिन ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए। जहाँ से कोई उठा दे ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए, उसके बजाय पकौड़े खाकर वाइफ के साथ पड़े रहेंगे। अच्छा-

अच्छा खाना तो बनाकर देगी। वह खाएँगे-पीएँगे और चाय पीकर मस्ती से सो जाएँगे। तैयार करके तो देगी न! फिर वह रिलेटिव है, रियल नहीं है न! रिलेटिव का तो *निकाल* (निपटारा) हो जाएगा। पत्नी के साथ वाला मोक्ष अच्छा। स्त्री का *ऊपरीपना* अच्छा। जबकि यह तो बिना बात के *ऊपरी* बन बैठा है, न लेना न देना! किसी काम नहीं आएगा, ऐसा *ऊपरी* मेरे किस काम का जो किसी काम न आए?

तेरी मुक्ति के बजाय मेरे घर की मुक्ति अच्छी है और अपनी वाइफ वगैरह कब तक *ऊपरी* हैं? जब तक यहाँ जी रहे हैं तब तक। तो हमेशा के लिए चढ़ बैठता है। *ऊपरी* नहीं होना चाहिए, इतनी यह झंझट हुई थी। इस ज़िंदगी का चाहे जो हो, लेकिन *ऊपरी* तो होना ही नहीं चाहिए। वह नहीं पुसाएगा, अपने ऊपर भगवान नहीं चाहिए। अत: तभी से मैं ऐसा नहीं मानता था कि भगवान *ऊपरी* हैं। भगवान *ऊपरी* क्यों होंगे? उसके बजाय तो हमारा इन लोगों के अन्डर में रहना अच्छा है लेकिन भगवान के अन्डर में तो रह ही नहीं सकते। क्योंकि भगवान *ऊपरी* और मोक्ष, हिन्दुस्तान के लोग चाहे इन दोनों चीज़ों की कल्पना करते हैं, लेकिन ये विरोधाभासी हैं। अब इस दुनिया में तो ऐसा *लक्ष* (जागृति) में ही नहीं है न, कि ये विरोधाभासी हैं।

मोक्ष अर्थात् नो अन्डरहैन्ड, नो बॉस

मोक्ष और भगवान दोनों विरोधाभासी हैं। यदि मोक्ष है तो भगवान *ऊपरी* नहीं होना चाहिए और अगर *ऊपरी* है तो किसी का मोक्ष नहीं होगा। मैं ऐसा मोक्ष नहीं ढूँढ रहा हूँ। मोक्ष अर्थात् मुक्तभाव।

मोक्ष का मतलब क्या है? नो अन्डरहैन्ड, नो बॉस। अन्डरहैन्ड का शौक हो तो यहाँ पर होना चाहिए, बाकी वहाँ पर तो अन्डरहैन्ड का शौक नहीं रख सकते। मोक्ष में तो कोई अन्डरहैन्ड नहीं है, अन्डरहैन्ड भी नहीं है, कोई *ऊपरी* है ही नहीं। बिल्कुल इन्डिपेन्डेन्ट। दखल नहीं है किसी तरह की, हम अपने मोक्ष में ही। अन्डरहैन्ड का शौक है तो *ऊपरी* मिलेंगे और जिसे अन्डरहैन्ड का शौक नहीं है उन्हें मुक्ति मिलती है। किसे मिलती है।

प्रश्नकर्ता : जिसे अन्डरहैन्ड का शौक नहीं है उन्हें।

दादाश्री : मुझे अन्डरहैन्ड का शौक नहीं है। मेरे अन्डर में कोई नहीं है। मुझे आपको अन्डरहैन्ड नहीं बनाना है और *ऊपरी* की तरह भी स्वीकार नहीं करना है। मैं *ऊपरी* को स्वीकार नहीं करता हूँ। *ऊपरी* क्यों होना चाहिए? अत: *ऊपरीपने* को स्वीकार नहीं किया था। शुरू से ही ऐसी आदत थी कि मुझे अपने सिर पर कोई नहीं चाहिए इसलिए भगवान को भी कभी मैंने बॉस के रूप में स्वीकार नहीं किया।

मुझे अपने अंदर वाले भगवान के साथ अभेद होना है

मुझे वीतरागों का ऐसा मोक्ष मार्ग चाहिए था जहाँ कोई *ऊपरी* नहीं, अन्डरहैन्ड नहीं। उन दिनों ऐसा पता नहीं चला कि वीतरागों का मोक्ष ऐसा है लेकिन मुझे वहीं से समझ में आ गया था कि *ऊपरी* नहीं चाहिए। जो कहे कि 'उठ यहाँ से', ऐसा तेरा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। यदि वह मोक्ष में ले जा रहा हो तो भी मैं मना करूँगा कि 'अपने घर चला जा यहाँ से। तेरी लक्ष्मी जी के साथ बैठा रह अपने घर। मुझे तो, मुझ में भी जो भगवान हैं उन भगवान के साथ जाना है। मुझे तुझसे क्या काम है? तू भगवान है, मैं भी भगवान हूँ। चाहे तू मुझे कुछ समय के लिए अपने काबू में रखने का प्रयत्न कर रहा है लेकिन आई डोन्ट वान्ट टू'। पर यह भीख क्यों? इन पाँच इन्द्रियों के लालच के लिए? क्या लालच है इसमें? जानवर को भी लालच है और इन्हें भी लालच है तो फिर उसमें और हम में फर्क क्या रहा?

विद्रोही और नि:स्पृही स्वभाव की वजह से साफ-साफ कह देता था

प्रश्नकर्ता : सही बात है लालच के कारण वास्तविक भगवान की पहचान नहीं हो पाती।

दादाश्री : मैं जब छोटा था तब एक बाप जी ऐसा कह रहे थे, कि 'मैंने इनका बहुत बड़ा रोग ले लिया और इनका जो शारीरिक दु:ख था वह सारा ले लिया'। मेरे दिमाग़ में यह बात नहीं बैठी। विद्रोही दिमाग़

था मेरा। मैंने कहा, 'बाप जी, तब तो ये अस्पताल बंद करवा दें'। अरे, संडास जाने की तो शक्ति नहीं है। शर्म नहीं आती? इतने बड़े बाप जी (साधु महाराज) थे तब भी कहा, 'संडास जाने की शक्ति हो तो मुझे बता, चल, आ जा। प्रमाण दे'। दुःख लेने आए हो! लोगों को भ्रमित कर रहा है?

'बाप जी, इसके बजाय घर पर जाकर शादी कर लो न! यह तूफान मचाने के बजाय'। उस दिन उन्हें साफ-साफ सुना दिया था, तो उन्हें बुरा लगा। विद्रोही स्वभाव था मेरा इसलिए ज़रा बोलूँ तो खराब तो लगता न?

ये सब तो, अगर कोई गाँव वाला बैठा हो न, तो उसके भी भगवा कपड़े देखकर, 'बाप जी, मेरा कोई भला करना'। ये बेचारे भोले लोग भ्रमित हो जाते हैं! कहते हैं, 'मेरा दुःख ले लिया' मुझे यह नहीं पुसाएगा। मैं साफ-साफ बोलने वाला इंसान हूँ! मुझ में इतना अवगुण था। जो निःस्पृही, विद्रोही, इंसान हो, जिसे कोई लेना-देना नहीं है वह इस तरह से चलता है। अगर उसे ठीक लगे तो वह कह देता है।

अंत में ढूँढ निकाला वास्तविक भगवान को

तेरह साल की उम्र में स्वतंत्रता जागी थी। तभी से मैंने जाँच की कि भगवान को ढूँढ निकालना है। ऐसा कौन भगवान है जो हमें मोक्ष में ले जाएगा! लेकिन फिर उन्हें ढूँढ निकाला। 'ऊपर कोई भगवान नहीं है' ऐसा ढूँढ निकाला।

यहाँ से वहाँ, ऐसे हिलाया, वैसा किया लेकिन ढूँढ निकाला कि 'है ही नहीं'। 'नहीं है' ऐसा कहा, उसके बाद मैंने इंतज़ार किया। मैंने कहा, 'यदि तू है तो मुझे अभी उठा ले'। 'आकाश देखा लेकिन कुछ भी नहीं। कुछ भी पता ही नहीं है उसका'। यों ही वहाँ पर लॉस्ट प्रोपर्टी (खोईपाई चीज़ों के) ऑफिस में चली गईं लोगों की सारी अर्जियाँ। फिर कहीं ऐसा पढ़ा कि भगवान तो अंदर वाले को कहते हैं, तब वह बात मुझे अच्छी लगी। कई लोग तो भगवान को 'अंदर वाला' ही कहते हैं न!

अंत में भगवान को ढूँढ निकाला तो ढूँढ ही निकाला, लेकिन भगवान की इतनी अच्छी भक्ति की कि भगवान पूरे ही मेरे वश में हो गए हैं! यों ही प्रकाश हो गया है। कभी सोचा नहीं था वैसा। मैं अपना डेवेलपमेन्ट (उपादान) लेकर आया हूँ। अनंत जन्मों की इच्छाएँ इस जन्म में फलीभूत हुईं।

पहले तो मुझे वह नहीं चाहिए था जो मुझे डाँटे। भगवान भी यदि डाँटता तो मुझे वह दुनिया भी नहीं चाहिए और सच में पूछो तो पूरी ज़िंदगी में अभी तक किसी ने मुझे डाँटा नहीं है। 'अब डाँटने वाले को छूट है। अब जिसे डाँटना हो, उसे। अब आपकी बारी है।

मैंने पूरी लाइफ रिसर्च में ही बिताई है, रिसर्च ही की है इसलिए मुझे भगवान मिले और द वर्ल्ड इस द पज़ल इटसेल्फ, इटसेल्फ पज़ल बन चुका है। गॉड हैज़ नॉट क्रिएटेड, ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है यह। सभी संयोग साइन्टिफिक हैं, उन्हीं से सब कार्य होते जाते हैं।

भगवान हमारा खुद का ही स्वरूप है, वह कुछ भी भौतिक चीज़ नहीं देता

भगवान से कहा, 'तू मेरा स्वरूप है, *ऊपरी* कैसा?' 'मेरा खुद का ही स्वरूप है' इस चीज़ का भान नहीं है इसलिए लोग उन्हें अपना *ऊपरी* बताते हैं। खुद लालची हैं, इसलिए। उनसे कुछ लेना है, लेकिन नहीं मिलेगा उनके पास। है ही नहीं, तो क्या देगा यों बेकार ही? हाँ तुझे यदि भौतिक सुख वगैरह चाहिए, तो तेरे पास जो है वह इन लोगों को दे तो तुझे बेहिसाब भौतिक सुख मिलेगा और अगर दुःख देगा तो दुःख मिलेगा। बाकी, तुझे इन सब का सार मिलेगा, बीच में भगवान की ज़रूरत नहीं है। उन्हें क्यों दलाल बनाता है तू? और भगवान तो कहते हैं कि, 'जब तुझे सनातन सुख चाहिए तब मेरे पास आना, मैं इन सुखों के लिए नहीं हूँ'। आपको कौन सा सुख चाहिए?

प्रश्नकर्ता : सनातन सुख।

दादाश्री : हाँ, अगर सनातन सुख चाहिए तो तू यहाँ पर आ। भौतिक सुखों के लिए यह सब क्या करना?

परवशता तो मुझे बहुत कचोटती थी और उसमें भी मुझे भगवान के वश रहना तो बहुत ही कचोटता था। यह पराया इंसान, न लेना, न देना। अगर बड़े भाई होते तो शायद हम समझते कि कमाकर ला रहा है बेचारा और हमें खिला रहा है इसलिए *ऊपरी* है तो उसके वश में रहते। भाभी के वश में रहते कि खाना बनाकर खिलाती हैं, लेकिन इनसे न तो लेना है न देना और बेकार ही इनके वश में रहें? इसलिए मुझे खटकता रहता था और जब मैंने ढूँढ निकाला तभी छोड़ा।

ऊपरी ही उपाधि है

बचपन में अगर कोई मुझसे आगे बढ़ जाता उसके साथ बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता था, हीनता महसूस होती थी, वहाँ अच्छा नहीं लगता था। वह बातें करता तो मुझे अपने आपमें हीनता का अनुभव होता है इसलिए मैं वहाँ से खिसक जाता था। मैंने कहा, 'हमें इस दुकान पर नहीं बैठना है। जहाँ अपना नंबर लगे वहाँ बैठना है। अंधों में काणा राजा'।

प्रश्नकर्ता : बचपन में ऐसा था?

दादाश्री : और क्या? यह अच्छा नहीं लगता था। 'यह मुझसे आगे बढ़ गया,' वह अच्छा नहीं लगता था।

यही झंझट आगे ही आगे आती रहती है। *ऊपरी* (बॉस) नहीं चाहिए। ऐसा नहीं चाहिए। कितनी ही परेशानी! तुझे अच्छा लगता है?

प्रश्नकर्ता : मुझे तो अच्छा लगता है, दादा।

दादाश्री : ऐसा?

भगवान की भक्ति करके उनके जैसा बन जाएगा

अत: भगवान को *ऊपरी* के तौर पर स्वीकार नहीं करता था।

भगवान हर प्रकार से मेरे पूज्य हैं लेकिन *ऊपरी* के रूप में स्वीकार नहीं हैं। 'आपकी भक्ति करके आप जैसा बनूँगा' मैं क्या कहता था?

प्रश्नकर्ता : आपकी भक्ति करके आप जैसा बनूँगा।

दादाश्री : हाँ, आप जैसा ही। आपमें और मुझ में फर्क नहीं है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि 'आप यह पढ़कर आगे बढ़ गए हैं और मैं पढ़कर पीछे रह गया हूँ'। और कोई फर्क नहीं है, नो डिफरेन्स। खुद का स्वरूप परमात्मा ही है। भगवान कुछ भी नहीं करता है न! यदि कुछ भी नहीं करता तो उसे *ऊपरी* कैसे मानें? अगर कोई व्यक्ति मुझे उसका प्रमाण दिखाए कि भगवान ने मुझे यह करके दिया है। जहाँ वह कुछ भी नहीं करता है, वहाँ पर लोग कहते हैं 'भगवान ने किया है'। भगवान को पहचानो तो सही, भगवान ऐसे नहीं हैं कि किसी का ऐसा करें।

नाम याद करते ही दुःख दूर होते हैं लेकिन चार आने भी नहीं मिलते

मैं जब पंद्रह साल का था तभी से ऐसा नहीं मानता था। मैं यह मान ही नहीं पाता था! किसी एक के यहाँ बहुत कुछ देकर जाते हैं और दूसरे को भटका देते हैं। क्या ऐसा होना चाहिए? वह कैसा भगवान? भगवान के पास तो चार आने भी नहीं हैं। भगवान किसी की मदद भी नहीं कर सकते। उनका नाम सुनते ही बाकी सारे दुःख भाग जाते हैं, सभी दुःख लुप्त हो जाते हैं लेकिन वे और कुछ भी नहीं दे सकते हैं।

भगवान ने तो उसमें हाथ ही नहीं डाला है। वे ऐसे हैं कि भौतिक दृष्टि में हाथ ही नहीं डालते और ऐसे भी नहीं हैं कि भौतिक करें। आपको भौतिक करवाना है, लेकिन वे तो ज्ञाता-दृष्टा व वीतराग हैं। वीतराग के पास कोई सामान होता है क्या? वे क्या दे देंगे? वे वीतराग हैं। उनके पास कुछ भी नहीं है, भौतिक वाले के लिए। वे तो क्या कहते हैं कि, 'अगर आपको शाश्वत सुख चाहिए तो मेरे पास आओ क्योंकि मैं सनातन सुख का भोगी हूँ'। तब मैंने उनसे कहा, 'भाई, इस सनातन सुख का भोगी, मैं *ऊपरीपन* स्वीकार नहीं करूँगा'। तो वे कहते हैं, 'आप

वीतराग बन जाओगे तो मैं और आप एक ही हैं। राग-द्वेष छूट जाएँगे तो मैं और आप एक ही हैं!'

अंदर वाले भगवान से ही कहता था, 'मुझे तारना'

'ऊपर कोई बाप भी नहीं है, ऐसा कोई बॉस भी नहीं है', ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था। हर एक मनुष्य के अंदर भगवान रहे हुए हैं, सिर्फ प्रकट करने हैं। वे प्रकट किस तरह से होंगे? जहाँ पर प्रकट हो चुके हैं, उनके पास जाएँगे तो प्रकट हो जाएँगे। और कोई रास्ता नहीं है।

अत: यही मार्ग अपनाया था कि, भाई अब हमें इस तरह से काम लेना है कि ऊपर भगवान नहीं हैं। भगवान अंदर हैं और पहले से ही अंदर वाले भगवान से बात करना शुरू कर दिया था कि 'आप मुझे तारना या बचाना'। जो कुछ भी कहता था वह उन्हीं से कहता था। ऊपर वाले को कहने जाएँ तो कोई बाप भी नहीं पूछता है, वहाँ तो। यों ही चला जाता है, बीच में ही।

जिसे अन्डरहैन्ड पसंद नहीं है, उसे ऊपरी नहीं मिलेगा

यह मेरी खुद की खोज है कि 'भगवान *ऊपरी* नहीं हैं। वे अन्डरहैन्ड भी नहीं हैं और *ऊपरी* भी नहीं'। तब उन्होंने मुझे उनकी खुद की दशा वाला बनाया कि *ऊपरी* भी नहीं और अन्डरहैन्ड भी नहीं। यानी कि मुझे अन्डरहैन्ड का भी शौक नहीं था और *ऊपरी* की भी मुझे ज़रूरत नहीं थी। जिसे अन्डरहैन्ड का शौक होता है, उसे *ऊपरी* मिले बगैर नहीं रहते और वह दोनों के बीच बफर बन जाता है, *ऊपरी* और अन्डरहैन्ड के बीच। बफर कुटता ही रहता है। लोग कहते हैं कि 'हमें *ऊपरी* पसंद नहीं हैं'। मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। जब आपको अन्डरहैन्ड अच्छे नहीं लगेंगे, तब अपने आप ही *ऊपरी* भी नहीं मिलेंगे'। वह उसका परिणाम है। जब आपको अन्डरहैन्ड पसंद नहीं होंगे, तब आपको *ऊपरी* भी प्राप्त नहीं होंगे। आपको ऐसी इच्छा नहीं करनी है कि मुझे *ऊपरी* न मिले। मुझे अन्डरहैन्ड पसंद नहीं हैं मैं किसी को अन्डरहैन्ड नहीं रखना चाहता तो फिर मुझे *ऊपरी* कैसे मिलेंगे?

गलत करने से रोकने के लिए भगवान का डर घुसाया

अभी इस वर्ल्ड में मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है। *ऊपरी* कैसे पुसाएगा भला? और आपको भी *ऊपरी* रहित बना देता हूँ। अभी अगर बाहर लोगों से पूछो न, तो 'गॉड इज़ क्रिएटर, इज़ करेक्ट' ऐसा कहेंगे, जबकि यहाँ पर तो कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है। तुझे यदि मुक्त होना है, इन्डिपेन्डेन्ट, तो कोई *ऊपरी* नहीं हैं और अगर तुझे डिपेन्डेन्ट अच्छे लगते हैं तो *ऊपरी* हैं। *ऊपरी* हों तो उसका मतलब ही क्या है? मीनिंगलेस बात है! इसलिए लौकिक बात अलग है और अलौकिक बात अलग है। यह तो किसलिए है? लोगों को डराने के लिए भगवान को *ऊपरी* बनाया है। वर्ना फिर लोगों के मन में क्या होगा कि 'लाओ कोई स्टोर वाला नहीं है तो आज ले लो न!' अत: यदि भगवान का ऐसा कोई डर रहे तो लोगों की वह आदत छूट जाती है। विचारक इंसान को भय की ज़रूरत नहीं है। आपके लिए किसी पुलिस की ज़रूरत नहीं है और न ही सेना की ज़रूरत है। पुलिस और सेना तो इन गुंडे लोगों के लिए है और उसके लिए आप पर टैक्स लगाया जाता है।

मैंने खोज की कि कोई *ऊपरी* नहीं है। यह वैज्ञानिक खोज है। मुझे ज्ञान हुआ था सूरत के स्टेशन पर, उसके बाद मेरे लिए जगत् में अन्य कोई भी चीज़ जानना बाकी नहीं बचा। आज भी अभी जहाँ भी देखो वहाँ भगवान को देख सकता हूँ। आपके भगवान को भी मैं देख सकता हूँ और परमात्मा को भी मैं देख सकता हूँ। आपमें भगवान परमात्मा के रूप में व्यक्त नहीं हुए हैं। भगवान के रूप में हैं और दूसरा, जो परमात्मा के रूप में हैं, उन्हें भी मैं देख सकता हूँ। अत: वर्ल्ड यों समझने जैसा है, गप्प नहीं है। यह विज्ञान से खड़ा हो गया। अत: आपको इन्डिपेन्डेन्सी ढूँढनी चाहिए।

भगवान नहीं लेकिन मेरी भूलें ही मेरी ऊपरी हैं

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने तेरह साल की उम्र में ललकारा था कि मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है, तो क्या तभी से आपने अपनी पिछली सारी गलतियों को खत्म कर दिया था।

दादाश्री : पूरी ज़िंदगी मैंने गलतियाँ ही खत्म की हैं। तेरह साल की उम्र के बाद मैंने कहा कि 'ये कौन है?' अगर *ऊपरी* नहीं है तो, लोगों को ऐसी दखल क्यों है? मुझे श्रद्धा है कि कोई *ऊपरी* नहीं है, तो फिर यह दखलंदाज़ी क्यों है? लोग इस तरह परेशान करते हैं, पुलिस वाले भी करते हैं, तो जवाब मिला कि, 'अपनी भूलें हैं, वही। भूलें खत्म हो जाएँगी तो कोई *ऊपरी* नहीं रहेगा'।

अभी अगर आप कोई गुनाह करो और फिर पुलिस वाले को डाँटकर आओ तो वह आपका *ऊपरी* बनेगा। फिर वह घर पर आएगा या नहीं, डंडा लेकर? और अगर हम गुनाह करने के बाद उससे माँफी माँग लें, छुटकारा कर आएँ तो क्या वह आएगा? तो ये गुनाह ही आपके *ऊपरी* हैं, अन्य कोई *ऊपरी* नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अपनी भूलें तो खत्म करनी ही पड़ेंगी न! अब मैं आपको सिखाता हूँ। अपनी भूलें खत्म कर दोगे तो आपका कोई *ऊपरी* नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : जब तक भूलें पूरी तरह से खत्म नहीं हो जातीं, तब तक दादा आपके *ऊपरी* हैं।

अत: मैं तेरह साल की उम्र से ही भगवान को अपने *ऊपरी* के तौर पर स्वीकार नहीं करता था। मेरी भूलें और ब्लंडर्स, बस इतना ही *ऊपरी* है, अन्य कोई *ऊपरी* नहीं है और आपके लिए भी वही *ऊपरी* हैं, अन्य कोई *ऊपरी* नहीं है।

आत्मयोग के अलावा सब योग विश्राम स्थल जैसे हैं

प्रश्नकर्ता : तो धर्म में जो इस प्रकार की प्रथाएँ चल रही थीं, लेकिन आप उनमें नहीं फँसे, क्या ऐसी कोई घटना हुई थी?

दादाश्री : एक महाराज मुझे योग सिखाने लगे। 'यहाँ (कपाल

में दो आँखों के बीच) देखते रहो, उन्होंने कहा। मैंने देखा, उसके बाद दूसरे दिन दु:खने लगा। मैंने कहा, 'यह रास्ता आप कहाँ से लाए?' किसने सिखाया है आपको? मुझे तो इस तरह देखने से दु:खता है अब आगे क्या होगा?' तब उन्होंने कहा, 'वह तो कुछ दिन बाद ठीक हो जाएगा'। मैंने कहा, 'सब से पहले जो दु:ख आता है न! वही दु:ख है'। क्रिया का स्वभाव ऐसा है कि बार-बार करने से वह सहज हो जाती है। क्या हो सकता है? कोई भी क्रिया नहीं करनी है। आत्मा में क्रिया नामक गुण है ही नहीं। वह स्वभाव ही नहीं है। वह खुद ही अक्रिय स्वभाव वाला है, और करना क्या है? तो यह जो मेटर (जड़) है, उसमें करने का गुण है। आप मेटर रूपी बनकर कर सकोगे। जो कोई भी क्रिया करते हो वह मेटर रूप से ही कर सकोगे। अत: ये सारे रास्ते उल्टे थे कि, ऐसा करो और ऐसा करो।

ये जो चक्र हैं, वे सब किसके लिए हैं? रास्ते चलते अगर थकान हो जाए तो विश्राम स्थल हैं। इससे थोड़ी देर के लिए आप आराम कर लेते हो। मोक्ष मार्ग में जाते-जाते थकान लगे तो विश्राम स्थल नहीं चाहिए? तो ये विश्राम स्थल हैं, उसके बजाय इसी को परमानेन्ट मार्ग बना दिया। योग ऐसा था ही नहीं। हिन्दुस्तान में कौन सा योग था? सिर्फ आत्म योग था। ये दूसरे सब योग, चक्र के योग तो विश्राम स्थल हैं।

बचपन में जब मैं अगास जाता था तब वहाँ पर कहते थे कि 'माला करो', तब मैंने कहा कि 'मैं माला करने नहीं आया हूँ। मैं तो श्रीमद्जी की (बातों का) अभ्यास करने आया हूँ'।

जो चिंता नहीं घटाए, वह लाइट किस काम की?

एक बार बचपन में, जब सत्रह-अठारह साल का था तब आँख दबाकर एक प्रयोग किया था। एक बार ज़रा हाथ से दबाकर आँख मसली थी। आँखों को बहुत मसलकर आँखें खोलने पर क्या दिखाई देता है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कोई स्पॉट जैसा दिखाई देता है।

दादाश्री : कैसा दिखाई देता है? लाइट!

प्रश्नकर्ता : हं... लाइट के धब्बे।

दादाश्री : अरे! मुझे तो पूरा लाइट का गोला ही दिखाई दे रहा था। एक बहुत बड़ा चमकारा (फ्लैश) हुआ और प्रकाश-प्रकाश हो गया! तो बाहर जो प्रकाश हुआ तो दस-दस मिनट तक अँधेरा नहीं हुआ।

प्रश्नकर्ता : दस मिनट तक अँधेरा नहीं हुआ? तो वह दस मिनट तक नहीं जाता!

दादाश्री : फिर मैं सोचने लगा कि क्या हुआ? फिर मुझे समझ में आया कि यह तो आँख की लाइट (देखने की शक्ति को नुकसान हो रहा है) चली गई। फिर दोबारा कभी भी हाथ नहीं लगाया। बंद ही कर दिया। इससे तो आँखों की रोशनी चली जाएगी। पूरा लाइट का गोला ही दिखाई दे रहा था। इस तरह हाथ छुआने का क्या मतलब है? मीनिंगलेस, यूज़लेस हैं सारी बातें। ऐसे प्रयोगों को बेचने जाएँ तो बाज़ार में चार आने भी नहीं देंगे इसके लिए। चिंता तो कम नहीं होती! ऐसा सब करने से सारी शक्ति हीन हो जाती है।

[10.9]

सही गुरु की पहचान थी शुरू से ही

कोई धर्म नहीं लेकिन वीतराग मार्ग अच्छा लगता था।

प्रश्नकर्ता : दादा आपको जैन संस्कार किस उम्र में मिले थे। बचपन से ही जैन संस्कार थे सारे?

दादाश्री : नहीं। बचपन में तो मुझे वैष्णव संस्कार मिले थे। ऋणानुबंध से हमारा जन्म वैष्णव माँ-बाप के यहाँ हुआ था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा ऐसा सुना है कि आप बचपन में *चोविहार* (सूर्यास्त से पहले भोजन करना) करते थे। प्रतिक्रमण करते थे।

दादाश्री : नहीं। वह सब तो बड़े होने के बाद लेकिन पहले कंठी बंधवाई थी। जैन धर्म तो चलता ही नहीं, मेल ही नहीं खाता था। वीतराग मार्ग पर गया था।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वीतराग मार्ग पर, ठीक है।

दादाश्री : कृष्ण भगवान को 'वीतराग' कहा, वह ठीक है। वीतरागों ने (तीर्थंकरों ने) 'वीतरागता' कहा, वह ठीक है लेकिन जैन धर्म, वैष्णव धर्म वह सब हमें ठीक नहीं लगता था।

जो मुझे कुछ सिखाएगा, वहाँ पर बंधवाऊँगा दोबारा कंठी

प्रश्नकर्ता : आपका जन्म वैष्णव कुल में हुआ था तो आपने किससे कंठी बंधवाई थी?

दादाश्री : हाँ! जब छोटा था तब बा कंठी बंधवाने ले गए थे।

कांकरोली वाले साधु की कंठी बंधवाई हुई थी। वह लगभग बारह-तेरह साल की उम्र में अपने आप टूट गई। सब ने कहा, 'फिर से कंठी बंधवाओ'। तब फिर बा ने कहा कि 'दोबारा कंठी बंधाए बिना नहीं चलेगा'।

मेरी मदर मुझे वैष्णव धर्म में डालने का प्रयत्न कर रही थीं इसलिए मदर ने कहा कि 'कांकरोली से साधु महाराज आए हैं, तो हम दोबारा कंठी बंधवा लें'। उन दिनों दोबारा कंठी बंधवाने के लिए ठंडे पानी का घड़ा भरकर ऊपर डालते थे और कान में फूँक मारते थे। क्या फूँक मारते थे? 'श्री कृष्ण शरणम् मम्'।

प्रश्नकर्ता : मंत्र देते थे।

दादाश्री : तो हमारी समझ में आता था कि 'श्री कृष्ण, हमारी शरण में आ' हमें ऐसा सुनाई देता था। क्या सुनाई देता था?

प्रश्नकर्ता : कृष्ण भगवान, आप हमारी शरण में आओ।

दादाश्री : इसलिए मैंने कहा, 'नहीं, मुझे ऐसा नहीं चलेगा। मुझे ऐसी कंठी नहीं पहननी है, बा। मुझे तो अगर कोई कुछ सही सिखाएगा तभी मुझे कंठी बाँधनी है'।

बहुत दिनों तक छला गया, अब नहीं पड़ना है कुँवे में

मैंने कहा, 'देखो यह कुँवा! मैं अपने बाप-दादा के कुँवे में नहीं गिरना चाहता'। अपने बाप-दादा इस कुँवे में गिरे होंगे। उन दिनों उसमें पानी होगा। पहले पानी था।

वल्लभाचार्य के समय में पंद्रह फुट पानी था। तब तक गिर सकते थे क्योंकि तैरना आता इसलिए जीवित रहता था लेकिन अभी तो वह पानी सूख चुका है। मैं वैष्णवों का कुँवा देखकर आया हूँ। मुझे तो इस कुँवे में देखने पर बड़े-बड़े पत्थर और साँप पड़े हुए दिखाई देते हैं, पानी नहीं दिखाई देता। मैं उसमें नहीं गिरूँगा, आप सब अपने बाप-दादा के कुँवे में गिरना। बाप-दादा जिस कुँवे में गिरे उसी कुँवे में हमें भी गिरना

है? क्या हमें लिखकर दिया गया है? अंदर पानी देखो, है या नहीं? तो गिरो, वर्ना यदि पानी नहीं है तो गिरकर अपना सिर फोड़ने का क्या मतलब है?'

प्रश्नकर्ता : और उस समय आपने मना कर दिया।

दादाश्री : हाँ, मैंने बा को मना कर दिया।

यह क्या तरीका है? बहुत दिनों तक छले गए। अब इस जन्म में नहीं छला जाऊँगा। ये कंठीबंधा (ऐसा व्यक्ति जिसने किसी प्रकार की बाँधी हो) नहीं हैं, मैं तो ऐसा हूँ कि तुझे भी बाँध दूँ।

ममता या स्वार्थ नहीं, इसीलिए नहीं सुना

मैं तो पहले से ही क्रांतिकारी था! मैं ऐसा इंसान नहीं हूँ कि किसी की कुछ सुनूँ! जिसे ममता हो वह सुनता है। जिसे ममता नहीं है उसे किसी की क्या सुननी? स्वार्थ वाले सुनते हैं, यदि उन्हें फायदा हो रहा हो, तो! मुझे बिल्कुल भी ममता नहीं थी, स्वार्थ भी नहीं था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वह कौन सा एटमॉस्फियर था कि उस ज़माने में आप बारह साल की उम्र में इतनी हिम्मत से मना कर सके?

दादाश्री : बहुत ही हिम्मत थी। इसीलिए मदर ने कहा कि तुझे 'नुगुरो' (बिना गुरु का) कहेंगे। तब मैंने कहा कि 'वह भला कौन सा जानवर आया वापस, नुगुरो? मुझे यह नुगुरा समझ में नहीं आया था और बा भी नहीं समझते होंगे, लेकिन लोगों ने उन्हें कहा होगा कि 'नुगुरा कहेंगे'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, न-गुरु।

दादाश्री : तब 'नुगुरा' शब्द था, इसीलिए मैं ऐसा समझा कि यह शब्द उन लोगों का कोई एडजस्टमेन्ट होगा, और 'नुगुरा' कहकर फज़ीता करते होंगे। नुगुरा कोई शब्द होगा गाली देने के लिए। इसलिए मैंने कहा कि, ''बहुत हुआ तो वे लोग मुझे 'नुगुरा' कहेंगे, मेरा फज़ीता करेंगे? भले ही मुझे नुगुरा कहें, जो कहना हो, वह कहें।''

बड़ा होने पर मैं नुगुरा शब्द को समझ गया कि नुगुरा शब्द से वे क्या कहना चाहते हैं! 'न गुरु' ऐसा पता नहीं था कि 'बिना गुरु का'।

बचपन में गुरु के बारे में यथार्थ समझ

उस घड़ी गुरु का अर्थ, मैं ऐसा समझता था कि प्रकाश दिखाने वाला। 'जो लोग मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं दें, जो मेरे लिए प्रकाश न धरें तो मुझे यों ही कोई ठंडा पानी छिड़ककर या ऊपर पानी का घड़ा उँडेलकर कोई कंठी नहीं बंधवानी। जिसके खुद के पास प्रकाश नहीं है, जिसके पास दूसरों के लिए प्रकाश धरने की शक्ति नहीं है, उससे मैं कंठी क्यों पहनूँ? कोई उपदेश नहीं देते और गुरु बन बैठे हैं! ऐसा गुरु मुझे नहीं चाहिए। जैसे गुरु आपने बनाए हैं, वैसे गुरु मुझे नहीं बनाने हैं। जाओ, तुम्हारा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। वह हमें नहीं पुसाएगा, उसके बजाय यों ही चलने दो।'

'मुझे जब ऐसा लगेगा कि इन्हें गुरु बनाने जैसा है तब मैं ठंडा पानी तो क्या, अगर वे हाथ काट लेंगे तो हाथ भी कटवा दूँगा। अनंत जन्मों से हाथ थे ही न, कहाँ नहीं थे? और कोई लुटेरा खड्ग से हाथ काट दे तो कट ही जाने देते हैं न? तो यहाँ पर यदि गुरु हाथ काट दें, तब क्या नहीं कटने देंगे? लेकिन गुरु बेचारे काटते ही नहीं हैं न! लेकिन अगर कभी वे काटने का कहें तब फिर क्या ऐसा नहीं करने का कोई कारण है?

मेरे लिए तो, जो मुझे उपदेश दें, किसी भी प्रकार से जागृत करें, हेल्प करें, प्रकाश दें, वही मेरे गुरु। मुझे उनसे और कुछ नहीं चाहिए था, सिर्फ मुझे प्रकाश दिखाएँ। मुझे रास्ता दिखाएँ, जो मुझे नहीं दिखाई देता, उसे जो दिखा दें, वही मेरे गुरु। मेरे मन में ज़रा अंदर शांति लाएँ, वही मेरे गुरु।

मुझे वास्तविक ब्रह्मसंबंध चाहिए, भ्रांति वाला नहीं

मैं तो गुरु से कहता था कि, 'आप ऐसा जो ब्रह्मसंबंध करवाते हैं, वह मुझे पसंद नहीं है'। ब्रह्मसंबंध तो आत्मा की लगनी लगने के

बाद में, वह लगनी छूटेगी नहीं, उसे ब्रह्मसंबंध कहते हैं। उस संबंध की लगनी लग जाए, उसके बाद फिर ब्रह्मसंबंध नहीं छूटेगा। यह तो (नाम का ही) भ्रांति का ब्रह्मसंबंध है! मुझे तो वास्तविक ब्रह्मसंबंध, जब किसी और दूसरे के साथ संबंध न बढ़ाना पड़े ऐसा संबंध बनाना है। यह ऐसा शाब्दिक ब्रह्मसंबंध मुझे नहीं चाहिए।

वल्लभाचार्य, शंकराचार्य, सहजानंद स्वामी वगैरह आदि पुरुष बहुत उच्च प्रकार के थे, लेकिन फिर समय के साथ यह सबकुछ बदलने लगा। फिर भी हमें ऐसे शब्द नहीं बोलने चाहिए। हम ज्ञानी पुरुष हैं, हम ज़िम्मेदार कहे जाते हैं लेकिन जब ओपन बात जाननी हो तब सिर्फ जानकारी के लिए ही बताते हैं, और वह भी वीतरागता से कहते हैं। हमें किसी भी जगह पर ज़रा सा भी राग-द्वेष नहीं है। हम जब अच्छा बोलते हैं तब हम में राग उत्पन्न नहीं होता और अगर खराब बोलते हैं तब द्वेष उत्पन्न नहीं होता। हम ऐसे शब्द बोलते हैं फिर भी राग-द्वेष नहीं होते।

परिणाम को पकड़ने वाला 'वैज्ञानिक ब्रेन', बचपन से ही

प्रश्नकर्ता : सच्चे गुरु के बारे में आपकी इतनी उच्च समझ का क्या कारण है?

दादाश्री : वैज्ञानिक ब्रेन (दिमाग़) था शुरू से ही, बचपन से ही वैज्ञानिक ब्रेन! परिणाम को पकड़ने वाला! कैसा ब्रेन?

प्रश्नकर्ता : परिणाम को पकड़ने वाला।

दादाश्री : हर एक चीज़ प्राप्त हो उससे पहले परिणाम को पकड़ लेते थे। अतः यह परिणाम को पकड़ने वाला ब्रेन, काम आया इसमें।

मैं छब्बीस-सत्ताईस साल का था तब कृपालुदेव की किताबें पढ़ता था। फिर वहाँ पर जो महाराज आते थे, स्थानकवासी आते थे तो वहाँ पर जाता था और देरावासी आते थे तो वहाँ पर जाता था। एक बार एक स्थानकवासी महाराज आए थे। उन्होंने मुझसे कुछ बातें सुनीं। तब मुझसे कहा कि 'आप वैज्ञानिक इंसान हो, आपका यह दिमाग़ वैज्ञानिक है। कभी न कभी, भगवान महावीर की बात आपको बहुत अच्छी तरह से

समझ में आएगी'। उनके कहने से पहले तो मैं कुछ नई ही बात कह देता था। वैज्ञानिक दिमाग़! वही एक महाराज थे जो मुझे पहचान गए थे।

वे महाराज कुछ कह रहे होते और वही बात मैं कह देता था। उन्होंने कहा, 'ऐसा किसी को नहीं आता'। तब मैंने कहा, 'ये महाराज सही कह रहे हैं'। उन्हें समझ में आ गया था कि यह सभी बातें बहुत ही उच्च प्रकार की करता है।

मेरा वैज्ञानिक स्वभाव था, शुरू से ही। जितना (शास्त्र) पढ़ा उस पर से मैं विज्ञान बताता था। विज्ञान अर्थात् कि यह मेरे पाताल का पानी है। इसमें से (शास्त्र में से) लिया, लेकिन पानी निकलता था पाताल में से।

वैज्ञानिक अर्थात् खुद का ही सबकुछ (सिद्धांत) बनाना। सामने वाला बात करे उससे पहले ही आगे का सबकुछ देख लेना, सामने वाले को रास्ते पर ला देना।

मुझे बचपन से ही आदत थी कि जब कोई ज्ञान की बातें करता तब मैं उसे विज्ञान की तरफ ले जाता था। वैज्ञानिक स्वभाव तो मेरा बचपन से ही था। वैज्ञानिक अर्थात् मूल शब्द मिलने के बाद मैं न जाने कहाँ तक पहुँच जाता था! बात ज्ञान की चल रही होती थी, तो मैं उसमें से न जाने कुछ अलग ही खोज कर देता था! लोग विज्ञान की बात सुनते हैं तो उसे ज्ञान में ले जाते हैं और मैं ज्ञान की बात को विज्ञान में ले जाता था। विज्ञान यानी कि ऐसी-ऐसी बातें जो शास्त्रों में नहीं मिलती थीं लेकिन उसकी सभी प्रकार से स्पष्टता हो जाती थी।

परिणाम ही दिखाई देते थे, इसलिए कहीं भी चिपका नहीं

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा है न, कि आपका ब्रेन परिणाम को पकड़ लेता था, उसके बारे में ज़रा ज़्यादा बताइए?

दादाश्री : मेरा बिलोना परिणामवादी था। आज बिलोना बिलोया उसमें क्या आया? इस तरह से देखने की आदत थी। बिलोता ज़रूर था

लेकिन अगर देखने के बाद कोई मक्खन नहीं मिलता था तो मैं छोड़ देता था। मैं बिलोता ज़रूर था लेकिन मेरा यह परिणामवादी था। यह देख लेता था कि परिणाम स्वरूप मुझे क्या प्राप्त हुआ। तो मैं भी बिलोता था, लेकिन बिलोने पर ही मुझे यह सब मिला। बिलोते-बिलोते मिला है न! लेकिन वह परिणामवादी था। बिलोने के परिणाम स्वरूप क्या आया? पूरी रात बिलोया और मिला क्या? तो कहते हैं कुछ भी नहीं। झाग दिखाई दे रहे थे, बस इतना ही। झाग तो बैठ जाता है। यानी कि जब मक्खन नहीं निकलता था तो मैं छोड़ देता था।

बचपन से ही मेरा एक स्वभाव था कि कोई भी कार्य करता था तो पहले मैं उसका परिणाम देखे बगैर नहीं रहता था। सब बच्चे चोरी करते थे तो मेरा मन ललचाता ज़रूर था कि, ऐसा भी करना चाहिए, लेकिन तुरंत ही मुझे परिणाम स्वरूप भय ही दिखाई देता था। शुरू से ही परिणाम दिखाई देते थे इसलिए कहीं भी चिपकने नहीं दिया। मुझे साथ में यह रहता ही था कि इसका परिणाम क्या आएगा, हर बात में।

लोगों के माने हुए सुख में नहीं देखा सुख

प्रश्नकर्ता : भगवान के बारे में, गुरु के बारे में आपके विचार आश्चर्यजनक हैं और हम तो भेड़चाल की तरह जो पुराना चलता आया है, उसी में चलते जाते हैं, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : आप लोग तो सीखकर करते हो, और मैं लोगों से नहीं सीखा। मैं शुरू से ही लोक संज्ञा के विरुद्ध चलने वाला इंसान हूँ। लोग जिस पर चलते हैं न, वह रास्ता इस तरह से गोल-गोल और उलझाने वाला है, वे लोग सड़क से होकर घूम-घूमकर जाते हैं। तब मैंने हिसाब निकाला कि गोल घूमने से तो तीन मील होंगे, इस तरह से सीधा एक मील है तो मैं सीधे ही जाऊँ इस तरफ से। उस रास्ते को ढूँढकर मैं सीधा चला जाता था। इस प्रकार मैं लोक विरुद्ध चला था। इनके कहे अनुसार कभी चलना चाहिए? नाम मात्र को भी लोकसंज्ञा नहीं। लोगों ने जिसमें सुख माना था, मुझे उसमें सुख दिखाई ही नहीं दिया।

मैं शॉर्ट कट ढूँढ निकालता था। लोग तो, अगर आगे चार भेड़ चल रहीं हो तो उसके पीछे पूरी टोली चलने लगती है! रास्ता कितना टेढ़ा है, वैसा देखते करते नहीं हैं। यह तो सरकार ने नियम बनाए हैं, इसलिए सीधे रास्ते बनवाए हैं। पढ़े-लिखे लोगों ने सीधे रास्ते बनवाए हैं, वर्ना पहले तो एक मील जाने के लिए तीन मील उल्टे रास्ते पर जाना पड़ता था, सभी रास्ते ऐसे थे।

जो किसी की नकल नहीं करे, उसे कहते हैं अक्ल

अक्ल तो किसे कहते हैं कि जिसने कभी भी नकल नहीं की हो। नकल कर-करके अक्ल वाले बने हैं, उससे क्या भला होगा? जो किसी की भी नकल नहीं करें, उसे कहते हैं अक्ल। यह सारा तो नकल कर-करके सीखे हैं!

प्रश्नकर्ता : यदि किसी की भी नकल नहीं की हो, तो वे तो ज्ञानी ही कहलाएँगे न?

दादाश्री : नहीं, वह स्थिति कुछ अच्छी कहलाएगी। मैंने कभी भी नकल नहीं की थी, बचपन से ही नहीं की। आप अगर कुछ कर रहे हों और उसमें अगर मुझे कुछ उल्टा दिखाई देता था तो मैं वह नहीं करता था, मैं अपना कुछ अलग करता था।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसी स्वतंत्रता होगी तभी ऐसी स्थिति आएगी न?

दादाश्री : हाँ। वह चाहे कुछ भी हो, अंदर ऐसा कुछ अलग करते थे, भेदांकन किए बिना नहीं रहते थे। अंदर ऐसा टेढ़ा गुण था कि यहाँ से यह रास्ता इस तरह ले जाएगा और इधर घूम जाएगा। अब मेरी आदत ऐसी थी, इसलिए लोगों के खेतों में से होकर मैं सीधा जाता था लेकिन घूमकर जाने की आदत नहीं थी।

अंदर वाले भगवान को डाँटता था कि 'रास्ता बता'

अपने सिद्धांत द्वारा बैक (वापस) जाओ। मेरा रास्ता यही था कि

दुनिया जिस रास्ते पर जा रही है उस रास्ते पर नहीं जाना है। मैं बचपन में, भादरण से बोरसद चलकर जाता था, तब लोग उलझन भरा रास्ता पकड़ते थे, और सिर्फ मैं अकेला ही सीधा और चौड़ा रास्ता पकड़ता था।

अगर रास्ता नहीं मिलता था तब अंदर वाले से कह सकते हैं कि 'मैं तो अंधा हूँ इसलिए तुझे नहीं पहचान पाता लेकिन क्या तू भी अंधा है? मुझे कोई सही रास्ता बता' इस तरह से भगवान को डाँटना पड़ता है। अरे भई! तुझे अगर कुछ भी समझ में न आए तो 'अंदर वाला' है, ऐसा कर-करके करेगा तब भी तेरे अंदर के वे आवरण टूटेंगे, आगे का रास्ता दिखेगा लेकिन अगर बाहर भगवान को ढूँढेगा तो उससे तेरा कुछ भी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : जब तक ज्ञान नहीं हो जाए तब तक पता नहीं चलेगा।

दादाश्री : हाँ, लेकिन अगर अंदर वाले का ज्ञान नहीं हुआ हो तब भी महादेव जी का कोई ज्ञान हुआ है हमें? लेकिन लोगों को यह बुरी आदत पड़ गई है कि जो सब लोग कर रहे हैं, वही हमें भी करना है। लेकिन भाई, क्या कोई अलग रास्ता है ही नहीं?

टेढ़े-मेढ़े रास्ते के बजाय अच्छा लगता था सीधा रास्ता

मैं बचपन से ही जब नौ साल का था तभी से मैंने नियम बनाया था कि लोग जिस रास्ते पर चलते हैं उस रास्ते पर, अगर वह रास्ता सीधा है तो चलना है और अगर रास्ता बहुत टेढ़ा हो तो बीच में नया रास्ता बनाना चाहिए। सभी घूमने जाते थे, तब जब मोड़ आता था तब मैं खेत में से चला जाता था। जहाँ से सब लोग जाते थे, वहाँ से नहीं जाता था। सभी कहते थे कि, 'आप टेढ़े हो'। तब मैं कहता था कि, 'मैं तो पहले से ही टेढ़ा हूँ'। उस रास्ते का क्या करना है। लोग तो, अगर टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता बना हो तो टेढ़े चलते हैं, एक मील जाना हो तो तीन मील घूमकर पहुँचते हैं। मैं समझ जाता था कि यह टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता बनाया है। लोग उसी रास्ते पर चलते रहते हैं। हमें नया, सीधा रास्ता बना देना है।

इस तरह लोगों की सभी बातें उल्टी होती थीं, उनमें सीधी बात क्या है वह पहचानना तो पड़ेगा न?

बचपन से मुझे अलग मार्ग मिल गया था, शुरू से ही। बचपन से ही मार्ग बदलता था, मैं लोगों के आधार पर नहीं चलता था। जहाँ कोई टोली जा रही होती थी न, तो मैं उस टोली में नहीं चलता था। मैं देखकर जाँच करता था कि यह टोली किस तरफ ले जा रही है? यह रास्ता भला इस तरह घूमकर और वापस उस तरह जा रहा है। अब उस पूरे रास्ते का हिसाब लगाया जाए तो एक के बजाय तीन गुना होता था, तो यह आधा सर्किल डेढ़ गुना होता है। तो डेढ़ गुना रास्ते पर जाकर मार खाए या सीधे? तो मैं सीधा चलता था, लोगों के रास्ते पर नहीं चला, शुरू से ही। लोगों के रास्ते पर कोई काम नहीं। मेरा काम लोगों से कुछ अलग था, तरीका भी अलग था, रस्म भी अलग थी, सभी कुछ अलग। मेरी शुरू से ऐसी ही आदत थी। मुझे लोग क्या कहते थे, मैं बताऊँ?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : कहते थे, 'सीधा जा रहा है?' मैं कहता था, 'हाँ'। तब वे कहते थे, 'तू हमसे पहले कैसे पहुँच गया? सीधे चलकर आया?' मैंने कहा, 'हाँ, 'सीधे चलकर आया हूँ तो क्या आपकी टोली की तरह मंजीरा बजाकर आपके साथ घूमूँ? मैं अपने तरीके से दूसरा रास्ता ढूँढ लूँगा। मुझे यह सब नहीं चलेगा।

खुद के माने हुए रास्ते पर चलकर अंत में ढूँढ निकाला

कुदरत का नियम क्या है? पड़ोस में अगर कोई न हो और अकेला ही हो, तो उसे कुछ सुझाने वाला अंदर है लेकिन यदि दूसरे चार लोग हों तो कौन सुझाएगा? अकेला हो तो सूझ पड़ेगी। अत: इस जगत् में इसी बात की झंझट है कि अकेला नहीं है! जबकि मैं अकेला घूमा हूँ क्योंकि बचपन से ही मेरा स्वभाव ऐसा था कि आम रास्ते पर नहीं चलना है, खुद के बनाए हुए रास्ते पर चलना है। कितनी ही बार उससे मार भी बहुत पड़ी, काँटे भी खाए हैं लेकिन अंत में यह तय था कि इसी

रास्ते जाना है, तो इस रास्ते पर हमें रास आ गया। कई जन्मों तक मार पड़ी होगी, लेकिन अंत में यह ढूँढ निकाला, वह बात पक्की है।

अंत में अक्रम विज्ञान मिल गया बहुत ही अच्छा! बचपन से ही हम में यह विज्ञान घुस गया था इसीलिए आराम और शांति से ही रहे। दूसरी बाह्य बातें नहीं आती थीं।

[10.10]

ज्ञानी के लक्षण, बचपन से ही

जल्दबाज़ और शरारती स्वभाव

यह 'निमित्त को बचका' मुझे यह शब्द क्यों आ गया? इसका कारण क्या है? मैं जब छोटा था, आठ नौ साल का, तब निमित्त को काटने का मतलब समझ गया था। मैं बचपन से ही ज़रा शरारती स्वभाव वाला था। जल्दबाज़ और पावरफुल मिज़ाज, तो मुझे छेड़खानी करने की आदत थी।

तब हमारे मुहल्ले में एक सेठ रहते थे। एक बार मेरे पिता जी ने चिट्ठी लिखी और कहा कि 'यह लल्लू सेठ को देकर आ जा। तुझे इतना काम करना है। यह चिट्ठी देकर आ और फिर वे जो भी जवाब दें, वह कागज़ पर लिखवाकर लाना या फिर वे जो कुछ भी कहें वह जवाब लेकर आना'।

मुझे तो खेलने जाना था और फादर ने मुझे यह काम बता दिया तो मना तो नहीं कर सकता था न! फादर तो सभी के होते हैं न, या सिर्फ मेरे अकेले के थे? नए-नए हों तो समझो कि ठीक है, पूजा करें लेकिन सभी को फादर का कहा हुआ करना ही पड़ता है न! इसलिए फिर मैं वह चिट्ठी लेकर गया।

चित्त कुत्ते को खिलाने में था, मेरी बात कहाँ से सुनते?

उन सेठ ने हमारे मुहल्ले के ही एक पिल्ले को पाल रखा था। उसे ज़रा दूध पिलाते थे, कुछ खिलाते थे और खेलते रहते थे पूरे दिन। उनके बच्चे वगैरह नहीं थे। तो इस तरह कुर्सी पर बैठे-बैठे पिल्ले के

साथ यों खेलते रहते थे। मैंने उन्हें जो चिट्ठी दी वह चिट्ठी उन्होंने हाथ में पकड़ी। पढ़ा-करा नहीं। मुझे तो जल्दी से वापस लौटने को कहा गया था, 'चिट्ठी देने पर वे क्या कहते हैं, बताना'। मैं तो उन्हें कहने गया। बच्चा था इसलिए खेलने में ही चित्त रहता था। सेठ ने तो वहाँ पर बैठाए रखा, मैं कब तक बैठा रहता? और वे उस कुत्ते के साथ खेल रहे थे लेकिन मेरी बात ठीक से सुनी नहीं और 'हाँ, हो रहा है' कहा, जवाब ही नहीं दिया।

तब मुझे गुस्सा आ गया। मुझे तो खेलने जाने की जल्दी थी। मैंने कहा, 'मेरी बात सुनिए, इतने बड़े होकर कुत्ते के साथ क्या खेल रहे हैं?' इस कुत्ते के शौक में पड़ा इंसान, इंसानों का शौक नहीं है और कुत्ते का शौक है, इसका कब अंत आएगा?

मुझे तो अंदर एकदम जल्दी हो रही थी और वे न तो कुछ कह रहे थे, न ही कर रहे थे! मैंने सोचा, 'इनका चित्त इस कुत्ते में है। इनके चित्त का ठिकाना नहीं है। मुझे काम है और ये कर नहीं रहे हैं और कुत्ते से दोस्ती कर रहे हैं'।

क्षत्रिय पुत्र और दिमाग़ तूफानी, तो मैं सेठ की भी नहीं सुनता था

मुझे लगा कि यह किस तरह का इंसान है! मैंने कहा, 'जवाब तो दे दीजिए, मुझे जाना है'। तब फिर मैंने कहा, 'सेठ जी क्या कहते हैं?' तब उन्होंने कहा, 'मैं तुझे बताता हूँ, बैठ न'। फिर मेरी चिट्ठी की तो बात न जाने कहाँ गई और कुत्ते के साथ खेलने लगे। मेरा दिमाग़ घूम गया। या तो 'ना' कह दो या 'हाँ'। 'ना' कहेंगे तो उठकर चलता बनूँ। लेकिन न तो वे 'ना' कह रहे थे, न ही 'हाँ' कह रहे थे। उन दिनों ज्ञान नहीं था इसलिए मन में तो ऐसा ही होता न, कि पत्थर मारूँ। होता या नहीं होता? मैं तो जल्दबाज़ी में था और दिमाग़ तूफानी। मैंने कहा, 'ये मुझे कब तक बैठाए रखेंगे?' इसलिए मैंने कहा, 'सेठ, यह चिट्ठी पढ़कर...' तो कहने लगे, 'बैठ न, अभी हो जाएगा। जल्दी क्या है?' मेरे कहने पर वे इमोशनल नहीं हुए। तब मैं समझ गया कि यह बनिया

जवाब नहीं देगा। मैं तो छोटा था लेकिन बड़े बनिए की भी नहीं सुनता था। मैंने समझा कि यह बनिया यों सीधी तरह से नहीं उठेगा। इस कुत्ते को बहुत ही प्यार कर रहा है न, तो उसे ज़रा प्यार दिखाने दो। तब मैंने जाना कि पाँच-दस मिनट हो गए, अभी तक भी कोई असर नहीं हो रहा है इस पर। मैं जो कह रहा हूँ, उसका कोई असर नहीं हो रहा है। यह मुझे नहीं पुसाएगा। मैं तो पटेल न, हम क्षत्रिय पुत्र कहलाते हैं। हम तो ऐसे लोग जो तलवार से मारें, और मुझे यों ही बैठाए रखा है। फिर तो मुझसे सहन नहीं हो पाता न! हमारा तो खून उबलने लगा। उस समय मुझे एक बुरी आदत ऐसी थी कि मेरी बुद्धि अंतरायी हुई थी न, तो मुझे शरारत करने की बहुत आदत थी।

गुनहगार को जाने बिना निमित्त को काटते हैं

वे उस कुत्ते के साथ खेल रहे थे। तब मैंने क्या किया? 'क्यों सेठ ज़मीन पर बैठे हैं?' तब कहा, 'ज़मीन पर बैठा हूँ'। मैंने कहा, 'अच्छा' मैं ज़्यादा एलर्ट था इसलिए फिर मैंने रास्ता ढूँढ निकाला। वे कुत्ते के साथ खेल रहे थे और यहाँ पर उसका मुँह था और उसके माथे पर हाथ फेर रहे थे, और उसकी पूँछ उस तरफ थी जहाँ मैं बैठा था। मैंने अच्छी तरह से उसकी पूँछ दबाई, और ऐसी मरोड़ी, ऐसी मरोड़ी कि वह कुत्ता चीख पड़ा। वह चीख तो पड़ा लेकिन कुत्ते का स्वभाव कैसा होता है कि जो उसके (मुँह के) सामने होता है उसी को काट लेता है। कुत्ते का मुँह सेठ के पैर के पास था तो उसने सेठ को काट लिया। सेठ ने समझा कि, यह कुत्ता खराब है, आज बिगड़ गया है, तो उन्होंने कुत्ते को पीट दिया। मैंने कहा, 'मारो मत, मारो मत'। तब कहने लगा, 'क्यों? मेरा कुत्ता मुझे कभी नहीं काटता, आज क्यों किया? मेरा कुत्ता मुझे ही काट रहा है?' तब मेरे मन में ऐसा हुआ कि 'मेरी वजह से बेचारे कुत्ते को मार खानी पड़ी'। मैंने सेठ से कहा, 'इस कुत्ते ने जो किया आप भी वापस वैसा ही कर रहे हैं? जिसका गुनाह है उसे नहीं मारते और कुत्ते को मार रहे हैं! इस निमित्त को क्यों काट रहे हैं? कौन गुनहगार है, वह ढूँढ निकालो'। तब उन्होंने कहा, 'कुत्ते ने मुझे काट लिया। मुझे काटा है इसने! यह तो अच्छा हुआ कि दाँत नहीं गड़ाए हैं

और उसे इतनी अच्छी तरह से मारा तो वह भाग गया, नहीं तो दाँत घुसा देता'। मैंने कहा, 'कुत्ते का दोष नहीं है'।

अगर निमित्त को काटें तो कुत्ते और इंसान में क्या फर्क है

आपका कुत्ता आपको कैसे काट सकता है? वह कभी भी नहीं काटता और आज काटा है तो! इसके लिए गुनहगार कोई और है। मैंने कहा, 'मारना नहीं। कुत्ते ने आपको काटा उसके लिए गुनहगार कौन है? मैं। और मार रहे हो कुत्ते को। यह उसने नहीं किया है। मैंने पूँछ दबाई थी', तो कहने लगे, 'अरे, तूने पूँछ दबाई थी! ऐसा क्यों किया?' मैंने कहा, 'आपने ऐसा किया'। फिर सेठ कहने लगे, 'मैं तुझे जवाब दूँगा'। मुझे दो-तीन गलियाँ दीं। लेकिन मैंने हिसाब लगा लिया कि कुत्ता निमित्त को काटता है। कुत्ते ने पता नहीं लगाया कि, 'मेरी पूँछ किसने दबाई है!' उसे पता नहीं होता कि, 'यह दबाने वाला कौन है और किसे काट रहा हूँ!' कुत्ता यह नहीं समझ सकता कि गुनहगार कौन है। गुनहगार मैं था, लेकिन मुझे पहचान नहीं पाया इसलिए कुत्ते ने निमित्त को काट खाया। तब मैंने कहा, 'आप भी निमित्त को काटते हैं। कुत्ते ने जो भूल की, आप भी वैसी ही भूल कर रहे हैं? हमें क्या यह पता नहीं होना चाहिए कि हमारा कुत्ता ऐसा नहीं है जो काट ले? कुछ न कुछ कारण रहा होगा, पता तो लगाना चाहिए न!' इस प्रकार से पूरा संसार निमित्त को ही काट रहा है।

तभी से में समझ गया कि कुत्ते निमित्त को काटते हैं, हमें नहीं काटना चाहिए। अब वह तो कुत्ता है इसीलिए उसे पता नहीं है कि किसने उसकी पूँछ दबाई और वह किसे काट रहा है! वह कुत्ता तो निमित्त है, जबकि छेड़ा तो मैंने था। फिर वे पिल्ले को मारते रहे। ऐसे हैं ये लोग। गुनाह कौन करता है और किसे मारते हैं। निमित्त को काटते हैं।

इसी तरह से यह पूरा संसार निमित्त को ही काटकर दु:खी हो रहा है। निमित्त को या तो कुत्ता या फिर साँप काटते हैं। साँप के सामने हम लकड़ी रखें तो वह लकड़ी को काट खाता है क्योंकि वह साँप है।

कुत्ते को हम छेड़ें तो कुत्ता भी लकड़ी को काटने जाता है। कुत्ते को यह पता नहीं चलता कि इसमें गुनहगार कौन है! जो रोज़ खाना खिलाता है उसे काट लिया। वह नहीं जानता था कि पूँछ किसने दबाई। कुत्ता निमित्त को काटे, वह समझ में आता है लेकिन यदि इंसान निमित्त को काटे तो कुत्ते में और उसमें क्या फर्क रहा। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी फर्क नहीं है, दोनों में।

दादाश्री : हाँ। इस उदाहरण से कोई मदद मिलेगी? मैं जो बात कर रहा हूँ, उससे?

यह बहुत गहन साइन्स है! मैं जो कह रहा हूँ वह बहुत सूक्ष्म साइन्स है। पूरा जगत् निमित्त को ही काटता है।

जो निमित्त को न काटे, वह भगवान बनता है

यह संसार निमित्त ही है, लेकिन लोगों को निमित्त को काटने की आदत पड़ गई है। तभी से पता चल गया कि कुत्ता वफादार नहीं है। यदि वफादार होता तो क्या वह काटता? जिसने दबाया उसे काटता, सेठ को नहीं काटता। सिर्फ बाघ की दृष्टि ही ऐसी होती है कि वह मारने वाले की तरफ ही जाता है। जहाँ से गोली आई, निशाना वहीं पर जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा?

दादाश्री : हाँ, हमारे साथ ऐसा हुआ था न! बाघ को पकड़कर एक कम्पाउन्ड में लाया गया था। कम्पाउन्ड में नीचे चारों तरफ बाड़ रखी थी। फिर कम्पाउन्ड में उसे खुला छोड़ दिया, शौक के लिए, चौथी मंज़िल के झरोखे से उसे गोली मारी। गोली आई लेकिन उसे छूकर निकल गई, बाघ को नहीं लगी। उसने देखा कि यह कहाँ से आई? तो उसने पहली मंज़िल पर छलाँग लगाई, दूसरी पर छलाँग लगाई, तीसरी पर छलाँग लगाई लेकिन आखिर तक नहीं पहुँच पाया। वह कितना जाँबाज़ कहा जाएगा, इस तरह खड़ी (वर्टिकल) छलाँग लगाना! पहले एक छलाँग लगाई पहली मंज़िल पर, खड़ी छलाँग लगानी थी न, लेकिन

वह नहीं पहुँच पाया, लेकिन यदि उसका चलता तो पहुँच जाता न! वह निमित्त को इस तरह से नहीं काटता है। तो सभी जानवर ऐसे नहीं होते, कुछ ही ऐसे होते हैं। जो निमित्त को नहीं काटता, वह भगवान बनता है। अपने पास यह करेक्ट थर्मामीटर है न? थर्मामीटर है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : थर्मामीटर हैं, हाँ।

पता चला - 'भुगते उसी की भूल'

प्रश्नकर्ता : आप हमें जो ज्ञान की चाबियाँ देते हैं, उनका आपको बचपन में कोई अनुभव हुआ था?

दादाश्री : बचपन में कोई हमारा तौलिया लेकर चला जाता और आराम से उसका उपयोग करता। उस तौलिए का मालिक मैं, तो मैं चिढ़ जाता था। क्या है कि दूसरे बच्चों को चिढ़ते हुए देखकर मैं सीख गया था। बाद में फिर समझ में आया कि, 'चिढ़ने का यह व्यापार गलत है। मैं यहाँ पर भुगत रहा हूँ जबकि वह तो आराम से तौलिया काम में ले रहा है!' तो फिर ऐसा व्यापार ही बंद कर दिया। यह तो भुगते उसी की भूल है न!

दुःख होने पर हिसाब निकाल लिया कि, 'हुआ वही न्याय'

मैं छोटा था तब, अपने पिता जी से मैंने चार आने माँगे। वे दे नहीं रहे थे। तब मेरी बा ने सिफारिश की कि, 'क्यों बच्चे को रुला रहे हो? दे दो न उसे'। तब मैंने कहा, 'बा, मुझे आपकी सिफारिश नहीं चाहिए। मैं अपनी तरह से कर लूँगा'।

यानी कि तब बचपन में मुझे बिना लकड़ी के जलन (दुःख) हुई थी। लेकिन हिसाब निकाला कि पूरी रात सुबकियाँ लेकर रोते रहें तो वह अनर्थ दंड है। बापू जी के पास पैसे नहीं होंगे तो मुझे नहीं दिए। उन्हें न्याय लगता है इसलिए वे सो जाते हैं और अगर मैं जागकर पूरी रात बिगाड़ूँ तो उसका क्या मतलब है।

मैं बचपन से ही न्याय ढूँढने जाता था, तो सब तरफ से मुझे मार

पड़ी थी। न्याय नहीं मिले, तब कि तब पता चलता है 'इसके साथ मेरे कर्म के उदय कितने खराब हैं'।

लोग कहते हैं कि यह न्याय है, लेकिन ऐसा होता नहीं है न! जो भी होता है वह अपने कर्म के उदय के अनुसार है।

व्यवस्थित ढूँढ लिया बचपन में

हम बचपन में पेन से खेलते थे। पेन के छोटे टुकड़े डिब्बी में डालते थे। सभी लोग निशाना लगा-लगाकर फैंकते थे तो सात में से तीन-चार डिब्बी में गिरकर बाहर निकल जाते थे और मैं यों ही बिना निशाना लगाए फेंकता था तो चार-पाँच (स्लेट पेन्सिल) डिब्बी में गिरती थीं। तब मैं सोचता था कि, 'यदि हम कर्ता होते तो मेरी एक भी पेन्सिल डिब्बी में नहीं जाती। क्योंकि मुझे तो आता ही नहीं था न और वे लोग निशाना लगा-लगाकर डालते हैं फिर भी नहीं गिरती थीं'। ऐसा है यह व्यवस्थित!

दिल के सच्चे थे न इसीलिए सच्चा मिल गया

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपको अक्रम विज्ञान किस तरह से प्रकट हुआ? यों ही सहज अपने आप ही मिल गया या कोई चिंतन किया था?

दादाश्री : अपने आप ही, 'बट नैचुरल' हो गया! हमने ऐसा कोई चिंतन वगैरह नहीं किया। हमें ऐसा सब होता कहाँ से? हम तो ऐसा मानते थे कि, 'लगता है इस तरफ का कोई फल मिलेगा'। सच्चे दिल के थे न, सच्चे दिल से किया था, इसलिए ऐसा लगा था कि ऐसा कोई फल मिलेगा, कुछ समकित जैसा होगा। समकित का कुछ आभास होगा, उसका प्रकाश होगा। उसके बजाय यह तो पूरा ही प्रकाश हो गया!

प्रात: विधि

श्री सीमंधर स्वामी को नमस्कार करता हूँ। (५)

❖ वात्सल्यमूर्ति 'दादा भगवान' को नमस्कार करता हूँ। (५)

❖ प्राप्त मन-वचन-काया से इस संसार के किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दु:ख न हो, न हो, न हो। (५)

❖ केवल शुद्धात्मानुभव के अलावा इस संसार की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए। (५)

❖ प्रकट ज्ञानीपुरुष दादा भगवान की आज्ञा में ही निरंतर रहने की परम शक्ति प्राप्त हो, प्राप्त हो, प्राप्त हो। (५)

❖ ज्ञानीपुरुष 'दादा भगवान' के वीतराग विज्ञान का यथार्थ रूप से, संपूर्ण-सर्वांग रूप से केवल ज्ञान, केवल दर्शन और केवल चारित्र में परिणमन हो, परिणमन हो, परिणमन हो। (५)

नौ कलमें

१. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे (ठेस न पहुँचे), न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

मुझे, किसी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।

२. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभे, न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

मुझे, किसी भी धर्म का किंचित्मात्र भी प्रमाण न दुभाया जाए ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।

३. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी उपदेशक साधु, साध्वी या आचार्य का अवर्णवाद, अपराध, अविनय न करने की परम शक्ति दीजिए।

४. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति किंचित्‌मात्र भी अभाव, तिरस्कार कभी भी न किया जाए, न करवाया जाए या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

५. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के साथ कभी भी कठोर भाषा, तंतीली भाषा न बोली जाए, न बुलवाई जाए या बोलने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

कोई कठोर भाषा, तंतीली भाषा बोले तो मुझे, मृदु-ऋजु भाषा बोलने की शक्ति दीजिए।

६. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा के प्रति स्त्री, पुरुष या नपुंसक, कोई भी लिंगधारी हो, तो उसके संबंध में किंचित्‌मात्र भी विषय-विकार संबंधी दोष, इच्छाएँ, चेष्टाएँ या विचार संबंधी दोष न किए जाएँ, न करवाए जाएँ या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

मुझे, निरंतर निर्विकार रहने की परम शक्ति दीजिए।

७. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी रस में लुब्धता न हो ऐसी शक्ति दीजिए।

समरसी आहार लेने की परम शक्ति दीजिए।

८. हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी देहधारी जीवात्मा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, जीवित अथवा मृत, किसी का किंचित्‌मात्र भी अवर्णवाद, अपराध, अविनय न किया जाए, न करवाया जाए या कर्ता के प्रति अनुमोदना न की जाएँ, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

९. हे दादा भगवान! मुझे, जगत कल्याण करने का निमित्त बनने की परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

(इतना आप दादा भगवान से माँगते रहें। यह प्रतिदिन यंत्रवत् पढ़ने की चीज़ नहीं है, हृदय में रखने की चीज़ है। यह प्रतिदिन उपयोगपूर्वक भावना करने की चीज़ है। इतने पाठ में तमाम शास्त्रों का सार आ जाता है।)

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

भोगवटा : सुख या दुःख का असर

आड़ाई : अहंकार का टेढ़ापन

त्रागा : अपनी मनमानी करवाने के लिए किया जाने वाला नाटक

लागणी : लगाव, भावुकता वाला प्रेम

घेमराजी : अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने

खुमारी : गौरव, गर्व, गुरूर, रौब, इज़्ज़त

आड़ाई : अहंकार का टेढ़ापन

पांजरापोल : अनाथ पशुओं की पशुशाला

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मानिलक

उपाधि : बाहर से आने वाला दुःख

तुमाखी : हेकड़ी, घमंड

पुद्‌गल : जो पूरण और गलन होता है

सलियाखोर : शरारत करके परेशान करने वाले

सली : शरारत

संथारा : मृत्यु तक उपवास

लक्ष : जागृति

नोंध : बैर सहित नोट करना

चीकणी फाइल : गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग

चोविहार : सूर्यास्त से पहले भोजन करना

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

1. ज्ञानी पुरुष की पहचान
2. सर्व दु:खों से मुक्ति
3. कर्म का सिद्धांत
4. आत्मबोध
5. मैं कौन हूँ ?
6. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
7. भुगते उसी की भूल
8. एडजस्ट एवरीव्हेयर
9. टकराव टालिए
10. हुआ सो न्याय
11. चिंता
12. क्रोध
13. प्रतिक्रमण
14. दादा भगवान कौन ?
15. पैसों का व्यवहार
16. अंत:करण का स्वरूप
17. जगत कर्ता कौन ?
18. त्रिमंत्र
19. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
20. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
21. प्रेम
22. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं.)
23. दान
24. मानव धर्म
25. सेवा-परोपकार
26. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
27. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
28. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
29. क्लेश रहित जीवन
30. गुरु-शिष्य
31. अहिंसा
32. सत्य-असत्य के रहस्य
33. चमत्कार
34. पाप-पुण्य
35. वाणी, व्यवहार में...
36. कर्म का विज्ञान
37. सहजता
38. आप्तवाणी - 1
39. आप्तवाणी - 2
40. आप्तवाणी - 3
41. आप्तवाणी - 4
42. आप्तवाणी - 5
43. आप्तवाणी - 6
44. आप्तवाणी - 7
45. आप्तवाणी - 8
46. आप्तवाणी - 9
47. आप्तवाणी - 13 (पूर्वार्ध व उत्तरार्ध)
48. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
49. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (पूर्वार्ध व उत्तरार्ध)
50. ज्ञानी पुरुष

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज	:	**त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org
राजकोट	:	**त्रिमंदिर,** अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9924343478
भुज	:	**त्रिमंदिर,** हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123
अंजार	:	**त्रिमंदिर,** अंजार-मुन्द्र रोड, सीनोग्रा पाटीया के पास, सीनोग्रा गाँव, ता.-अंजार, फोन : 9924346622
मोरबी	:	**त्रिमंदिर,** मोरबी-नवलखी हाईवे, पो-जेपुर, ता.-मोरबी, जि.-राजकोट. फोन : (02822) 297097
सुरेन्द्रनगर	:	**त्रिमंदिर**, सुरेन्द्रनगर-राजकोट हाईवे, लोकविद्यालय के पास, मुळी रोड. फोन : 9737048322
अमरेली	:	**त्रिमंदिर**, लीलीया बायपास चोकडी, खारावाडी, फोन : 9924344460
गोधरा	:	**त्रिमंदिर,** भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा. (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300
वडोदरा	:	बाबरीया कोलेज के पास, वडोदरा-सुरत हाई-वे, NH-8, वरणामा गाँव. फोन : 9574001557
वडोदरा	:	दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335
अहमदाबाद	:	**दादा दर्शन,** ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

मुंबई	:	9323528901	**दिल्ली**	:	9810098564
कोलकता	:	9830093230	**चेन्नई**	:	9380159957
जयपुर	:	9351408285	**भोपाल**	:	9425024405
इन्दौर	:	9039936173	**जबलपुर**	:	9425160428
रायपुर	:	9329644433	**भिलाई**	:	9827481336
पटना	:	7352723132	**अमरावती**	:	9422915064
बेंगलूर	:	9590979099	**हैदराबाद**	:	9989877786
पूणे	:	9422660497	**जलंधर**	:	9814063043

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232), **Email :** info@us.dadabhagwan.org

U.K.	:	+44 330-111-DADA (3232)	**Australia**	:	+61 421127947
Kenya	:	+254 722 722 063	**New Zealand**	:	+64 21 0376434
UAE	:	+971 557316937	**Singapore**	:	+65 81129229

www.dadabhagwan.org

असामान्य-बेजोड़ ज्ञानी पुरुष

मेरा संतोष जन्मजात था। मुझमें बचपन से ही दुःख में से सुख खोजने की वृत्ति थी।

मैं तो बचपन से ही किसी चीज़ में नहीं पड़ता था। मुझे वही करना था जो और कोई नहीं कर सकता था। सांसारिक चीज़ों के तो बहुत जानकार हैं। मुझे उसका जानकार बनना है जिसका कोई जानकार नहीं हो।

दुनिया के ज्ञानी तो चलते-फिरते भी मिल जाते थे। इसलिए मुझे यह विचार आया कि जिस चीज़ का कोई ज्ञानी नहीं है, जिसका ज्ञानी कोई पैदा ही नहीं हुआ, मुझे उस चीज़ का ज्ञानी बनना है।

– दादाश्री

dadabhagwan.org

Printed in India

Price ₹ 150